कनिङ्घम लिखित

प्राचीन भारतका ऐतिहासिक भूगोल

★

HISTORY OF THE
ANCIENT GEOGRAPHY OF INDIA

A CUNNINGHAM

★

अनुवादक

जगदीश चन्द्र

★

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४६२ मालवीय नगर

इलाहाबाद

★

प्रथम संस्करण] अगस्त १९७१ [मूल्य १५)

प्रकाशक
आदर्श हिन्दी पुस्तकालय
४६२ मालवीय नगर
इलाहाबाद



मुद्रक—
उत्तम प्रिंटिंग प्रेस
१०३८ बलुआघाट
इलाहाबाद

समर्पण

मेजर जेनरल सर एच० सी० रालिन्सन K C B

को

जिन्होंने मेरी इस पुस्तक के निर्माण में,
अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है,
उनको यह पुस्तक सादर समर्पित
करता हूँ।

एलेक्जेण्डर कनिङ्घम
लेखक

मूल संस्करण की भूमिका

भारत के भूगोल को सुविधा पूर्वक मुख्य विशिष्ट भागों में विभाजित किया जा सकता है जिसके प्रत्येक भाग का नामांकरण उस समय में प्रचलित धार्मिक तथा राजनैतिक स्वरूप के आधार पर किया जा सकता है कि ब्रह्म कालीन, बौद्ध कालीन तथा मुस्लिम कालीन।

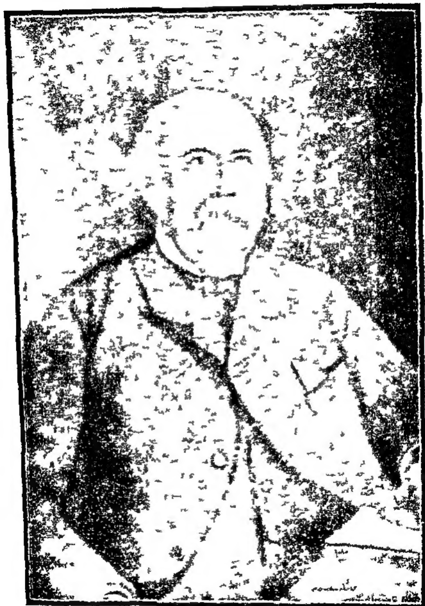
ब्रह्म कालीन भूगोल में आर्य जाति द्वारा पंजाब पर सर्वप्रथम अधिकार से लेकर बौद्ध धर्म के उत्थान के समय तक उत्तरी भारत पर आर्य जाति के विस्तार का विवरण मिलता है और इस काल में सम्पूर्ण ऐतिहासिक अथवा आर्यों के प्राचीनतम भाग का समय सम्मिलित है जिस समय देश में वैदिक धर्म ही प्रचलित था।

बौद्ध काल अथवा भारत का प्राचीन भूगोल में बुद्ध के समय से महमूद गजनवी की विजयों के समय तक बौद्ध धर्म के उत्थान, विस्तार एवं पतन की कहानी निहित है जिसके अधिकांश समय में बौद्ध धर्म ही देश का मुख्य धर्म था।

मुस्लिम काल अथवा भारत का आधुनिक भूगोल महमूद गजनवी के समय से लेकर प्लासी के युद्ध के समय तक अथवा ७५० वर्षों के काल में मुस्लिम शक्ति के उत्थान तथा विस्तार का समय था जिसमें मुसलमान ही भारत के सर्वोपरि शासक थे। एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने एक अन्य पुस्तक में वैदिक कालीन समीक्षा को अपनी पुस्तक का विषय बनाया है। भारतीय भूगोल के इस प्राचीन भाग पर एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन के मूल्यवान विवरण से इस बात का आभास मिलता है कि एक योग्य एवं चतुर समीक्षक द्वारा वैदिक कालीन गाथाओं से कितनी रुचि पूर्ण सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

द्वितीय अथवा प्राचीन खण्ड का आंशिक विवरण एच एच विलसन द्वारा अपनी पुस्तक एरियाना एंटिका (Ariana Antiqua) तथा प्रो० लासेन द्वारा पेंट पोटामिया इंडिका में किया गया है परन्तु ये पुस्तकें उत्तर पश्चिमी भारत से संबंधित हैं। प्रो० लासेन ने प्राचीन भारत पर अपनी एक अन्य बड़ी पुस्तक में योग्यता पूर्वक सम्पूर्ण भूगोल का चित्रण किया है। एम० डी सेंट मार्टिन ने अपने दो विशेष लेखों में देश के भूगोल का विस्तृत विवरण दिया है। इनमें एक लेख यूनानी तथा लैटिन स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर भारत के भूगोल पर लिखा गया है जबकि दूसरा लेख एम० जुलीन द्वारा चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग की जीवनी तथा यात्राओं के अनु-

इस पुस्तक के लेखक



एलेक्जेन्डर कनिंघम

बाद परिशिष्ट के रूप मे लिखा गया है। उनका अनुसधान इतनी सावधानी एव सफलता से किया गया है कि बहुत कम स्थान अपने असली स्वरूप म स्पष्ट रूप से सामने आने से रह गये हैं परन्तु उनकी आलोचनात्मक सूक्ष्मता इतनी प्रखर है कि कुछ स्थानों पर जहाँ हमारे मानचित्रों की अशुद्धता के कारण स्थानो की ठीक-ठीक पहचान प्राय असम्भव हो गई थी, उन्होंने इन स्थानो को इनकी वास्तविक स्थिति के कुछ ही मीलों के भीतर इंगित किया है।

तृतीय अथवा आधुनिक काल की व्याख्या के लिये भारत के मुस्लिम राज्यो की अनेक ऐतिहासिक पुस्तको म प्रचुर सामग्री प्राप्त है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है उन अनेक स्वतन्त्र राज्यो क सीमाकन हेतु अभी तक कोई प्रयत्न नहीं हुआ जिनकी स्थापना पन्द्रहवी शताब्दी मे तैमूर के आक्रमणोपरान्त फैली अवव्यवस्था क समय हुई थी। इसी काल म स्वतन्त्र हुए, दिल्ली, जौनपुर, बङ्गाल, मालवा, गुजरात सिंध, मुल्तान तथा गुलबर्ग के मुस्लिम राज्यों एवम् ग्वालियर आदि विभिन्न हिन्दू राज्यो की विशिष्ट सीमाओं को प्रदर्शित करने वाले विशेष मानचित्र के अभाव के कारण इस काल का इतिहास स्पष्ट है।

मैंने बौद्ध काल अथवा भारत के प्राचीन भूगोल को अपनी वतमान खोज का विषय चुना है क्योकि मेरा विश्वास है कि भारत म अपने लम्बे निवास के समय स्थानीय अनुसंधान हेतु प्राप्त विशिष्ट अनुकूल साधन मुझे भारत क अनेक महत्वपूर्ण स्थानों की स्थिति पूर्ण निश्चय क साथ निर्धारित करने क योग्य बनायेंगे।

मैंने जिस काल की व्याख्या करने का बीड़ा उठाया हैं उसम मेरे मुख्य मार्ग दर्शक हैं। ईसवी पूर्व की चौथी शताब्दी मे सिकन्दर के आक्रमण एवम् ईसा के पश्चात सातवी शताब्दी में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग की यात्राओ का विवरण भारत के प्राचीन इतिहास तथा भूगोल म इस चीनी तीर्थ यात्री की तार्थ यात्राओं का विवरण उतना ही रुचिपूर्ण एवम् महत्वपूर्ण स्थान रखता है जितना कि सिकन्दर महान की साहसिक यात्रायें। मेसिडोनिया के विजेता का वास्तविक आक्रमण सिंधु एवम् इसकी सहायक नदियो की घाटी तक सीमित था परन्तु स्वय सिकन्दर महान एवम् उसके सहयोगियों द्वारा एकत्रित सूचनाओं तथा तत्पश्चात मौरियान बादशाहो क दूतो एवम् आक्रमणों द्वारा प्राप्त सूचनाओं म, उत्तर म गङ्गा नदी की सम्पूर्ण घाटी, दक्षिणी पठार के पूर्वी एवम् पश्चिमी घाट का सम्पूर्ण विवरण एवम् देश के आन्तरिक भागो का आंशिक विवरण निहित है। टालमी ने इन सूचनाओ को अपनी क्रमानुसार खोजो द्वारा विस्तृत स्वरूप प्रदान किया है और टालमी का विवरण अधिक मूल्यवान है क्योंकि यह विवरण सिकन्दर महान एवम् ह्वेनसाग के समय के प्राय मध्य काल (१) से सम्ब-

(१) सिकन्दर का आक्रमण ३३० ई० पू टालमी का भूगोल सन् १५० अथवा सिकन्दर के आक्रमण के ४८० वर्ष पश्चात, भारत मे ह्वेनसाग की यात्राओ का आरम्भ सन ६३० अथवा टालमी से प्राय ४८० वर्ष पश्चात।

चित है जिस समय भारत का अधिकांश भाग इन्डो सीथियन लोगो के अधीन था।

टालमी के साथ ही हमने उच्च कोटि के अनेक विद्वानों को खो दिया है और तत्पश्चात काफी समय तक हम प्राचीन शिला लेखो एवम् पुराणो के स्पष्ट अधकार में छिपे विभिन्न भौगोलिक अंशो को सम्बधित एवम् क्रमानुसार करने म प्राय पूर्ण रूपेण अपने निर्णय पर निर्भर करते थे परन्तु ईसवी काल की पाँचवी, छठीं, एव सातवीं शताब्दी मे अनेक चीनी तीर्थ यात्रियो की यात्राओ के विवरण की भाग्यपूर्ण खोज ने अभी तक अधकार में छिपे इस काल के इतिहास पर इतना प्रकाश डाला है कि अब हम भारत के प्राचीन भूगोल के छितरे हुए अंशों को सामान्य क्रमानुसार देखने योग्य हो गये हैं।

चीनी तीर्थ यात्री फाहियान एक बौद्ध पुजारी था जिसने ३९९ तथा ४१३ ई० के समय मे अपर सिंध के तट से लेकर गङ्गा नदी के मुहाने तक भारतवर्ष की यात्रा की थी। दुर्भाग्यवश उसका विवरण बहुत ही संक्षिप्त है और मुख्य रूप से इसे बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानो एवम् वस्तुओ के उल्लेख हेतु लिखा गया है परन्तु चूँकि उसके मार्ग मे पड़ने वाले मुख्य स्थानो के दिकांश एवम् दूरियों का उल्लेख किया है अत उसका संक्षिप्त विवरण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। द्वितीय चीनी तीर्थ यात्री सुङ्ग युन की यात्रायें ५०२ ई० म हुई थी परन्तु चूकि यह यात्रायें काबुल की घाटी एव उत्तर पश्चिमी पञ्जाब तक सीमित थी, यह कम महत्वपूर्ण हैं विशेषतय जबकि उसका विवरण भौगोलिक उल्लेखो म मुख्य रूप से अपूर्ण है।

तृतीय चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग भी एक बौद्ध पुजारी था जिसने अपने जीवन काल के प्रायः पन्द्रह वर्ष भारत म बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानो की यात्रा एव अपने धर्म की प्रसिद्ध पुस्तको के अध्ययन मे व्यतीत किये थे। उसकी यात्राओ के अनुवाद के लिये हम एम० जुलीन के आभारी हैं जिन्होंने अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संस्कृत एव चीनी भाषाओ का ज्ञान प्राप्त करने मे बीस वर्षों का अथक प्रयास किया था। ह्वेनसाग की यात्राओं का समय ६२९ ई० से ६४५ ई० तक था। इस काल मे उसने काबुल तथा काश्मीर से गङ्गा एव सिंधु नदियों के मुहाने तक तथा नेपाल से मद्रास के समीप काँचीपुर तक सम्पूर्ण देश के बड़े बड़े नगरो की यात्रा की थी। तीर्थ यात्री ने ६३० ई० के मई माह के अन्तिम दिनो में बामियान के मार्ग से काबुल मे प्रवेश किया था और अनेक परिभ्रमणो एव लम्बे विश्राम के पश्चात आगामी वर्ष के अप्रल मे ओहिन्द के स्थान पर सिंधु नदी को पार किया था। उसने बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों की यात्रा के उद्देश्य से कई मास का समय तक्षशिला म व्यतीत किया और तत्पश्चात् काश्मीर की ओर प्रस्थान किया जहाँ उसने अपने धर्म की अधिक महत्वपूर्ण पुस्तको के अध्ययन हेतु दो वर्ष व्यतीत किये। पूर्व दिशा में अपनी यात्रा म उसने सांगला के खण्डहरों की यात्रा की जो सिकन्दर के इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और चिनापट्टी मे चौदह मास

ौर जलन्धर में चार मास धार्मिक अध्ययन हेतु व्यतीत करने के पश्चात् उसने ६३५ सवी में सतलज नदी को पार किया। तत्पश्चात उसने टेढे मेढे मार्ग का अनुसरण कया क्योंकि अनेक अवसर पर उसे उन स्थानों की यात्रा करने के लिये पीछे मुड़ना ड़ा था जो पूर्व दिशा की ओर उसके सीधे मार्ग से छूट गये थे। इस प्रकार मथुरा हुँचने के पश्चात वह उत्तर-पश्चिम में २०० मील की दूरी पर थानेश्वर की ओर वापस मुड़ा जहाँ से यमुना नदी पर स्थित श्रुघना तथा गङ्गा नदी पर स्थित गङ्गा द्वार के मार्ग से पूर्व दिशा की ओर उत्तरी पञ्चाल अथवा रुहेल खण्ड की राजधानी अहिछत्र की यात्रा की। तत्पश्चात द्वाब में सङ्किशा, कन्नौज तथा कौशाम्बी के प्रसिद्ध नगरों की यात्रा के उद्देश्य से उसने गङ्गा नदी को पुन पार किया और उसके पश्चात अवध मे अयोध्या तथा श्रावस्ती के पवित्र स्थानों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिये उत्तर की ओर मुड़ गया। वहाँ से उसने कपिलवस्तु तथा कुशी नगर के स्थानो पर बुद्ध के जन्म एवं निर्वाण के स्थानो की यात्रा हेतु पुन पूर्व दिशा का अनुकरण किया और वहाँ से एक बार फिर पश्चिम दिशा में बनारस के पवित्र नगर की ओर मुड़ा जहाँ बुद्ध ने अपने धर्म की प्रथम शिक्षा दी थी। तत्पश्चात पुनः पूर्व दिशा का अनुकरण करते हुए उसने तिर्हुत मे वैशाली के प्रसिद्ध नगर की यात्रा की जहाँ से उसने नेपाल की साह-सिक यात्रा की और पुन वैशाली की ओर मुड़ते हुये उसने गङ्गा नदी को पार कर पाटलीपुत्र अथवा पालीबोथरा की यात्रा की। वहाँ से वह गया के आस-पास बौद्ध गया के स्थान पर शूनर के पवित्र वृक्ष, जहाँ बुद्ध ने पाँच वर्ष तपस्या की थी, से लेकर गिरियक की ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी जहाँ बुद्ध ने इन्द्र देवता को अपने धार्मिक विचारों से अवगत कराया था, तक गया के आस-पास अनेक पवित्र स्थानों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के उद्देश्य से यात्रा की थी। तत्पश्चात वह मगध की प्राचीन राजधानियों कुसागर-पुर तथा राजगृह के प्राचीन नगरो तथा सम्पूर्ण भारत में बौद्ध धर्म के सर्वोपरि प्रसिद्ध स्थान नालन्दा के महान् मठ में गया जहाँ उसने संस्कृत भाषा के अध्ययन हेतु १५ मास व्यतीत किया। ६३८ ई० के अन्त मे उसने गङ्गा नदी का मार्ग अपनाते हुए मोघगिरि तथा चम्पा तक पूर्व दिशा का पुनः अनुसरण किया और तदोपरान्त नदी को पार कर उत्तर की ओर पौण्ड्रवर्धन अथवा पुनवा तथा कामरूप अथवा आसाम की यात्रा की।

इस प्रकार भारत के सुदूर पूर्व जिले में पहुँचने के पश्चात उसने दक्षिण की ओर रुख किया और समतट अथवा जैसोर तथा ताम्रलिप्ति अथवा तामलुक होते हुए वह ६३९ ई० में ओदरा अथवा उडीसा पहुँचा। दक्षिण दिशा मे अपनी यात्रा जारी रखते हुए उसने गञ्जाम तथा कलिङ्ग की यात्रा की तथा तदोपरान्त उत्तर की ओर मुड़ते हुये वह प्रायद्वीप के मध्य कौशल अथवा बरार में पहुँचा। तत्पश्चात दक्षिण दिशा का अनुसरण कर आन्ध्र अथवा तेलङ्गाना प्रदेश से होते हुए कृष्णा नदी पर धनकाकटा अथवा अमरावती पहुँचा तथा उसने बौद्ध धर्म के साहित्य के अध्ययन में

वर्ष [illegible] व्यतीत किये। ६४० ई० में सम्भवतः वे इस स्थान से चलकर दक्षिण दिशा में द्रविड़ की राजधानी कांचीपुर [illegible] जहाँ [illegible] सुनता के [illegible] नहीं कि [illegible] की मृत्यु के पश्चात [illegible] है। [illegible] विभिन्न [illegible] पर लोग यात्री के [illegible] की तिथियों को [illegible] के उद्देश्य से अधिक महत्वपूर्ण है। इन्हीं तिथियों [illegible] विभिन्न [illegible] पर [illegible] विषय [illegible] के आधार पर निश्चित है। अब मदुरा के [illegible] विदित राजा [illegible] की [illegible] ई० में [illegible] कर [illegible] का अनुमान करना [illegible] है कि कांची पुर [illegible] मदुरा के [illegible] ने [illegible] और वह ६४० ईसवी के प्रारम्भ में कांचीपुर पहुँचे हों। यह तिथि तीर्थ यात्री की गतिविधियों के सम्बन्ध में मेरे अनुमान से ठीक मेल खाती है।

द्रविड़ से ह्वेनसांग ने पुनः उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया तथा कोंकण तथा महाराष्ट्र से होते हुए नर्मदा नदी पर स्थित भड़ौच नगर पहुँचा जहाँ से वह उज्जैन वलभी तथा अन्य छोटे छोटे राज्यों से होता हुआ ६४१ ई० के अन्त में सिन्ध तथा मुलतान पहुँचा। तत्पश्चात अचानक ही वह मगध की ओर वापस तथा विश्राम के महान मठ तक गया जहाँ उसने प्रज्ञभद्र नामक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु की कुछ कुछ धार्मिक व्याख्या से [illegible] दो मास का समय व्यतीत किया। तब बाद उसने पुनः कामरूप अथवा आसाम की यात्रा की जहाँ वह एक मास तक रहा। ६४३ ई० के प्रारम्भिक भाग में वह पुनः पाटलिपुत्र में था जहाँ उसने उत्तरी भारत के सर्वोच्च शासक महान सम्राट हर्षवर्धन अथवा शिलादित्य के दरबार में प्रवेश किया। उस समय इस सम्राट के दरबार में अठारह सहायक शासक पंचवर्षीय सभा के पवित्र कार्य को गौरव प्रदान करने के उद्देश्य से आए हुए थे। तीर्थ यात्री ने इस महान शासक के जलूस में पाटलीपुत्र से प्रयाग एवम् कोशाम्बी होते हुए कन्नौज की यात्रा की थी। उसने इन स्थानों पर हुए धार्मिक उत्सवों का सूक्ष्म विवरण दिया है जो तत्कालीन बौद्ध धर्म के सार्वजनिक रीतियों पर प्रकाश डालने में विशेष रुचि कर है। कन्नौज में उसने सम्राट हर्षवर्धन से आज्ञा ली तथा जालन्धर के राजा उदित के साथ उत्तर पश्चिम दिशा में यात्रा की। जालन्धर में उसने एक मास का विश्राम किया था। उसकी यात्रा का यह भाग आवश्यक रूप से धीमा था क्योंकि उसने अनेक मूर्तियाँ एवम् अपार संख्या में धार्मिक पुस्तकें एकत्रित कर रखी थी जिन्हें वह भारवाहक हाथियों पर ले जा रहा था। इनमें पचास हस्त लिखित उत्खण्ड अथवा ओहिन्द के स्थान पर नदी पार करते समय नष्ट हो गई थी। तीर्थ यात्री ने स्वयं हाथी की पीठ पर बैठ कर नदी को पार किया था और यह कार्य बर्फ के पिघलने के कारण

नदियो मे बाढ से पूर्व दिसम्बर जनवरी तथा फरवरी के महीनो मे किया जा सकता है। मेरी गणना के अनुसार उसने ६४३ ई० के अन्त मे सिन्धु नदी को पार किया था। उत्खण्ड म उसे सिन्धु नदी में गुम होने वाली हस्तलिपियो की नवीनतम प्रतिलिपियाँ प्राप्त करने के लिए पचास दिन तक रुकना पडा। तत्पश्चात् कपिसा के राजा के साथ वह लम्गान की ओर चला गया। चूकि इस यात्रा मे एक मास का समय लग गया था, वह ६४४ ई० के मार्च महीने के मध्य मे अथवा सामान्य समय स तीन मास पूर्व लम्गान पहुँच गया होगा। यह तथ्य दक्षिण दिशा म फलना अथवा बन्नू जिले तक पन्द्रह दिन की उसकी अचानक यात्रा पर प्रकाश डालने के लिये पर्याप्त है। जहाँ से वह काबुल तथा गजनी होता हुआ जुलाई के प्रारम्भ मे कपिसा पहुँचा। यहाँ एक धार्मिक समद मे भाग लेने के लिए वह पुन रुका था। अत ६४४ ई० की जुलाई के मध्य तक अथवा बमियान के माग स भारत में प्रथम प्रवेश के प्राय १० वर्ष पश्चात् कपिसा स प्रस्थान नही कर सका होगा। कपिसा से पजशीर घाटी तथा खावक दर्रे से होते हुए अन्देराब पहुँचा जहाँ वह जुलाई के अन्त तक पहुँचा होगा। बर्फीले दर्रों को सरलता पूर्वक पार करने का अभी समय नहीं था और यही कारण है कि पर्ववर्तीय माग स जाते समय चीन यात्री ने वर्फ स ढको नदियों एवम् बर्फीले मैदानो का उल्लेख किया है। वर्ष के अन्त तक उसने काशगर, यारकन्द तथा कोटाग को पार किया और अन्त में ६४५ ई० को बसत ऋतु में वह चीन की पश्चिमी राजधानी म सकुशल पहुँचा।

ह्वेनसाग क माग का सर्वेक्षण उसकी भारतीय यात्राओ के सुहाने विस्तार एव पूर्णता को सिद्ध करने मे पर्याप्त है और जहाँ तक मुझे ज्ञात है उसकी इन यात्राओ को कोई पार नहीं कर सका। बुचनान हैमिल्टन ने कुछ देश का जो सर्वेक्षण किया था वह अति सूक्ष्म था। परन्तु वह उत्तरी भारत मे गङ्गा नदी के निचले प्रान्तो तथा दक्षिण भारत म मैसूर के जिले तक सीमित था।

जकमाट ने सीमित यात्राएँ की थीं। परन्तु इस फ्रांसिसी विद्वान ने मुख्य रूप म वनस्पति शास्त्र एवम् भूगर्भ शास्त्र एवम् अन्य वैज्ञानिक विषयों पर विचार किया है अत उसकी भारत यात्रा म भारत के भूगोल सम्बन्धी हमारी जानकारी मे अधिक सहायता नही दी। मेरी अपनी यात्राए उत्तर भारत में सिन्धु नदी के समीप पेशावर तथा मुलतान से एरावदी नदी पर रगून तथा प्रोम तक तथा काश्मीर एवम् लद्दाख स सिन्धु नदी के मुहाने तथा नर्बदा के तट तक देश के सम्पूर्ण भाग तक विस्तृत रही हैं। परन्तु दक्षिण भारत से मैं अनभिज्ञ रहा हूँ तथा पश्चिमी भारत म एलीफेंटा तथा कन्हारी की प्रसिद्ध कन्दराओं सहित केवल बम्बई से परिचित हूँ परन्तु भारत म तीस वर्ष से अधिक काल की अपनी लम्बी सेवा म इसका प्राचीन इतिहास एवम् भूगोल मेरे निजी समय में अध्ययन के मुख्य विषय रहे हैं जबकि अपने निवास के अन्तिम चार

वर्षों मे मैंने अपना सम्पूर्ण समय इन्हीं विषयों पर व्यतीत किया था क्योंकि मैं इस समय भारत सरकार द्वारा देश की प्राचीन अवशेषों के परीक्षण एवम् उन पर रिपोट लिखने के लिए पुरातत्व विभाग का सर्वेक्षक नियुक्त किया गया था। इस प्रकार देश के भूगोल के अध्ययन हेतु प्राप्त अनुकूल अवसर का मैंने यथासम्भव लाभ उठाया और यद्यपि अभी भी अनेक स्थानो की खोज शेष रह गई है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैं प्राचीन भारत के अनेक सर्वाधिक प्रसिद्ध नगरों की स्थिति को निर्धारित करने में सफल हुआ हू। चूंकि अगले पृष्ठों में इन सभी नगरों का उल्लेख किया जाएगा, यहाँ मैं केवल उन अधिक प्रमुख स्थानों का उल्लेख करूंगा जिनसे स्पष्ट हो सके कि मैंने पूर्ण तैयारी के बिना इस कार्य म हाथ नहीं लगाया है।

(१) एओरनास, सिकन्दर महान द्वारा अधिकृत चट्टानों का बना प्रसिद्ध दुग।

(२) तक्षिला, उत्तर पश्चिमी पञ्जाब की राजधानी।

(३) सांगला, सिकन्दर द्वारा अधिकृत मध्य पञ्जाब का पर्वतीय दुग।

(४) स्रुघना, यमुना नदी पर एक प्रसिद्ध नगर।

(५) अहिछत्र, उत्तरी पांचाल की राजधानी।

(६) बैराट, दिल्ली के दक्षिण मत्स्य की राजधानी।

(७) सकिसा, कन्नौज के समीप, जो स्वग से बुद्ध के उतरने के स्थान के रूप मे प्रसिद्ध था।

(८) राप्ती नदी पर श्रावस्ती, जो बुद्ध की शिक्षाओं के लिए प्रसिद्ध था।

(९) कौशाम्बी, इलाहाबाद के समीप यमुना तट पर अवस्थित है।

(१०) कवि भवभूति की पद्मावती।

(११) पटना के उत्तर में वैशाली।

(१२) नालन्दा, सम्पूर्ण भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध बौद्ध मठ।

ए० कनिङ्घम

विषय-सूची

—:o—

प्राचीन भारतका ऐतिहासिक भूगोल

— ० —

भारत की सीमाएँ और राज्य

यूनानियो के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में भारतीयो को अपने देश की वास्तविक आकृति एव आकार का सही-सही ज्ञान था। स्ट्रैबो के अनुसार सिकन्दर ने 'देश की अच्छी जानकारी रखने वाले व्यक्तियो से सम्पूर्ण देश का विवरण लिखवाया था।" और यही विवरण आगे चलकर सीरियाई शासकों के कोषाध्यक्ष जैनोक्लीज ने पैट्रोक्लीज को दे दिया था। स्वय पैट्रोक्लीज सिल्यूकस निकेटर तथा एन्टीयोकस सोटर के आधिपत्य मे सीरियाई साम्राज्य के उत्तर पूर्वी क्षत्रपी (प्रान्त) का शासक था और भारत एव पूर्वी प्रान्तो के विषय में जो सूचना उसने एकत्रित की थी उसे अपनी सत्यता के लिए एराटोस्थनीज एव स्ट्रैबो की स्वीकृति प्राप्त है। भारत का एक अन्य विवरण अथवा स्थान स्थान की 'सैनिक यात्राओ' की उस विवरण पुस्तिका से प्राप्त किया गया है जो मेसीडोनिया के अमिन्तास द्वारा तैयार की गई थी। मैगस्थनीज ने जो सिल्यूकस निकेटर के राजदूत के रूप में वस्तुत पालीबोथरा (पाटलिपुत्र) गया था, अपनी साक्षी से उस विवरण की पुष्टि की है। इन लेखो के आधार पर एराटोस्थनीज एव अन्य लेखको ने भारत को आकृति मे 'आयताकार विषम कोण समभुज क्षेत्र" अथवा असमान चतुर्भुज बताया है जिसके पश्चिम मे सिंधु नदी, उत्तर मे पर्वत तथा पूर्व एव दक्षिण मे समुद्र है। सबसे छोटा भाग पश्चिम था जिसे पैट्रोक्लीज ने ११००० स्टडिया और एराटोस्थनीज ने १३००० स्टडिया आंका था। सभी विवरण इस बात पर सहमत हैं कि सिकन्दर द्वारा बनाए गए पुल (सिंधु नदी पर) से समुद्र तक सिंधु नदी का जल भाग १०००० स्टडिया अर्थात् ११४६ मील था और उनमें मतभेद केवल पुल के ऊपरी भाग मे काकेशस अथवा पारापामिसस के हिमाच्छादित पर्वतों की अनुमानित दूरी के विषय मे है। देश की लम्बाई पश्चिम से पूर्व की ओर आंकी गई थी जिससे सिंधु नदी से पालीबोथरा (पटना) के क्षेत्र की दूरी राजकीय मार्ग के साथ साथ शोरी द्वारा आंकी गई थी तथा यह दूरी १०००० स्टडिया तथा ११४६ मील थी। पालीबोथरा (पटना) से समुद्र तक की दूरी ६००० स्टडिया अथवा ६८६ मील का अनुमान लगाया गया था। इस प्रकार सिंधु नदी से गङ्गा के

मुहाने तक की कुल दूरी १६००० स्टेडिया अथवा १८३८ मील बताई गई थी। प्लिनी के अनुसार गङ्गा के मुहाने से पालीबोथरा की दूरी केवल ६३७ ५ रोमन मील थी। परन्तु उनके आँकड़ इतने अशुद्ध हैं कि उन पर बहुत कम विश्वास किया जा सकता है अत मैं इस दूरी को बढ़ाकर ७३७ ५ रोमन मील करवाना चाहूँगा। जो ३७८ ब्रिटिश मील के बराबर है। गङ्गा के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक पूर्वी तट की लम्बाई १६००० स्टेडिया अथवा १८३८ मील आँकी गई था ओर कुमारी अन्तरीप से सिन्धु नदी के मुहाने तक दक्षिणी (अथवा दक्षिण पश्चिमी) तट की लम्बाई उत्तरी भाग से ३००० स्टेडिया आँकी गई थी।

सिकन्दर के निवेदकों द्वारा दिये गय इन परिमापों की देश क वास्तविक आकार से सामीप्य समानता विचारणीय है। इससे पता चलता है कि भारतीयों को अपने इतिहास के उस प्रारम्भिक काल म भी अपनी मातृभूमि के आकार एव विस्तार का यथार्थ ज्ञान था।

पश्चिम म अटक से ऊपर ओहिन्द से लकर समुद्र तक सिन्धु नदी का थल भाग स्थल से ६५० मील तथा जल भाग से १२०० मील है। उत्तर मे सिन्धु नदी के तट से पटना तक की दूरी हमारे सैन्य अभियान ग्रन्थो के अनुसार ११४३ मील है। यह दूरी मेगस्थनीज के विवरण पर आधारित स्ट्रैबो द्वारा दी गई सिन्धु से पालीबोथरा (पटना) के राजकीय मार्ग की दूरी से केवल छ मील कम है। इस स्थान से आगे की दूरी गगा नदी मे नावो की यात्रा द्वारा ६००० स्टेडिया अथवा ६८९ ब्रिटिश मील आँकी गई थी जो नदी मार्ग की वास्तविक दूरी से केवल ९ मील अधिक है। गङ्गा के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक मानचित्र पर आँकी गई दूरी १६०० मील है। परन्तु तट के अनेक कटाओ के कारण यह दूरी स्थल मार्ग की दूरी के समान बनाने के लिए १/६ के अनुपात से बढा दी जानी चाहिए। इस प्रकार वास्तविक लम्बाई १८६६ मील हो जाएगी। कुमारी अन्तरीप से सिन्धु नदी के मुहाने तक बताई गई दूरी तथा मानचित्र पर आङ्कत वास्तविक दूरी से लगभग ३००० स्टेडिया अथवा ३५० मील का अन्तर है। सम्भव है यह अन्तर खम्भात तथा कच्छ की दो विशाल खाडियो के गहरे कटाव को अपन अनुमान मे सम्मिलित कर लने स उत्पन्न हो गया था और यही तथ्य इस विभिन्नता क सम्पूर्ण अथवा अधिकाश भाग को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

यह व्याख्या मेगस्थनीज की गणना से प्रभावित होती प्रतीत होती है जिसने दक्षिणी समुद्र से काकेशस तक की दूरी का अनुमान २०००० स्टेडिया अथवा २२९८ मील लगाया था। मानचित्र पर सीधे माप से कुमारी अन्तरीप से हिन्दूकुश की दूरी लगभग १९५० मील है जो १/६ भाग बढ़ाकर स्थल मार्ग की दूरी म परिवर्तित करने पर २२६५ मील क बराबर अथवा मेगस्थनीज की गणना के कुछ ही मीलों के अन्तर

मे पड़ती है। चूंकि यह दूरी स्ट्रैबो द्वारा बताई गई कुमारी अन्तरीप से सिंधु नदी के मुहाने तक समुद्र तट को दूरी से केवल १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील अधिक है अत यह निश्चित प्रतीत होता है दक्षिणी (अथवा दक्षिण पश्चिमी) तट की उल्लिखित दूरी म कोई त्रुटि अवश्य हुई है और चूंकि गङ्गा एव सिंधु के मुहाने कुमारी अन्तरीप स समान दूरी पर स्थित है अत दोनो तटा को समान लम्बाई का बनाकर यह त्रुटि पूरा तरह सुधारी जा सकती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सम्पूर्ण भारत का व्यास ६१००० स्टेडिया होगा और यही सम्भवत डियोडोरस का तात्पर्य भी था जिसका कथन है कि "भारत का सम्पूर्ण क्षेत्र पूर्व से पश्चिम २८००० स्टेडिया तथा उत्तर से दक्षिण ३२००० स्टेडिया है। अथवा कुल मिलाकर ६०००० स्टेडिया अर्थात् ६८६४ मील है।

इससे कुछ समय पश्चात् महाभारत म भारत के स्वरूप को समबाहु त्रिकोण बताया गया है जिसे चार समान त्रिकोणों मे विभाजित किया गया था। त्रिकोण का बिन्दु कुमारी अन्तरीप है और इसका आधार हिमालय पर्वत माला स बनता है। इसका परिमान नही दिया गया है और न किसी स्थान का उल्लेख किया गया है परन्तु साथ दिये गये भारत के छोटे मानचित्र के चित्र दो म गुजरात म द्वारका एव पूर्वी तट पर गजाम की रेखा पर मैंने एक समबाहु त्रिकोण खींचा है। इसी छोटे त्रिकोण को इसके उत्तर पश्चिम, उत्तर पूर्व एव दक्षिण म दोहराने पर हमे एक बडे समबाहु त्रिकोण मे भारत के चारो भाग प्राप्त हो जाते हैं। यदि हम उत्तर पश्चिम म भारत की सीमा गजनी तक बढा दें और त्रिकोण के दूसरे दो बिन्दु कुमारी अन्तरीप, एव आसाम में सदिया नामक स्थान पर रखे तो त्रिकोण का यह स्वरूप देश के सामान्य स्वरूप से बहुत कुछ मिल जाता है। ईसा की प्रथम शताब्दी मे महाभारत लिखे जाने के अनुमानित समय म सिन्धु नदी के पश्चिम के प्रदेश इन्डोसीथियन जाति के पास थे। अत इन्हें उचित रूप से भारत की वास्तविक सीमा म सम्मिलित किया जा सकता है।

भारत का एक अन्य विवरण "नव खण्ड" मे मिलता है जिसका सर्व प्रथम वर्णन ज्योतिष शास्त्र के विद्वान पराशर तथा बाराह मिहिर द्वारा किया गया है। यह विवरण सम्भवत. उनके समय से पूर्व का था जिसे बाद मे अनेकानेक पुराणो के लेखकों ने अपना लिया था। इस प्रबन्ध के अनुसार पांचाल मध्य खण्ड का मुख्य जिला था। मगध पूर्वी खण्ड का, कलिङ्ग दक्षिण पूर्व का, अवन्त दक्षिण का, अनत दक्षिण पश्चिम का, सिन्धु सौवीर पश्चिम का, हरहौरा उत्तर पश्चिम का, माद्र उत्तर का तथा कौनिन्द उत्तर पूर्व का प्रमुख जिला था। परन्तु वाराह के संक्षेप एव उसके विस्तृत विवरण म अन्तर है, क्योंकि उसम अनत के साथ-साथ सिन्धु सौवीर को भी दक्षिण पश्चिम म दिखाया गया है। यह त्रुटि अवश्य ही इतनी पुरानी है जितनी की ग्यारहवीं शताब्दी।

क्योंकि अबु रिहान ने वाराह के शास्त्रीय में दिये गये उसी क्रम को जीवित रखा है जो बृहत् संहिता में दिया गया है। इस विस्तृत विवरण की मार्कण्डेय पुराण में पुष्टि की गई है जिसमें सिन्धु सौवीर एवं मद्र दोनों को ही पश्चिम में दिखाया गया है।

मैंने बृहत् संहिता की विस्तृत सूची का ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, विष्णु वायु तथा मत्स्य पुराण की सूचियों से तुलना की है और मैं देखता हूँ कि यद्यपि उनमें विविध दुहराव तथा नामों की हेर फेर के साथ साथ असंगत व्यवस्था दी गई है फिर भी सभी सूचियाँ वस्तुतः एक समान हैं। उनमें से कुछ भिन्न भिन्न क्रम में लिखी गई हैं। उदाहरणार्थ सभी पुराणों में नव खण्डों का उल्लेख किया गया है और उनके नाम भी दिये गये हैं परन्तु केवल ब्रह्माण्ड और मार्कण्डेय पुराणों में प्रत्येक खण्ड के निवासियों के नाम दिये गये हैं। विष्णु, वायु और मत्स्य पुराण केवल पाँच खण्डों अर्थात् मध्य प्रान्त एवं चार मौलिक खण्डों के विस्तृत वर्णन में महाभारत से सहमत हैं।

महाभारत एवं पुराणों में दिये गये नव खण्डों के नाम वाराह मिहिर के नामों से पूर्णतया भिन्न हैं परन्तु यह प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य द्वारा दिये गये नामों से मिलते हैं। ये सभी में एक ही क्रम का अनुसरण करते हैं अर्थात् इन्द्र, कशेरुमत, ताम्रपर्ण, गभस्तिमत, कुमारिका, नाग, सौम्य, वरुण तथा गन्धर्व। इन नामों की पहचान का कोई संकेत नहीं दिया गया है। परन्तु यह धारणा नव खण्डों के पूर्णतया भिन्न क्रम में दिये गये हैं जैसे कि इन्द्र पूर्व में वरुण पश्चिम में कुमारिका मध्य में, जबकि कशेरु अन्त में उत्तर में होगा क्योंकि यह क्रम वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराणों की विस्तृत सूचियों में मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में भारत का पाँच बड़े प्रान्तों में विभाजन अत्यधिक सर्वप्रिय था क्योंकि यह चीनी तीर्थ यात्रियों द्वारा अपनाया गया था और उनके अन्य सभी चीनी लेखकों ने अपनाया था। विष्णु पुराण के अनुसार मध्य खण्ड पर कुरु एवं पांचालों का अधिकार था। पूर्व में कामरूप अथवा आसाम था, दक्षिण में पुण्ड्र, कलिङ्ग एवं मगध थे। पश्चिम में सौराष्ट्र, सुरास, अभिराम, अर्बुद करूश, मालवा, सौवीर तथा सैन्धव थे तथा उत्तर में हूण, सालवा, साकल, राम अम्बष्ठा एवं पारसिक थे। टॉलमी के भूगोल में भारत का वास्तविक आकार इस रूप से तोड़ मोड़ दिया गया है और कुमारी अन्तरीप पर दोनों तटों के मिलने से जो कोण बनता है भारत की आकृति के इस सर्वाधिक अद्भुत लक्षण को बदल कर एक ही तट बनाया गया है जो सिन्धु के मुहाने को लगभग सीधे गङ्गा के मुहाने तक बनता है। इस त्रुटि का कारण आंशिक रूप से ६०० ओलम्पिक स्टेडिया के स्थान पर ५०० स्टेडिया का दोषपूर्ण मूल्यांकन था जिसे टॉलमी ने भूमध्य रेखा सम्बन्धी दशा के कारण किया था। आंशिक रूप से यह भी कारण था कि उसने

स्थल मार्ग को मानचित्र के माप में परिवर्तित करते समय गलती की थी परन्तु त्रुटि का मुख्य कारण जल मार्ग की तुलना में स्थल मार्ग की दूरी असयमित रूप से बढ़ा देना था।

यदि समुद्र से दूरी का माप दण्ड उसी अनुपात में बढ़ा दिया जाता अथवा उसी मूल्य पर आंका जाता जिस अनुपात अथवा मूल्य पर स्थल मार्ग की दूरी का माप दण्ड बढ़ाया जाता है उस दशा में सभी स्थान अपने-अपने अपेक्षित स्थान पर बने रहते। टालमी द्वारा स्थल एवं जल मार्ग की दूरी के असमान मूल्यांकन के परिणाम स्वरूप सभी स्थान माप दण्ड के अनुसार निश्चित स्थानों से अत्यधिक पूर्व में दिखा दिये गये। जैसे जैसे यह त्रुटि बढ़ती गई वह उतनी ही दूर होता चला गया। उसका पूर्वी भूगोल इसी कारण दूषित है। इस प्रकार तक्षशिला को जो बारां गाजा के लगभग उत्तर में है इसके अंश पूर्व में दिखाया गया है और गङ्गा का मुहाना जिसे स्थल माप दण्ड में तक्षशिला तथा पालीबोथरा (पटना) से निश्चित किया गया था उसे सिन्धु नदी के मुहाने से ८ अंश पूर्व में दिखाया गया है जबकि वास्तविक अन्तर केवल २० अंश है। छोटे मानचित्र के चौथे चित्र में मैंने टालमी के भूगोल की रूप रेखा दी है। इस चित्र को देखने से हमें तुरन्त पता चलेगा कि यदि गङ्गा एवं सिन्धु नदियों के मुहाने की दूरी का अन्तर ३८ अंश से घटकर २० अंश कर दिया जाए तो कुमारी अन्तरीप सुदूर दक्षिण में चला जाएगा और अपने वास्तविक स्वरूप के समान ही तीव्र कोण बना लेगा। टालमी की स्थल दूरी के मूल्यांकन में त्रुटि की मात्रा को तक्षशिला एवं पालीबोथरा (पटना) के बीच देशान्तर दूरी के अन्तर से अच्छी प्रकार दिखाया गया है। प्रथम को उसने १२५ अंश और दूसरे को १४३ अंश पर दिखाया है। अन्तर केवल १८ अंश का है जो कि एक तिहाई अधिक है क्योंकि शाहदरी ७२° ५३ तथा पटना ८ °१७ में अन्तर केवल १२°२४ का है। ३/१० के सुधार नियम से जैसा कि सर हेनरी रालिनसन ने प्रस्तावित किया था। टालमी के १८ अंश घट कर १२ अंश ३६' रह जायगी जो कि देशांश के सही अन्तर के १२ के अन्दर है।

द्वितीय शताब्दी में से हुवेन राजघराने के सम्राट वूटी (Wuti) के समय में चीनियों को भारत का ज्ञान था। उस समय इसे यू आन-तू अथवा यिन तू अर्थात हिन्दू शिन्तु अथवा सिन्धु कहा जाता था। कुछ समय पश्चात् इसे थ्यान-तू का नाम दिया गया था। इतिहासकार मतवानलिन ने इसी नाम को अपनाया है। सातवीं शताब्दी में थांग राजघराने के राजकीय पत्रों में भारत को पांच खण्डों-पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण एवं मध्य खण्ड का देश बताया गया है। इन पांचों खण्डों को प्राय पांच भारतो (Five Inbies) कहा जाता था। मैं इस बात का पता नहीं लगा सका कि पांच खण्डों की यह प्रथा कब प्रचलित हुई। इसका सर्व प्रथम उल्लेख जो मैं प्राप्त कर

सका वह सन् ४७७ ई० मे मिलता है जब पश्चिमी भारत के राजा ने अपना दूत चीन भेजा था और पुन कुछ ही वर्ष पश्चात् ५०२ ई० में तथा ५०४ ई० में जबकि उत्तरी एव दक्षिणी भारत के राजाओ को उसका अनुसरण करते बताया गया है। भारत पर पूर्ववर्ती चीनी व्याख्याओ मे इन खण्डों का सकेत नही मिलता है। परन्तु भिन्न भिन्न प्रान्तो का वर्णन उनके नाम से किया गया है न कि उनके स्थान से। इस प्रकार हमें ४०८ ई० में कपिल्य के राजा यूई गई एव ४५५ ई० मे गाधार के राजा का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय से पूर्व भारत को उसके सर्वाधिक ज्ञात एव धनी प्रान्त के नाम पर मगध कहा जाता था और कभी-कभी अपने मुख्य निवासियों के नाम के कारण इसे "ब्राह्मणो का राज्य" भी कहा जाता था। प्रथम नाम के लिये मैं ईसा की दूसरी एव तीसरी शताब्दियो का उल्लेख करूगा जबकि मगध के शक्तिशाली गुप्त भारत के अधिकाश भाग पर शासन करते थे।

चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग ने भी सातवी शताब्दी मे उन्ही पाँच महान प्रान्तों के विभाजन को अपनाया था। उसने इन्हें उसी क्रम मे उनके निश्चित स्थानानुसार उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम एव मध्य का नाम दिया था। उसने देश के स्वरूप की तुलना अर्ध चन्द्र से की है, जिसका व्यास अथवा चौडा भाग उत्तर की ओर सकीर्ण भाग दक्षिण की ओर हो। यह स्वरूप टालमी के भूगोल मे दिये गये भारत के आकार के असमान नही है परन्तु फा काई लिह० तो० के चीनी लेखक ने इससे कहीं अधिक यथार्थ वर्णन किया है। जिसका कथन है कि "इस देश का आकार दक्षिण की ओर सकुचित और उत्तर की ओर चौडा है। विनोद स्वरूप इसके साथ ही उसने लिखा है "यहाँ के निवासियों के चेहरे भी वैसे हैं जैसा देश का आकार है।

ह्वेनसांग भारत को वृत्ताकार मे ६०,००० 'ली बताया है जो सत्य के दुगने से भी अधिक है। परन्तु चीनी राजकीय पत्रो मे भारत के वृत्त को केवल ३० ००० ली बताया गया है। यदि चीनी तीर्थ यात्रियो द्वारा प्राय अपनाई गई माग की दूरी ६ ली बराबर १ मील स्वीकार कर लें तो उपरोक्त ३०,००० ली बहुत ही कम है। यदि जैसा कि सम्भवत उस समय प्रचलित था यही माप मानचित्र पर किया जाये तो आठवीं शताब्दी म प्रचलित दर के अनुसार एक ली १०८९ १२ फुट के बराबर होगा, तो ३० ००० ली ६१९० ब्रिटिश मील के बराबर होगें। यह आकडे सिकन्दर के राजकीय पत्रों पर आधारित स्ट्रैबो के परिणामों एव मेगस्थनीज तथा पैट्रोक्लीज की पुस्तका में दिये आकडों से केवल ७६४ मील कम है।

भारत के पाँच खण्ड अथवा पाँच इडीज जैसा कि प्राय चीनो इन्हें पुकारते थे निम्न प्रकार है।

(१) उत्तरी भारत म काश्मीर एव आस पास की पहाडियों सहित पञ्जाब,

सिंघ पार सम्पूर्ण अफगानिस्तान तथा सरस्वती नदी के पश्चिम वतमान सिस सतलज प्रात सम्मिलित थे ।

(२) पश्चिमी भारत में यह भाग थे । सिन्ध, पश्चिमी राजस्थान कच्छ एव गुजरात तथा भाप के समुद्र तट जो नर्वदा नदी के निचले मार्ग पर था ।

(३) मध्य प्रान्त मे सम्मिलित थे, थानेसर से डेल्टा तक तथा हिमालय स नवदा के किनारे तक के प्रात ।

(४) पूर्वी भारत मे आसाम बङ्गाल गङ्गा का मुहाना सम्बलपुर के साथ-साथ उडीसा एव गञ्जाम सम्मिलित थे ।

(५) दक्षिणी भारत में पश्चिम म नासिक तथा पूव मे गञ्जाम से लेकर, दक्षिण मे कुमारी अन्तरीप तक का सम्पूर्ण पठार था । उसमे बरार तथा तैलङ्गाना के आधुनिक जिले महाराष्ट्र एव कोंकन के साथ साथ हैदराबाद, मैसूर तथा ट्रावंकोर के अलग प्रान्त भी सम्मिलित थे या यू कह सकते हैं कि इसम नर्वदा एव महानदी नदियो के दक्षिण का करीब-करीब सम्पूर्ण पठार था ।

यद्यपि भारत को पाँच विशाल प्रान्तों में विभाजित करने का चीनी प्रबन्ध वाराह मिहिर द्वारा बताये गये एव पुराणों मे निहित नव खण्डों के प्रसिद्ध स्वदेशी प्रबन्ध की अपेक्षा सरल है तथापि इसमे तनिक सदेह नहीं कि अपनी व्यवस्था मे उन्होंने हिन्दुओ का ही अनुकरण किया था । हिन्दुओं ने अपने देश की तुलना कमल के फूल से की थी जिसका मध्य भाग भारत था तथा उसके चारों ओर की आठो पङ्खुडियाँ उसके अन्य खण्ड थे जिन्हें दिक्सूचक (Compas) के आठ मुख्य बिन्दुओ के नाम पर नाम दिये गये थे । चीनी व्यवस्था म केवल मध्य एव प्राथमिक चार खण्डो को लिया गया है और क्योंकि यह विभाजन अधिक सरल है तथा सरलता से याद भी रक्खा जा सकता है अत मैं अपनी व्याख्या मे इसे अपनाऊंगा ।

सातवी शताब्दी म ह्वेनसांग की यात्रा के समय भारत ८० राज्यों म विभाजित था । ऐसा प्रतीत होता है कि उन प्रत्येक राज्यों मे अलग अलग शासक थे । यद्यपि उनम अधिकाश शासक कुछ बडे राज्यो के सहायक थे । इस प्रकार उत्तर भारत मे काबुल, जलालाबाद पेशावर, गजनी तथा बन्नू के जिले कपिसा के शासक के आधीन थे जिसकी राजधानी सम्भवतः चारीकार अथवा सिकन्दरिया थी । पञ्जाब मे तक्षशिला सिंहपुरा, उरस, पूँछ तथा राजोरी के पहाडी जिले काश्मीर के राजा के अधीन थे । जब मुलतान तथा शोरकोट सहित सम्पूर्ण समतल भूभाग लाहौर के निकट ताकी अथवा सागला क शासक के अधीन थे । पश्चिमी भारत म सभी प्रान्त सिन्ध बालभी तथा गुज्जर के राजाओ मे बटे हुये थे । मध्य एव पूर्वी भारत के सभी प्रान्त थानेश्वर के प्रसिद्ध नगर से लेकर गङ्गा के मुहाने तक, हिमालय पर्वत से लेकर नर्मदा तथा महानदी

नदियों के किनारे तक कन्नौज के महान शासक हर्षवर्धन के आधीन था और यह भी अत्यधिक सम्भव है कि ताकी अथवा पञ्जाब के समतल भू भाग का शासक भी इसी प्रकार कन्नौज का आश्रित था जैसा कि हम चीनी तीर्थ यात्री के इस विवरण से ज्ञात होता है कि हर्षवर्धन अपने राज्य से होकर काश्मीर की पहाड़ियों तक उस देश के राजा को दबाव डालकर बुद्ध का अत्यधिक सम्मानित दाँत देने पर बाध्य करने के उद्देश्य से गया था एवं अपने आधीन करने के लिये बढ़ा था जिससे वह (हर्षवर्धन) उसको समर्पित कर दे। दक्षिण भारत में महाराष्ट्र का राजपूत शासक ही एक मात्र शासक था जिसने सफलता पूर्वक कन्नौज की सेनाओं का सामना किया था। चीनी तीर्थ यात्री के इस कथन की पुष्टि महाराष्ट्र के चालुक्य राजकुमारों के अनेक शिला लेखों से होती है। चालुक्य शासक अपने पूर्वजों द्वारा महान शासक हर्षवर्धन की पराजय का मान करते थे। ये शक्तिशाली शासक (हर्षवर्धन) ३६ अलग-अलग प्रान्तों का सर्वोच्च शासक था। जो विस्तार में आधे भारत के करीब थे और जिनमें सर्वाधिक धनी एवं उपजाऊ प्रान्त भी सम्मिलित थे। उसकी शक्ति की वास्तविकता इस तथ्य से देखी जा सकती है कि ६४३ ई० में कम से कम १८ आधीनस्थ शासकों में आधे शासक अपने सर्वोच्च शासक उसके पाटलीपुत्र से कन्नौज तक की धार्मिक यात्रा के समय उपस्थित थे। उसके राज्य के विस्तार का स्पष्ट संकेत उन देशों के नामों से मिलता है जिनके विरुद्ध उसने अपनी अंतिम लड़ाइयाँ लड़ी थी अर्थात् उत्तर पश्चिम में काश्मीर, दक्षिण पश्चिम में महाराष्ट्र तथा दक्षिण पूर्व में गन्जाम। इन सीमाओं के अन्दर ईसवी की सातवीं शताब्दी के प्रथम आधे भाग में वह भारत उपमहाद्वीप का सर्वोच्च शासक था।

दक्षिणी भारत का राज्य निम्न प्रान्तों के ६ शासकों में लगभग समानता से विभाजित था—उत्तर में महाराष्ट्र तथा कोशल मध्य में कलिंग आन्ध्र कोंकण तथा धनकाकता तथा दक्षिण में जोरिया, द्रविड़ तथा मालकूट। इस प्रकार उन ८० राज्यों की संख्या पूरी होती है जिसमें हमारे समय की सातवीं शताब्दी में भारत बटा हुआ था।

———

उत्तरी भारत

प्राकृतिक सीमाएँ

भारत की प्राकृतिक सीमायें हिमालय पर्वत, सिंधु नदी तथा समुद्र हैं परन्तु पश्चिम में शक्तिशाली राजाओं द्वारा इन सीमाओं का इतनी बार उल्लंघन किया गया है कि सिकन्दर के समय से लेकर निकट भूतकाल के अधिकांश लेखकों ने पूर्वी (१) एरियाना (हेरात) अथवा अफगानिस्तान के अधिकांश भाग को भारतीय उप महाद्वीप का एक भाग बताया है। इस प्रकार प्लिनी का कथन है कि "अधिकांश लेखक सिन्धु नदी को पश्चिमी सीमा निर्धारित नहीं करते। परन्तु गिडरोसी, अराकोटी, अरा तथा पारोपामीसाडे के चार क्षत्रपोन (प्रान्त) को भारत की सीमाओं में जोड़ दिया इस प्रकार कोफीज (काबुल) नदी को इसकी (भारत) दूरस्थ सीमा बताया है।" स्ट्रेबो का कथन है कि "भारतीयों ने सिंधु तट पर अवस्थित कुछ देशों (कुछ भाग पर) पर अधिकार कर लिया जो पहले ईरानियों के आधीन थे। सिकन्दर ने उनसे अरियाना (हरात) छीन लिया तथा वहां अपना राज्य स्थापित किया परन्तु सल्यूकस निकेटर ने वैवाहिक सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप यह राज्य सन्ड्रोकोटस को दे दिया था। उपलक्ष में उसे ५०० हाथी प्राप्त हुये। उपरोक्त राजकुमार (सन्ड्रोकोटस) प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य था जिसके पौत्र अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अपने साम्राज्य के दूरस्थ भागों में धर्म प्रचारक भेजे थे। यूनान अथवा यवन देश की राजधानी अलासद्दा अथवा सिकन्दरिया काकाशम ऐसा ही एक दूरस्त स्थान बताया गया था जहाँ चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग के कथनानुसार अनेक स्तूप पाये गये थे। ये स्तूप सम्राट अशोक द्वारा बनवाये गये थे। हम तीसरी तथा चौथी शताब्दी ई० पूर्व में काबुल की घाटी पर भारतीय अधिकार के सर्वाधिक सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त हैं। इस अधिकार की सम्पूर्णता १०० ई० तक अथवा इसके भी १ वर्ष बाद तक यूनानियों तथा इन्डोसिथियन द्वारा अपनी मुद्राओं पर भारतीय भाषा के प्रयोग से भली भांति प्रकट होती है। अगली दो या तीन शताब्दियों में ये भाषा प्राय लुप्त हो गई थी परन्तु छठी शताब्दी में श्वेत हूणों की मुद्राओं पर ये पुन दिखाई देती है। अगली शताब्दी में (सातवीं) चीनी तीर्थ यात्री

(१) स्ट्रैबो ने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि सिन्धु नदी भारत तथा एरियाना (हरात) की सीमा थी। एरियाना भारत के पश्चिम में है और उस समय यह ईरानियों के अधिकार में था बाद में इसके अधिकांश भाग को भारतीयों ने यूनानियों से प्राप्त कर लिया था।

द्वारा प्राप्त सूचनानुसार कपिसा का शासक एक क्षत्रिय अथवा शुद्ध हिन्दू था। सम्पूर्ण दसवीं शताब्दी में काबुल की घाटी पर एक ब्राह्मण राज्य घराने का अधिकार था। जिसकी शक्ति महमूद गजनवी के शासन के अन्त तक पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक सम्पूर्ण काबुल की घाटी सहित पूर्वी अफगानिस्तान की जनसंख्या का अधिकांश भाग भारतीयों का वंशज था और वह शुद्ध बौद्ध धर्मावलम्बी थे। गजनवी द्वारा इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेने से स्थानीय क्रूरता के साथ हठ धर्मी को बल मिला तथा उसके शासनकाल में मूर्तिपूजक बौद्ध धर्मावलम्बियों की हत्या को कर्त्तव्य समझा जाता था। शीघ्र ही मूर्ति पूजकों को देश से निष्कासित कर दिया गया और इसके साथ ही कई शताब्दियों तक हठ रहने वाले भारतीय तत्व लुप्त हो गये।

काओफू अथवा अफगानिस्तान

ई० से पूर्व एवं पश्चात् कई शताब्दियों तक सिन्धु के पार उत्तरी भारत (१) के प्रान्तों में जिनमें भारतीय भाषा तथा धर्म सर्वोपरि थे, पश्चिम में बामियान तथा कन्धार से लेकर दक्षिण में बोलन दर्रे तक का सम्पूर्ण अफगानिस्तान प्रान्तों में सम्मिलित यह विशाल राज्य उस समय १० विभिन्न राज्यों अथवा जिलों में विभाजित था। इन जिलों में कपिसा मुख्य जिला था। राज्यों में काबुल तथा गजनी पश्चिम में लमगान तथा जलालाबाद उत्तर में स्वात तथा पेशावर पूर्व में, बोलोर उत्तर पूर्व में तथा बन्नू एवं ओपोकिन दक्षिण में थे। प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण भाग का सामान्य नाम काओफू था जिसे द्वितीय शताब्दी ई० पू० में ईरानियों, भारतीयों तथा किपिन की सू जाति में विभाजित बताया गया है। इस व्याख्यानुसार कन्धार का दक्षिणी पूर्वी जिला ईरानियों के पास था स्वात, पेशावर तथा बन्नू के पूर्वी जिले भारतीयों के आधीन थे तथा उत्तर पश्चिम में काबुल गजनी, लमगान तथा जलालाबाद के सभी जिले सू जाति के अधिकार में थे। काओफू को अपने नाम एवं स्थान की अनुरूपता के कारण काबुल कहा गया है परन्तु इसे केवल राजनैतिक रूप में स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करने से काबुल की सीमाओं को पश्चिम में ईरान तथा पूर्व में भारत की सीमाओं के भीतर खिंचाना पड़ेगा। अब यह देश जिसे चीनियों ने काओफू कहा है सम्भवतः

---

(१) उत्तर भारत—संस्कृत नाम उत्तरापथ है। वैदिक आर्यों का प्रथम निवास स्थान था। ऋग्वेद में सिन्धु नदी की पश्चिमी सहायक नदियों में गांधार, सुवस्तु (स्वात) कुभा (यूनानी कोफेन, आधुनिक काबुल नदी) गोमती (गोमाल) तथा क्रुमु (कुरम) का उल्लेख किया गया है। इसका उत्तर पश्चिमी भाग ईरानी साम्राज्य में सम्मिलित था (५०० ३३१ ई० पू०) सिकन्दर ने इसके अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था और चन्द्रगुप्त मौर्य ने इन यूनानियों से छीन लिया था। —अनुवादक

सम्पूर्ण आधुनिक अफगानिस्तान सम्मिलित था। शब्द व्युत्पत्ति विषय के अनुसार यह सम्भव प्रतीत होता है कि दोनों नाम एक ही है क्योंकि काओफू, यू ची अथवा तोखारी के पाँच कबीलों में एक कबीले का विशिष्ट नाम था। इस कबीले के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ई० पूर्व की द्वितीय शताब्दी के अन्त मे उन्होंने उन सभी नगरों को अपने नाम दिये थे जहाँ उन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित किया था। सिकन्दर के इतिहासकारों ने चीनी लेखकों के इस कथन की पुष्टि की है। उन्होंने काबुल का उल्लेख किये बिना आरटो स्थाना नामक नगर का उल्लेख किया है। काबुल नाम का सर्वप्रथम उल्लेख टालमी ने किया है जिसने काबुल अथवा अरटोस्पना को पारोपामीसादे की राजधानी बताया है अत मेरा निष्कर्ष है कि अरटोस्पना देश की सम्भवत मूल राजधानी थी। यूनानी शासक के समय सिकन्दर ने राजधानी बदल दी थी। परन्तु इण्डोसीथियन ने इसे पुन राजधानी बना लिया था। ऐसा लगता है कि सातवीं शताब्दी के पूर्व ही इसे पुन त्याग दिया गया था क्योंकि उस समय कपिसीन (कापेसी) की राजधानी ओपियान थी।

केपिसीन अथवा ओपियान

चीनी तीर्थ यात्री के अनुसार केपिशी अथवा केपिशीन व्यास में ४००० ली अथवा ६६६ मील था। यदि यह आंकडे किसी अंश तक सही हैं तो केपिशीन मे सपूर्ण कफीरीस्तान एव घोर बन्द तथा पंचशीर की दो विशाल घाटियाँ सम्मिलित रही होंगी क्योंकि ये दोनों घाटियाँ व्यास में कुल ३०० मील से अधिक नहीं हैं। पुन केपिसी को पर्वतों से चारों ओर से घिरा हुआ स्थान बताया गया है जिसके उत्तर मे पो, लो, सि, ना नामक हिमाच्छादित पवत था तथा अन्य तीनों ओर काली पहाड़ियाँ थीं। पोलोसिना, पारेश पर्वत अथवा "जेन्द एवेस्ता के प्पारीसन तथा यूनानियों के पारोपामीसस के अनुरूप है। हिंदुकुश भी इसी में सम्मिलित था। ह्वेनसाग आगे लिखता है कि राजधानी के उत्तर पश्चिम में केवल २०० ली अथवा लगभग ३३ मील की दूरी पर एक विशाल बर्फीला पर्वत था। जिसके शिखर पर एक झील थी परन्तु अफगानिस्तान के इस भाग से सम्बन्धित प्राप्त कुछ अशुद्ध लेखों मे मैं इस झील का उल्लेख प्राप्त नही कर सका।

केपिसीन के जिले का वर्णन सर्वप्रथम प्लिनी ने किया है जिसका कथन है कि केपिसा नामक उस प्रदेश की राजधानी को साइरस ने नष्ट कर दिया था। प्लिनी के अनुकर्ता सोलिनस ने भी इस कथन का उल्लेख किया है परन्तु उसने नगर को कफुसा कहा है जिसे डेलफाईन सम्पादकों ने बदल कर केपिसा कर दिया। कुछ समय पश्चात टालमी नगर को पारो, पामी, सादे के अन्तगत कावुर अथवा काबुल २३½° उत्तर में बताया है जो वस्तुत २° अधिक है। ६३० ई० में बामियान से प्रस्थान के समय चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने पूर्व दिशा मे हिमाच्छादित पर्वतों तथा काली पहाड़ियों स होते

हुये केपिशी अथवा केपिसीन को राजधानी तक ६०० ली अथवा लगभग १०० मील की यात्रा की थी। १४ वर्ष पश्चात भारत से लौटते समय वह गजनी तथा काबुल लौटता हुआ केपिशी पहुँचा था और उत्तर पूर्व की दिशा में पजशीर घाटी से होता हुआ अदेराव की ओर चला गया था। इन गाथाओं में राजधानी को ओपियान अथवा इसके समीप बताया गया है जो हाजिर दर्रे तथा घोरबन्द घाटी के मार्ग से बोमियान से लगभग १०० मील पूर्व में है तथा गजनी एवं काबुल से अदेराव सीधे मार्ग पर पड़ता है। इसी क्षेत्र का अधिक निश्चित ढग से संकेत इस तथ्य से मिलता है कि केपिसीन की राजधानी को अंतिम बार छोड़ते समय चीनी तीर्थ यात्री के साथ वहाँ का शासक क्यू लूसा, पाग नगर तक गया था। यह नगर उस स्थान से एक योजन अथवा ७ मील उत्तर पूर्व में है जहाँ से सड़क उत्तर की ओर मुड जाती है। ये विवरण ओपियान से बगराम के समतल भूमि के उत्तरी छोर तक माग दिशा से ठीक ठीक मिलता है बगराम चारीकार तथा ओपियान के लगभग ६ या ७ मील पूर्व, उत्तर पूर्व में है। मेरे विचार में बेगराम चीनी तीर्थ यात्री का क्यू लूसा पाग अथवा करसावना टालमी का करसाना और प्लिनी का करतना है। यदि राजधानी बेगराम में थी तो उत्तर पूर्व में ७ मील की यात्रा के बाद राजा को पजशीर तथा घोरबन्द की संयुक्त नदी के पार चला जाना चाहिये था परन्तु गहराई एवं तीव्रगति के कारण इस नदी को पार करना कठिन है अत इस बात की सम्भावना नहीं है कि राजा ने केवल विदाई के उद्देश्य से ऐसी यात्रा की होगी। परन्तु ओपियान को राजधानी स्वीकार करने एव बग्राम को चीनी तीर्थ यात्रा का क्यू लू सा-पाग स्वीकार कर लेने से सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायगी। राजा अपने सम्मानित अतिथि के साथ पजशीर नदी के किनारे तक गया था और वहीं से वापस लौट गया था। तीर्थयात्री की जीवनी के अनुसार वह स्वयं नदी पार कर उत्तर की ओर यात्रा पर चला गया था।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी में केपिशी अथवा केपिसीन की राजधानी अवश्य ही ओपियान अथवा उस के समीप रही होगी। मसान ने इस स्थान की यात्रा की थी और उसने इसका वर्णन इस प्रकार किया है, विशाल बनावटी टीलों के कारण प्रसिद्ध नगर जहाँ समय समय पर प्रचुर मात्रा में प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। एक अन्य स्थान पर टिप्पणी करते हुए उसने लिखा है कि 'इस स्थान पर अनेक प्राचीन अवशेष हैं परन्तु वह केवल धार्मिक अवशेष है अत यह अवश्य जिस नगर का संकेत दे रहे हैं उसे चारीकार के समीप निचली भूमि पर हुपियान नामक स्थान पर रखा जाता था'। मसान ने सम्राट बाबर का अनुसरण करते हुए इस नगर का नाम हुपियान लिखा है। लफ्टनेंट माव एव बाबर के विशाल मानचित्रों में इसका नाम ओपियान है तथा लफ्टनेंट स्टुअर्ट ने भी लगभग इसी नाम का अनुसरण किया है। इन दोनों (सैनिक अधिकारियों) ने कोहेदामन का

निरन्तर निरीक्षण किया है अत मैं उन्ही का अनुसरण करूंगा। यह नाम (ओपियान) हिक्काटाईयस एव स्टीफन्स के ओपियाई तथा आपियान के यूनानी स्वरूप से और प्लिनी के लटिन नाम ओपियानम से अच्छी तरह मिलता जुलता है। यह नाम परोपामिसस में सिकन्दरिया के नाम से अत्यन्त घनिष्ठता रखते हैं अत इस प्रसिद्ध नगर के सर्वोचित सम्भावित स्थान का निश्चय लेने से इसके भावी अनुसंधान का मार्ग स्पष्ट हो जायेगा।

सिकन्दर द्वारा हिन्दुकुश के अधोभाग पर स्थापित नगर का वास्तविक स्थान क्या था यह विषय बहुत समय तक विद्वानों के विचार का विषय रहा है। परन्तु काबुल घाटी के अच्छे मानचित्र का अभाव उनकी सफलता में एक गम्भीर बाधा रही है और काकेशस में स्थापित सिकन्दरिया नगर के प्रसिद्ध नाम को सुरक्षित रखने वाली प्राचीन पुस्तकों में अविवेकी परिवर्तन करने के कारण यह बाधा अलंघनीय बन गई है। इस प्रकार स्टीफन्स ने इसे "भारत के समीप ओपियान में" बताया है। प्लिनी ने इसे सिकन्दरिया ओपियानोज कहा है जिसे लिपिक एव अन्य ग्रन्थों में बदलकर सिकन्दरिया ओरीडम कर दिया गया है। इस देश के अधिकांश भाग के सम्बन्ध में प्लिनी के अशुद्ध विवरण को यही विशिष्ट नाम दिया जाना चाहिये। प्लिनी ने पिछले अध्याय में इसका अच्छी तरह वर्णन किया है। उसने काकेशस अथवा पारोपामिसस के अधोभाग पर अवस्थित देश किया है तथा बैक्ट्रिया निवासियों को उसने "Owersa montis Paropanisi" कहा है। मेरा विचार है कि वैक्टियानोरम के अन्तिम आधे भाग में परिवर्तन करने से वाक्य का अर्थ इस प्रकार होगा। 'तत्पश्चात ओपी जिसके नगर सिकन्दरिया का नाम इसकी स्थापना करने वाले व्यक्ति के नाम पर रखा गया था'।" चाहे यह संशोधन स्वीकार किया जाये अथवा नहीं उपरोक्त लिखे अन्य दो वाक्यों से यह स्पष्ट है कि हिन्दुकुश के अधोभाग पर सिकन्दर द्वारा स्थापित किये गये नगर का नाम भी ओपियान था। इस तथ्य के निश्चित हो जाने पर अब मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूंगा कि सिकन्दर का ओपियान चारीकार के समीप वर्तमान ओपियान अत्यधिक अनुरूप था।

प्लिनी के अनुसार ओपियान मे सिकन्दरिया नाम का नगर आरटस्पना से ५० रोमन मील अथवा ४५ ९६ ब्रिटिश मील तथा पेशावर के कुछ मील उत्तर में प्यूकोलटिस अथवा पुक्कोलायोटीज (पुष्कलावती) से २३७ रोमन मील अथवा २१७ ८ ब्रिटिश मील की दूरी पर स्थापित था। मैं अगले प्रान्त के अपने विवरण में आरटस्पना के स्थान के विषय पर विचार करूंगा यहां केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि मैं इसे बालाहिसार दुर्ग सहित काबुल के प्राचीन के अनुरूप समझता हूँ। चारीकार काबुल से २७ मील उत्तर में है। प्लिनी द्वारा अङ्कित माप से एव उपरोक्त माप में १९ मील का अन्तर है परन्तु प्लिनी ने स्वयं ही लिखा है कि 'कुछ प्रतिलिपियों में भिन्न संख्यायें

दी गई है।" इस प्रकार इससे कुल दूरी घटकर २८६½ मील रह जायेगी यह रो काबुल तथा ओपियान के बीच की दूरी से सही-सही मिलती है। चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने इन स्थानों के बीच की दूरी का उल्लेख नही किया। परन्तु कैपिशी की राजधानी हू-लू-शा हू ला अथवा पुरुषपुर अर्थात् आधुनिक पेशावर के बीच की दूरी ६००+१००+५००=१२०० ली अथवा ६ और १ के अनुपात से २०० मील है। नगरहारा (जलालाबाद) पुरुषावर के बीच ५०० ली की दूरी अवश्य ही बहुत कम है क्योंकि पूर्ववर्ती तीर्थ यात्री फाहियान ने पाँचवी शताब्दी के आरम्भ मे इसे १६ योजन अथवा १ और ४० के अनुपात मे ६४० ली से कम नही माना था। इससे कुल दूरी ११४० ली अथवा २२१ मील बढ जायेगी जो रोमन लेखकों के आकडो से केवल ५ मील कम है। कारीकार तथा जलालाबाद के बीच की वास्तविक दूरी निश्चित नही की गई है। वाकर के मानचित्र मे सीधी रेखा पर इसकी दूरी काबुल तथा जलालाबाद के बीच की दूरी अर्थात् ११५ मील से लगभग १० मील अधिक है अत इस दूरी का अनुमान १२५ मील लगाया जा सकता है। इस सख्या मे यदि पेशावर तथा जलालाबाद के बीच सडक की लम्बाई १०३ मील की सख्या और जोड दी जाये तो कारीकार तथा पेशावर के बीच की कुल दूरी २२८ मील से कम नहीं बनेगी। ये सख्या रोमन तथा चीनी लेखको द्वारा दिये आकडो के बहुत ही निकट है। प्लिनी ने आगे चलकर सिकन्दरिया को काकेशस के एक दम नीचे अवस्थित बताया है। यह स्थान कोहदामन के अधोभाग के उत्तरी छोर पर स्थित ओपियान के स्थान से बिलकुल मिलता-जुलता है। कर्टियस ने भी उसी स्थान का उल्लेख किया है उस सिकन्दरिया को पर्वत के बिलकुल निचले भाग पर अवस्थित बताया है। सिकन्दर ने उस स्थान को बैक्ट्रिया की ओर जाने वाला तीन सडको के अलगाव पर अनुकूल स्थान होने के कारण चुना था। यह सडकें अभी भी अपरिवर्तित हैं तथा बगराम के समीप "ओपियान नामक स्थान पर अलग हो जाती है।

(१) पञ्जशीर घाटी तथा खावक दर्रे से अन्देराब की ओर जाने वाला उत्तर पूर्वी माग।

(२) कुशान घाटी तथा हिंदुकुश से होने हुये घोरी की ओर जाने वाला पश्चिमी माग।

(३) घोरबन्द घाटी तथा हाजियाक के दर्रे से बामियान की ओर जाने वाला दक्षिणी पश्चिमी माग।

सिकन्दर ने पहला माग पैमिलडा की सीमा से बैक्ट्रिया मे प्रवेश करते समय अपनाया था। भारत पर आक्रमण के समय तिमूर भी इसी माग से आया था तथा आमू नदी के उद्गम स्थान से वापसी के समय सफ्रोनेट बुड इसी स्थान से होकर आया था। दूसरे माग का अनुसरण सिकन्दर ने बैक्ट्रिया से वापसी पर किया होगा

या ६ स्ट्रेबो ने विशेष रूप से इस बात का उल्लेख किया है कि उसने (सिकन्दर ने) उस मार्ग की अपेक्षा जिस पर वह आगे बढ़ा था—"उन्ही पहाडो के ऊपर एक अन्य तथा छोटे मार्ग को अपनाया था। यह निश्चित है कि उसकी वापसी बामियान मार्ग से नहीं हुई थी क्योंकि यह सबसे लम्बा मार्ग है साथ ही साथ यह हिन्दूकुश को पार करने के स्थान पर उसके साथ ही घूम जाता है। सिकन्दर ने हिन्दूकुश को पार किया था। इस मार्ग पर डाक्टर लार्ड तथा लै० वुड ने वर्ष के अन्तिम भाग मे प्रयत्न किया था परन्तु बर्फ के कारण वह असफल रहे। तीसरा मार्ग सबसे सरल है तथा उस पर प्रायः गमनागमन रहता है। बामियान पर अधिकार करने के पश्चात् फ़िरोज़ खाँ ने इस मार्ग का अनुसरण किया था। बलख एवं बुखारा की साहसिक यात्रा के समय मि० मूर क्राफ्ट तथा मि० बर्न्स ने भी इसी मार्ग को अपनाया था तथा कुशल दर्रे पर अपनी असफलता के पश्चात लार्ड एवं वुड ने उसे आड़े तिरछे पार किया था। घुड़सवार तोपखाने ने इस मार्ग को सफलता पूर्वक पार किया था तत्पश्चात् १८४० ई० में स्टुअर्ट ने इस मार्ग का निरीक्षण किया था।

पैरोपैमिसडा के नगरो की टालमी की सूची मे सिकन्दरिया का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु करिसा के समीप उसके निकन्द को आंशिक परिवर्तन से आफिंद पढ़ा जा सकता है। मेरा विचार है कि हम यूनानी राजधानी को उसके इस परिवर्तित स्वरूप मे सम्भवतः पहचान सकते हैं। ओपियान का नाम निश्चित ही इतना पुराना है जितना कि ई० पूर्व की पाचवी शताब्दी। क्योंकि मि० हिकाटायस ने लिखा है कि सिन्धु नदी के ऊपरी जल भाग के पश्चिम में ओपियाई नामक जाति का निवास था। डेरियस के लेखो मे इस नाम का कोई चिन्ह नही है परन्तु इसके स्थान पर हमे थाटागुश नामक जाति का उल्लेख मिलता है। थाटागुश जाति ही हिरोडोतस की सत्ता गुदाय जाति थी और सम्भवतः इन्हें ही चीनी यात्री ह्वेनसाग ने सो पी तो फा-ला सी कहा है। ये स्थान केपिसी की राजधानी से केवल ४० ली अथवा लगभग ७ मील की दूरी पर था परन्तु दुर्भाग्य से उसकी दिशा नही बताई गई है। हमे ज्ञात है कि इसके स्थान के दक्षिण में ५ मील की दूरी पर अरुण नाम का एक पर्वत था यह लगभग निश्चित है कि ये नगर बेगराम के प्रसिद्ध स्थान पर रहा होगा जहाँ से स्याहकोह का उत्तरी छोर लगभग पूर्व दक्षिण मे ५ अथवा ६ मील की दूरी पर पड़ता है। स्याहकोह को काला पर्वत तथा चहलदुख्तरान अर्थात् ४० पुत्रियां भी कहा जाता है। मसान ने लिखा है कि बेग्राम के जजर नगर के दक्षिणी पश्चिमी छोर पर तारञ्ज जार नामक स्थान था। सम्भव है यह तारञ्जजार नाम प्राचीन थाटागुश अथवा सत्तागुदाय का परिवर्तित स्वरूप हो। उपरोक्त कथन सही हो अथवा नहीं यह निश्चित है कि काबुल नदी की ऊपरी शाखओं के किनारे बसे लोग दारीयस के थाटागुश तथा हीरोदोतस के सत्तागुदाय लोग थे क्योंकि इन दोनों लेखको ने आस-पास की सभी जातियों का उल्लेख किया है।

करसना, करतना अथवा टीट्रागोनिस

सिकन्दरिया की स्थिति का उल्लेख करते समय प्लिनी ने उसकी भूमिका म इस नगर को जहाँ काकेशस के अधोभाग पर समान स्थिति मे अवस्थित बताया है, वहाँ इस बात का भी उल्लेख है कि यह नगर सिकन्दरिया के समीप था, अत पूर्व प्रस्तावित शुद्धियो सहित प्लिनी के लेख का अर्थ इस प्रकार होगा "हिन्दूकुश के अधोभाग म करतना नगर खडा है जिसे बाद म टीट्रागोनिस (वर्गाकार) नाम म पुकारा गया था। यह जिला बैक्ट्रिया के सामन है। तत्पश्चात ओ पी (O P) था जिसक नगर सिकन्दरिया का नाम उसक स्थापित करने वाले व्यक्ति के नाम पर रखा गया था। सोलीनेस ने करतना का कोई उल्लेख नही किया, परन्तु टालमी न करसना अथवा करनासा नामक एक नगर का उल्लेख किया है जो उसके अनुसार एक बनाम नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित था। यह नदी कपिसा तथा निफन्दा (ओपियान) के लगभग विपरीत लोहगड अथवा सोवरना नदी स की ओर स आती है और नागरा के लगभग विपरीत लोहगड अथवा सोवरना नदी स मिलती है। मेरे विचार म ये पञ्जशीर तथा घोरबन्द नदियो की सयुक्त नदी है जो काबुल तथा जलालाबाद क लगभग आधे भाग पर लोहगड नदी मे मिलती है। मेरे इस कथन की पुष्टि लम्बताय जाति अथवा लम्पक अर्थात लमगान क निवासियो क कथित निवास स्थान स होती है जिन्हे बेनाम नदी क पूर्व म दिखाया गया है। यह बेनाम नदी कुनार नदी नही हो सकती जैसा कि सम्भवत नगरा के सामन लाहगड एव कुनार नदियों क सङ्गम म इसका अनुमान लगाया जा सकता था।

एसा होन स टालमी क करसना का प्लिनी क करतान के अनुरूप बताया जा सकता है और दोनो लेखको द्वारा दिय गये कुछ तथ्यो को जोडने स हम इसक वास्तविक स्थान को ढूंढने म सहायता मिल सकती है। प्लिनी के अनुसार यह काकेशस के अधोभाग पर अवस्थित था तथा सिकन्दरिया स अधिक दूर नही था जबकि टालमी क अनुसार यह नगर पञ्जशीर नदी क दाहिन किनारे पर था। यह तथ्य कराम की ओर सकेत करत हैं जो कोहिस्तान पहाडियो क ठीक नीचे पञ्जशीर तथा घोरबन्द नदियो की सयुक्त नदी क दाहिने किनारे पर अवस्थित था तथा ओपियान अथवा सिकन्दरिया ओपियान के दस मील क अन्तर पर था। मैं अन्य एसे किसी स्थान को नही जानता जो इन सभी आवश्यक बातो का समुचित उत्तर दे सके अत यह अत्यधिक सम्भव प्रतीत होता है कि कराम ही इस नगर का वास्तविक क्षेत्र था। ओपियान क पडोस म परवान तथा कुशान महत्वपूर्ण प्राचीन स्थान है परन्तु यह दोनो घोरबन्द नदी क किनारे पर है। परवान टालमी का बावरेना है तथा कुशान उसका करिशा (कैरिशा) है। कराम उस व्याख्या का उत्तर भी देता है जो प्लिनी ने टट्रागानस अथवा एक वर्ग क रूप म करतना क सम्बन्ध में दी है। यद्यपि मसोन ने इन अवशेषों की अपनी व्याख्या

मे विशेषतया "यह आकार के कुछ टीलो पर ध्यान दिया है तथा महत्व बडे आकार के एक वर्ग का सही मत उन्नत किया है।'

यदि मैं बेगराम को चीनी तीर्थ यात्री के क्यू-लू श-पाग मानने मे ठीक हूँ तो उस स्थान का वास्तविक नाम करसना रहा होगा जैसा कि टालमी ने लिखा है न कि प्लिनी द्वारा उद्धृत करतना। इस नाम का यही स्वरूप यूक्रेटीडेस की अन्य मुद्राओ म मिलता है, जिस पर करीसी नगर अथवा कीसी नगर का उल्लेख है। इस नगर को मैं राजा मिलिन्द का जन्म स्थान तथा बौद्ध इतिहास का कलसी समझता हूँ। उसी इतिहास के एक अन्य स्थान पर मिलिन्द को यूनानी देश की राजधानी अलासदा अथवा सिकन्दरिया में उत्पन्न हुआ बताया गया है। इसलिए कलसी अवश्य ही या तो सिकन्दरिया का दूसरा नाम होगा अथवा इसी के समीप किसी अन्य स्थान का। अतिम निष्कर्ष बेगराम की स्थिति से मेल खाता है जो कि ओपियान से केवल कुछ ही मील पूर्व मे है। मेरे विचार में दिल्ली तथा शाहजहाँबाद अथवा लदन तथा वैस्ट मिनिस्टर के दो विभिन्न स्थानों की तरह शुरु म ओपियान तथा करसना अलग अलग स्थान रहे होंगे जो धीरे-धीरे बढते हुये एक दूसरे के समीप होते गये, यहाँ तक कि वह लगभग एक ही नगर के रूप म बदल गये। एरियाना (हरात) के प्रारम्भिक यूनानी शासक इयुदिम, डेमीटियस तथा यूक्रेटीडेस की मुद्राओ पर हमें दोनो नगरों का सयुक्त अक्षर मिलता है परन्तु यूक्रेटाइडेस के समय के पश्चात ओपियान का चिन्ह एकदम लुप्त हो गया जबकि करसना का चिन्ह बाद के अधिकाश शासको के साथ बना रहा। इन दोनो नगरो के टकसाल चिन्हो के एक ही युग म साथ साथ प्रचलन से यह सिद्ध होता है कि दोनों नगर एक ही समय पर रहे होंगे। जबकि ओपियान के नाम के अचानक लुप्त हो जाने से यह ज्ञात होता है कि यूनानी शासन के अतिम समय में करसना नगर ने सिकन्दरिया का स्थान ले लिया था।

मेरे विचार म बेगराम के विशिष्ट नाम का अर्थ "नगर" से अधिक नहीं था। क्योंकि यही अर्थ तीन बडी राजधानियो काबुल, जलालाबाद तथा पशावर के समीपस्थ प्राचीन स्थानो को दिया गया था। मसोन ने तुर्की भाषा के बो (मुख्य) शब्द तथा हिन्दी भाषा के ग्राम अथवा नगर शब्द को जोडने से यह विशिष्ट नाम प्राप्त किया है। इसका अर्थ है मुख्य नगर अथवा राजधानी। परन्तु इस शब्द को सस्कृत के विजय शब्द मे निहित 'वि' अग्गर से प्राप्त करने में सफलता होगी। विजय शब्द वि परिशिष्ट सहित जय शब्द का दृढ स्वरूप है इस प्रकार विग्राम का अर्थ होगा 'नगर' अर्थात राजधानी। हिन्दी म विग्राम से बिग्राम ठीक उसी प्रकार बन गया होगा जैसे विजय शब्द का प्रचलित स्वरूप बिजय।

बेग्राम का समतल उत्तर तथा दक्षिण में पजशीर एवं कोहदामन नदियों से पश्चिम में माहीगीर नहर से और पूर्व में कासगर की भूमि से दो नदियों के साथ घिरा हुआ है। इसकी लम्बाई माहीगीर नहर पर अवस्थित 'बयान' नगर से जुनघा तक लगभग ८ मील है तथा इसकी चौड़ाई किला बुलंद से सुनवाल तक ४ मील है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र से अनेक अवशेष प्राप्त हुये हैं जिनमें छोटी छोटी मूर्तियाँ मुद्रायें, मुहरें, मालायें, अंगूठियाँ, तीर की नोकें तथा ताँबे के बर्तनों के टुकड़े सम्मिलित हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि यह समतल किसी समय एक बड़े नगर का स्थान था। यहाँ के निवासियों की परम्परा के अनुसार बेग्राम एक यूनानी नगर था जो एक प्राकृतिक आपत्ति में नष्ट हो गया था। मसोन को इस परम्परा की सत्यता पर संदेह है। वहाँ मिले अनेकानेक मुद्राओं के कारण उसका अनुमान है कि यह नगर मुसलमानी आक्रमण के कुछ शताब्दियों बाद तक जीवित था। मेरे विचार में मसोन का कथन सही है तथा देश पर मुसलमानों की विजय के पश्चात नगर के पतन का कारण राजधानी को गजनी ले जाने के परिणाम स्वरूप इस नगर के निवासियों का धीरे धीरे नगर त्याग ही था। काबुल के अंतिम हिन्दू शासक की मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं परन्तु अंतिम गजनवी शासकों की मुद्रायें कम प्रचुर हैं जबकि उत्तराधिकारी गोरी राज्य घराने के प्रारम्भिक शासकों के केवल कुछ नमूने अभी तक प्राप्त किये जा सके हैं। इन स्पष्ट तथ्यों के आधार पर मेरा अनुमान है कि दसवीं शताब्दी के अंत में सबुक्तगीन द्वारा काबुल पर मुसलमानी अधिकार था। नगर धीरे धीरे नष्ट होने लगा था और १३ की शताब्दी के आरम्भ में इसे अंतिम रूप में त्याग दिया गया था। यह वही समय है जब चंगेज खाँ ने इन प्रान्तों पर आक्रमण किया था और इस बात की अत्यधिक सम्भावना है (मसोन ने ऐसा ही विचार प्रकट किया है) कि उसी क्रूर एवं बर्बर व्यक्ति ने बेग्राम को अंतिम रूप से नष्ट कर दिया था।

केपिसीन के अन्य नगर

मैं कपिसीन के उस विवरण को प्राचीन लेखकों द्वारा इसी जिले के कुछ अन्य नगरों की व्याख्या पर टिप्पणी के साथ समाप्त करूँगा। प्लिनी ने एक नगर को कदरुसी कहा है और सोलिनस ने नाम मात्र परिवर्तन से इसे कदरुसिया कहा है। दोनों लेखकों ने नगर को काकेशस के समीप बताया है। इस व्याख्या के साथ सोलिनस ने यह और जोड़ दिया है कि यह नगर सिंध दरिया के समीप था। इन दो भिन्न भिन्न इशारों पर चलते हुये मैं कदरुसी नगर को कोरातास के प्राचीन स्थान के अनुरूप समझता हूँ जिसे मसोन ने कोहिस्तान की पहाड़ियों के नीचे बेग्राम से एक मील उत्तर पूर्व तथा पंजशीर नदी के उत्तरी किनारे पर बताया है। इस स्थान पर प्राचीन नगर के अवशेष के रूप में चीनी के बर्तनों के टुकड़ों से ढके टीले हैं। इन टीलों से प्रायः प्राचीन मुद्रायें प्राप्त हुआ करती हैं। पहाड़ी के समीप कुछ इमारतों के अवशेष भी हैं जिन्हें लोग काफिर कोट कहा

करते हैं। टीकाकारों ने सानिनाम पर प्लिनी का गलत समझने का आरोप लगाया है। उनका कथन है कि प्लिनी का कदरूसा वस्तुत एक जाति का नाम था तथा नगर का नाम सिकन्दरिया था परन्तु फिलिमन हालैण्ड ने इस विवरण का भिन्न अर्थ लगाया है जिसके अनुसार "काकेशस की पहाड़ियों के ऊपर कदरूसी नामक नगर स्थित था जिसका निर्माण ठीक उसी प्रकार सिकन्दर ने करवाया था। सामान्य रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानियों ने अपने सम्पर्क में आने वाली विभिन्न जातियों को उनके मुख्य नगर के नाम से पुकारा था। इस प्रकार हमें काबुर तथा काबलीटाय, ड्रेप्सा तथा देप्सिम तक्षशिला तथा तक्षशिलो, कसपीरा तथा कसपीरायें का उल्लेख मिलता है। अत मेरा अनुमान है कि सम्भवत कदरूसिया नाम का एक नगर रहा होगा जिसके निवासियों को कदरूसी कहा जाता था। कोरातास के ध्वस्त टीलों के स्थान एवं प्लिनी के कदरूसी में एकरूपता होने से यह अनुमान विश्वास में बदल जाता है। टालमी ने अन्य लोगों एवं नगरों के नामों का उल्लेख किया है परन्तु उनमें से बहुत कम अब पहचाने जा सकते हैं क्योंकि हमारे पास उनके नामों के अतिरिक्त सहायतार्थ अन्य कुछ भी नहीं है। परसिया अथवा परसियाना नगरों एवं वहां की पारसी जाति मेरे विचार में पञ्शीर अथवा पजशीर घाटी की पाशाई जाति है। वास्तविक नाम पचीर है क्योंकि अरब सदा भारतीय च के स्थान पर ज लिखा करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बार्स लीच तथा अन्य लेखकों द्वारा अपनाया पजशीर नाम च शब्द का अफगान उच्चारण में त एवं स का संयुक्त अक्षर पढ़ने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार पजशीर अफगान उच्चारण में पतसीर बन जायेगा। प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने पञ्शीर नामक नगर का उल्लेख किया है तथा कुदुस से परवान जाते समय इब्नबतूता ने पाशाई नामक एक पर्वत पार किया था।

अन्य जातियों ने एरिस्टोफिली जो कि शुद्ध यूनानी नाम है तथा एम्बातीय नामक जातियां थीं जिनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। वह नगर जिनका उल्लेख नहीं किया गया है इस प्रकार हैं—उत्तर में अर्तो आर्ता तथा बरजाउरा तथा दक्षिण में दरम्साका एवं नाउलिबिस थे। हो सकता है बरजाउरा नाम का नगर पजशीर घाटी का एक बड़ा नगर बजारक रहा हो इसी प्रकार अंतिम नगर घोरबन्द का नीलाब तथा तृतीय नगर सम्भवत कोहदामन की घाटी का एक नगर था।

कोफीन अथवा काबुल

काबुल जिसका उल्लेख सर्व प्रथम टालमी ने किया है जिसने वहाँ के निवासियों को काबालिटाय तथा उनकी राजधानी को काबुर नाम दिया गया है। काबुर को आरटोस्पना भी कहा गया है। दूसरा नाम केवल स्ट्रैबो तथा प्लिनी के लेखों में मिलता है। इन लेखों में सिकन्दर के भूमि निरीक्षक डायोगनटीज तथा वैटन द्वारा कथित अराकोसिया की राजधानी से इसकी दूरी का उल्लेख है। प्लिनी की कुछ पुस्तकों में

इसका नाम अर्थोसपनम लिखा गया है जो एच० एच० विलसन द्वारा प्रस्तावित उल्लेख के थोडे परिवर्तन के बाद आर्यस्तान बन जाता और सम्भवतः यह संस्कृत का उच्च स्थान अर्थात उच्च स्थान अथवा उन्नत नगर है। चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसांग द्वारा काबुल जिले का भी यही नाम दिया गया है परन्तु मुझे सन्देह है कि प्रान्तों एवं राजधानी के नामों में दुर्घटनावश आवश्यक अदला बदली हुई है। (१) गजनी छोडने पर तीर्थयात्री ने उत्तर की ओर फो लो शी सा ताग ना तक जिसकी राजधानी हू पि ना थी, तीन मील की यात्रा की थी। दो भिन्न रास्तों से काबुल तथा गजनी के बीच की दूरी ८१ तथा ८८½ मील आँकी गई थी। इस कारण इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि काबुल ही वह स्थान था जहाँ तीर्थ यात्री गया था। एक अन्य स्थान पर राजधानी को बामियान से ७०० ली अथवा ११६ मील बताया गया है। यह अनुमान सबसे छोटे रास्ते से काबुल एवं बामियान की वास्तविक दूरी १०४ मील से बहुत कुछ मिलता है।

चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये राजधानी के नाम को एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने बदलकर वर्दस्थान कर दिया है तथा उसे वदक जाति के जिले के अनुरूप बताया है जबकि प्रान्त का नाम हूपियान अथवा ओपियान के अनुरूप माना गया है। परन्तु वदक घाटी जिसे वदक जाति से अपना नाम मिला है काबुल के दक्षिण में कुछ ही दूरी पर गजनी के उत्तर में ४० मील की दूरी पर लोहगढ नदी के ऊपरी जल मार्ग पर स्थित है जब कि हूपियान अथवा ओपियान काबुल से २७ मील उत्तर में तथा वदक से ७० मील से भी अधिक दूरी पर है। मेरा निजी अनुसन्धान मुझे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि यह दोनों नाम हूपियान अथवा ओपियान काबुल के आस पास के भू भाग का संकेत देते हैं।

प्रोफेसर लासन ने लिखा है कि ह्वेनसांग ने एक बार भी किपिन का उल्लेख नहीं किया जबकि अन्य चीनी लेखकों ने बारम्बार उसका उल्लेख किया है। रेमूसत ने सर्व प्रथम यह प्रस्ताव किया था कि किपिन काफीज अथवा काबुल नदी पर स्थित एक प्रदेश था और इस प्रस्ताव को उसी समय से प्राचीन भारत के इतिहास के सभी लेखकों ने सर्व सम्मति से स्वीकार कर लिया गया है। इन्हीं लेखकों द्वारा अब यह जिला कोफान के नाम से पुकारा जाता है। किपिन नाम के इसी स्वरूप को मैं ह्वेनसांग का हू पि ना मानने का प्रस्ताव करता हूँ क्योंकि इस बात की बहुत क्षीण सम्भावना प्रतीत होती है कि उस समय का यह प्रसिद्ध प्रान्त उसकी जानकारी के बाहर रहा

(१) यह कनिंघम का सन्देह उचित नहीं है क्योंकि चीनियों ने किपिन को काबुल से पृथक अथवा काबुल से भिन्न बतलाया है। सातवीं शताब्दी में किपिन का अर्थ कापिशा था तथा (५८१) राजवंश के समय प्रायः कश्मीर को किपिन कहा जाता था। पर भी यह सांस्कृत सम्बन्ध का प्रश्न प्रतीत होता है। —अनुवादक

गया हो जबकि हम जानते हैं कि वह अवश्य ही यहाँ से हावर गया होगा और यह नाम उसके समय से छठ शताब्दी बाद तक प्रयोग में लाया जाता था। मैं पहले ही यह सन्देह व्यक्त कर चुका हूँ कि प्रान्तो एवं उनकी राजधानियों के नामों में कुछ अदला-बदली हुई होगी। यह सन्देह उस समय और भी पक्का हो जाता है जब सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं एवं दो नामों की साधारण अदला बदली से सर्वाधिक अनुरूपता प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार हू फि ना काबुल नदी पर स्थित कोफीन अथवा किपिन का प्रतिनिधित्व करेगा तथा फो-ली-शी-सा ताग न-अथवा उच्चस्थान आरथस्तान को प्रदर्शित करेगा, जैसा कि हम अनेक विश्वस्त लेखकों की कृतियों से जानते हैं कि यह प्रान्त की वास्तविक राजधानी थी। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि हू० पी० ना० वाली शब्द कोफीन की शुद्ध नकल है जबकि हूपियान शब्द की यह बहुत ही अशुद्ध नकल होगी क्योंकि इसमें एक अक्षर पूर्णतया छूट जायेगा तथा साधारण 'प' के स्थान पर एक श्वास का उच्चारण मात्र रह जायेगा। हूपियान का शुद्ध नकल हू पि यान-ना होगी। मिस्टर विवीन डी० सैंट मार्टिन को उच्च स्थान नाम पर आपत्ति है। उसके कथनानुसार यह बिना उद्देश्य के अनुमान योग शब्द व्युत्पत्ति है। परन्तु मैं इस बात पर पूर्ण सन्तुष्ट हूँ कि यह विवरण निम्न कारणों से सही है। एक आरटोसपना नाम दारोपमीसाडे तक ही सीमित नहीं है परन्तु इसका उल्लेख करमानिया तथा पर्सिस में भी मिलता है। अतः बदक जाति से इसका सम्बन्ध नहीं बताया जा सकता। अवश्य ही यह अपनी स्थिति को दर्शाने वाला एक सामान्य नाम होगा और इसकी यह आवश्यकता उच्च स्थान से सतोषजनक ढङ्ग से पूरी हो जाती है जिसका अर्थ है उच्च स्थान और जो सम्भवत यह नाम किसी पहाड़ी दुर्ग को दर्शाने के लिये चुना गया था। दूसरे आरटोस्पना को बदलकर पोरटोस्पना कर दिया गया था। यह तथ्य उस निर्देशक अर्थ की पुष्टि करता है। मैंने इस शब्द का लिया है क्योंकि पश्तो में पोश्टा का अर्थ ऊंचा होता है और इसमें सन्देह नहीं कि जन साधारण ने संस्कृत के 'उच्च' शब्द की अपेक्षा प्रायः इस शब्द को अपनाया था।

आरटोसपना की स्थिति को मैं "उच्च दुर्ग अथवा बालाहिसार सहित काबुल के अनुरूप बनाऊँगा। मैं बालाहिसार को आरटोसपना अथवा उच्च स्थान का फारसी अनुवाद मात्र समझता हूँ। मसीडोनिया की सेनाओं के अधिकार से पूर्व यह देश की पुरानी राजधानी थी तथा दसवीं शताब्दी तक यह विश्वास किया जाता था कि कोई भी शासक उस समय तक शासन करने का सुयोग्य अधिकारी नहीं बनता जब तक उसका अभिषेक काबुल में न हो। टॉलेमाइयस ने भी ओसिमाई में एक राजकीय नगर का उल्लेख किया है परन्तु हमारे पास इसके नाम अथवा स्थान निश्चित करने के लिए आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। यह सर्वाधिक सम्भावित प्रतीत होता है कि अन्य किसी स्थान की जानकारी के अभाव में काबुल ही यह स्थान राजधानी का राजकीय नगर रहा

हुआ परन्तु इस निर्णय के युद्ध का लाभ ... का सामना के अतिरिक्त हार ... गान्धार था।

आश्चर्य है कि सिकन्दर के इतिहास में काबुल का उल्लेख नहीं मिलता क्योंकि अराकोसिया से निकइया के स्थान पर जाते समय यह अवश्य ही इस नगर से होकर गया होगा। फिर भी मेरे विचार में सम्भवतः यह निकाइया (१) नगर का जो कि स्वयं के बानसी पर बसे नगर के सिकन्दर का प्रथम पड़ाव था। टालमी ने निकाइया को एक बीच के किनारे स्थित एक ... नगर कहा है। और एक महत्वपूर्ण स्थान कहा जाता है जो उत्तरी भाग में कारूप तथा काश्मीर तक विस्तृत स्थान के नाम से है। इसी स्थान पर आरतोस्पाना पर विजय के कारण नगर को ... अथवा आरतोस्पाना का हज़ारा भी कहा जाता था। मेरा अनुमान है कि इस नाम के कारण ही इस नगर ने सम्भवतः इस प्रचलित रूप को सुना था जो निकइया अथवा निकाइया का रूपान्तर था और उसको सुनकर ही इन हज़ारा ... के नाम से सम्बोधित बताया जाता था और भारतीय विजयों की पुष्टि के रूप में स्वीकार कर लिया था।

इस प्रान्त की पूर्व से पश्चिम लम्बाई मे ३३३ मील तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ाई मे १६६ मील बताया गया है। यह सम्भव है कि इस वर्णन मे प्रान्त के प्रारम्भिक विस्तार का संकेत मिले क्योंकि इसका शासक गजनी एवं कन्धार सहित पश्चिमी अफगानिस्तान का सर्वोच्च शासक था। इसकी दूरस्थ लम्बाई हैलमन्द नदी के मुहाने से लेकर जगदालक दर्रे तक लगभग १५० मील है तथा दूरस्थ चौड़ाई दरगानि से लेकर मोहमद के मुहाने तक ७० मील से अधिक नहीं थी।

कोफीज का नाम उतना पुराना है जितना कि वेदों के काल जिसमें कुभा नदी को सिन्धु की सहायक नदी बताया गया है। यह आर्य शब्द नहीं है अतः मेरा अनुमान है कि आर्यों के अधिकार से पूर्व अथवा कम से कम २५०० ई० पू० में यह नाम काबुल नदी को दिया गया था। उच्चकोटि के लेखकों ने सिन्धु के पश्चिम में कोइज, कोफ़ेज, खोअसपीज नदियों का उल्लेख किया है तथा वर्तमान समय में इसके पश्चिम में कुनार कुरम तथा गोमाल नदियों का तथा सिन्धु के पूर्व में सुनोहार नदी का उल्लेख मिलता है। यह सभी नाम सीथियन शब्द कू अर्थात पानी से लिये गये हैं। यह अगरीयाई भाषा के हू तुर्की के सू तथा तिब्बती भाषा के चू जिन सभी का अर्थ जल है का

(१) निकाइया—सर थामस होलडिच ने सर कनिंघम का समर्थन किया है। डा० वी० स्मिथ के अनुसार यह नगर जलालाबाद के स्थान पर अवस्थित था। यदि हम एरियान का अनुसरण करें तो इन लेखकों का तर्क असङ्गत प्रतीत होता है क्योंकि निकाइया नगर काबुल नदी पर नहीं था। सिकन्दर इस नगर से काबुल की ओर गया था।
—अनुवादक

पण्ठस्त यर्णी स्वरूप है। अत कोफीन के जिले का नाम अवश्य ही इसमें बहने वाली नदी के नाम पर पड़ा होगा जैसे सिन्धु से सिंध, मारगस से मारगियाना, अरियस से आरया, अरकोटस स अरकोसिया तथा इसी प्रकार अनेकानेक नाम मिलते हैं। सिकन्दर के इतिहासकारों ने कोफीन नगर का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उन सभी ने कापीन नगर का उल्लेख किया है।

टालमी के 'भूगोल' मे अरगुड अथवा अरगण्डी तथा लोचरन अथवा लोहगढ नगरो के साथ काबुर तथा काबोलिनी सभी नगरो को पारोपामासाडे की सीमाओं मे काबुल नदी के साथ साथ दिखाया गया है। नदी के ऊपरी जल भाग पर उसने बगरद नामक नगर दिखाया है जो अपने स्थान तथा नाम की अति समीपता के कारण बदक घाटी से मिलता जुलता है। दोनो नामो के सभी अक्षर समान हैं और यदि यूनानी नाम बगरद के अन्तिम भाग को उच्चारण मे थोड़ा परिवर्तन कर दिया जाये तो यह आधुनिक नाम से मिल जायेगा। बगरद को बरदग पढ़ने के ठोस प्रमाण उपलब्ध हैं। एलफिन्स्टन के अनुसार अफगानिस्तान की लोहगढ़ घाटी के अधिकांश भाग पर बदक जाति का अधिकार था। मसोन ने इसकी पुष्टि की है जो बदक घाटी मे दो बार गया था। विज जिसने गजनी से काबुल जाने समय इस घाटी को पार किया था, इसी बात की पुष्टि करता है। नामो की इस अनुरूपता पर एक मात्र आपत्ति जिसका मुझे आभास होता है वह यह सम्भावना है कि बगरद वहकरीत का यूनानी स्वरूप था। 'जेन्द अवस्ता' में इसे सातवां देश कहा गया है। जिसे आर्य जाति ने सफलता पूर्वक अपने अधिकार मे ले लिया था। एक ओर बैक्ट्रिया पसरिया तथा अराकोसिया तथा दूसरी ओर भारत के बीच स्थान के कारण वहकरीत को प्राय काबुल नदी के अनुरूप बताया गया है। पारसियों का अपना भी यही मत है साथ ही साथ वहकरीत को दाजाक का घर अथवा स्थान बताया गया है। काबुल(१) जोहाक का देश स्वीकार किया जाता है अत तथ्य मे वहक्रीत एवं काबुल को समानता की पुष्टि होती है। यदि बदक जाति किसी भी समय शासक जाति थी तो मैं यह स्वीकार कर सकता था कि वाहक्रात नाम सम्भवत उन्हीं से लिया गया था परन्तु उनके इतिहास से पूरा अनभिज्ञ होने के कारण मेरे विचार मे दोनों नामो की एकरूपता पर विचार करना ही प्रर्याप्त होगा।

---

(१) काबुल जिले मे प्राप्त प्राचीन काल के अवशेषों मे बामियान की चट्टानों मे खोदी गई उच्चकोटि की कला मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इनमे सबसे बड़ी मूर्ति १८० फुट ऊंची है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह बौद्ध काल मे बनाई गई थी। आस पास गुफाओं से किसी बौद्ध मठ का संकेत मिलता था। चट्टान के समीप ही बौद्ध स्तूप के समान एक टीला है।

—अनुवादक

गान्धारी प्रान्त में कोसोर का शासक एक तुर्क था तथा देश की भाषा भारतीय लिपियों की भाषा से भिन्न थी। ह्वेनसांग लिखता है कि काबोरान के शासक तुर्कों के अनुरूप थे परन्तु भाषा तुर्कों से भिन्न थी। चूँकि वहाँ का शासक एक भारतीय था अतः यह अनुमान उचित होगा कि वहाँ की भाषा भारतीय भाषा थी। इसी कारण से यह अटकल लगाई जा सकती है कि कोसोर की भाषा तुर्कों की ही प्रमुख भाषा थी क्योंकि वहाँ का शासक एक तुर्क था।

अराकोसिया अथवा गजनी

चीनी तीर्थ यात्री ने साऊ-कू-टा प्रदेश के सम्बन्ध में यह लिखा है कि यह प्रदेश फ़ुफ़ाना अथवा काबोन से ८२ मील दक्षिण में और फ़स्ना अथवा बन्नू के उत्तर पश्चिम में है। सा मो इन सू तगी दा पागी को हेलमन्द के चीनी अनुवाद में हो सकता है और इसी से हेलमन्द के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। इस राज्य की परिधि में ११६६ मील बताया गया है और यह अनुमान सत्य से दूर नहीं है। क्योंकि सम्भव है कि इसमें कन्धार को छोड़ अफगानिस्तान का सम्पूर्ण दक्षिण पश्चिम भाग सम्मिलित था। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के बिना पात्र को यथा से कन्धार उस समय ईरान के अधिकार में था।

इस जिले की दो राजधानियाँ थी जिन्हें हो सो-ना तथा हो-सा ला कहा जाता था। प्रथम नाम को मिस्टर एम॰ डा॰ सेंट मार्टिन ने गजनी के अनुरूप बताया है और यह काफी सन्तोष जनक है परन्तु दूसरा प्रस्ताव कि दूसरे नाम को हजारा से सम्बन्धित किया जाये मेरे विचार में अत्यधिक सन्देहास्पद है। हजारा एक जिले का नाम है न कि एक नगर का और यह भी कहा जाता है देश के इस भाग का यह नाम चंगेज खाँ के समय से पुराना नहीं है। अतः मैं इसे गुजार अथवा गुजारिस्तान के अनुरूप समझूँगा। जो आधुनिक हेलमन्द का प्रमुख नगर है। मैं इसे टालमी के आलजो के अनुरूप भी मानता हूँ जिसे उसने अराकोसिया के उत्तर पश्चिम में बताया है अथवा जो उसी स्थान पर है जहाँ गुजारिस्तान।

साऊकुता नाम की व्याख्या अभी शेष है। उपरोक्त अनुरूपताओं से पता चलता है कि यह प्राचीन लेखकों के अराकोसिया और अरब भूगोल शास्त्रियों के ग्नारोखज अथवा रोखज से मिलता जुलता है। एरियान ने अपनी पुस्तक पेरिप्लस आफ दि एरीथियन में इस नाम के इसी स्वरूप का उल्लेख किया है। अतः यह असंगत नहीं लगता कि ह्वेनसांग के समय से पूर्व एवं बाद में इस नाम का प्रथम अक्षर त्याग दिया गया था। इसका मूलस्वरूप संस्कृत का सरस्वती था जो जेन्द में हरखवेती बन गया। इन दोनों नामों में एवं इनके यूनानी स्वरूप में अन्तिम दो अक्षर चीनी शब्द साऊकुता से मिलते हैं इसलिये प्रथम चीनी अक्षर साऊ ड के दूसरे स्वरूपों से मिलता

जुलता होगा। यह परिवतन सम्भवत तुर्की भाषा की उस विशेषता स स्पष्ट किया जा सकता है, जिसमे ड शब्द को कोमल ज अथवा श मे प्राय बदल दिया जाता है (जैस तुर्की शब्द देगिज "सी' तथा ओकुज "ओक्स' हगरी क तेंजर एव ओकुर शब्दा क समान है)। डडोसीथियन पर भी हम कनिष्क नाम को ह्यूविष्क तथा कुशन नाम को कनोरकी, होवरकी तथा यूनानी म कोरना म परिवर्तित देखते हैं। अत यह सम्भव प्रतीत होता है कि चीनी नकल का प्रथम अक्षर साऊ ही भारतीय ट का विशिष्ट तुर्की उच्चारण रहा हो जो ई० सन् के प्रारम्भ म तुर्की क ताचारी कबीले द्वारा देश पर अधिकार हो जान पर स्वभावत प्रयोग में लाया जाने लगा था।

सातवी शताब्दी मे गजनी का शासक एक बौद्ध था जो पूवजो की एक लम्बी सूची म वशक्रम से था। लोगों का लिपि एव भाषा दानो ही अन्य देशो की लिपि एव भाषाओ स भिन्न बताई जाती थी। और चूकि ह्वेनसांग भारतीय एव तुर्की दोनो भाषाओ से परिचित था अत मेरा अनुमान है कि गजनी निवासियो की बोल चाल की भाषा सम्भवत पश्तो थी। यदि ऐसा है तो यह निवासी अफगान रहे होंगे। परन्तु दुर्भाग्य वश इस रोचक विषय का निश्चित करन क लिये अन्य कोई साधन नही है, हाँ गजनी के दक्षिण पूव ओ-पो कीन नामक स्थान को अफगानो से सम्बधित किया जा सकता है। इस विषय पर हम बाद में विचार करेंगे।

हेलमन्द पर गुजारिस्तान के बारे म मैं अधिक सूचना नही द सकता क्योंकि अभी तक वहाँ कोइ यूरोपीय नहीं गया है। गजनी इतना प्रसिद्ध है कि उस किसी प्रकार क उल्लेख की आवश्यकता नहीं है परन्तु मैं इतना अवश्य कहूँगा कि सातवी शताब्दी म यह अवश्य ही अत्यधिक सम्पन्न स्थिति मे रहा होगा क्योंकि ह्वेनसांग ने इसके व्यास का अनुमान ५ मील लगाया है। आजकल के दिनो म दीवार स घिरे नगर का व्यास एक मील और एक चौथाई स अधिक नही होता। विग्ना ने इसे असमान पचभुज बताया है जिसके किनारे लम्बाई म २०० स ४०० गज थ जो अनेकानेक बुर्जो से शक्तिशाली बना दिये गये थे। वह आग लिखता है कि "अफगान गजनी की दीवारो एव दुग बन्दो की शक्ति का घमण्ड किया करते थे। पूव म गजनी सदैव शक्ति एव सुरक्षा का स्थान माना जाता था। और इसी कारण इस गाजा नाम भी मिला था जो "कोष का एक पुराना फारसी नाम है। इसका उल्लेख नोवस (जो लगभग ५०० ई० म जीवित था) के डायोनिसियाक की कुछ गूढ पक्तियो म तथा डायोगोनिस (जो ३०० ई० म बाद तक जिन्दा नही था) की बसारिका' म भी प्राप्त होता है। दोनो ने उसके दुजय होने का विशेष रूप स उल्लेख किया है। डायोनिसियस ने इसे युद्ध म इतना कठोर जैसे कि वह पीतल का बना हो' कहा है तथा नानस का कथन है कि 'उन्होंने 'गाजास अर्थात अरिज क अचल दुर्गीकरण के सूचन काय द्वारा जाल समान घेरों से सुरक्षित बना दिया था और कोई भी शस्त्र युक्त शत्रु इसकी

ठोस नीव म दरार नहीं डाल सका था।" इस प्रसिद्ध स्थान के इस प्राचीन विवरण से प्रतीत होता है कि टालमी का गजाका पारोपामीसाडे म दक्षिण की ओर दिखाये जाने क स्थान पर उत्तर मे दिखाया गया था परन्तु बजनतियम जिसने डायोनिसियम की नासरिका' को इस भारतीय नगर के लिये अपना आधार स्वरूप स्वीकार किया है वह अपने उस स्टेफनस म भारतीय गजाका का उल्लख नही करता। मैं यह लिखकर इस विवरण को समाप्त करता हूँ कि उसने इस नगर को एक अन्य स्थान के रूप म देखा होगा।

लमगान

लान पो अथवा लमगान जिले का उल्लेख करते हुए ह्वेनसाग ने लिखा है कि यह जिला कपसीन के पूव म १०० मील की दूरी पर है। सडक को उसन पहाडियो एव घाटियो का अनुक्रम बताया है जिनम कुछ एक पहाडियाँ काफी ऊंची हैं। यह व्याख्या आरियान स लमगान तक नदी क उत्तरी किनारे के साथ साथ बने माग की तत्कालिक व्याख्या से मिलती है। लमगान के स्थान से इसकी दूरी एव दिक स्थिति इतनी समान है कि इन दोनो जिलो की अनुरूपता म कोई सदेह नही हो सकता। टालमी ने भी लम्बताय नामक निवासियो को इसी स्थान पर दिखाया है। इस शब्द की लमगान वतमान उच्चारण स तुलना करने से यह सम्भव प्रतीत होता है कि इस इस नाम का मूल स्वरूप सस्कृत (१) का लम्पाक था। अत मैं 'ट के स्थान पर ग क थोडे परिवतन स टालमी क लम्बताय को लम्बागाय कर दूगा। आधुनिक नाम लम्पाक शब्द का सक्षिप्त स्वरूप मात्र है जो ओठ सम्बन्धी स्वर लोप स बना था। पूव म मध्य क व्यजनो को साधारण अदला बदली से इस लमगान भी कहा जाता है। पूव म यह एक सामान्य प्रथा है। (सहज म विश्वास करने वाल) मुसलमान इस नाम की उत्पत्ति पादरी लमीक क नाम स मानते हैं। जिनक विश्वासानुसार उसकी कब्र अभी भी लमगान म है। बाबर तथा अब्दुल फजल ने भी इसका उल्लेख किया है।

ह्वेनसाग ने इस जिले का व्यास म १६६ मील बताया है जिसके उत्तर मे हिमाच्छादित पवत तथा अन्य तीनों ओर वाली पहाडियाँ हैं। इस व्याख्या से यह स्पष्ट है कि लान पो वतमान लमगान क अनुरूप है जो काबुल नदी के उत्तर तट क साथ मात्र देश का एक छोटा प्रदेश है जो पश्चिम तथा पूर्व म अलिङ्गर तथा कुनार नदियों म और उत्तर म हिमाच्छादित पर्वतो म घिरा हुआ है। यह छोटा प्रदेश प्रत्यक्ष आर

---

(१) सस्कृत का लम्पाक है। हेमचन्द्र क अभिधान चिन्तामणी म द। क निवासियो को मुरुण्डा कहा गया लम्पाकास्तु मुरुण्ड स्यु। स्कटर स्टेन न बताया है कि मुरुण्ड शक भाषा का स्वरूप है जिसका अथ है स्वामी। इस प्रकार लम्पाक प्रदेश का राजधानी थी।

४० मील का वर्ग है अथवा व्यास में १६० मील है। पहले यह एक अलग राज्य था। परन्तु सातवीं शताब्दी में राजघराने के लुप्त हो जाने पर यह जिला कपीसीन का आश्रित बन गया।

नगरहारा (१) अथवा जलालाबाद

लमगान से चीनी तीर्थ यात्री ७ मील दक्षिण पूर्व में गया था और एक बड़ी नदी को पार करने के बाद नगरहारा के जिले में पहुँचा था। इसकी स्थिति एवं दूरी में टालमी के नागरा का संकेत मिलता है जो काबुल नदी के दक्षिण में एवं जलालाबाद के भीतरी भाग में था। ह्वेनसांग ने इसका नाम ना-की-लो-हो लिखा है परन्तु मिस्टर एम० जूलीन ने साग राजघराने के इतिहास में सम्कृत नाम का पूरा प्रतिनिधि ढूंढ लिया है जिसमें इसे नाग या लो हो-लो लिखा गया है। सस्कृत नाम बिहार जिले के घोसरावा के ध्वस्त टीले से मेजर कितोई द्वारा प्राप्त एक शिलालेख में मिलता है। नगरहारा को पूर्व से पश्चिम लम्बाई में १०० मील तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ाई में ४२ मील से अधिक कहा जाता है। जिले की प्राकृतिक सीमायें पश्चिम में जगदलक दर्रा तथा पूर्व में खैबर दर्रा उत्तर में काबुल नदी तथा दक्षिण में हिमाच्छादित पर्वत है अथवा 'सफेद कोह' है। इन सीमाओं के मानचित्र पर सीधे माप से इसका विस्तार ७५ × ३० मील है जो कि वास्तविक मार्ग दूरी में ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ों के समीप है।

ऐसा प्रतीत होता है कि राजधानी का स्थान जलालाबाद से लगभग दो मील पश्चिम तथा हिड्डा से ५ या ६ मील पश्चिम उत्तर पश्चिम में बेग्राम में था। हिड्डा को प्रत्येक अन्वेषक की सामान्य स्वीकृति से चीनी तीर्थ यात्री के हि-लो का समरूप माना गया है। हि-लो का नगर लगभग तीन चौथाई मील है। परन्तु वहाँ बुद्ध के कपाल के होने के कारण इसे अधिक अधिक ख्याति प्राप्त था। इस कपाल को एक स्तूप में रखा गया था यहाँ तीर्थ यात्रियों को एक सोने का सिक्का देने पर ही दिखाया जाता था। हिड्डा जलालाबाद से पाँच मील दक्षिण में एक छोटा गांव है परन्तु यह बौद्ध स्तूपों के अपने विशाल समूह, तुमूली एवं गुफाओं के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है। मसान ने इस स्थान का सफलता पूर्वक सामना किया था। चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दर्शन किये गये स्थान पर ही इन महत्वपूर्ण बौद्ध अवशेषों की उपस्थिति से हम हिड्डा एवं हि-लो के अनुरूप होने का सन्तोष जनक प्रमाण मिलता है। नामों की सम्पूर्ण सहमति से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है क्योंकि मूल शब्द हीरा अथवा हीड्डा का चीनी अनुवाद में

---

(१) फाहियान ने नागरा में बौद्ध धर्म की अनेक वस्तुओं का उल्लेख किया है। बाटम ने इसे नगर कोट कहा है और सस्कृत भाषा के नगर हारा शब्द का उल्लेख पाराशर तन्त्र में मिलता है। बाबर ने इसे नुङ्गनिहार कहा है।

हि लो ही समीपस्थ अम्बर हो सकता है। अत राजधानी बेग्राम को समतल पर स्थापित रही होगी। मशोन ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है "गटठो एव टीलो स अक्षरश ढाकी हुई।" वह आगे लिखता है कि "यह वस्तुत शमशान के स्मारक चिह्न है परन्तु बौद्ध स्तूप साथ होने के कारण इस अनुमान का अनुमोदन होता है कि यहा पर एक विशाल नगर का अस्तित्व था तथा पवित्रता क लिये प्रसिद्ध स्थान था। हो सकता है कि दोनो ही बात सही हो। मेरे विचार म यह सम्भव है कि हिड्डा शब्द हड्डी का केवल परिवर्तित स्वरूप हो क्योकि एक लेखांश म बुद्ध की कपाल की हड्डी के स्तूप को हि लो नगर म बनाया गया है जबकि दूसरे स्थान पर फो तिंग को चिंग नगर म स्थापित बताया गया है जो 'बुद्ध की कपाल की हड्डी के नगर' का केवल चीनी अनुवाद है। इस बात पर विचार करते समय मुझे उन स्थानो के छोटे छोटे निर्देशक नामो की निरतर घटनाओ का उल्लेख करना पडेगा जो बुद्ध के इतिहास म प्रसिद्ध थ। अत मैं यह सोचने पर बाध्य हूँ कि वह स्थान जहा बुद्ध क कपाल की हड्डी थी सम्भवत विद्वानो म अस्थिपुर और सामान्य लोगो मे हड्डी पुर अथवा हड्डी नगर के प्रचलित नाम से ज्ञात होगा। इसी प्रकार शिव क कपाल की हड्डियो का हार भी साधारणतया अस्थि माला अथवा हड्डियो का हार कहा जाता है।

काफी समय पूर्व प्रोफेसर लासेन ने नगरहारा को टालमी का नागरा अथवा उन्यनोसोपोलिस के अनुरूप माना है जो काबुर तथा सिन्धु क मध्य मे अवस्थित था। दूसरे नाम स यह सम्भावित प्रतीत होता है कि यह वही स्थान था जिसे एरियान तथा कर्टियस ने न्यासा नगर कहा है। सम्भवत अबुरिहान दानस अथवा डीनज म भी इसी नाम का उल्लेख मिलता है क्योंकि अबुरिहान न इस स्थान को काबुर तथा पराशावर क मध्य अवस्थित बताया है। जन साधारण की परम्परा के अनुसार नगर को अजूना भी कहा जाता था। मेरे विचार म इस नाम क एव इसके यूनानी स्वरूप के अनुरूप होने की सम्भावना है जैसे यमुना अथवा जमुना नदी को टालमी ने दयामुना बना दिया है तथा संस्कृत के यमारन अथवा जेमारन को प्लिनी ने दयामारन बना दिया है। फिर भी इस बात की अधिक सम्भावना है कि स्वरो क हेर फेर मे अजूना पाली के उज्जान तथा संस्कृत क उद्यान का केवल अशुद्ध रूप हो। एम विवीन डी सेन्ट मार्टिन का कथन है कि उद्यानपुर नगरहारा का एक पुराना नाम था। यदि यह अनुरूपता सही हो तो राजधानी का स्थान आवश्य मत वग्राम म ही होगा जैसा कि मैं पहले लिख चुका हू। यूनानी शासन क सम्पूर्ण काल म डायोनी सोपोलिस का नाम नि सन्देह सर्वाधिक सामान्य उपाधि थी। एरियाना के यूनानी शासको की मुद्राओ पर बने सामान्यतम चिह्न डायोनीसोपोलिस को छोड प्राचीन लेखको द्वारा दिये गये अन्य किसी भारतीय नगरो क नाम के अनुरूप नही हैं। पाचवी शताब्दी क आरम्भ म फाहियान न इसे केवल ना-की अथवा नगर कहा था। उसने यह भी लिखा है कि यह नगर उस समय

अपने ही राजा के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य था। ६३० ई में ह्वेनसाग की यात्रा के समय यह राज्य शासक विहीन था तथा कपीसीन के अधीन था। तत्पश्चात सम्भवत यह प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य के भाग का अनुसरण करता रहा तथा क्रमश काबुल के ब्राह्मण राज्य तथा गजनी के मुस्लिम साम्राज्य का भाग था।

गान्धार अथवा परशावर

सिक न्दर के स्वीकृत इतिहासकारो द्वारा गाधार के जिल का उल्लेख नही किया गया है परन्तु स्ट्रेबो ने चोआस्पेस तथा सिन्धु के बीच काफेस नदी के साथ-साथ अवस्थित गाधारटोस के नाम से इसका सही उल्लेख किया है। टालमी ने इसे गडराय बताया है। इस प्रदेश म सिन्धु एक कोफेज नदी के सगम स्थान से थोडा ऊपर को फेरन नदी के दोनो किनार पर सम्मिलित थी। यह सभी चीनीतीथ यात्रियों का कधीनटो लो अथवा गाधार है। सभी चीनी तीर्थ यात्री इसे सिन्धु नदी के पश्चिम म स्थित दिखाने म एक मत हैं। राजधानी को जिसे उन्होंने पू लू-श पूलो अथवा परशपुर कहा है (१) सिन्धु नदी म तीन अथवा चार दिन की यात्रा पर तथा एक बडी नदी के दक्षिणी तट पर बताया जाता है। यह पेशावर के स्थान का सही विवरण है जो अकबर के समय तक अपने पुराने नाम परशावर के नाम से प्रसिद्ध था। अबुल फजल तथा बाबर और उससे भी पूर्व अबु रिहान तथा दसवीं शताब्दी के अरब भूगोल शास्त्रियों न इस नगर के इसी नाम का उल्लेख किया है। फाह्यान के अनुसार जिसने इसे फो लू श अथवा परशा कहा है यह राजधानी नगरहारा से ११२ मील दूर थी। ह्वेनसाँग न इस दूरी का ८३ मील बताया है जो अवश्य ही एक त्रुटि थी क्योंकि पयटका द्वारा लिये गये माप क अनुसार पेशावर तथा जलालाबाद की दूरी १०३ मील है जिसम बग्राम की जलालाबाद के पश्चिम मे स्थिति के कारण २ मील और जोड देना चाहिए।

जिल की वास्तविक सीमाओ का उल्लेख नही किया गया है परन्तु इसका क्षेत्र पूव से पश्चिम १००० ली अथवा १६६ मील और उत्तर से दक्षिण ८०० ली अथवा १३३ मील बताया गया है। सम्भवत यह सही है क्योंकि दूरस्थ लम्बाई चाहे उसे बड (bara) नदी के मुहाने से लेकर मुरवला तक ल अथवा कुनार नदी स तुरबला तक लिया जाये मानचित्र पर १२० मील है तथा स्थल माग द्वारा लगभग १५० मील है। इसी प्रकार दूरस्थ चौडाई बुनीर की पहाडियो के किनार पर स्थित बाजार से काहाट की दक्षिणी सीमा तक सीधे १०० मील अथवा सडक म लगभग १२५ मील है। इस माप दण्ड द्वारा गाधार की सीमायें पश्चिम म लमगान तथा जलालाबाद, उत्तर में स्वात तथा बुनीर की पहाडियाँ, पूव म सिन्धु नदी तथा दक्षिण म कालाबाग बताइ जा

(१) गाधार की प्राचीनतम राजधानी पुष्कलावती थी। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर थी।

सकते है। (१) इन सीमाओं में प्राचीन भारत के अधिकांश प्रसिद्ध स्थानों में से अनेक स्थान थे। जिनमे कुछ सिकन्दर के पराक्रमों से सम्बंधित समाचारों इतिहास मे प्रसिद्ध हुये थे और अन्य बुद्ध के चमत्कारी इतिहास मे एवम् इण्डो सीथियन सम्राट कनिष्क के बौद्ध धर्मावलम्बी होने के बाद के इतिहास में प्रसिद्ध हुए थे।

गडराय के नगरों में टालमी ने जिन नगरों का उल्लेख किया है वह इस प्रकार है—नौलिबी, एम्बालिमा तथा राजधानी पारोकलायरिन। यह सभी नगर कोफीज के उत्तर में थे जिनका उल्लेख सिकन्दर के इतिहासकारों ने किया है। केवल परशावर कोफीज के दक्षिण में था। नौलिबी तथा ओरा के सम्बन्ध में मैं कोई विवरण नहीं दे सकता क्योंकि उनकी पहचान नहीं हो सकी है। फिर भी यह सम्भव है कि नीलाब को ही नौलिबी कहा गया हो जो एक महत्वपूर्ण नगर था तथा जिसने सिन्धु नदी को भी अपना नाम दिया था। यदि ऐसा हो तो टालमी ने गलती से उसे अन्यत्र दिखाया है। क्योंकि निलाब कोफीज के दक्षिण में है। अब मैं अन्य नगरों के स्थान एवम् उनके साथ साथ चीनी तीर्थ यात्री द्वारा देखे गये कुछ अन्य स्थानों पर विचार करूंगा।

पुष्कलावती अथवा प्यूकिलाओटीस

गान्धार की प्राचीन राजधानी पुष्कलावती थी जिसके बारे में कहा जाता है कि इसकी स्थापना राम के भतीजे एवं भरत के पुत्र पुष्कर द्वारा की गई थी। इसकी प्राचीनता निःसन्देह है क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के समय यह प्रान्त की राजधानी थी। प्यूकिलाओटीस अथवा प्यूकोलटीज का नाम पुष्कलावती से लिया गया था जो पाली शब्द था अथवा संस्कृत के पुष्कलावती का बोलचाल का स्वरूप था। एरियान ने इसे प्यूकेलस कहा है तथा डायोनिसियस पेरिजिटीज ने यहां के निवासियों को प्यूकली कहा है। प्यूकली पाली के पुक्कल को लगभग सही तरह से प्रस्तुत करता है। पेरिप्लस आफ दा इरीथियन सी तथा टालमी के भूगोल में दिया गया नाम प्रोक्लायस सम्भवतः संस्कृत पुष्कर के स्थान पर हिन्दी के पोखर शब्द का प्रतिनिधित्व करता है।

एरियान के अनुसार प्यूकिलस एक विस्तृत एवं बहुत ही जनपूर्ण नगर था तथा सिन्धु नदी से अधिक दूर नहीं था। यह सम्भवतः आस्टीज अथवा हस्ती नामक के शासक की राजधानी थी। हेफेस्टियन द्वारा ३० दिन के घेरे के बाद उसने एक गढ़ की रक्षा करते समय मारा गया था। आस्टीज की मृत्यु के पश्चात् प्यूकिलाओटीज नगर

(१) महाभारत एवम् संस्कृत के अन्य ग्रंथों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि गान्धार देश की दो राजधानियाँ थी। तक्षशिला तथा पुष्कलावती। यह दोनों नगर क्रमशः सिन्धु नदी के पूर्व एवम् पश्चिम में है। अतः इससे प्रमाण है कि प्राचीनकाल में गान्धार देश की सीमायें सिन्धु नदी के दोनों ओर थी परन्तु बाद में यह नदी के पश्चिमी तट तक ही सीमित रही।

सिकन्दर को उसकी सिंध की ओर यात्रा के समय समर्पित कर दिया गया था। एरियान तथा स्टवो ने इसकी स्थिति का "सिन्धु के समीप" बता कर स्पष्ट उल्लेख किया है परन्तु भूगोल शास्त्री टालमी ने इस सम्बन्ध में अधिक सही विवरण दिया है क्योंकि उसने इसे स्वास्तीन अर्थात पंजकोरा अथवा स्वात नदी के पूर्वी तट पर दिखाया है। ह्वेनसांग ने इसी स्थान की ओर संकेत किया है। पशावर छोड़ते समय चीनी तीर्थ यात्री ने उत्तर पूर्व में लगभग १७ मील की यात्रा की थी और एक विशाल नदी को पार कर वह पु ष्की किया-लो फा ती अथवा पुष्कलावती पहुँचा था। यहाँ जिस नदी का उल्लेख किया गया है वह नदी कोफीज अथवा काबुल नदी है तथा पशावर से दूरी एवं दिशा पारंग तथा चारसद्दा के दो विशाल नगरों की ओर संकेत करती हैं। दोनों नगर प्रसिद्ध हस्तनगर अथवा ८ नगरों के भाग थे तथा दोनों ही स्वात नदी के निचले जल मार्ग पर पूर्वी किनारे पर साथ साथ अवस्थित थे। यह हस्तनगर इस प्रकार थे—तङ्गी, शिरपाओ, उमरजई, तुरङ्गजई, उस्मानजई, राजूर, चारसद्दा तथा पारङ्ग। ये नगर १५ मील के क्षेत्र में फैले हुए हैं परन्तु अन्तिम दोनों नगर नदी के घुमाव में पर साथ साथ हैं और सम्भव है कि प्रारम्भ में वे एक विशाल नगर के भाग रहे हों। हिसार का दुर्ग पुराने हस्तनगर के अवशेषों के पास एक टीले पर है। हस्तनगर को जनरल कोर्ट ने राजूर के सामने एक द्वीप में अवस्थित बताया है। उनका कथन है कि 'नगर के सभी बाहरी भाग विस्तृत अवशेषों के रूप में फैले हुए हैं।"

मुझे यह असम्भावित प्रतीत नहीं होता कि आधुनिक हस्तनगर नाम हस्तीनगर अथवा "हस्ती के नगर" के प्राचीन नाम का आंशिक परिवर्तित स्वरूप है। हस्तीनगर नाम सम्भवतः प्युकिलाओटीज के राजकुमार की राजधानी को दिया गया था। भारतीय शासकों की उनके नगरों के नाम पर पुकारने की प्रथा यूनानियों की सामान्य प्रथा थी जैसे तक्षीश, असरकानस इत्यादि। भारतीय शासकों में अपनी राजधानी के किसी भी परिवर्तन अथवा विस्तार को अपना नाम दे देने की प्रचलित प्रथा भी थी। इसी प्रथा का एक ज्वलन्त उदाहरण हम दिल्ली के प्रसिद्ध नगर में मिलता है जिसे इन्द्रप्रस्थ तथा दिल्ली के अपने प्राचीन विशिष्ट नामों के साथ साथ अपना प्रमुख विस्तार करने वाला के नाम पर कोट पिथोरा, किला अलाई, तुगलकाबाद, फिरोजाबाद तथा शाहजहानाबाद के नाम पर भी पुकारा जाता था। यह सत्य है कि लोग स्वयं हस्तनगर के नाम को 'आठ नगरों' में मिलाते जो उस समय स्वात नदी के निचले भाग के साथ साथ एक दूसरे के पास-पास बसे हुए हैं। परन्तु यह सम्भावित प्रतीत होता है कि इस मामले में इच्छा ही विचार की जन्मदात्री थी और हस्तीनगर-अथवा जो कुछ भी इसका नाम रहा हो का मूल नाम ही थोड़ी हेर फेर के बाद हस्तनगर बन गया था। जिससे फारसी के प्रभाव में आई मुस्लिम जनता जिन्हें संस्कृत का ज्ञान न था में यह नाम लोकप्रिय हो गये। मेरे विचार में नगरहारा के नाम में थोड़े परि-

सेंट मार्टिन ने इसे सिंधु नदी पर स्थित औहिन्द स्वीकार किया है। चीनी यात्री ने इसका उल्लेख इसके दक्षिणी भाग को नदी पर आधारित मान कर किया है। यह विवरण अटक से लगभग १५ मील ऊपर सिंधु नदी के उत्तरी तट पर ओहिन्द की स्थिति से ठीक ठीक मिलता है। जनरल कोर्ट ने तथा बर्नस ने इस स्थान को हुन्द कहा है और श्री लोईवेयल ने भी इसे इसी रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने ओहिन्द को एक अशुद्ध उच्चारण कहा है। परन्तु १०३० ई० में अबुरिहान ने इस नाम को वैहन्द अथवा वोएन्द लिखा है तथा १७६० में मिर्जा मुगल बेग ने इसे ओहिन्द कहा है। मेरे कानों में यह नाम वहन्द के समान प्रतिध्वनित होता है और लगता है १३१० ई० में रशीदुद्दीन ने इसी उच्चारण को अपनाया था। जबकि उसने इस स्थान का नाम वीहन्द बतलाया है। इन सभी लेखकों के अनुसार वैहन्द गान्धार की राजधानी थी और रशीदुद्दीन ने लिखा है कि मुगल इसे काराजङ्ग कहते थे। निजामुद्दीन ही एक मात्र स्थानीय लेखक है जिसने इसके संक्षिप्त नाम का प्रयोग किया है। उसने तबकात ए अकबरी में कहा है कि महमूद ने १००२ ई० में हिन्द के दुर्ग में जयपाल पर घेरा डाला था। परन्तु फरिश्ता ने इस स्थान को भिन्न नाम दिया है। उसने इसे बियण्डा का दुर्ग कहा है। इस नाम में हमें ह्वेनसांग के द्वारा दिये गये उतखण्ड के पुराने स्वरूप का आभास होता है। इन सभी उदाहरणों से मेरा अनुमान है कि उतखण्ड के मूल नाम को सर्व प्रथम उयंड अथवा वियंड में बदला गया था तत्पश्चात् इसे संक्षिप्त अहन्द अथवा ओहिन्द बना लिया गया। विहन्द के दूसरे स्वरूप को मैं उयण्ड के उच्चारण में त्रुटि मात्र समझता हूं क्योंकि दोनों शब्द केवल द्वितीय अक्षर की भाषा सम्बन्धी स्थिति में भिन्न भिन्न हैं। जनरल जेम्स एबाट ने अपनी पुस्तक 'ग्रेसस एंड ओरनस' में इस स्थान को ऊन्द कहा है। उनका कथन है कि यह पहले ऊरा कहलाता था और इस शब्द से इस विद्वान लेखक को यह सम्भावना प्रतीत होती है कि यह स्थान आरा अथवा सिकन्दर के इतिहासकारों के 'ओरा' के अनुरूप था।

स्वर्गीय इसीडोर लोईवेयल की विद्वता के कारण ही मुझे इस विस्तृत विवरण में उलझना पड़ा है। ओहिन्द के नाम के बारे में उनका विचार अचेतन में ही सम्भवतः उनके इस विश्वास के कारण पक्षपातपूर्ण हो गया था कि उतखण्ड का आधुनिक अटक में देखा जा सकता है परन्तु दुर्भाग्यवश यह स्थान सिंधु के दूसरे तट पर है। साथ ही साथ जहाँ तक मुझे ज्ञात है अकबर के शासन काल में पूर्व किसी भी लेखक ने इसका उल्लेख नहीं किया है। अबुल फजल ने इस स्थान को अटक बनारस

क शासकों का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि इन राजाओं का मुख्य नगर बन्हिंद था।

अतः वू तो-का इान चा उन्क माण्ट ऊदक माण्डपुर, उद्‌न्, उन्द अथवा आधुनिक ओहिन्द सभी एक ही स्थान के नाम हैं।

कहा है और उसका कथन है इसका निर्माण सम्राट के शासन काल मे किया गया था। बाबर ने इस स्थान का कभी उल्लेख नही किया, जबकि उसने नीलाब का बारम्बार उल्लेख किया है। रशीदुद्दीन का कथन है कि परशावर नदी टङ्कौर के समीप सिंधु नदी मे मिलती है और इसस सम्भवत खैराबाद की सुदृढ स्थिति का उल्लेख मिलता है। मुझे सन्देह है अटक अर्थात् "निषिद्ध" का नाम अकबर ने अरबी भाषा मे टङ्कार शब्द के परिशिष्ट सहित अट टङ्कार पढ़ने की गलती के परिणामस्वरूप प्राप्त किया था। बनारस का नाम निस्सन्देह जिले के पुराने नाम बनार से लिया गया था जहाँ दुर्ग का निर्माण कराया गया है। बनार नाम से बनारस बनता है और चूंकि काशी बनारस एक ऐसा स्थान है जहाँ सभी हिन्दुओ को जाना चाहिये अत हम अनुमान लगा सकते हैं कि अकबर के चपलमन मे इसी तथ्य के कारण इसके बिलकुल विपरीत अटक बनारस अर्थात निषिद्ध बनारस जिससे प्रत्येक हिन्दू को दूर रहना चाहिये—का नाम देने का विचार उठा हो। यह भी हो सकता है कि साम्राज्य के सुदूर पूर्वी सीमा पर उडीसा मे कटक बनारस (कटक) के विद्यमान होने के कारण सुदूर पश्चिम मे विरुद्ध अलङ्कार के स्वरूप मात्र अटक तथा बनार के तत्कालीन नामो का परिवर्तित नाम अटक बनारस रखा गया हो।

वो हन्द जिसे मैं उद्भाण्ड लिखना चाहूँगा—काबुल के ब्राह्मण राजा की राजधानी थी जिसके वंश को १०२६ ई० मे महमूद गजनी ने नष्ट कर दिया था। मसूदी—जो ९१५ ई० मे भारत आया था—का कथन है कि अल कन्दाहार (अथवा गान्धार) का राजा को जहाज कहा जाता था और यह नाम उस देश के सभी सत्ताल्ढ शासकों के लिये सामान्य है। पच ओहिन्द मे ठीक सामने सिंधु नदी के पूर्व विशाल समतल का नाम है और चूंकि बनार की समतल भूमि का नाम राजा बनार के नाम पर बताया जाता है यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि जब वो समतल भूमि का नाम ओहिन्द के ब्राह्मण राजघराने पर पडा हो। यह एक अनोखी बात है कि ९४१ ई० मे एक पच द्वारा सिन्ध के ब्राह्मण राजघराने की नीव डाली गई थी। परन्तु यह बात इससे भी अधिक उल्लेखनीय है कि यह तिथि मथुरा के चन्द्रो द्वारा ब्राह्मण राजघराने को विचलित अथवा ज्योतिषिया मे निकाल जाने की तिथि मे मिलती है यह भी उल्लेखनीय है कि मथुरा से निकाले गये ज्योतिषिया ब्राह्मण सिंधु की ओर चले गये हो जहाँ उन्हें सर्वप्रथम सिन्ध मे तथा बाद मे ओहिन्द तथा काबुल मे पैर जमाने मे सफलता प्राप्त हुई हो।

ह्वेनसाग के समय यह नगर घेराव मे ३ मील से कुछ अधिक था और हम उचित रूप से यह अनुमान लगा सकते हैं कि ब्राह्मण राजघराने के शासनकाल में इस नगर का विस्तार रहा होगा। चन्द्र वंश के उत्तराधिकारियों के समय भी इस नगर का महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा क्योंकि मुस्लमानो ने इसका नाम बदल कर बारजांग कर

दिया था। परन्तु अटक के निर्माण एवम् राष्ट्रीय मार्ग को स्थाई परिवर्तन से इसकी समृद्धि पर गम्भीर प्रभाव पड़ा होगा और उसी समय से इसके उत्तरोत्तर विनाश में सिंधु नदी के निरन्तर अतिक्रमणों से तेजी आ गई है जिसमें पुराने नगर का लगभग आधा भाग बह गया है। चट्टान के अधोभाग पर रेत में ध्वस्त घरों के मलवे में सोना निकालने वालों ने मुद्रायें तथा कम मूल्य के आभूषण प्राप्त किये हैं जिनसे नगर की पूर्ववर्ती समृद्धि का समुचित संकेत मिलता है। कुछ ही समय को धुलाई के बाद मुझे तांबे की एक बाल्टी जो विवाहोत्सव के समय की प्रतीत होती थी—स्त्री के गले का एक हार, आंखों में काजल डालने की अनेक चपटी सलाइयाँ तथा इण्डो-सीथियन एवम् काबुल के ब्राह्मण राजाओं की अनेक मुद्रायें प्राप्त हुई थीं। इण्डो सीथियन मुद्रा की निरंतर उपलब्धि इस बात का समुचित प्रमाण है कि यह नगर ईसवी काल के प्रारम्भ में भी था। अतः हमें उस परम्परा में विश्वास करने का प्रलोभन मिलता है जिसका अबुल फिदा ने उल्लेख किया है कि विहन्द अथवा ओहिन्द सिकन्दर महान द्वारा स्थापित नगरों में एक नगर था।

एरियान लिखता है कि प्युकिलाओटोज के आत्म समर्पण के बाद सिकन्दर ने कोफीज नदी पर स्थित अन्य छोटे छोटे नगरों पर अधिकार कर लिया था और अन्त में एम्बोलिमा पहुँचा था। यह स्थान एओरनास चट्टान से अधिक दूर नहीं था जहाँ घेरा बढ़ा दिये जाने की आशङ्का से उसने क्राटरस को रसद इकट्ठा करने के लिये छोड़ा था। बाजारिया छोड़ने से पूर्व सिकन्दर ने अपनी सामान्य दूरदर्शिता से हेफाशियन तथा पेरडीक्स को सीधे सिंधु नदी तक इस आज्ञा के साथ भेज दिया था, कि नदी पर एक पुल के निर्माण हेतु सब प्रकार से तैयारी करो। दुर्भाग्यवश किसी भी इतिहासकार ने इस स्थान का उल्लेख नहीं किया जहाँ नदी पर पुल का निर्माण किया गया था। क्योंकि एम्बोलिया में रसद तथा अन्य आवश्यकताओं का एक विशाल भण्डार बनाया गया था अतः मेरा विचार है कि पुल भी इसी स्थान पर रहा होगा। जनरल एबाट ने एम्बोलिमो को महावन के ८ मील पूर्व में सिंधु नदी पर एम्बालिमा के स्थान पर दिखाया गया है और यदि महावन का एओरनास के अनुरूप स्वीकार किया जाये तो निश्चय ही अन्य स्थानों की अनुरूपता निर्विवाद हो जायगी। परन्तु महावन की अनुरूपता पूर्णतय असान्य प्रतीत होती है अतः मैं यह प्रस्ताव करूंगा कि ओहिन्द अथवा अम्बर ओहिन्द ही एम्बोलिया का सब सम्भावित स्थान था। (१)

अम्बर ओहिन्द के १० मील उत्तर में एक गांव है। झेलम नदी पर एक अन्य नगर का नाम भी ओहिन्द है अतः नामों की पहचान के उद्देश्य से दो पड़ोसी स्थानों के नामों को एक साथ जोड़ दिये जाने की प्रथा के अनुसार ही यह नाम रखा गया था।

(१) प्रो० वेबर ने कनिंघम के इस अनुमान की पुष्टि की है कि सिकन्दर ने इसी स्थान पर पुल बनाया था। —अनुवादक

लिया था—"जहाँ तक एओरनास का सम्बन्ध है सम्भवतः यह एक दुर्ग था जो अटक के सामने था तथा जिसके अवशेष हम पर्वत शिखर पर मिलते हैं। कहा जाता है कि इसका निर्माण राजा होदी ने करवाया था।" १८४८ ई० में मैंने यह सुझाव दिया था कि 'ओहिन्द के उत्तर से पश्चिम की ओर लगभग १६ मील की दूरी पर नोग्राम नाम के एक छोटे गाँव के ठीक ऊपर रानीघाट के विशाल पहाड़ी दुर्ग का उल्लेख ऊँचाई को छोड़ एरियान, स्ट्रैबो तथा डायोडोरस द्वारा एओरनास से सम्बन्ध में दिये गये विवरण से सभी प्रकार से मिलता है। रानीघाट की ऊँचाई १००० फुट से अधिक नहीं है फिर भी यह ऊँचाई इतने बड़े दुर्ग के लिये बहुत अधिक है। १८५४ में जनरल जेम्स एबाट ने इस विषय पर एक बहुत बड़ा एवम् अच्छे ढङ्ग का लेख लिखा था जिसमें भिन्न भिन्न लेखकों पर बड़े अच्छे ढङ्ग एवम् आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाबन पर्वत एओरनास का सर्वाधिक सम्भावित स्थान है। १८६३ ई० के प्रारम्भ में श्री लाइवैन्थल ने आक्षेप किया था। उन्होंने अटक के सामने राजा होदी के दुर्ग एवम् एओरनास की जनरल कोर्ट द्वारा प्रस्तावित अनुरूपता को पुनः स्वीकार किया। वर्ष के अन्त में जनरल एबाट ने श्री लोईवैन्थल की आपत्तियों का उत्तर दिया था और अपना यह विश्वास पुनः दोहराया था कि 'महाबन ही इतिहास का एओरनास है।' फिर भी उन्होंने यह विचार प्रगट किया था कि "इस प्रश्न पर अभी भी विचार विमर्श किया जा सकता है।'

इस वाद विवाद पर पुनः विचार करते हुए मेरा विश्वास है कि मैं इस विषय पर कुछ कठिनाइयों को दूर कर सकता हूँ जिनके कारण यह विषय सिकन्दर के इतिहासकारों द्वारा स्पष्ट एवम् विपरीत विवरण दिये जाने से कठिन बन गया है। परन्तु मैं शायद ही यह आशा करने का साहस कर सकता हूँ कि एओरनास की अनुरूपता के सम्बन्ध में मेरा विचार सन्तोषजनक स्वीकार किया जायेगा। क्योंकि मैं इस बात को स्वीकार करने के लिए विवश हूँ कि मैं स्वयं अपने विचार से पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। परन्तु यदि मुझे दूसरों को सन्तुष्ट करने में सफलता नहीं मिलती तो मेरी असफलता में जनरल जेम्स एबाट तथा आदरणीय धर्म प्रचारक श्री लोईवैन्थल जैसे योग्य लेखक भी भागी होंगे।

मैं सर्व प्रथम एओरनास के नाम पर विचार करूँगा। यद्यपि एओरनास एक यूनानी शब्द है फिर भी जैसा श्री लोईवैन्थल ने लिखा है यह यूनानियों की खोज नहीं हो सकती। अतएव यह किसी स्थानीय नाम के परिवर्तन स्वरूप का नकल होगी। श्री लोईवैन्थल का विचार है कि इस बनारस शब्द के संस्कृत स्वरूप वाराणसी से लिया गया है। सिकन्दर के समय का कोई भी यूनानी वाराणसी शब्द का उच्चारण स्वर परिशिष्ट के बिना नहीं कर सकता था और इस प्रकार के उच्चारण से उस एवरनास अथवा एओरनास प्राप्त हुआ होगा परन्तु यह विचार अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि एओर-

उन्नत चट्टान ' कहा है। दिवोटोरस, स्ट्रैबो एरियन, कर्टियस तथा फिलास्ट्रेटस सभी ने इस चट्टान दुर्ग ' कहा है। अत चट्टानी दुर्गमता एओरनास का एक विशेष लक्षण था। एरियन के अनुसार ' इस पर केवल हाथ के बनाये गये कठिन मार्ग से चढ़ा जा सकता था और इसके शिखर पर शुद्ध जल का एक तालाब था और १००० व्यक्तियों के लिये कृषि योग्य भूमि थी। अंतिम विचार भारत में अभी भी भूमि के 'कृषि भाग' के रूप में प्रचलित है और इसका अर्थ केवल इतनी भूमि है जितना एक व्यक्ति एक दिन में जोत सकता है। इसी प्रथा को यूनानियों एवं रोमनों में योक्त शब्द से व्यक्त किया जाता था। प्रतियोक्त केवल इतना ही स्थान था जिसे एक बैलों की जोड़ी एक दिन में जोत सकती थी। इस प्रकार भूमि का सबसे छोटा भाग १०० फुट के वर्ग अथवा १०००० वर्ग फुट से कम नहीं रहा होगा जो हमें १०००००० वर्ग फुट अथवा १००० व्यक्तियों के कृषि भाग का भरत देगा। इससे हम लम्बाई में ४००० फुट तथा चौड़ाई में २५०० फुट अथवा ढलानों आदि का स्थान छोड़ने पर लम्बाई में १ मील और चौड़ाई में ½ मील का स्थान प्राप्त होगा जो ठीक ग्वालियर के बराबर है और यदि ग्वालियर के समान विस्तृत दुर्ग किसी भी समय भारत की पश्चिमी सीमाओं में रहा होता तो निश्चित ही प्रारंभिक मुस्लिम आक्रमणकारियों के ध्यान से बाहर न रहता और जनरल कोर्ट तथा जनरल एबाट के सूक्ष्म अन्वेषण से शायद ही बच सकता था। अत भूमि के १००० कृषि भाग को सिकंदर के अनुयायियों द्वारा अपने स्वामी के अभियान को बढ़ाया देने के उद्देश्य से की गई एक अन्य अतिशयोक्ति समझता हूँ। मैं एक दुर्गम मार्ग एवं शुद्ध जल के स्थान को एक सुदृढ़ सैनिक दुर्गबन्दी की दो आवश्यकताओं की प्राप्ति के रूप में स्वीकार करता हूँ परन्तु मैं कृषि योग्य भूमि के १०० कृषि भागों की उपस्थिति को निस्संकोच अस्वीकार करता हूँ। इस अस्वीकृति का कारण यह है कि इस ऊपर सिन्ध की पहाड़ियों पर यदि किसी भी समय ½ मील का कृषि योग्य विस्तृत क्षेत्र होता तो मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि इतने महत्वपूर्ण एवं सुदृढ़ स्थान स्थान को कभी त्याग दिया जाता।

इस स्थान को ढूँढने में तो एओरनास के सामान्य विवरण का उत्तर दे सकती है दुर्भाग्यवश हमारा क्षेत्र कुछ ही स्थानों तक सीमित है जहाँ यूरोपीय जा चुके हैं। महाबन पर्वत के बारे पर हम विचार कर चुके हैं और अन्य सम्भव स्थान जिनका मुझे ज्ञान है वह निम्न प्रकार से है —

(१) तख्त एन्दाहा का अजर नगर।

(२) करमार का ऊँचा उन्नत पहाड़।

(३) पञ्जीर का पहाड़ी।

(४) रानी गट का अजर दुर्ग।

इनमें पहला स्थान हस्तनगर तथा बजार के बीच लगभग आधे मार्ग पर है।

मि० लोईवैचल ने इसे बहुत ही कम ऊंचाई की एक ऊसर पहाड़ी कहा है जो एक वर्ग के तीन भाग बनाती है जिस वर्ग का चौथा भाग उत्तर पश्चिम की ओर खुला हुआ था। त्रिकोणमीति सम्बन्धि-सर्वेक्षण मानचित्रा में तरूर ए-थाही समुद्र से केवल १८५१६ फुट अथवा यूसफ जई मैदान से ६५० फुट ऊपर है। मि० लोईवैचल ने चढ़ाई को जो सरल बताया है और क्योंकि यह स्थान सिंधु नदी के निकटतम बिन्दु से ३५ मील न कम नहीं है मेरे विचार में उन्नत एवं दुर्गम भाग के उल्लेख से सहमत न होने के कारण तथा एम्बोलिया के सम्भावित स्थान से एक दम दूर होने के कारण इसे तुरन्त अस्वीकार कर देना चाहिये।

करमार की अकेली एवं उन्नत पहाड़ी का स्थान बाजार से ६ मील दक्षिण पूर्व में था तथा ओहिन्द से केवल १८ मील उत्तर, उत्तर-पश्चिम समुद्र से ३४८० फुट अथवा यूसफ जई मैदान से २२८० फुट की ऊंचाई पर था। यदि इस स्थान पर मकानों आदि के कुछ भी अवशेष मिलते तो यह स्थान एओरनास का मुख्य दावेदार होता परन्तु करमार पहाड़ी केवल एक उन्नत पर्वत पृष्ट है जहाँ न तो किसी भवन आदि के अवशेष प्राप्त हुए हैं और न जन साधारण की प्रथाओं में इस स्थान का नाम ही आता है। पंजशीर की पहाड़ी भी इसी प्रकार परन्तु छोटा पर्वत पृष्ट है जो समुद्र से २१४० फुट अथवा यूसफ जई मैदान से ६४० फुट की ऊंचाई पर है। यह केवल नोकीला पर्वत पृष्ट है जिसके ऊपर एक अकेला भवन है जिसे पंजपीर अथवा मुसलमानों के पाँच महान् सन्यासियों के नाम पर उत्सर्ग किया गया है। इन सन्तों में प्राचीन सन्यासी, मुल्तान का बहाउद्दीन जकरिया भी सम्मिलित था जिसे साधारणतया बहावल हक्क के नाम से पुकारा जाता था। परन्तु हिंदुओं का विश्वास है कि मुख्यतः यह स्थान महाभारत के पंच पाण्डव अथवा (पाँच पाण्डव) भ्राताओं से सम्बन्धित था।

अंतिम सम्भावित स्थान जिसका मुझे ज्ञान है रानी घाट का जर्जर दुर्ग है। जनवरी १८४८ में मैं इस स्थान पर गया तथा १८६३ के अपने दौरे में मैंने पुनः इस स्थान पर जाने का विचार किया था परन्तु बुनेर सीमा पर युद्ध के कारण दुर्भाग्यवश मैं अपना अभिप्राय पूरा न कर सका। अतः १८४८ में एकत्रित की गई सूचना से और अधिक सूचना नहीं दे सकता और चूँकि उस विवरण को छापा नहीं गया था और न ही उस समय से मि० लोईवैचल को छोड़ अन्य कोई भी व्यक्ति उस स्थान पर गया है अतः मेरे विवरण का अभी भी नवीनता का महत्व प्राप्त होगा।

रानीघाट नाग्राम गाँव से ऊपर एक उन्नत पहाड़ी पर अवस्थित है जो बाजार से १२ मील दक्षिण पूर्व तथा ओहिन्द से १६ मील उत्तर में है। अतः इसकी स्थिति एओरनास के अनुरूप होने के पक्ष में है। यह पहाड़ी महावन पर्वत माला के लम्बे उभरे भाग में अंतिम बिन्दु है। इसका अधोभाग उत्तर से दक्षिण लम्बाई में दो मील से अधिक है और चौड़ाई में यह लगभग आधे मील का चौड़ा क्षेत्र है। परन्तु पहाड़ी

का शिखर लम्बाई मे १२०० फुट और चोड़ाई म ८०० फुट स अधिक नहीं है। १८४८ ई० मे मैंने इसकी ऊचाई १००० फुट आंकी थी परन्तु जन साधारण का दृढ विचार है कि यह पजपीर मे ऊचा है और इसी कारण मेरा विचार है कि सम्भवत यह १२०० फुट से कम नहीं है। पहाडो क किनारे विशाल पत्थरा की भारी पक्तियो से ढके हुए हैं जो इसे अत्यधिक विषम एव दुगम बना देते हैं, चट्टानो म बनाई हुई और शिखर की ओर जाती हुई केवल एक ही सडक है और अधिक नहीं तो कम से कम दो अति कठिन माग हैं जो ऊपर की ओर जाते हैं। हम जानते हैं कि एओर्नास का स्थान भी ऐसा था जहाँ एक विषम एव भयानक माग से टालमी शिखर पर पहुँचने म सफल हुआ था जबकि स्वय सिकन्दर ने हाथ से बनाये हुये एक सुनिश्चित माग स इस स्थान पर आक्रमण किया था। रानीघाट ५०० फुट लम्बा एव ४०० फुट चौडा एक दुग युक्त स्थान बनाया जा सकता है। यह पूव का छोड अय सभी ओर स एक पथरीले पवत पृष्ठ से घिरा हुआ है जो उत्तर म समान ऊचाई तक उठ जाता है। पूव म यह महाबन के निचल उभरे भाग से ऊपर उठता है। चारो ओर दुग की चट्टानो को खरोच खरोच कर चमकाया गया है और दो किनारा पर यह गहरे गड्ढा के कारण आस-पास के पवत पृष्ठ से अलग हो गया है। यह खण्ड उत्तर म १०० फुट गहरे और पश्चिम म ५० स १५० फुट गहरे हैं। दुग के उत्तर-पश्चिमी कोण पर खण्डों के आर-पार दो बाँध बना दिये गये हैं जो पानी के बहाव को रोकने और इस प्रकार पश्चिम क खोखले स्थान में एक बडा जलाशय बनाने के विचार स बनाये गये प्रतीत होते हैं। उत्तर के खण्डो म दुग तथा रानीघाट नाम की विशाल अकेला चट्टान क बीच तीन बर्गाकार कुए हैं। मैंने सोचा था कि उत्तर पूव म कुछ स्थान नीचे मैं एक अय बाँध की खोज कर सकता हूँ जो सम्भवत बाह्य रक्षा पक्ति का अवशेष मात्र था। इस बाह्य पक्ति का पूण व्यास लगभग ४ ०० फुट अथवा एक मील से कुछ कम है।

मि० लोईवैथल ने दुग का विवरण इस प्रकार दिया है, 'पहाडी का शिखर छोटे आकार के एक समतल समस्थल को दर्शाता है जिस सभी ओर किनारा पर मकानो द्वारा दृढ़ता मे सुरक्षित कर दिया गया था। यह मकान बडी सफाई स काटे गये पत्थरों की बडी बडी ईटा से बनाये गये हैं। इन ईटों को बडी सावधानी के साथ लगाया गया है और उन्हे नियमानुसार स्थिर किया गया है। इनको जोडने के लिये उत्तम सीमेण्ट का प्रयोग किया गया है। बडे बडे पत्थरा क बीच अनिवाय रूप म पड जाने वाली दरारों का छोटी पथरीली कङ्कडी की पतली तह स भर दिया गया है। मैंने सिन्धु नदी क उस पार तथाकथित काफरा क जितने भी भवन देखे हैं उन सभी में पथरीली कङ्कडी स दरारों को भरने की प्रथा एक अनिवाय लक्षण बन गई थी। इस व्यवस्था म मैं यह जोड देना चाहता हूँ कि पत्थरा के समूहो को आड तिरछा अर्थात् क्रमश लम्बाई में और चौडाई में इतनी सावधानी से रखा गया है कि देखने वालों को

विशाल दीवारें अत्यधिक आकर्षक प्रतीत होती है। सभी मकान अब जर्जर अवस्था में है परन्तु बाह्य दीवारें को अब भी चारो ओर देखा जा सकता है। दक्षिण एवं पश्चिमी भाग में अब भी यह इमारतें काफी ऊंची खडी हैं और अत्यधिक अच्छी दशा मे हैं। मुख्य द्वार जो दक्षिण पश्चिमी भाग पर हैं पत्थरो को एक दूसरे के ऊपर रखने के सामान्य प्राचीन ढङ्ग से बनाया गया है। निवास भाग दीवार के समानान्तर नही है परन्तु कुछ दूरी तक यह विशेष रूप से दाहिनी ओर झुका हुआ है। तत्पश्चात् यह बाई ओर एक बन्द कमरे की ओर मुड जाता है और तब पुन खुले आगन म पहुँचने तक यह दाहिनी ओर मुड जाता है। शुरू मे इस सम्पूर्ण निवास भाग को क्रमानुसार तिरछे किये गये पत्थरो की पक्तियो म छत दिया गया था। इन पत्थरो को एक दूसरे के ऊपर इस प्रकार रखा गया था कि इनसे एक नोकदार मेहराब के दो किनारे बन सकें। परन्तु पत्थरो की ऊपरी पक्ति को सीधा छोड दिया गया है अत मेहराब की नाक समकोण चोटी के समान जान पडती है। इस विशेषता की ओर मि० लोईवैम्पल का ध्यान भी आकर्षित हुआ था जिनका कथन है कि "मेहराब नोकीली होना चाहिये था परन्तु मध्य में समकोणीय नाली सी बन गई है।" पश्चिमी भाग म भी मैंने इसी प्रकार का एक भाग देखा था परन्तु इस स्थान पर इतना अधिक मलबा इकट्ठा हो गया था कि मैं इसके जाने का रास्ता नही ढूढ सका।

मूल्यवान भवनो से घिरे हुए खुले आगन सहित यह केन्द्रिय गढ अथवा दुर्ग मेरे विचार म राजा का महल था जिसम सामान्य रूप से पूजा गृह की भी व्यवस्था की गई था। उत्तर की ओर मैंने एक अन्य समस्थल की ओर जाती हुई सीढियो की खोज की थी और यह समस्थल मेरे विचार में राजमहल अथवा दुर्ग का बाह्य आगन रहा होगा। ऊपरी आगन २७० फुट लम्बा और १०० फुट चौडा है और निचला आगन सीढियो सहित भी ऊपरी आगन का आधा है अर्थात् १३० फुट लम्बा और १७० फुट चौडा। इन सभी खुले भागो म सभी आकार को तथा सभी अवस्था म टूटी-फूटी मूर्तियाँ फैली हुई थी। इनम अधिकांश शिलाफ के रूप म बुद्ध की मूर्तियाँ थी। जिनम बुद्ध को बैठे हुए एव खडे हुए दिखाया गया था। कुछ एक सन्यासी बुद्ध की मूर्तियाँ थी जिनम बुद्ध को पवित्र पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ दिखाया गया है और उनम कुछ मूर्तियाँ बुद्ध की माता माया की थी जो साल वृक्ष के नीचे खडी थी। परन्तु वहाँ पर कुछ अन्य मूर्तियो के टुकडे भी थे जो प्रत्यक्ष रूप से धर्म से सम्बन्धित नही थी। उदाहरणार्थ जङ्गरा के कवच म मनुष्य की एक विशालकीय मूर्ति, एक मनुष्य के नंगे शरीर की मूर्ति जिसके कन्धा पर यूनानी वस्त्र अथवा एक छोटा अङ्गरखा बनाया गया था। यहाँ एक मानवीय वक्षस्थल भी था जो आंशिक रूप से यूनानी अङ्गरखे से ढका हुआ था और उसके गले मे हार सुशोभित था। इस हार की कुण्डिया के स्थान पर दो मानव सिर वाले परन्तु परो एव चार टाँगो वाले पशु बनाये गये थे। यह पशु उस पौराणिक प्राणी के समान

थे जिसके कमर के नीचे का भाग घोड़े का तथा ऊपरी भाग मनुष्य के समान माना जाता था। इन सभी मूर्तियों का निर्माण कोमल तथा गहरे लाल रङ्ग की मिट्टी की (पट्टिकाओं) पर किया गया था जिस पर सरलता पूर्वक चाकू से काम किया जा सकता था। यह अत्यधिक चमकीली मूर्तियाँ है और इसी कारण मूर्ति विरोधी मुसलमानों ने इन्हें तोड़ दिया था। क्योंकि इस मिट्टी की तख्तियों का समतल पालिश द्वारा सरलता पूर्वक चमकाया जा सकता था अतः इन मूर्तियों के टुकड़े आज भी अच्छी हालत में है। मैंने जितनी भी मूर्तियाँ वहाँ देखी थी उनमें बुद्ध की प्रतिमा सर्वोत्तम थी जिसके सिर पर घने केश थे जिन्हें सामान्य नियमानुसार घुंघराले बनाने के स्थान पर विशेष ढङ्ग से लहराते हुए दिखाया गया है। उत्तम ढङ्ग से तराशे गये नयन नक्शे से घने शान्त मुखड़े की यूनानी कला कृतियों से तुलना करना असङ्गत न होगा परन्तु चेहरे की सुन्दरता गोल उभरी हुई भारतीय ढङ्ग की ठुड्डी के कारण विभिन्न सी हो गई है।

मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि रानी घाट की पहाड़ी चारों ओर पत्थर के विशाल समूहों से ढकी हुई हैं जिनके कारण ऊपर जाने का मार्ग अत्यधिक विषम एवं ऊँचा नीचा बन गया था। इन पत्थरों में कुछ पत्थर बहुत बड़े आकार के हैं और नीचे गिर पड़े कुछ पत्थरों को खोखला कर कुछ तहखाने अथवा मठ बना दिये गये थे। श्री लाईवैंथल ने इन अ ... में ... तहखानों का ... अति विलक्षण चित्र ... है। अधिकांश तहखाने अन्दर से पूर्णतया साधारण है परन्तु कुछ तहखानों में एक अथवा दो रोशनदान भी हैं। गुफाओं में निसन्देह इन गुफाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुफा दुर्ग के पश्चिम में पहाड़ी के पृष्ठ भाग पर है। जन साधारण में यह कोषागार अथवा जन व्यापारी के घर के नाम से जाना जाता था परन्तु मैं इस पट्टी के सम्बन्ध में प्रवेश द्वार के छोटे आकार का छोड़कर अन्य कोई भी ऐसी सूचना प्राप्त नहीं कर सका जो इस बात का संकेत दे सके कि यह गुफा मूल रूप में किस उद्देश्य से बनाई गई थी। यह द्वार निश्चित ही एक व्यापारी की दुकान के स्थान पर एक भिक्षु के मठ के अधिक अनुकूल था। श्री लाईवैंथल ने इस बात का उल्लेख किया है कि 'पहाड़ी पर प्राप्त बनस्पति में तैमून के वृक्ष अथवा महुवा के पेड़ प्रमुख थे परन्तु १८४८ ई० में इस पहाड़ी के शिखर पर बड़-पीपल वृक्ष प्रचुर मात्रा में पाए गए थे।

ोने के कारण यह सम्भव प्रतीत होता है कि इस स्थान का नाम राजा के नाम पर ग्खा गया हो। इस नाम से यह स्थान यूनानियों के एओरनास के अधिक समीप हो जाता है। इसकी अत्यधिक ऊँचाई, ऊँचा नीचा रास्ता, मार्ग की विषमता, चट्टानों में ाट काट कर बनाया गया मार्ग, पानी का तालाब एवं समतल भूमि तथा दुर्ग को बाह्य ीवार से अलग करने वाली गहरी खाई आदि अनेक ऐसी बातें हैं जिनसे दोनों स्थानों ी अनुरूपता का आभास होता है और यदि इन दोनों के विस्तार में अधिक भिन्नता न ोती तो मैं इन स्थानों की अनुरूपता को स्वीकार कर लेता। यद्यपि इस सम्बन्ध में यह स्थान यूनानियों के वर्णित विवरण के अनुरूप नहीं है फिर भी हमें स्ट्रैबो के इस विचार को नहीं भूलना चाहिये कि सिकन्दर के मिथ्या प्रशंसकों ने एओरनास पर अधिकार के विवरण को बढ़ा चढ़ा कर लिखा था। यह बात भी याद रखनी चाहिये कि असाकनस के विरुद्ध अभियान "शीतकाल में" किया गया था तथा यूनानियों ने "बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में" तक्षशिला में प्रवेश किया था। अतः एओरनास का घेरा निश्चित ही शीतकाल के उस समय में डाला गया था जब समुद्र से ७४७१ फुट ऊँचे महाबन पर्वत एवं उसकी ऊँचाई के अन्य सभी पर्वतों पर बर्फ पड़ी हुई थी। अतः यह प्रायः निश्चित है कि यूसफ जाई मैदान से ११ स्टेडिया अथवा ६६७४ फुट की तथाकथित ऊँचाई भी जो समुद्र से ७८७४ फुट की ऊँचाई के बराबर है—अत्यधिक अतिशयोक्तिपूर्ण थी। देश के इस भाग में समुद्र से ४००० फुट अथवा यूसफ मैदान से २८०० फुट की ऊँचाई के सभी स्थानों पर प्रतिवर्ष हिमपात होता है। यूनानियों ने इस बात का उल्लेख किया है कि उन्होंने शीतकाल में बर्फ देखी थी परन्तु कहीं भी एओरनास में हिमपात का उल्लेख नहीं किया गया। अतः मेरा विचार है कि इस सम्बन्ध में उन (यूनानियों) के मौन को एओरनास की कथित ऊँचाई के विरुद्ध पूर्णतया निश्चित समझना चाहिये। इसी कारण महाबन एवं ४००० फुट से ऊँची अन्य पहाड़ियों के दावे के भी विरुद्ध समझना चाहिये। सभी प्राचीन लेखक एओरनास का एक चट्टान के रूप में उल्लेख करने में सहमत हैं। इस चट्टान को विषम, सीधी खड़ी हुई एवं हाथ से बनाये एक मात्र मार्ग वाली पहाड़ी बताया गया है। अतः महाबन पर्वत प्राचीन विवरण की किसी भी बात से नहीं मिलता। यह (महाबन) एक विशाल पर्वत है जिस पर आपेक्षाकृत सरलता से चढ़ा जा सकता है और सिकन्दर के मिथ्या प्रशंसकों के सर्वाधिक अतिशयोक्तिपूर्ण अनुमान के दुगने विस्तार से भी अधिक है। एओरनास के नाम से इसके नाम की भी कोई समानता नहीं है जबकि रानीघाट से सम्बन्धित राजा वर की कथा से रानीघाट को एओरनास के स्थान से सम्बन्धित बताया जा सकता है।

"परशावर अथवा पेशावर"

वर्तमान पेशावर के विशाल नगर का सर्व प्रथम उल्लेख ४०० ई० में फाहियान

ने प ल्यू शा के नाम से किया था। तत्पश्चात् सुंग युन ने ५०२ ई० म इसका उल्लेख किया है। उस समय गांधार के राजा एव किपिन अथवा कोफीन अर्थात् काबुल एव गजनी तथा आस-पास के जिलो के राजा में युद्ध हो रहा था। सुग युन ने नगर के नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसने इसे राजधानी बताया है तथा इस स्थान पर किया-नी शी किया, अथवा सम्राट कनिष्क के विशाल स्तूप का उल्लेख इसकी पहचान के लिए पर्याप्त है। ६३० ई० म ह्वेनसांग की यात्रा के समय राज परिवार प्राय लुप्त हो चुका था तथा गांधार राज्य कपिसा अथवा काबुल राज्य का आश्रित था परन्तु राजधानी परशावर जिस ह्वेनसांग ने पू लू शा-पू लो कहा है उस समय भी विस्तार में ४० ली अथवा ६⅔ मील का विशाल नगर था। तत्पश्चात् दसवी तथा ग्यारहवी शताब्दियो म मसूदी तथा अबुरिहान ने परशावर के नाम से इसका उल्लेख किया था तथा १६ वीं शताब्दी मे बाबर ने अपने बाबरनामा म पुन इसी नाम से इसका बार-बार उल्लेख किया है। इसका आधुनिक नाम हमें अकबर से प्राप्त हुआ है जिसने नवीन परिवर्तन मे अनुराग के कारण इसका नाम प्राचीन परशावर के स्थान पर बदल कर पेशावर अथवा 'सीमान्त नगर' रखा था क्योकि उसे परशावर शब्द के अर्थ का ज्ञान नही था। अबुलफजल ने दोनो नामो का उल्लेख किया है।

हम देख चुके हैं कि ईसा की प्रथम शताब्दियो मे बुद्ध का भिक्षा पात्र पेशावर के स्थान पर पूजा की महान् वस्तु मानी जाती थी। नगर के दक्षिण पूर्व म ८ अथवा ६ ली अथवा १⅓ मील की दूरी पर पवित्र पीपल का वृक्ष एक अन्य प्रसिद्ध स्थान था। यह वृक्ष लगभग १०० फुट ऊचा था जिसकी शाखायें चारो ओर फैली हुई थी। जन-श्रुतियो के अनुसार स्वय बुद्ध ने इसी वृक्ष की छाया मे बैठकर महान् सम्राट कनिष्क के प्रकट होने की भविष्यवाणी की थी। फाहियान ने इस वृक्ष का उल्लेख नही किया है परन्तु सुन-युन ने फो थी अथवा बोद्धी वृक्ष के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसकी 'शाखायें चारो ओर फैली हुई थी तथा जिसके पत्तो ने आकाश को ढक लिया था।" इस वृक्ष के नीचे पिछले चार बुद्धों की चार मूर्तियाँ थीं। सुग युन ने आगे लिखा है कि यह वृक्ष सम्राट कनिष्क द्वारा उस स्थान पर लगाया गया था जहा उसने विशाल स्तूप की मुक्ताफल की महीन जाली सहित एक पीतल का बर्तन छिपाया था क्योकि उसे इस बात का भय था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् स्तूप से इस जाली को निकाल लिया जायेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १५०५ ई० में बाबर ने इसी वृक्ष को देखा था क्योकि उसने इसे यग्राम का अद्भुत वृक्ष कहा है और इसे देखने के लिये वह तुरत ही वहाँ चला गया था। उस समय यह वृक्ष १५०० वर्ष से कम पुराना नही रहा होगा और चूकि १५९४ मे पेशावर के स्थान पर 'गोर कोठरी' का उल्लेख करते समय अबुल फजल ने इस वृक्ष का उल्लेख नही किया अत मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि यह वृक्ष आयु एव क्षय के कारण उस समय से पूर्व ही लुप्त हो गया था।

कनिष्क के वृहत् स्तूप का सभी तीर्थ यात्रियों ने उल्लेख किया है। यह स्तूप पवित्र वृक्ष के समीप ही दक्षिण की ओर था। ५०० ई० में फाहियान ने लिखा है कि यह स्तूप ४०० फुट ऊंचा था और मूल्यवान वस्तुओं से सुसज्जित था। इसी प्रसिद्धि के कारण इस स्तूप को भारत के अन्य स्तूपों से श्रेष्ठ माना गया है। एक शताब्दी बाद सुंग-युन ने घोषणा की थी कि "देश के पश्चिमी भाग के सभी स्तूपों में यह स्तूप सर्व प्रथम था।" अन्त में ६३० ई० में ह्वेनसांग ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह स्तूप ४०० फुट से अधिक ऊंचा था। तथा परिधि में यह स्तूप १½ ली अथवा एक चौथाई मील के बराबर था। इस स्तूप में बुद्ध के अवशेष प्रचुर मात्रा में थे। इस विशाल स्तूप का अब कोई भी अवशेष नहीं रहा।

स्तूप के पश्चिम में कनिष्क द्वारा ही बनवाया हुआ एक पुराना मठ था जो ईसा काल के प्रारम्भ में आचार्य पार्श्विक, मनोरहित तथा वासुबन्धु नामक बुद्ध धर्म के तीन नेता अथवा प्रचारकों का प्रसिद्धि के कारण बौद्ध धर्मावलम्बियों में प्रसिद्ध हो गया था। इस मठ के बुर्ज एवं बरामदे दो मंजिल ऊँचे थे परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय यह भवन अत्यधिक जर्जर अवस्था में था फिर भी इस मठ में कुछ बौद्ध भिक्षु रहा करते थे जो बुद्ध धर्म के साधारण सिद्धान्तों का अनुकरण करते थे। नवीं तथा दसवीं शताब्दी में यह स्थान उस समय भी समृद्ध था जब मगध के वीरदेव को 'कनिष्क के विशाल विहार में भेजा गया था। इस विहार में बौद्ध धर्म के सर्व श्रेष्ठ शिक्षक मिलते थे तथा यह स्थान यहाँ आने वालों को शान्ति प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध था।" मेरा विश्वास है कि यह विशाल मठ बाबर तथा अकबर के समय में भी "गोर कोठरी' अथवा बनिया के घर के नाम से वर्तमान था।

बाबर ने लिखा है कि "मैंने गढ़ कोठरी की प्रसिद्धि सुनी है जो हिन्दू जोगियों का पवित्र स्थान था जो दूर-दूर से इस गढ़ कोठरी में आकर अपने सिर एवं दाढ़ी मुड़वा देते थे।' अबुल फजल का विवरण उपरोक्त विवरण से छोटा है। पेशावर का का उल्लेख करते समय उसने लिखा है कि "यहाँ एक मन्दिर है जिसे गढ़ कोठरी कहा जाता है और धार्मिक आश्रय, विशेषतया जोगियों के आश्रय का स्थान है।"

उद्यान अथवा स्वात

उत्तखण्ड छोड़ने के बाद ह्वेनसांग ने यू चाग-न अथवा उद्यान तक उत्तर की ओर लगभग १०० मील की यात्रा की थी। यू चाग न, सू पो फा-सू तु (१) अर्थात शुभ वस्तु अथवा सस्कृत के सुवस्तु एरियन के स्वास्तस तथा वर्तमान सुआत (स्वात)

(१) युआन च्वांग ने लिखा है कि सू-पो फा सू तु (शुभवस्तु सुवस्तु अथवा स्वात नदी) के साथ साथ १४०० सघाराम थे। वर्तमान अवशेषों का देखकर हम कह सकते हैं कि इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

नदी के तट पर अवस्थित था। पूर्ववर्ती तीर्थ यात्रियों फाहियान तथा सुंग-युन ने इसे यू चङ्ग कहा है जो उज्जैन तथा पाली के उद्यान की प्राय नकल है। देश को अधिक उपजाऊ एवं सिचाई युक्त प्रदेश कहा गया है। यह विवरण उन सभी स्थानीय विवरणों के समान है जिनके अनुसार स्वात केवल दूर दूर तक प्रसिद्ध काश्मीर की घाटी से द्वितीय है। ह्वेनसांग ने उद्यान को व्यास मे ८३३ मील बताया है। यदि हम स्वात नदी का सभी सहायक नदियों को सम्मिलित कर लें तो यह व्यास वास्तविक व्यास के समीप होगा। एतएव उद्यान की सीमाओं में बुनीर, स्वात, बिजावर तथा पञ्जकोर के आधुनिक चार जिले सम्मिलित रहे होंगे। मानचित्र पर सीधे माप से इन जिलों का व्यास केवल ५०० मील है परन्तु सड़क की दूरी से यह व्यास ८०० मील स कम नहीं है। फाहियान ने सू-हो-तो का उल्लेख उद्यान के दक्षिण म एक छोटे जिले के रूप में किया है। इसे प्राय स्वात नाम से सम्बन्धित किया गया है परन्तु उद्यान के दक्षिण तथा पेशावर क उत्तर म अपनी स्थिति के कारण यह ठीक स्वात नदी की विशाल घाटी नहीं हो सकती परन्तु बुनीर की छोटी घाटी तक ही सीमित रहा होगा। फाहियान द्वारा बाज तथा कबूतर की कथा म इसकी पुष्टि होती है। जिस (कथा) म कबूतर की रक्षा के लिए बुद्ध ने अपना मांस काट कर बाज का दे दिया था। ह्वेनसांग ने भी इसी कथा का उल्लेख किया है परन्तु उसने इस घटना के स्थान को महाबन पर्वत क उत्तर पश्चिमी भूभाग पर बताया है अर्थात् बुनीर की वास्तविक घाटी में यह घटना हुई थी। उसने यह भी लिखा है कि बुद्ध उस समय शी-पी किया अथवा सिविक नाम का राजा था। सम्भवत यह नाम फाहियान क सूहोतो का वास्तविक रूप हो सकता है।

उद्यान की राजधानी को मुंग की ली अथवा मङ्गल कहा ज ता था। सम्भवत यह नाम मि० विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगलबेग का मङ्गोर तथा जनरल कोर्ट के मानचित्र का मङ्गलोर है। यह नगर व्यास मे २½ मील था एवं अधिक जनपूर्ण था। राजधानी के उत्तर पूर्व ४२ मील की दूरी पर तीर्थ यात्री नागराज अपलाला की भील अथवा शुभ वस्तु नदी क उदगम स्थान पर पहुँचा था (१) और उसी दिशा में १२५ मील आगे एक पर्वत माला को पार करने क बाद सिंधु नदी के पास वह था-ली लो-अथवा दरेल पहुँचा था जो उद्यान की प्राचीन राजधानी थी। दरेल सिंधु नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर एक घाटी है जहाँ दारडस अथवा डरडस जाति का

---

(१) जहाँ तक अ पो लो लो-अथवा शुभ वस्तु नदी न उदगम् स्थान का सबध है श्री डीन ने लिखा है कि 'तीर्थ यात्री द्वारा बताई गई दूरी एवं दिशा हम ठीक उस स्थान पर ले जाते हैं जहाँ उगोट तथा उशू नामक छोटी नदियो का सङ्गम है। यही स्थान शुभ वस्तु नदी का आधुनिक उद्गम स्थान है।

अधिकार था। इस घाटी का नाम इसी जाति के नाम पर पड़ा था। फाहियान ने इसे तो ली-कहा था और उसने इसे एक अलग राज्य के रूप में बताया है। डॉडंस जाति को वर्तमान समय में उनकी प्राकृति भाषा के आधार पर प्राय तीन भिन्न भिन्न जातियों में विभाजित किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों की प्राकृत भाषा अरनियाँ है वह यसन तथा चित्राल के उत्तर पश्चिमी जिलो में बस गये हैं वह व्यक्ति जिसकी प्राकृत भाषा खाजुनाह है वह हुँजा तथा नगेर के उत्तर-पूर्वी जिलो म बसे हुए हैं और जो शिना का प्रयोग करते हैं, वह सिंधु नदी के साथ-साथ गिलगित, चिलास, दारेलो, कोहली तथा पालस घाटियो मे बस गये हैं। इस जिले म भावी बुद्ध मैत्रीय की एक प्रसिद्ध लकड़ी की मूर्ति थी जिसका उल्लेख दोनों तीर्थ यात्रियों ने किया था। फाहियान के अनुसार इसका निर्माण बुद्ध के निर्वाण के ३०० वर्ष पश्चात् अथवा २४३ ई० पूर्व म किया गया था। अर्थात इसका निर्माण अशोक के शासन काल मे हुआ था जब धर्म प्रचारकों द्वारा सम्पूर्ण भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार बड़े जोरो पर था। ह्वेनसाग न मूर्ति को १०० फुट ऊची बताया है और उसका कथन है कि इसका निर्माण मध्यान्तिक द्वारा किया गया था। (१) नाम एव तिथि दोनो ही एक दूसरे से सहमत है। मध्यान्तिक अथवा पाली का मजम्भिम एक बौद्ध शिक्षक का नाम था जिसे अशोक के शासन काल मे तीसरे धार्मिक सम्मेलन के पश्चात बौद्ध धर्म के प्रचार हतु काश्मीर तथा सपूर्ण हिमवन्त देश में भेजा गया था। सम्भवत ह्वेनसाग ने इसी समय की ओर सकेत किया है जब दरेल उद्यान की राजधानी थी।

"बोलोर अथवा बल्टी"

दरेल स ह्वेनसाग ने एक पर्वत माला के ऊपर स होते हुए तथा सिंधु नदी की घाटी से ऊपर पो-लू-लो-अथवा बोलोर तक ८३ मील की यात्रा की थी। इस जिले का व्यास ६६६ मील था और इसकी दूरस्थ लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर थी। यह चारों ओर हिमाच्छादित पर्वतो से घिरा हुआ था तथा इस स्थान पर प्रचुर मात्रा म स्वर्ण प्राप्त था। माग के विवरण को दिकाश एव दूरी स तुलना करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पो लू लो-आधुनिक बल्टी अथवा छोटे तिब्बत का नाम रहा होगा जो निश्चित हो सही है क्योकि सिंधु नदी पर पड़ोस के दारद्द जिले के निवासियो में बल्टी को केवल पो लो ओ नाम से जाना जाता था। बल्टी अभी भी सोने की धुलाई के लिये प्रसिद्ध है। यह नाम भी प्राचीन है क्योकि टालमी ने यहाँ के निवासियों का बाईलियोय कहा है। अन्त म, विस्तार एव स्थिति मे भी बल्टी चीनी तीर्थ यात्री की व्याख्या से

(१) जूलियन ने यह विवरण दिया है परन्तु उसने इस मूर्ति के निर्माण की तिथि को बुद्ध के निर्वाण से केवल ५० वर्ष बाद बताई है। मेरे विचार म इसे ५० के स्थान पर २५० वर्ष पढना चाहिए।

पूरी तरह मिलता है। इस प्रान्त की लम्बाई सिन्धु नदी के साथ साथ पूर्व से पश्चिम १५० मील है तथा इसकी चौड़ाई स्पिनगढ़ पर्वतों से काराबुराग पवन मार्ग तक ८० मील है अर्थात् कुल मिलाकर मानचित्र पर इसका व्यास ४६० मील था तथा सड़क की दूरी के अनुसार यह व्यास ६०० मील से कम नहीं था।

फालना अथवा बनू

फा-ला-ना नाम का उल्लेख केवल ह्वेनसांग ने किया है जिसने इसे गजनी के दक्षिण पूर्व में तथा लमगान से दक्षिण की ओर १५ दिन की यात्रा पर बताया है। इसका व्यास ६६६ मील था तथा मुख्य रूप से इसमें पर्वत एवं जङ्गल ही थे। यह कपिसीन के अधीन था तथा यहाँ के निवासियों की भाषा मध्य भारत के निवासियों की भाषा से कुछ कुछ मिलती थी। दिशा एवं दूरी से इसमें सन्देह नहीं कि बन्नू ही वह स्थान था जहाँ ह्वेनसांग गया था और इसी से मैं यह अनुमान भी लगा सकता हूँ कि इस स्थान का मूल नाम वरना अथवा बरना था। (१) फाहियान ने इस कथन की पुष्टि की है। उसने इस स्थान का इसके स्थानीय छोटे नाम पो-ना अथवा बन के नाम से उल्लेख किया है। वह नगरहारा से दक्षिण की ओर जाते समय १३ दिन की यात्रा के बाद इस स्थान पर पहुँचा था। पो-ना को सिन्धु नदी के पश्चिम ३ दिन की यात्रा पर बताया जाता है अतः बन्नू अथवा कुरम नदी की घाटी के निचले भाग से इसकी अनुरूपता पूर्ण हो जाती है। फाहियान के समय बन्नू का राज्य इस छोटे क्षेत्र तक ही सीमित था क्योंकि उसने कुरम घाटी के ऊपरी भाग को एक भिन्न जिला लो-ई अथवा रोह कहा है। परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय इस राज्य का व्यास ६०० मील से अधिक था अतः निश्चित ही कुरम तथा गोमाल नदियों की दो विशाल घाटियाँ सम्पूर्ण रूप से बन्नू की सीमाओं में सम्मिलित रही होंगी। इसका क्षेत्र सफेद कोह अथवा फाहियान के 'छोटे हिमाच्छादित पर्वतों' से दक्षिण में सिवास्तान तक पश्चिम में गजनी तथा कन्धार की सीमाओं से पूर्व में सिन्धु नदी तक फैला हुआ था।

मेरे विचार में यह असम्भावित नहीं है कि इस जिले का पूरा नाम फा-ला-न अथवा बन घिलजी खण्ड की बुरान नामक जाति से सम्बन्धित रहा हो क्योंकि सुलेमान पर्वतों एवं गजनी के बीच कुरम तथा गोमाल दोनों नदियों की ऊपरी घाटियों में सुलेमानी खेल अथवा बुरान की प्राचीन शाखा की अनेक छोटी छोटी जातियों का अधि-

(१) संस्कृत नाम वर्ण अथवा वर्ण नहीं है। शुद्ध नाम वर्ण है जिसे प्लिनी ने लिखा है। इस जिले में कुरम (वैदिक) क्रुमु तथा गोमाल (वैदिक गोमती) नदियाँ बहती हैं। आधुनिक बन्नू पाकिस्तान के उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश का एक जिला है तथा ३२° १६' तथा ३०° ४' उत्तर एवं ८०° २३' तथा ७१° १६' पूर्व में स्थित है।

—अनुवादक

कार है। कहा जाता है कि कुरान के ज्येष्ठ पुत्र एवं सुलेमान के पिता हरयूब ने हरयूब जिले का अपना नाम दिया था। कुरम नदी की ऊपरी घाटी ही यह जिला है।

डी० सेंट मार्टिन ने फा-ला-ना को बानह, बन्नेह अथवा एलफिंस्टोन के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु बान एक छोटा सा प्रदेश है और इसकी जनसंख्या बहुत कम है जबकि बन्नू, सिन्धु नदी के पश्चिमी जिलों में सबसे बड़ा, सबसे धना एवं जन पूर्ण जिला है। बान गजनी के दक्षिण-दक्षिण पूर्व में है जबकि बन्नू गजनी के पूर्व-दक्षिण पूर्व में है। दोनों ही ह्वेनसांग द्वारा बताई दक्षिण पूर्व दिशा में मिलते हैं परन्तु बान लमगान के दक्षिण में २० से २५ दिन की यात्रा पर आता है जबकि तीर्थ यात्रा के अनुसार बन्नू केवल १५ दिन की यात्रा पर है। फाहियान ने बन्नू का उल्लेख पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में किया था अतः मेरे विचार में इसे टालमी के बानगरा के अनुरूप समझा जा सकता है। टालमी ने इस नगर को इण्डोसीथिया के सुदूर उत्तर में तथा नागरा अथवा जलालाबाद के दक्षिण, दक्षिण पूर्व में दिखाया है। इसी दिशा में एक अन्य नगर जिसे टालमी ने अजूपन का नाम दिया है सम्भवतः डेरा इस्माईल खां के समीप द्राबन्द अथवा देराबन्द था।

ह्वेनसांग ने फलना की दक्षिणी सीमा पर कि-कियांग-ना नामक जिले का उल्लेख किया है परन्तु इसका स्थान अभी निश्चित नहीं किया जा सका। एम० विवीन डी सेंट मार्टिन तथा सर एच इलियट ने इसे केकानान अथवा सिंध के अरब इतिहासकारों के किकान के अनुरूप माना है परन्तु दुर्भाग्यवश केकानान की स्थिति निश्चित नहीं है। फिर भी इसे कच्छ गण्डाव के उत्तर उत्तर पूर्व में दिखाया गया है तथा कि कियांग ना फलना अथवा बन्नू के पश्चिम में था। यह सम्भव प्रतीत होता है कि जिस जिले का उल्लेख किया गया है वह पिशिन तथा क्वेटा के आस पास किसी स्थान पर रहा होगा और चूंकि ह्वेनसांग ने इसे ऊंचे पर्वत के नीचे एक घाटी में अवस्थित बताया है अतः मैं इसे पिशिन की घाटी के अनुरूप समझने का इच्छुक हूं जो उत्तर में खोजा अमरान की पहाड़ियां तथा दक्षिण में तकातू पर्वत के बीच है। यह स्थान बिलदूरी के केकान से मिलता है। बिलदूरी का कथन है कि यह खुरासान की दिशा में सिंध का भाग था। इसकी पुष्टि इस कथन से भी होती है कि केकान मुल्तान से काबुल के मार्ग पर अवस्थित था। इन दोनों नगरों के बीच का सामान्य मार्ग मुसलमानी पर्वतों में सखी सरवर दर्रे से होकर गुजरता है तथा पिशिन घाटी से होकर कन्धार की ओर चला जाता है। एक छोटा परन्तु कठिन मार्ग गोमाल नदी की घाटी से होकर गजनी तक जाता है और चूंकि गोमाल का घाटी फलना से सम्बन्धित थी अतः कि-कियांग-ना का जिला अवश्य ही पिशिन के पड़ोस में किसी स्थान पर रहा होगा। चूंकि इस घाटी में ?कम जाति के लोग रहते हैं अतः यह असम्भावित नहीं है कि किकान अथवा केकान नाम भी इन्हीं लोगों से प्राप्त हुआ होगा।

ओपोकीन अथवा अफगानिस्तान

ओ-पो कीन का उल्लेख केवल एक बार ह्वेनसांग ने एक छोटे गद्यांश मे किया था । उसने इसे फलना तथा गजनी के बीच, फलना के उत्तर पश्चिम मे तथा गजनी के दक्षिण पूर्व मे दिखाया है । इस व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि ओ पो कीन, फाहियान के लो ई तथा भारतीय इतिहासकारो के रोह के समान है । सम्भवत ओपोकीन का नाम विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगल बेग के बोरगुन अथवा वरधिन से कुछ सम्बधित रहा होगा । मुगल बेग ने इस स्थान को कुरम नदी की सहायक तुची अथवा तोचा नदी के उद्गम स्थान के समीप बताया है । ऐरोस्मिथ की 'बर्न्स की यात्राओ के साथ दिये मानचित्र म इसका नाम बोरएून लिखा गया है । परन्तु मैं ओपोकीन अथवा एम चुलीन के अवकान को अफगान नाम के अनुरूप समझने का इच्छुक हूँ क्योकि मैं देखता हूँ कि चीनी अक्षर कीन धात शब्द मे धान का प्रतिनिधित्व करता है । (१) ह्वेनसांग द्वारा जिले के अधूरे उल्लेख से मेरा अनुमान है कि यह स्थान फलना प्रान्त का भाग रहा होगा । यह निश्चित ही पहाडी जिले का भाग था जिसे अबुलफजल तथा फरिश्ता ने रोह कहा था अथवा यह दक्षिण पूर्वी अफगानिस्तान का भाग था जो अफगान लोगों का मूल स्थान प्रतीत होता है । मेजर रेर्टी ने रोह का उल्लेख "अफगानिस्तान के पर्वती जिले तथा बिलूचिस्तान के भाग अथवा ' गजनी तथा कधार एव सिन्धु नदी के बीच के प्रदेश" के रूप मे किया है । इस प्रान्त के निवासियों को रोहीले अथवा रोहोला अफगान कहा जाता है जिससे उन्हें अन्य अफगानो जैसे बरूम तथा मर्व के बीच गोर के गोरी अफगाना स अलग पहचाना जा सके । फिर भी इस अनुरूपता को स्वीकार करने मे कुछ ऐतिहासिक क्रम की कठिनाई है क्योकि फरिश्ता के अनुसार खिल्जी गोर तथा काबुल के अफगानो ने ६३ हिजरी अथवा ६८२ ई० म रोह प्रान्त पर अधिकार किया था अथात ह्वेनसांग को यात्रा के लगभग ३० वर्ष । पश्चात् परन्तु मेरा विचार है कि इस कथन की सत्यता म सन्देह करने के लिए हमारे पास कई प्रमाण उपलब्ध हैं । ह्वेनसांग ने फलना की भाषा को मध्य भारत की भाषा से मिलता जुलता कहा है । अत रोह निवासी भारतीय नहीं हो सकते थे और यदि वह भारतीय नहीं थे तो प्राय निश्चित ही वह अफगान रहे होगे । फरिश्ता ने अपना विवरण इस कथन से शुरू किया है कि पहाडो क मुस्लिम अफगानो ने ' किरमान शिवरान तथा पेशावर के राज्यो पर आक्रमण किया तथा उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर दिया ।" तथा "किरमान एव पेशावर क बीच

---

(१) ओपोकीन अथवा अ-पो-कान फ-ल न के उत्तर पश्चिम में तथा साउ कूट के दक्षिण पूव में था । सर कनिघम का विचार है कि यह अफगान शब्द का सकेत करता है । उन्होंने इसे कुरम नदी की एक सहायक नदी तोची के उद्गम स्थान पर बताया है । सम्भवत यह वायु पुराण का "आरगा ' है । —अनुवादक

समतल भूमि पर" अफगानों तथा भारतीयों मे अनेक युद्ध हुए थे। किरमान जिसका यहाँ उल्लेख किया गया है भारतीय महासागर के तट पर किरमान अथवा करमानियाँ का विशाल प्रांत नहीं है परन्तु यह तैमूर के इतिहासकारो का किरमान अथवा किरमाश है जो कुरम नदी की घाटी मे अवस्थित था। इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है यदि हम किरमान के भूभाग को निचली घाटी अथवा कुरम नदी के समतल भाग तक सीमित रखें तथा अफगान देश की सीमाओ को गजनी तथा काबुल के आगे तक बढ़ा दें जिसमे इस भूभाग में ऊपरी घाटी अथवा कुरम नदी का पर्वतीय क्षेत्र सम्मिलित हो सके। राजनतिक रूप से पेशावर का शासक सदैव कोहाट अथवा बन्नू का भी शासक रहा है तथा काबुल का शासक कुरम नदी की ऊपरी घाटी का स्वामी रहा है। इस जिले को आजकल खोसत कहा जाता है परन्तु यह तैमूर के इतिहासकारों तथा बिलफाड के सर्वेक्षक मुगलबेग का इरियूब है तथा एलफिस्टन का हरियूब है। वर्तमान समय मे घिलजी व बुरान वश के सुलेमान खेल सख्या मे सम्पूर्ण जाति के लगभग तीन चौथाई है। अत मेरा अनुमान कि घिलजियो के मूल स्थान मे पूर्व मे कुरम तथा गोमाल नदियों को ऊपरी घाटी तथा पश्चिम मे गजनी एव कलात ए घिलजी सम्मिलित रहे होगे। इस प्रकार हरियूब खिलजी अथवा घिलजी के अफगान जिले का भाग रहा होगा। ज₁ से पेशावर की सीमाओ मे सरलता पूर्वक प्रवेश किया जा सकता था। फरिश्ता के इस कथन की यह व्याख्या सही हो या न हो मैं यह निश्चित समझता हूँ कि ह्वेनसांग का ओपोकीन अवश्य ही अफगान शब्द के लिए लिखा गया होगा। ओपो-कीन का समतुल्य अवगान रहा होगा। अवगान ही चीनी भाषा मे अफगान शब्द की नकल हो सकती है। यदि यह अनुवाद सही है तो जहाँ तक मेरा ज्ञान है अफगान शब्द का यह सब प्रथम उल्लेख है।

काश्मीर राज्य

सातवीं शताब्दी में, चीनी तीर्थ यात्री के अनुसार काश्मीर राज्य में न केवल स्वय काश्मीर की घाटी थी परन्तु सिंधु नदी से चेनाब नदी के बीच तथा [illegible] नमक की पहाड़ियों तक का सम्पूर्ण पहाड़ी प्रदेश सम्मिलित था। भिन्न-भिन्न राज्य जहाँ ह्वेनसांग गया था इस प्रकार थे। काश्मीर के पश्चिम मे उरस, [illegible] तक्ष-शिला तथा सिंहपुर एव दक्षिण मे पूंच तथा राजौरी थे। पूर्व तथा [illegible] के अन्य पहाड़ी राज्यों का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु यह [illegible] कारण है कि वह सभी भी काश्मीर राज्य मे आश्रित थे तथा [illegible] का राज्य सिंधु नदी से रावी नदी तक फैला हुआ था। (१) [illegible]

(१) राजतरङ्गिणी के अङ्ग्रेज अनुवादक डा० [illegible], [illegible] तथा कस्तिरास को काश्मीर के अनुरूप बताया है। [illegible] काश्मीर को [illegible]

घाटी मे कुलू का स्वतन्त्र छोटा राज्य दूरी एव अगम्यता के कारण बच गया था और व्यास की निचली घाटी म जालन्धर का समृद्ध राज्य उस समय कन्नौज के महान् सम्राट हर्षवर्धन के अधीन था। परन्तु नवीं शताब्दी क अन्त में शकर वर्मा ने कागडा घाटी पर अधिकार कर लिया था और काश्मीर की प्रभुसत्ता सिन्धु स सतलज तक पञ्जाब के सम्पूर्ण पहाडी क्षेत्र पर स्थापित हो गई थी।

ह्वेनसाग ने काश्मीर का उल्लेख चारो ओर से ऊ चे ऊ चे पर्वतो से घिरे हुए प्रदेश क रूप म किया है जो काश्मीर की घाटी का सही उल्लेख है परन्तु उसके इस कथन म कि इस राज्य का विस्तार ११६६ मील था। सम्भवत काश्मीर के विस्तृत राज्य की ओर सकेत किया गया है न कि काश्मीर की घाटी का क्योंकि इसका व्यास केवल ३०० मील है। इस राज्य की राजनैतिक सीमाओ का व्यास उत्तर म सिन्धु नदी से लेकर दक्षिण में नमक की पहाडियो तक तथा पश्चिम में सिन्धु स लेकर पूर्व म रावी नदी तक ६०० मील से कम नही था और सम्भव है कि यह विस्तार तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये व्यास मे मिलता हो।

काश्मीर

ह्वेनसाग ने काश्मीर सितम्बर ६३१ ई० मे पश्चिम की ओर से काश्मीर की घाटी में प्रवेश किया था। प्रवेश स्थान पर पत्थर का द्वार था, जहाँ राजमाता के छोटे भाइ ने तीर्थ यात्री का स्वागत किया था। पवित्र स्थानो पर पूजा के पश्चात् वह हु सी-किया लो-अथवा हुशक्र मठ में रात्रि व्यतीत करने चला गया था। अलबिरूनी ने भी इस स्थान का उल्लेख किया है जिसने पुष्कर (उष्कर) को बारह मूला (वर्तमान बारामूला) क समान बताया है जो नदी के दोनों तटो पर फैला हुआ था। राजतरगिणी मे भी हुष्कपुर को वराह अथवा वराहमूला क समीप बताया गया है। वराहमूला बारामूला का सस्कृत स्वरूप है। हुष्कर अथवा उष्कर बारामूला क दक्षिण पूर्व मे दो मील की दूरी पर वेहात नदी क बाए अथवा पूर्वी तट पर अभी भी एक छोटा गाँव है। काश्मीरी ब्राह्मणो का कथन है कि यह स्थान राजतरगिणी का हुष्कपुर है जिसका निर्माण ई० काल के प्रारम्भ मे लगभग तुरुष्कराज हुष्क ने करवाया था।

राजतरगिणी क ऐतिहासिक क्रमानुसार ६३१ ई० म काश्मीर का राजा प्रतापादित्य था परन्तु उसक मामा क उल्लेख स ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय इतिहास म

कहा है। युआन च्वाग क समय म काश्मीर का राजा दुर्लभवर्धन था। पुन्नू सा शी अथवा उरश (आधुनिक हजारा) पुआन नू चो (पर्णोत्स) आधुनिक पूछ का-लो शा पु लो (राजौरी) सङ्ग हो पु लो (सिंहपुर) अथवा नमक की पहाडियों क क्षेत्र तथा ता ... लो (तक्षशिला) का सर्वोच्च शासक था।

अन्य पहाडी राज्यों म काष्ठवार (आधुनिक किश्तवार) चम्पा (आधुनिक चम्बा) तथा बाबापुर का उल्लेख किया गया है।

में कोई त्रुटि अवश्य रही होगी क्योंकि उस राजा का पिता अपनी पत्नी के अधिकार से गद्दी पर बैठा था जिसका (रानी का) कोई भाई नहीं था अतः प्रतापादित्य का सिंहासनारोहण अवश्य ही ६३३ ई० में काश्मीर से ह्वेनसांग के चले जाने के बाद हुआ होगा। इस प्रकार स्थानीय इतिहास में ३ वर्षों की त्रुटि हो जाती है परन्तु इससे भी अधिक भिन्नता उसके पुत्रों चन्द्रापीड तथा मुक्तापीड के शासन काल में देखने को मिलती है। मुक्तापीड ने अरबों के विरुद्ध चीनी सम्राट से सहायता की प्रार्थना की थी। प्रथम प्रार्थना की तिथि ७१३ ई० में है जबकि स्थानीय इतिहास के अनुसार चन्द्रापीड ने ६८० ई० से ६८८ ई० तक राज्य किया था। इस इतिहास में कम से कम २५ वर्षों का अन्तर है। चूंकि चीनी राजपत्रों में यह बात मिलती है कि सम्राट ने ७२० ई० के लगभग चन्द्रापीड को राजा की उपाधि दी थी। वह ७१६ ई० तक अवश्य ही जीवित रहा होगा और इस प्रकार काश्मीरी इतिहास में ठीक ३१ वर्षों का अन्तर हो जाता है। उसके पूर्ववर्ती शासकों के राज्य काल की तिथियों में इसी अनुपात से शुद्ध करने पर उसके पितामह दुर्लभ का शासनकाल ६२५ से ६६१ तक होगा। अतः यही वह राजा था जो ६३१ ई० में ह्वेनसांग की काश्मीर यात्रा के समय काश्मीर में राज कर रहा था। कहा जाता है कि दुर्लभ जो अपने पूर्ववर्ती शासक का दामाद था एक नाग का पुत्र था और जिस राजघराने की उसने नींव डाली थी उसे नाग अथवा करकोट घराना कहा जाता था। इस विशिष्ट नाम से मैं समझता हूँ कि उसका राज परिवार सर्प पूजक था। सर्पपूजन आदि काल से काश्मीर का प्रचलित धर्म रहा था। ह्वेनसांग ने इस जाति को की-ली-तो-कहा है जिसे प्रोफेसर लासन तथा स्टेनिसलस जुलीन ने क्रीट बना दिया है। वे बौद्धधर्मावलम्बियों के कट्टर विरोधी थे जिन्होंने बारम्बार उनसे राजसत्ता छीन ली थी तथा उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया था। तीर्थ यात्री के अनुसार इसी कारण से उस समय के राजा को बुद्ध में विश्वास नहीं था और वह केवल ब्राह्मणों के देवताओं के मन्दिरों एवं पाखण्डों पर विश्वास करता था। स्थानीय इतिहास में भी इस कथन की पुष्टि की गई है जिसके अनुसार रानी अनङ्गलेखा ने एक विहार अथवा बौद्ध मठ का निर्माण करवाया था तथा अपने नाम पर इसका नाम अनंग-भवन रखा था जबकि राजा ने एक विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया था तथा उसने अपने नाम पर दुर्लभ स्वामिन का नाम दिया था। इससे मेरा अनुमान है कि उस समय भी रानी अपने परिवार के बौद्ध धर्म में विश्वास करती थी जबकि राजा वस्तुतः एक ब्राह्मणवादी था फिर भी उसने बौद्ध धर्म से उत्साहहीन सम्बन्ध रखा हुआ था।

काश्मीर के निवासियों को देखने में सुन्दर व्यवहार में सरल एवं चंचल स्वभाव में स्त्रीयोचित-स्वभाव के एवम् भीरू तथा छल एवम् कपट में स्वभावतः उद्युक्त कहा गया है। आज भी उनका यही चरित्र है और इस व्याख्या में मैं इतना और लिखना

है कि पड़ोस के राजा काश्मीरियों को इतने तिरस्कार से देखते थे कि उन्होंने इनसे किसी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करना स्वीकार नहीं किया तथा इन्हें की ली-तो अथवा क्रीट नाम दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाम तिरस्कारपूर्वक दुष्ट प्रकृति एवं उपद्रवकारी व्यक्तियों जैसे शत्रुओं देश द्रोहियों 'हत्यारा' आदि को दिया जाता था। जो नाम मैंने सुना है वह कीड़े मकौड़े अथवा क्रूर बर्बर कीटे हैं। तथा विलसन ने कीट नाम काश्मीर की घाटी को दिया है और वहाँ के निवासियों को कीड़ा कहा है।

सातवीं शताब्दी में इस राज्य की राजधानी नगरी के पूर्वोत्तर पर तथा प्राचीन राजधानी के उत्तर पश्चिम लगभग १०२ मील से कम दूरी पर थी। अब्बुरहान ने राजधानी को अधिस्तान कहा है जो संस्कृत का अधिष्ठान अर्थात् मुख्य नगर है। यह वर्तमान समय का श्रीनगर है जिसका निर्माण छठीं शताब्दी के प्रारम्भ के लगभग राजा प्रवरसेन ने करवाया था। प्राचीन राजधानी को मैं पहले ही एक प्राचीन स्थान के अनुरूप बता चुका हूँ जो तख्ते-सुलेमान के दो मील दक्षिण पूर्व में था। इस स्थान को पांडरीथान कहा जाता था जो काश्मीरी भाषा के पुराना-अधिष्ठान (पुराना मुख्य नगर) का भ्रष्ट स्वरूप है। पान "पुराना" शब्द का सामान्य काश्मीरी शब्द है। उदाहरणार्थ नदी के निचले भाग पर दराज के नये गाँव से भिन्न दिखाने के लिए 'पुराने दराज' को पान दराज कहा गया है। (१) प्राचीन राजधानी के समीप एक प्रसिद्ध स्तूप था जहाँ ६३१ ई० में बुद्ध का दाँत प्रतिष्ठित किया गया था। परन्तु ६४३ ई० में ह्वेनसांग के पंजाब वापिस आने के समय तक यह पवित्र दाँत कन्नौज के शक्तिशाली शासक हर्षवर्धन को दे दिया गया था जो एक विशाल सेना लेकर इस दाँत की प्राप्ति के लिये काश्मीर की सीमाओं तक चढ़ आया था। चूंकि राजा दुर्लभ एक ब्राह्मणवादी था बुद्ध के दाँत का बलिदान ब्राह्मण धर्म के लिये बहुत बड़ी विजय थी।

प्राचीन काल से काश्मीर को कामराज तथा मेराज नाम के दो विशाल जिलों में बाटा गया था। प्रथम जिला सिन्धु तथा बिहात नदियों के संगम स्थान से नीचे घाटी का उत्तरी भाग था। जबकि दूसरा जिला अर्थात घाटी का दक्षिणी भाग इस संगम स्थान से ऊपर था। छोटे छोटे खंडों का उल्लेख अनावश्यक है। परन्तु धार्मिक विश्वास में परिवर्तन के कारण उत्पन्न, दो महत्व पूर्ण हिंदू शब्दों में अनोखी अनियमितता का उल्लेख करना चाहूंगा। सूर्य पूजक हिंदुओं के अनुसार चार प्रमुख दिशाओं को पूर्व दिशा के आधार पर नाम दिया जाता है जैसे पर अथवा सम्मुख अर्थात पूर्व, जिसकी ओर वह प्रति दिन सम्मुख होकर पूजा करता है। अपर अर्थात पीछे अर्थात पश्चिम है, वाम अर्थात बाईं ओर उत्तर है तथा दाहिनी ओर दक्षिण है। परन्तु मुसलमानों ने जो

(१) विलसन ने इसे बदल कर पायिन (पायिन) दराज कहा है फारसी भाषा में इसका अर्थ निचला दराज है जबकि पान दराज नदी के ऊपरी भाग में है।

पूजा के समय परिक्रमा मुख होते है, इन परिभाषाओं को पूर्णतः बदल दिया है और दछिन जिसका अर्थ काश्मीरी भाषा में "दाहिना" है आजभी "उत्तर" की ओर संकेत करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है तथा बायें अथवा दक्षिण के लिये कवर शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार लिडर नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित उपखण्ड को दछिन पार कहा जाता है और नदी के दक्षिणी तट पर अवस्थित उपखण्ड को कवर कहा जाता है। दछिन शब्द के अर्थ में दक्षिण के स्थान पर उत्तर समझे जाने का परिवर्तन अकबर के शासन काल से पूर्व हुआ होगा क्योंकि अबुलफजल ने दछिन पार को "विशाल तिब्बत की ओर एक पर्वत के अधोभाग पर अवस्थित" अथवा लिडर नदी के उत्तर की ओर बताया है।

काश्मीर के प्रमुख प्राचीन नगर इस प्रकार हैं —प्राचीन राजधानी श्रीनगर, प्रवरसेन नाम की नवीन राजधानी प्रवरसेनपुर खागेन्द्रपुर तथा खुनामुश जिनका निर्माण अशोक के शासन काल से पूर्व करवाया गया था, विजीपार तथा पांतसोक जिन्हें स्वयं अशोक से सम्बन्धित किया जाता है सुरपुर जो प्राचीन काम्बुवा की पुनरावृत्ति स्वरूप बनवाया गया था, कनिष्कपुर हुष्कपुर तथा जुष्कपुर जिनके नाम इन नगरों का निर्माण करवाने वाले तीन इण्डोसीथियन शासकों के नाम पर रखे गये थे। ललितादित्य द्वारा निर्मित परिहासपुर, राजा बृहस्पति के मंत्री पदम के नाम पर बनवाया गया पदमपुर तथा राजा अवन्ति वर्मा के नाम पर अवन्तिपुरा।।

कहा जाता है कि प्रवरसेनपुर के निर्माण से पूर्व काश्मीर की प्राचीन राजधानी श्रीनगर का निर्माण अशोक महान ने करवाया था जिसने २६३ से २२६ ई० पूर्व तक भारत में राज्य किया था। यह राजधानी आधुनिक पाण्डरीथान के स्थान पर थी और कहा जाता है कि इसका विस्तार नदी के तट के साथ साथ (तख्तेसुलेमान) तख्त ए-सुलेमान के अधोभाग से पांतसोक तक ३ मील से भी अधिक था। तख्त ए-सुलेमान के शिखर पर काश्मीर को प्रचीनतम मंदिर को इस घाटी के समस्त ब्राह्मणों के एक मतानुसार ज्येष्ठ रुद्र के मन्दिर के अनुरूप स्वीकार किया गया है जिसका निर्माण अशोक के पुत्र जलौक ने श्रीनगर में करवाया था। यह अनुरूपता इस तथ्य पर आधारित है कि पहाड़ी को मूल रूप से ज्येष्टेश्वर कहा जाता था। पांतसोक गाँव के पास प्राचीन पुल के स्थान को अशोक से सम्बन्धित किया जाता है और इस स्थान के अन्य अवशेषों को दो अशोकेश्वर मन्दिरों के अवशेष कहा जाता है। काश्मीर के स्थानीय इतिहास में भी इन मन्दिरों का उल्लेख किया गया है श्रीनगरी पाँचवी शताब्दी के अन्त के समीप प्रवरसेन प्रथम के शासनकाल में भी काश्मीर की घाटी की राजधानी थी। उस समय राजा ने भगवान् शिव के प्रसिद्ध शिवलिंग की स्थापना करवाई थी और अपने नाम पर इसका नाम प्रवरेश्वर रखा था। यह नगर ६३१ ई० में चीनी तीर्थ यात्री की काश्मीर यात्रा के समय भी बसा हुआ था परन्तु यह काश्मीर की राजधानी नहीं थी। उसने

अपने समय की राजधानी को "नवानगर" कहा है और उसका कथन है कि पुराने नगर से दक्षिण पूर्व में लगभग दो मील की दूरी पर तथा एक ऊँचे पर्वत के दक्षिण में था। इस विवरण में पाण्ड्रेथान तथा वर्तमान राजधानी की स्थिति की तरह ए-मुनेमान की स्थिति से तुलना इतनी सही है कि इन स्थानों का प्राचीन स्थानों का प्रतिनिधि स्वीकार करने में परेशानी नहीं हो सकती। पुराना नगर ६१३ तथा ६२१ में भी बसा हुआ था जब राजा पार्थ के मन्त्री मेरु ने पुराणाधिष्ठान अथवा प्राचीन राजधानी में एक मन्दिर का निर्माण करवाया था जिसे उसने अपने नाम पर मेरु वर्धनास्वामी का था। इस भवन को मैंने पाण्ड्रेथान के वर्तमान मन्दिर के अनुरूप माना है। जैसा कि कल्हण पण्डित लिखता है कि जिस समय राजा अभिमन्यु ने अपनी राजधानी को आग लगा दी थी "वर्धनास्वामी के मन्दिर से लेकर भिक्षुकीपारक तक के सभी उत्तम भवन नष्ट हो गये थे मेरा विचार है कि चूने के पत्थर से बना यह भवन एक तालाब के बीच अपनी भाग्यशाली स्थिति के कारण बच गया था और मेरे विचार में इसी विपत्ति के कारण ही प्राचीन राजधानी निर्जन हो गई थी क्योंकि जन साधारण के सामान्य निवासस्थान उस विनाशकारी अग्नि से बच गये होंगे जिसमें नगर के सभी महत्वपूर्ण स्थान नष्ट हो गये थे।

प्रवरसेनपुर अथवा नवीन राजधानी का निर्माण छठीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजा प्रवरसेन द्वितीय ने करवाया था। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसका वही स्थान था जहाँ वर्तमान राजधानी श्रीनगर है। चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग तथा हिन्दू इतिहासकार कल्हण पण्डित के स्पष्ट एवं विशिष्ट तथ्यों से इस तथ्य की निश्चितता सन्देह की किसी भी संभावना से परे है। प्रथम लेखक के कथन को मैं प्राचीन राजधानी की अपनी व्याख्या में उद्धृत कर चुका हूँ पर तु इस व्याख्या में मैं इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि ह्वेनसांग काश्मीर में दो वर्षों तक प्रवरसेन के मामा जयेन्द्र द्वारा निर्मित जयेन्द्र विहार में रहा था। हिन्दू लेखक ने नगर को दो नदियों के सगम स्थान पर अवस्थित बताया है तथा इसके मध्य में एक पहाड़ी भी बताई है। यह वर्तमान श्रीनगर का सही-सही उल्लेख है जिसके मध्य में हरि पर्वत है तथा जिससे होकर हर अथवा मर नदी नगर के उत्तरी छोर पर बेहात नदी में मिलती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार प्रवरसेनपुर के नवीन नगर ने अपना नाम त्याग कर श्रीनगरी के प्राचीन नाम को धारण कर लिया। मेरे विचार में इस कठिनाई को इस साधारण तथ्य से सुलझाया जा सकता है कि दोनों नगर वस्तुतः मिले हुए थे और चूंकि यह दोनों नगर पाँच शताब्दियों तक साथ साथ जीवित रहे अतः दिल्ली की भाँति ही प्राचीन नाम राजधानी के परम्परागत अभिधान के रूप में जन साधारण में नये नाम की उपेक्षा प्रचलित रहा होगा। यहाँ ठीक दिल्ली के प्राचीन नाम की भाँति स्थिति है। वहाँ क्रमबद्ध शासकों ने एक के बाद एक नवीन नगर का निर्माण करवाया

था और प्रत्येक नगर का नाम अपने निर्माता के विशिष्ट नाम पर रखा गया था परन्तु चूंकि यह सभी नगर दिल्ली के आस पास में ही थे अतः प्राचीन प्रचलित नाम राजधानी के साथ बना रहा और प्रत्येक नया विशिष्ट नाम अन्त में "दिल्ली" के सामान्य नाम में लुप्त हो गया। इसी प्रकार, मेरा विश्वास है कि श्रीनगर के प्राचीन प्रचलित नाम ने अन्त में नवीन नगर प्रवरसेनपुर के नाम को अपने में समेट लिया था।

कल्हण पण्डित ने खागीपुर तथा खुनामुश के नामों को राजा खगेन्द्र से सबंधित बताया है जिसने अशोक के छठे पूर्ववर्ती शासक के रूप में ४०० ई० पू० के लगभग शासन किया था। विल्सन तथा ट्रायर ने इन दो स्थानों को मुस्लिम लेखकों के काकपुर तथा गौमोह के अनुरूप स्वीकार किया है। प्रथम अनुरूपता निश्चित है क्योंकि काकपुर आज भी वेहात के बायें तट पर तख्त ए सुलेमान से दस मील दक्षिण तथा पामपुर के पाँच मील दक्षिण में बसा हुआ है परन्तु गौमोह चाहे किसी भी स्थान पर हो उसकी अनुरूपता निस्सन्देह गलत है क्योंकि खुनामुश के स्थान पर अब खुनामोह का विशाल गाँव है जो पामपुर से ४ मील उत्तर पूर्व में एक पहाड़ी के नीचे अवस्थित है।

बिज बिहार अथवा विजीपार का प्राचीन नगर राजधानी से १५ मील दक्षिण पूर्व में वेहात नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ है। मूल नाम विजयपार था जिसे विजयेश के प्राचीन मन्दिर के नाम पर विजयपार कहा जाता था। यह मन्दिर आज भी देखने को मिलता है यद्यपि इसका फर्श पास-पड़ोस की भूमि से १४ फुट नीचे है। स्तर के इस अन्तर से यह पता चलता है कि इस मन्दिर के निर्माण के समय से आज तक कितने अवशेष एकत्रित हो गये हैं। जन साधारण के अनुसार अशोक ने २५० ई० पू० में इसका निर्माण कराया था। कल्हण पण्डित का कथन है कि अशोक ने विजयेश के ईंटों से बने पुराने मन्दिर को तुड़वाकर पत्थरों से पुनः इसका निर्माण करवाया था। यह सम्भवतः वही मन्दिर है जिसका उल्लेख, ईसा की कुछ शताब्दियों बाद राजा आर्य के शासनकाल में किया गया है।

सूरपूर आधुनिक सुपुर अथवा सोपुर विशाल वूलर झील के ठीक पश्चिम में वेहात नदी के दोनों तटों पर अवस्थित है। प्रारम्भ में इसे काम्बुवा कहा जाता था और पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में काश्मीरी इतिहास में इसका उल्लेख इसी नाम से दिया गया है। ८५४ तथा ८८३ ई० के बीच राजा अवन्ति के मन्त्री सूर ने इसका पुनर्निमाण कराया था, जिसके नाम पर इसे सूरपुर कहा जाता था। वुलर झील के निकास स्थान पर अनुकूल स्थिति के कारण मेरे विचार में यह सम्भव है कि यह स्थान काश्मीर के प्राचीनतम स्थानों में एक है।

ईसवी काल के प्रारम्भ से कुछ ही समय पूर्व इण्डोसीथियन सम्राट कनिष्क ने कनिष्कपुर का निर्माण करवाया था। भारत की बोलचाल की भाषा में इसे कनिकपुर कहा जाता है, जिसे काश्मीरी भाषा में और भी अधिक बिगाड़ कर कामपुर कहा जाता

है। यह श्रीनगर के दस मील दक्षिण में, पीर पंजाल के दर्रे की ओर जाते हुए मार्ग पर अवस्थित है। यह एक छोटा सा गाँव है जिसमें यात्रियों के लिए एक सराय है, जिसे कामपुर सराय कहा जाता है। कैप्टन मान्टगुमरी द्वारा बनाये गये काश्मीर के विशाल मानचित्र में यह नाम गलती से खानपूर लिखा गया है।

हुष्कपुर, जिसका निर्माण इण्डोसीथियन सम्राट कनिष्क के भ्राता राजकुमार हुष्क अथवा हुविष्क ने कराया था, बेहात नदी पर अवस्थित प्रसिद्ध वराहमूल अथवा बराहमूल (बारामूला) के समान प्रतीत होता है। अबुरिहान ने इसे "उश्कर कहा है, जो नदी के दोनों तटों पर अवस्थित बारामूला का नगर है।" चीनी तीर्थ यात्री ह्वेन-सांग ने भी इस नगर का उल्लेख इस नाम से किया है। ह्वेनसांग ने पश्चिम की ओर से पत्थर के द्वार से काश्मीर की घाटी में प्रवेश किया था तथा हू सी किया-लो अथवा हुष्कर मठ में विश्राम किया था। बारामूला के नाम ने प्राचीन विशिष्ट नाम का स्थान ग्रहण कर लिया है जो आज भी वर्तमान नगर से २ मील दक्षिण पूर्व तथा पहाड़ियों के ठीक नीचे अवस्थित उश्कर गाँव के रूप में जीवित है। मेरी प्रार्थना पर आदरणीय श्री ड० यू कोवी इस स्थान पर गये थे तथा उन्होंने वहाँ पर एक अक्षुण्ण बौद्ध स्तूप देखा था। यह वही स्मारक है जिसे ७२३ से ७६० ई० के बीच राजा ललितादित्य ने बनवाया था। स्थानीय इतिहास में ६१३ ई० में रानी सुगन्धा के निवासस्थान के रूप में पुनः इसका उल्लेख मिलता है। इन सभी विवरणों से यह निश्चित नगर का प्राचीन नाम पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक प्रचलित था जब अबुरिहान ने इन नगर के दोनों नामों का उल्लेख किया है। परन्तु तत्पश्चात् स्थानीय इतिहास में केवल वराहमूल नाम का उल्लेख मिलता है। स्थानीय इतिहास में बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हर्ष तथा सुस्सल के शासनकाल में इसका उल्लेख किया गया है। मेरे विचार में यह सम्भव है कि नगर का मुख्य भाग नदी के बायें अथवा दक्षिणी तट पर रहा होगा तथा वराहमूल मूल रूप से नदी के दाहिने तट पर अवस्थित उपनगर था। बौद्ध धर्म के ह्रास के बाद, जब हुष्कपुर के मठीय संस्थापन को त्याग दिया गया था, प्राचीन नगर भी आंशिक रूप से त्याग दिया गया होगा और वराहमूल द्वारा इस नगर का स्थान लिये जाने के समय प्राचीन नगर को पूर्णतया त्याग दिया गया होगा।

जुष्कपुर का निर्माण कनिष्क तथा हुष्क के भ्राता इण्डो सीथियन राजकुमार जुष्क ने करवाया था। काश्मीरी ब्राह्मण इस स्थान को जुकू अथवा जुकुर के अनुरूप स्वीकार करते हैं जो राजधानी के उत्तर में ४ मील की दूरी पर एक बड़ा गाँव है। मैं नवम्बर १८४७ में इस स्थान पर गया था परन्तु नगर की प्राचीनता के जो चिह्न मैं देख सका थे उन चिह्नों में पत्थर के अनेक स्तम्भ तथा काश्मीर की वास्तुकला के विशेष ढङ्ग से बनाये गये नमूने थे और इन सभी को काट काट कर मुस्लिम मकबरा एवं मस्जिदों में आग लगा दिया गया था। परिहासपुर का निर्माण राजा ललितादित्य

भीतर दिखाया जा सकता है। जनश्रुतियो के अनुसार मांगल प्राचीन राजधानी थी।

तक्षिला अथवा तक्षशिला

तक्षशिला के प्रसिद्ध नगर की स्थिति आंशिक रूप से प्लिनी द्वारा दी गई त्रुटि पूर्ण दूरी के कारण तथा कुछ सीमा तक शाह ढेरी के आस पास प्राप्त अवशेषो के सम्बन्ध मे समुचित सूचना के अभाव के कारण अभी तक अज्ञात रही है। प्लिनी की सभी प्रतिलिपियो मे एक ही बात लिखी है कि तक्षशिला प्यूकोलेटिस अथवा हस्तनगर से केवल ५५ मील दूर था। इससे तक्षशिला का स्थान हसन अब्दाल के पश्चिम अथवा सिंधु नदी से दो दिन की यात्रा की दूरी पर हारो नदी पर किसी स्थान पर निश्चित होगा। परन्तु चीनी तीर्थ यात्रियो की मार्ग सूचक पुस्तकें इसे सिंधु नदी के पूर्व में तीन दिन की यात्रा पर (१) अथवा काल का सराय के समीपस्त पडोस मे दिखाने मे सहमत है। काल का सराय मुगल सम्राटो का तीसरा विश्राम स्थान था और आज भी यह स्थान सैनिको एवं सामान के लिए सिंधु नदी से तीसरा पडाव है। चूंकि चीन वापिस जाते समय ह्वेनसांग के साथ भार युक्त हाथी थे अत तक्षशिला से सिंधु की ओर उत्तखण्ड अथवा ओहिन्द तक उसको तीन दिन की यात्रा उतनी ही दूर की रही होगी जितनी कि आधुनिक समय की तीन दिन की यात्रा की दूरी हो सकती है और परिणाम स्वरूप तक्षशिला नगर के स्थान को काल का सराय के पडोस मे किसी स्थान पर देखना चाहिए। यह स्थान शाहढेरी के समीप पाया गया है जो काल का सराय के उत्तर पूर्व मे एक मील की दूरी पर एक सुदृढ़ नगर के विस्तृत अवशेषो में मिलता है। इसके आस पास मुझे कम से कम ५५ स्तूप २८ मठ तथा ९ मंदिर ढूंढने मे सफलता मिली थी जिनमे दो स्तूप विशाल माणिकयाल स्तूप के समान बडे थे। इस समय शाहढेरा से ओहिन्द की दूरी ३६ मील तथा ओहिन्द से हस्तनगर ३८ मील अधिक अथवा कुल मिलाकर ७४ मील है जो प्लिनी द्वारा दी गई तक्षशिला तथा प्यूकोलेटिस के बीच की दूरी से १९ मील अधिक है। इन त्रुटि पूर्ण संख्याओ मे समानता लाने के लिये मैं यह प्रस्ताव करूंगा कि प्लिनी के ६० मील को ८० मील पढ़ा जाना चाहिए जो ७३$\frac{1}{2}$ मील के बराबर है अथवा दोनो स्थानों के बीच की वास्तविक दूरी से केवल आधे मील के अंतर पर है।

अभिजात लेखक तक्षशिला के विस्तार एवम् समृद्धि के सम्बन्ध में एकमत हैं। एरियन ने इसे "एक विशाल एवम् समृद्ध नगर तथा सिंधु नदी एवम् झेलम के

(१) फाह्यान इसे पेशावर से सात दिन की यात्रा पर स्थित सिंधु नदी तक चार दिन तथा वहां से तक्षशिला तक तीन दिन की यात्रा पर बताता है। सुङ्-युन ने इसे सिंधु नदी से पूर्व तीन दिन की यात्रा की दूरी पर बताया है। ह्वेनसांग ने इसे सिंधु नदी के दक्षिण पूर्व तीन दिन की यात्रा पर कहा है।

(झेलम) के बीच सर्वाधिक जनपूर्ण नगर' कहा है। स्ट्रैबो ने भी इसके एक विशाल नगर होने की घोषणा की है तथा उसने यह भी कहा है कि आस-पास का प्रदेश "जनपूर्ण तथा अत्यधिक उपजाऊ" था। प्लिनी ने इसे "अमन्द नामक एक जिले में निचली परन्तु समतल भूमि पर अवस्थित एक प्रसिद्ध नगर" कहा है। यह विवरण शाहढेरी के समीप प्राचीन नगर की स्थिति एवम् उसके विस्तार के विवरण से ठीक ठीक मिलते हैं जिसके अवशेष अनेक वर्ग मीलों तक फैले हुए हैं।

सिकन्दर महान् के आगमन के लगभग ५० वर्ष बाद तक्षशिला के निवासियों ने मगध के सम्राट बिन्दुसार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था जिसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुसिमा को इस नगर का घेरा डालने के लिए भेजा था। उसकी असफलता पर घेरे का कार्य उसके छोटे पुत्र प्रसिद्ध अशोक को सौंपा गया था परन्तु जन साधारण २½ योजन अर्थात् १७½ मील चलकर युवक राजकुमार से भेंट करने एवम् उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए उपस्थित हुए। अशोक के सिंहासनारोहण के समय कहा जाता है कि तक्षशिला के कोष में कुछ अनाम मुद्राओं के रूप में ३६ कोटी अथवा ३६०० लाख रुपया था जो चाहे चाँदी के टङ्कों के रूप में रहा हो अथवा ६ पेन्स की मुद्रा के रूप में ९ करोड़ अथवा ९,०००,००० ब्रिटिश पौण्ड के बराबर रहा होगा। यह सम्भव है कि भारतीय लेखकों ने जिस मुद्रा का उल्लेख किया है वह स्वर्ण मुद्रा था। अतः इस स्थिति में नगर का धन ९०० लाख अथवा एक करोड़ पौण्ड रहा होगा। मैं सिकन्दर के अभियान के पचास वर्षों के भीतर तक्षशिला की प्रसिद्ध समृद्धि के प्रमाण स्वरूप उपरोक्त कथन को उद्धृत किया है। स्वयं अशोक अपने पिता के शासनकाल में पञ्जाब के राज्यपाल के रूप में इसी स्थान पर रहा था और इसी स्थान पर ही उसका पुत्र कुनाल रहा था जो एक विचित्र बौद्ध कथा का मुख्य पात्र है। इस कथा का उल्लेख आगे चल कर किया जाएगा।

तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व के अन्त से थोड़ा पूर्व मौर्य राजाओं के उत्तराधिकारी डेमिट्रियस तथा उसके पुत्र यूथीडेमस के अधीन बैक्ट्रिया के यूनानियों के सम्पर्क में आये होंगे तथा सम्भवतः वे प्रारम्भ में तक्षशिला यूक्रेटाइडीज के भारतीय स्वतन्त्र अधिराज्य का भाग रहा होगा। १२६ ई० पू० में सुस अथवा सकर नाम की इण्डो सीथियन जाति ने इसे यूनानियों से छीन लिया। तक्षशिला तब चौथाई शताब्दी तक इस जाति के पास रहा। तत्पश्चात् कनिष्क महान् के नेतृत्व में इण्डोसीथियन की एक अन्य कुशान नामक जाति ने अधिकार कर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुशान जाति के शासन काल में पेशावर इण्डोसीथियन साम्राज्य की राजधानी थी जबकि तक्षशिला का शासन क्षत्रपों के अन्तर्गत था। स्थानीय राज्यपालों की अनेक मुद्रायें तथा उनके शिलालेख शाहढेरी एवम् माणिक्याल के स्थान पर प्राप्त हुए हैं इनमें सबसे महत्वपूर्ण एक ताँबे का तख्ती है जिसे मिस्टर राबर्ट ने प्राप्त किया था तथा जिस पर

ने करवाया था जिसने ७२३ से ७६० ई० तक शासन किया था। यह नगर आधुनिक सुम्बल गाँव के समीप वेहात नदी के दाहिने अथवा पूर्वी तट पर अवस्थित था। आस-पास के टीलो पर आज भी दीवारो के चिह्न एव टूट हुए पत्थर मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि यह नगर इसी स्थान पर रहा होगा परन्तु महत्वपूर्ण अवशेषो म केवल वेहात नदी पर एक पुल तथा एक नहर है जो वूलर झील से होकर नदी के माग के कठिन माग को छोडकर सीधे सूपुर की ओर चली जाती है। चूकि स्थानीय इतिहास में परिहासपुर का पुन उल्लेख नही मिलता है अत अवश्य ही इसके सस्थापक की मृत्यु के पश्चात इस नगर को अति शीघ्र त्याग दिया गया होगा। स्वय उसके पौत्र जयपीड ने एक झील के मध्य जयपुर नामक नवीन राजधानी का निर्माण करवाया था। जहाँ श्री द्वारवती नामक एक दुग का निर्माण भी करवाया गया था परन्तु जन साधारण मे यह दुग सदा "भीनरी दुग" के नाम स पुकारा जाता रहा है। इस स्थान की स्थिति ज्ञात नहीं है परन्तु मरा विश्वास है कि यह नगर परिहासपुर के ठीक सामने विहात नदी के ओर तट पर था जहाँ अभी भी अन्तर कोट अथवा "भीतरी दुग" नाम का एक गाँव है। जन साधारण के अनुसार शकर वर्मा ने इस नगर का पूण विनाश करवाया था जिसने ८८३ से ९०१ ई० तक राज्य किया था। कहा जाता है कि वह इस नगर के पत्थरो को नवीन नगर शङ्करपुर में ले गया था जो सुम्बलपुल के दक्षिण पश्चिम म ७ मील की दूरी पर पत्तन नगर के रूप मे आज भी अवस्थित है। हठधर्मी सिकन्दर बादशाह ने जिसने १३८९ से १४१३ ई० तक राज्य किया था। परिहास के विशाल मन्दिर को तुडवा दिया था। मुस्लिम इतिहासकारो ने इस मन्दिर के सम्बन्ध मे एक विचित्र कथा का उल्लेख किया है। परिहासपुर का उल्लेख करते समय अबुलफजल का कथन है कि "यहाँ एक विशाल मन्दिर था जिसे सिकन्दर ने नष्ट करवा दिया था। अवशेषो में एक ताँबे की एक तख्ती पाई गई है जिस पर भारतीय भाषा मे इस आशय का एक लेख लिखा हुआ है कि ११०० वर्ष की अवधि समाप्त होने पर 'सिकन्दर नाम के एक व्यक्ति द्वारा इस मन्दिर का विनाश होगा।' फरिश्ता ने इसी कथा का उल्लेख किया है और उसने राजा का नाम भी लिखा है जिसे उसने बलनत कहा है। सम्भवत यह ललदित्त के स्थान पर गलती से लिखा गया है। काश्मीरियों म ललितादित्य के नाम को छोटा कर प्राय ललदित्त कहा जाता था। इस राजकुमार तथा सिकन्दर के बीच केवल ७०० वर्षों का अतर है। आश्चय है कि स्थानीय गाथाओ म एक ऐसी तिथि को जीवित रखा गया है जो उनके स्थानीय इतिहास म दी गई तिथि से इतनी भिन्न है।

राजा वृहस्पति जिसने ८३२ से ८४४ तक राज्य किया था, के मन्त्री पद्म ने पदमपुर का निर्माण करवाया था जिसे आजकल पामपुर कहा जाता है। यह राजधानी

के दक्षिण पूर्व मे ८ मील की दूरी पर तथा अवन्तिपुर के आधे भाग पर बेहात नदी के दाहिने तट पर अवस्थित है। यह स्थान अभी भी जनपूर्ण है तथा यहाँ के केसर के खेत सम्पूर्ण घाटी मे सर्वाधिक उपजाऊ है।

अवन्तिपुर का निर्माण राजा अवन्ति वर्मा ने करवाया था जिसने ८५४ से ८८३ ई० तक शासन किया था। यह नगर वतमान राजधानी के दक्षिण पूर्व म १७ मील की दूरी पर बेहात नदी के दाहिने तट पर अवस्थित है। अब वहाँ वन्तिपुर नाम का एक छोटा गाँव है परन्तु दो देदीप्यमान मन्दिरो क अवशेष तथा चारो ओर दीवारा स ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी समय एक विशाल नगर रहा होगा। नो नगर अथवा "नवीन नगर" जो नदी की दूसरी ओर बाढ़ से बनाई हुई ऊँची भूमि से सब धित बतलाया जाता है। कहा जाता है कि अवन्तिपुर मूल रूप स नदी के दोनो तटो पर बसा हुआ था।

उरश

ह्वेनसांग ने तक्षशिला तथा काश्मीर के बीच म ला शा अथवा उरश जिले का उल्लेख किया है जिसे उसकी स्थिति के कारण तुरन्त ही टालमी क वरसा रीगा तथा मुजफ्फराबाद के पश्चिम मे पल्लावर म आधुनिक रश जिले के अनुरूप समझा जा सकता है। काश्मीर की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तको मे इसका उल्लेख घाटी के समीप ही एक पर्वतीय जिले के रूप मे किया गया है। जहाँ ६०१ ई० में राजा सम्कर वर्मा को घातक चोट लगी थी। यह अबुल फजल के परवली से ठीक ठीक मिलता है जिसमे सिन्धु तथा काश्मीर के बीच दक्षिण मे अटक की सीमा तक का सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश सम्मिलित था। वतमान समय मे इस जिले के मुख्य नगर इस प्रकार है। उत्तर पूर्व मे मानसेर, मध्य मे नौशे, तथा दक्षिण पश्चिम म किशन गढ़, अथवा हरिपुर। ह्वेनसांग के समय मे राजधानी को तक्षशिला से ३०० अथवा ५०० ली, ५० अथवा ८३ मील दूर बताया जाता था। दूरी में इस विभिन्नता के कारण सातवीं शताब्दी में राजधानी के वास्तविक स्थान को ढूँढना कठिन हो जाता है परन्तु यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह (राजधानी) मागली म थी जो जन-साधारण क अनुसार जिले की प्राचीन राजधानी बताई जाती है। यह स्थान तक्षशिला के उत्तर-पश्चिम लगभग ५० मील की दूरी पर नौशेरा तथा मानसेर के मध्य में है।

ह्वेनसांग के अनुसार उरश का व्यास ३३३ मील था जो सम्भवतः सही है क्योंकि इसकी लम्बाई कुनिहार नदी क उद्गम स्थान से गण्डगढ़ पवत तक १०० मील से कम नहीं है और इसकी चौड़ाई सिन्धु स बेहात अथवा झेलम नदी तक इसके सकुचित भाग में ५५ मील है। काश्मीर स इसकी दूरी १६७ मील बताई गई है जिसस राजधानी की नौशेरा के आस-पास किसी स्थान पर तथा मांगल म कुछ ही मील के

आविष्कार किया गया है। (१) इस सम्बन्ध में हमें यह निश्चित मान लेना चाहिये कि दूसरी बात ही सही है क्योंकि यूनानियों ने बौद्ध धर्म द्वारा समस्त प्रदेश में शाक्य बुद्ध के प्रशंसनीय कार्यों की असीमित कथाओं से फैलाये जाने से पूर्व मूल नाम के उच्चारण को सुरक्षित रखा था। कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि बुद्ध ने किसे सिर दान दिया था परन्तु मेरा विश्वास है कि यह दान एक भूखे शेर को दिया गया था जिसके सात बच्चों का अपना रक्त देकर बुद्ध ने पहले ही बचाया था। मेरा यह विश्वास इस तथ्य के कारण है कि ध्वस्त नगर के ठीक उत्तर के प्रदेश को बबर खाना कहा जाता है। यह नाम महमूद के समय पुराना है क्योंकि अबू रिहान ने 'बबरखान' को सिंधु तथा झेलम के बीच आधे भाग पर बताया है। यह वर्णन प्राचीन तक्षशिला के बबरखाना के लिये भी समान रूप से लागू होता है। यह तुर्की नाम है अतः इतना प्राचीन है जितना कनिष्क का शासन काल। इस नाम के निरन्तर सत्ता से मेरा अनुमान है कि विशाल स्तूप समीपस्थ ही एक मन्दिर था जिसमें बुद्ध का शेर को अपना सिर दान करना दिखाया था। इस मन्दिर का तुर्कों ने स्वभावतः बबरखाना 'शेर का घर' कहा होगा और चूँकि तक्षशिला का ह्रास हो गया इस मन्दिर का नाम उस नगर के नाम से पूर्व ही धीरे-धीरे लुप्त हो गया होगा। मेरा विश्वास है कि बुद्ध के अत्यधिक उदारतापूर्वक कार्य को मारगल अथवा "कटा सिर" के नाम में सुरक्षित रखा गया है जो शाहढेरी के दक्षिण में २ मील दूर एक पहाड़ी को दिया गया है। मारगल का अक्षरशः अर्थ है गला काटना जिसे गल मारन से लिया गया है जो "गला काटने" का मुहावरेदार वर्णन है।

शाहढेरी के समीप प्राचीन नगर के अवशेष जिन्हें मैं तक्षशिला के अनुरूप समझने का प्रस्ताव करता हूँ—उत्तर से दक्षिण ३ मील तथा पूर्व से पश्चिम २ मील के विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं। अनेक स्तूपों एवम् मठों के अवशेष चारों ओर अनेक मीलों तक फैले हुए हैं परन्तु नगर के वास्तविक अवशेष उपरोक्त लिखित सीमाओं में ही सीमित हैं। इन अवशेषों में अनेक पृथक भाग हैं जिन्हें आज भी भिन्न-भिन्न नामों से

---

(१) तक्षशिला का नाम प्रायः नागराज तक्षक से सम्बन्धित किया जाता है। तक्षक के वंशज टक्क हैं जो उस समय देश पर राज्य करते थे। इस नाम का अर्थ गुल्थी चट्टान भी हो सकता है क्योंकि यह नगर मिट्टी अथवा ईंटों के स्थान पर पत्थर से बना हुआ था। संस्कृत शिरस प्राकृत से सिर्फ़ (सिर) के समान है अतः इसका अर्थ कटा हुआ सिर भी हो सकता है। इसी स्थान पर बुद्ध ने अपने सिर की बलि दी था। यह एक बहुत बड़ा बौद्ध तीर्थ था तथा यहाँ एक विश्वविद्यालय भी था।

सुङ्ग युन ने लिखा है कि बुद्ध ने एक व्यक्ति को बचाने हेतु अपना सिर अर्पित कर दिया था।

पुकारा जाता है। इन निर्माण कार्यों की सामान्य दिशा दक्षिण, दक्षिण पश्चिम से उत्तर उत्तर पूर्व की ओर है और मैं इसी क्रम से इनका उल्लेख करूंगा। दक्षिण से शुरू करने पर उनके नाम इस प्रकार हैं —

(१) बीर अथवा फेर

(२) हतियाल

(३) मिर ज़ाक-का-कोट

(४) कच्चा कोट

(५) बबरखाना

(६) सिर सुख का कोट

जन साधारण के विश्वासानुसार इन अवशेषों का प्राचीनतम भाग एक विशाल टीला है जिस पर बीर अथवा फेर नाम का एक छोटा गांव बसा हुआ है। यह टीला उत्तर से दक्षिण ४००० फुट लम्बा तथा २६०० फुट चौड़ा है जिसका व्यास १०,८०० फुट अथवा २ मील से भी अधिक है। शाहढेरी के पथरोल गांव की ओर पश्चिम दिशा में बीर टीले की ऊंचाई अपने समीपस्थ खेतों से १५ से २५ फुट है परन्तु जैसे-जैसे यह टीला शाहढेरी की ओर ढलवां होता जाता है इसकी सामान्य ऊंचाई २५ से ३५ फुट से कम नहीं है। पूर्व की ओर तबरा अथवा तमरा नाले के ठीक ऊपर यह टीला खेतों से ४० फुट तथा नाले के स्तर से ६८ फुट ऊपर उठ जाता है। दीवारों के अवशेष पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर केवल कुछ स्थानों पर देखे जा सकते हैं परन्तु सम्पूर्ण पृष्ठ भाग टूटे हुए पत्थरों तथा ईंटों एवम् खाना के बर्तनों के टुकड़ों से ढका हुआ है। इस स्थान पर पुरानी मुद्रायें अवशेषों के अन्य किसी भी स्थान की अपेक्षा अधिक संख्या में प्राप्त हैं और इसी स्थान पर ही एक मात्र व्यक्ति ने केवल दो घण्टे ही में मेरे लिए वैडूर्य (एक नीला बहुमूल्य रत्न) के दो मुट्ठी भर छोटे छोटे टुकड़े एकत्रित कर लिये थे जो अन्य किसी स्थान पर दिखाई नहीं देते। स्थान के विस्तार से मेरा अनुमान है कि यह ह्वेनसांग के समय नगर के बसे हुए भाग का मुख्य स्थान रहा होगा। जिसने इसे ग्राम में १३ मील बताया है। बबरखाना की भूमि के मध्य में विशाल ध्वस्त दुर्ग की स्थिति से उपरोक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है। यह भूमि बीर के टीले के समीपस्थ द्वार से ८००० फुट उत्तर उत्तर पूर्व में तथा मुख्य प्रवेश द्वार से प्राचीन नगर के मध्य तक १००० फुट अथवा प्राय २ मील की दूरी पर है। चूंकि ह्वेनसांग ने "सिर भिक्षा" के स्तूप को नगर से उत्तर की ओर २ मील से कुछ अधिक बताया है अतः मेरा अनुमान है कि इस बात में लेशमात्र सन्देह नहीं हो सकता कि उसके समय का नगर बीर के टीले पर बसा हुआ था। मैंने टीले के उत्तर तथा पूर्वी किनारे पर तीन छोटे बौद्ध स्तूपों के अवशेषों की खोज को थी किन्तु पहले ही ग्रामवासियों ने खोद

तक्षशिला के पाली स्वरूप तक्षशिला लिखा हुआ था इसी शब्द से यूनानियों को उनका तक्षशिला शब्द प्राप्त हुआ था।

४२ से ४५ ई० तक पार्थिया के बरडनीव के शासन काल मे टयाना के आपोलो नीयस तथा उसके साथी असीरिया डमिस ने तक्षशिला की यात्रा की थी। फिलोस्ट्राटस का कथन है कि अपोलोनीयस की जीवनी मे डमिस के यात्रा के विवरण का अनुसरण किया गया है। दार्शनिक के वाद एव कथनों के सम्बन्ध मे दिया उसका विवरण अनेक स्थानो म स्पष्ट रूप से अतिशयोक्ति पूर्ण है परन्तु स्थानो का उल्लेख प्रायः परिमित एव सत्य प्रतीत होता है। यदि उनका उल्लेख डमिस के विवरण मे नहीं मिलता तो सिकन्दर के किन्ही अनुयायियो के विवरण स इसे प्राप्त किया गया होगा और दोनो मे किसी भी दिशा म यह विवरण महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमे अनेक ऐसी छोटी सूचनायें प्राप्त होती हैं जिनका अनियमित इतिहास मे अभाव है। फिलोस्ट्राटस के अनुसार तक्षशिला "प्राचीन नीनस के असमान नही था तथा अन्य यूनानी नगरो के ढग पर ही इस नगर के चारो ओर दीवारे बनाई गई थी।" नीनस अथवा नीनवे को हम बैबलोन पढना चाहिए क्योंकि इस विशाल असीरियाई नगर के सम्बन्ध म हम कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है। हीराडोटस के समय स लगभग दो शताब्दी पूर्व यह नगर नष्ट हो गया था। अब हमे कर्टियस स यह सूचना मिलती है कि बैबिलान की "यथा प्रमाणता एव प्राचीनता" के कारण ही सिकन्दर एव अन्य उन सभी आक्रमण कारियो को आकर्षित किया था जिन्होने इसे सर्व प्रथम देखा था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि अपनी समानता क कारण तक्षशिला से यूनानियो को बैबिलोन का स्मरण हुआ होगा जैसा कि फिलोस्ट्राटस का कथन है कि यह नगर "बड़ी नियमितता से सकीर्ण गलियों मे विभाजित था।" उसने एक सूर्य मन्दिर जो नगर की दीवारों से बाहर था तथा एक राज भवन का भी उल्लेख किया है जिसमे बलपूर्वक अधिकार करने वाले को बन्द रखा गया था। उसने एक स्टेडियम के समान लम्बे उद्यान का भी उल्लेख किया है जिसके मध्य म एक तालाब था जिसे "शीतल एव विश्रान्त जल से" भरा गया था। इन सभी बातो पर एक भिन्न लेख मे उस समय विचार किया जाएगा जब मैं इन प्राचीन नगर के वतमान अवशेषो का उल्लेख करूगा।

तत्पश्चात् ४०० ई० तक हमे तक्षशिला (१) का उल्लेख नही मिलता। (२)

(१) तक्षशिला का उल्लेख २४० ई० तक मिलता है। तत्पश्चात् इसका विस्तृत विवरण कम नही है कि इस नगर का विनाश कब और किस प्रकार हुआ। मुसलमान लेखकों ने इसका उल्लेख नही किया है। अलबेरुनी ने कुमार विभाग पर टिप्पणी करते हुए इसे तक्षशिला अथात् मारीकल्ल कहा है।

(२) देश की सीमायें उत्तर म उरश पूर्व में झेलम, दक्षिण में सिंहपुर तथा पश्चिम मे सिन्धु नदी थीं।

४०० ई० मे चीनी तीर्थ यात्री फाह्यान ने इस स्थान की यात्रा की थी। उसने इस नगर को चु शा शी लो अथवा 'कटा सिर" कहा है तथा उसने यह भी लिखा है कि "बुद्ध ने इस स्थान पर अपना सिर भिक्षा मे दे दिया था और इसी कारण इस प्रदेश का यह नाम रखा गया था।' अनुवाद से पता चलता है कि संस्कृत का मूल नाम च्युत शिर रहा होगा जो 'कटा हुआ शिर' का पर्यायवाची शब्द है। भारत के बौद्ध धर्मावलम्बियो मे तक्षशिला को इसी सामान्य नाम से जाना जाता था। ५०२ ई० मे सुङ्ग-युन ने 'उस स्थान' की यात्रा की थी "जहाँ बुद्ध ने अपने सिर का भिक्षा दान दिया था' उसने इस स्थान को शिन तु अथवा सिन्धु नदी से पूर्व तीन दिन की यात्रा पर बताया है।

अब हम चीनी तीर्थ यात्रियो के अंतिम तथा श्रेष्ठ ह्वेनसाग का उल्लेख करेंगे जिसने ता चा शी लो अथवा तक्षशिला की प्रथम यात्रा ६३० ई० मे की थी तथा चीन वापसी के समय ६४३ ई० मे पुन इस नगर की यात्रा की थी। उसने नगर को व्यास मे १½ मील कहा है। राजघराना लुप्त हो चुका था तथा यह प्रांत जो इससे पूर्व कपिशा के अधीन था उस समय काश्मीर का आश्रित राज्य था। यहाँ की भूमि अनेक नदियो नालो एवम् तालाबो से सिंचाई की सुविधा से अपने उपजाऊपन के कारण प्रसिद्ध थी। यहाँ पर अनेकानेक मठ थे परन्तु अधिकांश जर्जर अवस्था मे थे तथा बहुत कम ऐसे भिक्षु थे जो महायान अथवा बौद्धधर्म के गोपनीय सिद्धांतो का अध्ययन करते थे। नगर से २ मील उत्तर मे सम्राट अशोक का स्तूप था। जिसका निर्माण उस स्थान पर कराया गया था जहाँ बुद्ध ने अपने पिछले जीवन मे अपने सिर का भिक्षा-दान दिया था अथवा जहाँ जैसा कि किसी ने लिखा है बुद्ध ने इतने ही जन्मों मे १००० बार अपने सिर की भिक्षा दी थी। यह स्तूप उन चार विशाल स्तूपो मे था जो सम्पूर्ण उत्तर पश्चिमी भारत मे प्रसिद्ध थे तथा तदनुसार अपनी वापसी के समय ह्वेनसाग ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि उसने 'एक सहस्र सिरो के भिक्षा दान वाले स्तूप' पर दूसरी बार पूजा की थी। जिले का आधुनिक नाम चच हजारा है जो मेरे विचार मे शिरस सहस्र का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। तक्षशिला के क्षत्रप (राज्यपाल) लियाको कुजुलक की ताँबे की तख्ती पर इसका नाम छहर चुख लिखा गया है जो उपरोक्त नाम का एक अन्य भ्रष्ट स्वरूप प्रतीत होता है।

चीनी तीर्थ यात्रियो के इन विवरणो से हम देखते हैं कि तक्षशिला बुद्ध के सर्व श्रेष्ठ भिक्षा कार्य जब उसने अपना सिर भिक्षा मे दे दिया था—के रूप मे सभी बौद्ध धर्मावलम्बियो के लिये विशेष महत्व रखता था। मेरा विचार है कि इस कथा की उत्पत्ति को तक्षशिला नाम मे ढूंढा जा सकता है। जिसका अर्थ है। 'कटा हुआ पत्थर और जिसे थोडे परिवर्तन के बाद तक्षशिरा अर्थात् "कटा सिर" बना दिया गया था। या तो कथा से नाम की उत्पत्ति हुई है अथवा नाम से मिलान के लिए कथा का

पूर्णत मिट्टी की बनी हुई है तथा नदी से ३० से लेकर ५० फुट की ऊंचाई तक उठी हुई हैं। पूर्व की ओर किसी रक्षा पंक्ति के चिह्न नहीं है और इसके भीतर किसी भवन का कोई चिह्न नहीं है अतः यह कहना कठिन है कि इसका निर्माण किस उद्देश्य से किया गया था। चूंकि गऊ-नाला इसमें होकर गुजरता है अतः मेरे विचार में यह संभव प्रतीत होता है कि कच्चा कोट घेरे की स्थिति में हाथियों एवम् अन्य पशुओं की सुरक्षा हेतु बनवाया गया हो। व्यास में यह ६७०० फुट अथवा १¼ मील से अधिक है। जन-साधारण इसे प्रायः कोट कहा करते थे। सिरकप को भी इसी नाम से पुकारा जाता था परन्तु जब उन दोनों स्थानों में भेद करना होता तो वह इस कच्चा कोट कहा करते थे। 'बाबरनामा' एवम् 'आईन अकबरी' दोनों में ही इस नाम का उल्लेख मिलता हैं। बाबरनामा में हारो नदी को कच्चा कोट का नदी कहा गया है जो अवश्य ही उस नदी के तट के समान कोई बड़ा स्थान रहा होगा परन्तु मुझे सन्देह है कि इस स्थान को हसन अब्दल के समीप अथवा उससे भी कुछ नीचे देखा जाना चाहिये।

बबरखाना, उत्तर में लुण्डी नाला तथा दक्षिण में तबरा तथा गौ नालों के बीच के भू-भाग का नाम है। इस भू-भाग में कच्चा कोट सम्मिलित है तथा इसका विस्तार कच्चा कोट के पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर लगभग एक मील तक है जिसमें उत्तर पश्चिम की ओर सरी की-पिण्ड का विशाल टीला तथा पूर्व में गगू समूह के स्तूप एवम् अन्य अवशेष सम्मिलित हैं। इस भू भाग के ठीक मध्य में जहाँ लुण्डी तथा तबरा नाले एक दूसरे से १००० फुट की दूरी पर रह जाते हैं ४५ फुट ऊंचा एक टीला है जिसे समीप के एक छोटे गाँव के नाम पर मणिक्याल पिण्ड कहा जाता है। पिण्ड अथवा टीले के पश्चिम की ओर खण्डहरों का एक अन्य टीला है जो इससे अधिक चौड़ा है परन्तु केवल २६ फुट ऊंचा है। प्रत्यक्ष रूप से यह एक विशाल मठ के खण्डहर है। यह उल्लेखनीय है कि हिसार के दोनों द्वारा से तथा सिरकप के उत्तरी द्वार से होकर जाने वाली सड़क इन दोनों टीलों के मध्य में जाती है और मणिक्याल पिण्ड से १२०० फुट दूर लुण्डिनाला के तट पर विशाल स्तूप के खण्डहरों से मिल जाती है। मेरा विश्वास है कि यह अंतिम स्तूप प्रसिद्ध 'सिर की भिक्षा का स्तूप' हैं जिसे ईसवी पूर्व की तृतीय शताब्दी में सम्राट अशोक द्वारा निर्मित बताया जाता है। मैं ह्वेनसांग द्वारा दिये गये उल्लेख का ठीक ठीक उत्तर देने वाली इसकी स्थिति का संकेत दे चुका हूँ और अब मैं इस विचार की पुष्टि के रूप में इतना और जोड़ देना चाहूँगा कि तक्षशिला नगर की ओर जाने वाली मुख्य सड़क मणिक्याल स्तूप के उत्तर सीधी रेखा में बनाई गई थी। यह तथ्य निर्विवाद रूप से उस सम्मान को सिद्ध करता है जो इस विशेष स्मारक को उस समय प्राप्त रहा होगा। उत्तर पश्चिम में ३६०० फुट दूर एक अन्य टीले की समीपता से इसकी पुष्टि होती है जिसे सेरी की पिण्ड अथवा सिरी की पिण्ड कहा जाता था जो बुद्ध के सिरयादानम अथवा सिरदान की ओर संकेत करता प्रतीत

होना है। इस सभी बातों पर विचार करने से मेरा विचार है कि बबरखाना के विशाल ध्वस्त स्तूप को बुद्ध के 'सिरदान' के स्तूप के अनुरूप स्वीकार कर लेने के अधिक ठोस प्रमाण प्राप्त हैं।

सिरमुक नाम का विशाल सुरक्षित गढ़ लुण्डी नाला से आगे बबरखाना के उत्तर पूर्वी छोर पर अवस्थित है। आकृति में यह चतुर्भुज के अति समीप है जिसके उत्तरी तथा दक्षिणी किनारे ४ लम्बाई में ४८०० फुट, पश्चिमी किनारा ३३०० फुट तथा पूर्वी किनारा ३००० फुट हैं। इस प्रकार कुल व्यास १५,३०० फुट अथवा लग-भग तीन मील है। दक्षिणी भाग जो लुण्डी नाला से द्वारा सुरक्षित है बनावट में सिर कप की रक्षा पंक्ति के समान है। इसकी दीवारें पत्थरों की बनी हुई हैं जिनका केवल बाह्य भाग चकोर बनाया गया है। यह दीवारें १८ फुट मोटी हैं तथा १२० फुट के अंतर पर चतुर्भुजाकार बुर्ज हैं। इस भाग के बुर्ज एक ओर की अपेक्षा दूसरी ओर सकरी नींव सहित बड़ी सावधानी से बनाये गये हैं जिनमें सभी पत्थरों को अच्छी तरह तिरछा रख कर एक ढलवान बनाई गई है। दक्षिण पूर्वी छोर का बुर्ज जो वर्त-मान बड़े खण्डहरों में सबसे ऊंचा भाग है—भीतरी भाग से १० फुट ऊपर तथा नदी के तट की निचली भूमि से ९८ फुट ऊपर उठा हुआ है। पश्चिम की ओर जहाँ पत्थर हटा दिये गये हैं—दक्षिणी दीवार भीतरी समतल से २ अथवा ३ फुट से अधिक ऊंची नहीं है। पूर्वी तथा पश्चिमी दिशा में लगभग आधी दीवारें आज भी देखी जा सकती हैं परन्तु उत्तर की ओर की दीवार का कोई चिह्न नहीं रहा। केवल दो किनारों पर कुछ टील देखे जा सकते हैं। इन दीवारों के भीतर एक विशाल ध्वस्त टीले सहित मीरपुर, तुपकिया तथा पिंडोरा नामक तीन गाँव हैं। इस टीले को पिंडोरा कहा जाता है और अधोभाग में ६०० वर्गफुट है। पिंडोरा के दक्षिण में तथा तुपकिया गाँव के समीप एक छोटे टीले पर एक खानगाह अथवा एक मुस्लिम महात्मा की समाधि है। चूंकि इसे चतुर्भुजाकार पत्थरों से बनाया गया है अतः मेरा अनुमान है कि खानगाह किसी स्तूप का प्रतिनिधित्व करती है जिसके नाम पर तुपिया गाँव का नाम पड़ा होगा और पिंडोरा का विशाल टीला एक बहुत बड़ा मठ रहा होगा। मैंने पत्थरों की दो विशाल नालियां प्राप्त की थी जिनके आकार से यह प्रतीत होता है कि उनका प्रयोग आंगन से दीवार के बाहर वर्षा का पानी निकालने के लिए ही किया गया होगा पश्चिम की ओर लगभग आधे मील की दूरी पर ऊंचे मिट्टी के टीलों की एक बाह्य दीवार है जो उत्तर तथा दक्षिण में २००० फुट से अधिक दूरी तक चली गई है जहाँ यह पूर्व उत्तर पूर्व की ओर मुड़ जाती है। तत्पश्चात् यह बाह्य रेखा ३५०० फुट तक केवल एक चौड़े क्षेत्र में फैले हुए टूटे हुए पत्थरों से पहचानी जा सकती है। यहाँ यह दीवार १२०० फुट तक दक्षिण पूर्व की ओर मुड़ जाती है तथा सिर कप की उत्तरी दीवार से मिल जाती है। यह बाह्य रेखायें किसी बड़े निर्माण कार्य की अवशेष प्रतीत

दिया था परन्तु उन्होंने इस तथ्य का जोरदार मण्डन किया। उनका कथन था कि जनरल एबाट तथा मेजर पीयर्स ने इन स्तूपों की छान बीन की थी।

हतियाल, मागल पर्वत माला के उभडे भाग के पश्चिमी छोर पर एक सुरक्षित स्थान है तथा बीर टीले के ठीक उत्तर पूर्व में है। तवरा नाला हतियाल को बीर टीले से अलग करता है। बीर से प्राय आधे मील की दूरी पर यह उभड़ा भाग प्राय दो समानान्तर पर्वत पृष्ठों में विभाजित हो जाता है जो एक दूसरे से १५०० फुट दूर है तथा पश्चिम में तवरा के किनारे तक फैले हुए हैं जहाँ एक ऊँचे प्राचीर से दोनों मिल जाते हैं। इस प्रकार दोनों पर्वत पृष्ठों से घिरा हुआ स्थान २००० फुट × १००० फुट से अधिक नहीं है परन्तु पर्वत पृष्ठ तथा कृत्रिम प्राचीर के साथ साथ रक्षा पंक्ति का पूर्ण व्यास लगभग ८४०० फुट अथवा १$\frac{1}{2}$ मील में कुछ अधिक है। पूर्वी छोर पर दोनों पर्वत पृष्ठों को १५ फुट चार इन्च चौड़ी पत्थर की दीवार से मिला दिया गया है। इस दीवाल के स्थान स्थान पर चतुर्भुजाकार बुर्ज है जो इस समय भी अत्यधिक अच्छी हालत में है। दक्षिणी अथवा मुख्य पर्वत पृष्ठ खेतों के सीमान्त स्तर से २६१ फुट ऊँचा है जबकि उत्तरी पर्वत पृष्ठ केवल १६२ फुट ऊँचा उठा हुआ है। इन दोनों के बीच २०६ फुट ऊँचा एक छोटा पथरीला पर्वत पृष्ठ है जिसके शिखर पर एक विशाल बुर्ज अथवा अटारी है। जिसे जन साधारण में स्तूप समझा जाता है। उत्तरी पर्वत पृष्ठ पर इसी प्रकार का बुर्ज है। इसकी खोज की प्रेरणा मुझे टूर नामक एक ब्राह्मण से मिली था जिसने मुझे सूचित किया था कि उस इस बुर्ज के चारों कोणों से एक ताँबे की मुद्रा प्राप्त हुई थी जिसे वह इस विश्वास का निश्चित प्रमाण समझता था कि यह भवन एक बौद्ध स्तूप था। मुझे ज्ञात था कि बर्मा में चतुर्भुजाकार सुदृढ़ बनाये गये नगरों में किनारे के चारों उभडे भागों पर स्तूप बनाये जाने की प्रथा थी परन्तु मेरी खुदाई में जिसे २६ फुट की गहराई तक निचली चट्टान तक ले जाया गया था। वहाँ विशाल ऊँचे-नीचे पत्थरों की सीढ़ियाँ प्राप्त हुई थी जिन्हें बड़ी कठिनाई से निकाला गया था। इस अटारी के पश्चिम की ओर समीप ही मैंने १६३ फुट लम्बे एवम् ११५$\frac{1}{2}$ फुट चौड़े आँगन की खोज की थी। यह आँगन चारों ओर दो-दो कमरों में विभाजित था अतः मैंने सर्व प्रथम यह अनुमान लगाया कि यह भवन एक मठ रहा होगा परन्तु गुलेलबाजों द्वारा अपनाई जाने वाली गोलियों के आकार की जली हुई मिट्टी की गोलियों की प्रचुर मात्रा में पश्चात्वर्ती प्राप्ति से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह स्थान सम्भवतः केवल सैनिकों का रक्षक गृह रहा होगा। दोनों पर्वत पृष्ठ पश्चिम की ओर १२०० फुट तक बहुत ढलवाँ हो जाते हैं यहाँ तक कि यह दोनों मध्यवर्ती भूमि के सामान्य स्तर से मिल जाते हैं। यह स्थान दुर्ग के दो प्रवेश द्वार हैं जिनमें एक दूसरे के ठीक उत्तर में है। उत्तरी पर्वत पृष्ठ पुनः ऊपर उठता है तथा पश्चिम, दक्षिण पश्चिम की ओर २००० फुट तक जाने के बाद १३० फुट ऊँचे चतुर्भुजाकार शिखर-

वाले टीले से मिल जाता है। पर्वत पृष्ठ का यह भाग जर्जर भवनों के अवशेषों से पूर्णतया भरा हुआ है और इसके पूर्वी छोर के समीप ही ग्रामीण नूर ने एक जर्जर स्तूप से तांबे की कुछ मुद्रायें प्राप्त की थी। हतियाल के नाम के सम्बन्ध में मैं किसी प्रकार की कोई सूचना एकत्रित नहीं कर सका परन्तु सम्भवतः यह पुराना नाम है क्योंकि मेरे विचार में इसे हट्टियार लङ्क के अनुसार समझा जा सकता है जिसे अबुल फजल ने सिंध सागर दोआब में बताया है। नाम के उच्चारण के हट्ट अर्थात् दुकान का संकेत मिलता है तथा हट्टियाल बाजार का नाम रहा होगा। परन्तु हतियाल दुर्ग इस प्राचीन स्थान के दुर्ग के रूप में इतना प्रत्यक्ष है कि मैं उपरोक्त व्युत्पत्ति को अत्यधिक सन्देहास्पद समझता हूँ।

सिरकप का सुरक्षित नगर हतियाल के उत्तरी अधोभाग पर एक विशाल समतल टीले पर बसा हुआ है। वस्तुतः यह हतियाल का ही एक भाग है क्योंकि इसकी दीवारें दुर्ग की दीवारों से मिली हुई हैं। यह उत्तर से दक्षिण की ओर लम्बाई में आधा मील है जिसकी चौड़ाई दक्षिणी छोर पर २००० हजार फुट है परन्तु उत्तरी छोर पर यह केवल १४०० फुट चौड़ा है। सिरकप का व्यास ८१०० फुट अथवा १½ मील से कुछ अधिक है। इसकी दीवारें जो पूर्णतः चतुर्भुजाकार पत्थरों से बनाई गई हैं, १४ फुट ६ इञ्च मोटी हैं जिनके ऊपर ३० फुट आधार के चतुर्भुजाकार बुर्ज हैं जिन्हें १४० फुट के फासले से अलग किया गया है। पूर्वी तथा उत्तरी दीवारें सीधी हैं परन्तु पश्चिमी दीवार की रेखा, गहरी गुफा से टूट गई है। इन दीवारों में प्रत्येक में दो विशाल दीवारें हैं। कहा जाता है कि यह सभी प्राचीन द्वारों के स्थान थे। इनमें उत्तरी भाग की दरार द्वार के रूप में निश्चित है। क्योंकि यह हतियाल दुर्ग के दो प्रवेश द्वारों के ठीक उत्तर में तथा तबरा नाला में तीन ध्वस्त टीलों के ठीक दक्षिण में है। इसी प्रकार पूर्व की द्वार अवस्थिति भी निश्चित है क्योंकि द्वार की दीवारों के कुछ अंश इस द्वार तक आने वाली सड़क के मार्गों के अंशों सहित अब भी विद्यमान हैं। पश्चिम की ओर उपयुक्त द्वार के ठीक सामने तीसरा द्वार भी प्रायः निश्चित है क्योंकि नगर के भीतर समस्त प्राचीन आधार जिनमें उत्तर तथा दक्षिणी ढालों पर बड़ी सावधानी से रखी गई है। सिरकप की स्थिति प्राकृतिक रूप से अत्यधिक सुदृढ़ है क्योंकि यह सभी ओर से अच्छी तरह सुरक्षित है। दक्षिण में हतियाल के ऊँचे दुर्ग से, पश्चिम में तबरा नाला से तथा पूर्व तथा उत्तर दिशा में गाउ-नाला से। दोनों स्थानों की दीवारों का सम्पूर्ण व्यास १४३०० फुट अथवा प्रायः २¾ मील है।

कच्चा कोट अथवा मिट्टी का दुर्ग लुण्डि-नाला से गहन स्थान में कुछ नीचे तबरा-नाला के दोहरे चक्कर से बने एक सुदृढ़ एकान्त स्थान में सिरकप के उत्तर में अवस्थित है। तबरा तथा लुण्डि-नाला दोनों मिलकर इस स्थान को पूर्व में छोड़कर अन्य सभी ओर से घेरे हुए हैं। कच्चे कोट की प्राचीरें जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है।

काल के प्रारम्भ स कुछ ही समय पूर्व प्रसिद्ध इण्डो सीथियन सम्राट कनिष्क के शासन काल में बीसवें वर्ष में बनवाया गया था। अत मानिक्याल अनि प्रारम्भिक समय में पजाब के सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थानो मे एक स्थान था परन्तु मेरा विचार है कि किसी विशाल नगर का स्थान होने की अपेक्षा यह विशाल धार्मिक सस्थानो का स्थान था। जब जनरल एबाट ने १८५३ ई० मे मानिक्याल के बौद्ध स्तूप के आसपास के खडहरो का निरीक्षण किया था तो वे "एक नगर का उपस्थिति का कोई प्रमाण नही देख सके थे। जलमग्न खडहरो का विस्तार क्षेत्र गाँव का अधिकाश भाग नही रहा होगा जब कि काट काट कर बनाये गये पत्थरो को तुलनात्मक सख्या किसी मूल्यवान निर्माण का सकेत देती है जो सम्पूर्ण स्थान पर फैला हुआ होगा।" १८३४ म जनरल कोट ने इस स्थान का उल्लेख इस प्रकार किया है "स्वय नगर के खडहर अधिक विस्तृत थे जिसमें कुओं की अधिक सख्या के अतिरिक्त पत्थरों एवम् चूने की विशाल दीवारें प्रत्येक स्थान पर देखी जा सकती थीं।' इस स्थान क सावधानी पूवक निरीक्षण के बाद मैं भी जनरल एबाट क ही निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यहाँ पर एक विशाल नगर क कोई चिह्न नहीं हैं और मैं इस बात से पूर्णतय सन्तुष्ट हूँ कि कटे पत्थरो की विशाल दीवारें जिन्हें जनरल कोट ने उचित रूप स प्रत्येक स्थान पर प्राप्त बताया है अवश्य ही मूल्यवान मठो एव अन्य धार्मिक भवन से सम्बन्धित रही होंगी। निस्सन्देह, किसी गाँव म भी कुछक व्यक्तिगत भवन चतुर्भुजाकार पत्थरा के बने हो सकते हैं, परन्तु मोटी तहों वाली छतो वाले यह विशाल भवन जो खुदाई के परिश्रम का आज भी मूल्य चुका सकते हैं मेरे विचार में अत्यधिक, इतने विशाल तथा इतने फले हुए हैं कि वह एक विशाल नगर के भी व्यक्तिगत भवनो के खडहर नहा हो सकत। जन साधारण प्रसिद्ध स्तूप के ठीक पश्चिम में ऊची भूमि को ओर राजमान क राजभवन के रूप म सकेत करते हैं क्योकि प्लास्टर के टुकडे केवल इसी स्थान पर प्राप्त हैं खण्डहरों के अन्य किसी स्थान पर नही। यहा यह सम्भव है कि तक्षशिला के क्षत्रपो ने अपना निवास स्थान बना लिया हो जब वह बुद्ध के "शरीर दान" के प्रसिद्ध स्मारक पर अपनी श्रद्धा अर्पित करने आया करते थे। हो सकता है कि यहा १५०० अथवा २००० घरा का एक गाँव भी रहा हो जो उत्तर की ओर फैला हुआ था तथा सम्पूर्ण ऊची जमीन पर रहा होगा जहां वर्तमान मानिक्याल गाँव अवस्थित है। मरा अनुमान है कि नगर के सम्पूर्ण क्षेत्र का व्यास डेढ मील रहा होगा जहा प्रति व्यक्ति ५०० वग फुट की दर से १२ ५००० व्यक्तियो की जनसख्या प्राप्त होनी है अथवा प्रत्येक घर के पीछे केवल छ व्यक्ति रहे होंगे।

जनसाधारण अपने इस कथन मे एकमत हैं कि नगर का विनाश अग्नि से हुआ था और यह विश्वास चाहे प्रथा पर आधारित हो अथवा इस विश्वास पर। कोयले एव भस्म की मात्रा से इस विश्वास की पुष्टि होती है जो ध्वस्त सभी भवनों में प्राप्त

है। जनरल कोट के बौद्ध स्तूप के उत्तर की ओर विशाल मठ में मैंने जो खुदाई कराई थी उससे उपरोक्त कथन की पर्याप्त पुष्टि होती है। मैंने दीवारों के प्लास्टर को आग से काला हुआ देखा था तथा चूने व पत्थर व कङ्कड़ से बनाई गई ईंटों को बिन बुझाये हुये चूने में परिवर्तन देखा था। छत की चोब की लकड़ी अपने जले हुए टुकड़ों एवम् भस्म से सरलता पूर्वक पहचानी जा सकती थी। दुर्भाग्यवश मैं अपनी खोज के दौरान ऐसा कुछ भी प्राप्त नहीं कर सका जिससे इन भवनों के विनाश के सम्भावित काल का संकेत मिल सके, परन्तु चूँकि देश के इस भाग पर ह्वेनसांग के समय में पूर्व हो काश्मीरी राजाओं की शक्ति स्थापित हो चुकी थी, मैं मुस्लिम असहिष्णुता की अपेक्षा ब्राह्मणों के ईर्षा द्वेष को ही इनके विनाश का कारण स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

सिंहपुर अथवा केटास

ह्वेनसांग के अनुसार सँग हा पु लो अथवा सिंहपुर के राज्य की राजधानी तक्षशिला से दक्षिण पूर्व में ११७ मील की दूरी पर अवस्थित थी। इसके निर्देश झेलम की ओर संकेत करते हैं जिसके समीप सरोही नगर है जिसे एम विवीन डी सेंट मार्टिन ने सिंहपुर के सम्भव प्रतिनिधि के रूप में उल्लेख किया है। परन्तु तीर्थयात्री द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार कठिन मार्ग के एक ऊँचे पर्वत पर अवस्थित होने के स्थान पर सरोही एक खुले मैदान में अवस्थित है। स्वच्छ जल के इस कुण्ड की समीपता जिसके चारों ओर मन्दिर एवं मूर्तियाँ हैं कटाक्ष अथवा कटास के पवित्र तालाब की ओर संकेत करती है। जहाँ अब भी भारत के सभी भागों से अनेक तीर्थयात्री आते हैं। मेरा यह भी विचार है कि केटास संस्कृत के श्वेतावास का आंशिक परिवर्तित स्वरूप है। ह्वेनसांग ने सिंहपुर के समीप निवास करने वाले एक धार्मिक समुदाय के मुखिया की उपाधि के रूप में इस (श्वेतावास) का उल्लेख किया है। पश्चिमी देशों में जहाँ स्व के मिश्रण को 'ख' में बदल दिया जाता है। इस शब्द को खेटावास अथवा थोड़ा संक्षिप्त करने पर खेटास कहा जाता होगा। (१) यद्यपि ब्राह्मणों ने इसे अपने धर्म से सम्बन्धित बनाया है तथापि उनका कथन है इस स्थान को कटाक्ष अथवा "आश्रुपूर्ण नेत्र" कहा जाता था क्योंकि जब शिव को अपनी पत्नी सती की मृत्यु की सूचना मिली तो उनके नेत्रों से आँसुओं की वर्षा हो रही थी। परन्तु केटास नाम का उच्चारण जो मुझे उन्हीं से प्राप्त हुआ था ब्राह्मणों द्वारा दिये गये अर्थ से भिन्न है। अतः मैं ऊपर दी गई शब्द व्युत्पत्ति को ही स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। यह सम्प्रदाय जैनियों के श्वेताम्बर वर्ग से सम्बन्धित प्रतीत होता है जबकि इसी स्थान का

---

(१) इस प्रकार संस्कृत का सरस्वती जेन्द अवस्ता का हरावेती तथा यूनानियों का अराखोटस बन गया था।

होती है जिसका उत्तरी पश्चिमी कोण किसी समय लुंडि नाला पर आधारित रहा होगा। सिरसुख एवं इसके निर्माण कार्यों का कुल व्यास लगभग २०,३०० फुट अथवा लगभग ४ मील है।

मैं अब इस विशाल नगर के सभी भिन्न भिन्न भागों की व्याख्या कर चुका हूँ जिसके ६ वर्ग मील में फैले हुए खण्डहर पञ्जाब में किसी भी प्राचीन स्थान के खण्डहरों की अपेक्षा अधिक विस्तृत, अधिक रुचिकर एवं अत्यधिक अच्छी हालत में हैं। हतियाल दुर्ग एवं इसके अन्य निर्माण कार्यों बीर एवं कच्चाकोट सहित सिरकप नगर का व्यास ४½ मील है तथा सिरसुक का विशाल दुर्ग अपने अन्य निर्माण कार्यों सहित इतने ही आकार का है। यह दोनों ही लगभग इतने विशाल हैं जितना शाहजहां का राजकीय नगर दिल्ली। परन्तु स्तूपों, मठों एवं अन्य धार्मिक भवनों की संख्या एवं आकार नगर के अत्यधिक विस्तार से भी अधिक आश्चर्यजनक हैं। यहां पर मुद्रायें एवं प्राचीन काल के पदार्थ सिन्धु तथा जेहलम के बीच अन्य किसी भी स्थान की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं। अतएव यही शिला का स्थान रहा होगा जो प्राचीन लेखकों की एक मत साक्षी के अनुसार सिन्धु एवं हाइडस्पीज के बीच सबसे बड़ा नगर था। स्टैबो तथा ह्वेनसांग दोनों ने यहाँ की भूमि के उपजाऊ होने का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग ने यहां के झरनों एवं जल मार्गों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। चूंकि उपरोक्त विवरण केवल तबरा नाला के उत्तर की समृद्ध भूमि के अनुकूल है जिसे हारो नदी से खींची गई अनेक नालियों से पर्याप्त रूप से सींचा जाता है अतः मेरी दी हुई अनुकूलता का प्रमाण पर्याप्त है। बर्नस ने १८३२ ई० में इस भू भाग को पार किया था जब उसने शाहढेरी से तीन मील उत्तर तथा हारो नदी के लगभग एक मील दक्षिण में पड़ाव किया था। उसने इस गाँव का उल्लेख 'बाह्य पहाड़ियों के अधोभाग के समीप एक घाटी के मध्य में समतल भूमि पर' खड़े एक गाँव के रूप में किया है। यह विवरण स्टैबो तथा प्लिनी के विवरण से ठीक ठीक मिलता है जिन्होंने तक्षशिला को एक समतल प्रदेश में बसा हुआ बताया है जहाँ पहाड़ियाँ समतल मैदानों के साथ मिलती हैं। उस्मान के सम्बन्ध में बर्नस ने आगे लिखा है कि 'यहाँ की चरागाहें पर्वतों से निकली सर्वोत्कृष्ट सुन्दर एवं स्वच्छ छोटी नदियों से सींचा जाती हैं।'' इस कथन के प्रथम भाग में उसका कथन यथार्थ है परन्तु अन्तिम भाग में निःसन्देह उसका कथन त्रुटिपूर्ण है क्योंकि पानी का प्रत्येक कण जो उस्मान से होकर गुजरता है हारो नदी से कृत्रिम साधनों द्वारा खींचा गया है। दो मील दक्षिण में सिंचाई कार्य लुंडी नाला को पार कर किया जाता है। परन्तु इस नदी का सम्पूर्ण जल कृत्रिम साधनों से हारो नदी से प्राप्त किया गया है। अतः सिंचाई का पूरा प्रबन्ध वस्तुतः उसी नदी से हुआ समझा जाना चाहिये।

ह्वेनसांग ने शिला के जिले को व्यास में २००० ली अथवा ३३३ मील बताया

है। इसकी सीमायें पश्चिम में सिन्धु नदी, उत्तर में उरसा का जिला, पूर्व में झेलम अथवा बेहात नदी तथा दक्षिण में सिहपुर का जिला थीं। चूंकि सिहपुर की राजधानी नमक की पहाड़ियां में केटास अथवा उसके समीप थी अतः उस ओर तक्षशिला की सीमायें सम्भवत दक्षिण पश्चिम में सुहान नदी द्वारा निश्चित थी तथा दक्षिण पूर्व में विकराल पर्वत श्रेणी द्वारा निर्धारित की गई थी। इन सीमाओं को प्रायः सही स्वीकार करने से सिन्धु तथा झेलम की सीमान्त रेखा लम्बाई में क्रमश ८० मील तथा ५० मील होगी तथा उत्तरी एवं दक्षिणी सीमायें क्रमश ६० तथा १२० मील अथवा कुल मिला कर ३१० मील होंगी जो ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ा के अति समीप है।

मानिक्याल

मानिक्याल के प्रसिद्ध स्तूप अथवा बौद्ध स्मारक की सूचना एल्फिन्स्टन की यात्रा से मिलती है और जनरल वेन्चूरा एवं जनरल कोट के द्वारा इसकी खोज की जा चुकी है। यह नाम राजा मान अथवा मानिक से प्राप्त किया गया बताया जाता है, जिसने इस प्रसिद्ध स्तूप का निर्माण करवाया था। यह प्रथा सम्भवत सही है क्योंकि मैंने गाँव के पूर्व में एक छोटे बौद्ध स्तूप से एक मुद्रा तथा मानिगल के पुत्र क्षत्रप जिहोनिया अथवा ज्योनिसस की अस्थियां प्राप्त की थीं। प्राचीन नगर जिसे प्राय मानिकपुर अथवा मानिक नगर कहा जाता है। रसालू को विचित्र पौराणिक कथा का स्थान बताया जाता है जिसने वहाँ के राक्षसों को निष्कासित किया था तथा जनसाधारण को सिर कर अर्थात् सिर काटने वाले व्यक्ति एवं उसके भाइयों के अत्याचार से मुक्त कराया था।

मानिक्याल के नाम का उल्लेख किसी भी चीनी तीर्थ यात्री ने नहीं किया यद्यपि उनमे प्रत्येक व्यक्ति ने इस स्थान की स्थिति का उल्लेख किया है। फाह्यान ने केवल इतना ही कहा है कि तक्षशिला से पूर्व दो दिन की यात्रा पर वह स्थान है जहाँ बुद्ध ने 'एक भूखे शेर को अपना शरीर अर्पित कर दिया था।' परन्तु सुङ्ग युन ने इस वृत्ति की घटना के स्थान को गान्धार की राजधानी के दक्षिण पूर्व में आठ दिन की यात्रा पर निश्चित किया है, जो पेशावर से अथवा हश्त नगर से मानिक्याल के दूरी का सही वर्णन है। अन्त मे ह्वेन सांग ने "शरीर दान' के स्थान को शिला के दक्षिण पूर्व मे लगभग ३४ मील की दूरी पर बताया है जो कि शाहढेरी से मानिक्याल की दिशा एवम् दूरी का सही उल्लेख है परन्तु उसका यह कथन है कि उसने सिन-तू अथवा सिन्धु नदी को पार किया था सुहान अथवा सूआन नदी के स्थान पर एक साधारण त्रुटि है। यह नदी इन दोनो स्थानों के मध्य में बहती है।

"शरीर दान' के प्रसिद्ध स्तूप को मैंने जनरल कोट द्वारा निकाले गये स्मारक के अनुरूप स्वीकार किया है जिसका निर्माण, भीतर प्राप्त शिलालेखों के अनुसार ईसवी

एक अन्य सम्प्रदाय जिसे ह्वेनसांग ने नग्न रहने वाले कहा है जो जैनियों का दिगम्बर सम्प्रदाय रहा होगा। कहा जाता है कि उनकी पुस्तकें मुख्यत बौद्ध साहित्य से नकल की गई थीं। जबकि उनके देवता की मूर्ति स्वयं बुद्ध से मिलती-जुलती है। इन विचित्र तथ्यों से यह प्राय निश्चित प्रतीत होता है कि यह धर्म विरोधी सम्प्रदाय जैनियों का सम्प्रदाय था जिनका धर्म म बौद्ध धर्म स बहुत कुछ समानता रखता है और जिनकी मूर्तियों मे प्राय बुद्ध की मूर्ति होने का भ्रम होता है।

केटास पिण्ड दादन खाँ से १६ मील तथा चकवाल से १८ मील की दूरी पर नमक की पहाड़िया क उत्तरी भाग में अवस्थित है परन्तु शाहढेरी अथवा तक्षशिला से इसकी दूरी ८५ मील स अधिक नहीं है। तक्षशिला से सिंहपुर की दूरी ७०० ली अथवा ११७ मील बताई गई है जो निश्चित ही बहुत अधिक है क्योंकि इससे राजधानी का स्थान दक्षिण तथा पूर्व के बीच किसी भी दिशा में पहाड़ियों के दूरस्थ बिन्दु से ३० मील दूर चला जायेगा। सिंहपुर को दुगम चढाई वाली एक उन्नत पहाड़ी के शिखर पर अवस्थित बताया गया है और यहाँ की जलवायु भी अति ठण्डी बताई गई है, अतः यह निश्चित है कि यह स्थान नमक की पहाड़ियों क दक्षिण-दक्षिण पूर्व अथवा बालनाथ श्रेणी के पूर्व-दक्षिण पूर्व की अकेली चोटियों म किसी चोटी पर रहा होगा। परन्तु चूँकि बालनाथ पर्वत श्रेणी में मछलियों से भरे स्वच्छ तालाब नहीं हैं अत मुझे इस स्थान को ह्वेनसांग द्वारा वर्णित केटास के सुन्दर स्वच्छ कुण्डो के अनुरूप स्वीकार करने में थोडा सङ्कोच है जो अति प्राचीन काल से पवित्र माने जाते हैं।

सिंहपुर की राजधानी पवित्र कुण्डों के उत्तर पश्चिम म ४० से ५० ली अथवा ७ म ८ मील की दूरी पर अवस्थित थी परन्तु मुझे ऐसे किसी स्थान का ज्ञान नहीं है जो इस दिकाश एव दूरी से मिलता हो। मालाट प्रारम्भिक काल में जनजुहा की राजधानी थी परन्तु इसका दिकाश दक्षिण पूर्व है तथा इसकी दूरी १२ मील। यदि हम ४० अथवा ५० ली क स्थान पर ४ से ५ ली मान ल तो राजधानी को तुरत कटास के जजर दुग के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो पश्चिम मे २०० फुट ऊँची एक अति ढलवां पहाडी पर अवस्थित है। यह केटास क नगर एवम् पवित्र कुण्डों क ऊपर झुकी हुई है। इसे प्राचीन नगर कहा जाता है। इसमें १२०० फुट लम्बा तथा ३०० चौडा एक ऊपरी दुर्ग तथा ८०० फुट लम्बा एवम् ४५० फुट चौडा निचला दुर्ग है। इन दोनों का व्यास १५०० फुट अथवा एक मील के तीन चौथाई भाग से कुछ कम है परन्तु नदी के दोनों तटो पर दुर्ग क ऊपरी एवम् निचले भाग में आधुनिक नगर सहित केटास का पूर्ण व्यास लगभग दो मील है। यह ह्वेनसांग द्वारा वर्णित राजधानी से छोटा है। जिसका व्यास ३½ अथवा ३⅓ मील था। परन्तु चूँकि यह अन्य सभी विशिष्ट बातों म इससे मिलता है अत मेरा विचार है सिंहपुर की राजधानी क अनुरूप स्वीकार किये जाने का कटास का दावा सही है।

ह्वेनसांग के अनुसार जिले का व्यास ३६०० ली अथवा ६०० मील था। यह पश्चिम में सिंधु नदी, उत्तर में तक्षशिला की दक्षिणी सीमा तथा दक्षिण में झेलम एवं ताकी अथवा पंजाब के समतल प्रदेश की उत्तरी सीमा से घिरा हुआ था। अतः यह नमक की पहाड़ियों से अधिक दूर फैला हुआ नहीं हो सकता था। इस सीमा में सिंधु तट की सीमा लगभग ६० मील, झेलम की सीमा ५० मील तथा उत्तरी एवम् दक्षिणी सीमायें लगभग ५० मील अथवा कुल मिलाकर यह सीमा ३८० मील रही होगी। इस संख्या एवम् ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ों में भिन्नता का एक मात्र उत्तर मेरी समझ से यह सम्भावना है कि पञ्जाब का प्राचीन कोस आधुनिक कोस अर्थात् १⅓ मील अथवा १ मील २½ फर्लाङ्ग के छोटे कोस के बराबर रहा होगा और चीनी तीर्थ यात्री ने इस भिन्नता से अनभिज्ञ होने के कारण दो मील के सामान्य भारतीय कोस के आधार पर अपने आंकड़े दिये होंगे। इससे उसके आंकड़े लगभग एक तिहाई कम हो जायेंगे और साथ ही साथ यह आंकड़े हमारे मानचित्रों में दिये गये वास्तविक आंकड़ों के समीप हो जायेंगे। इस प्रकार सिंहपुर के व्यास के लिये ह्वेनसांग का ६०० मील घट कर ४०० मील रह जायेगा जो पहले दिये गये वास्तविक आंकड़ों से केवल ५० मील के अन्तर में हैं। सीमाओं की दूरी के अनुमान अधिक यथार्थ होने की आशा नहीं की जा सकती क्योंकि चीनी तीर्थ यात्री के पास उसे सूचना देने वालों की सत्यता की जांच के साधन नहीं थे। मार्ग की दूरी जहाँ वह स्वयं गया है—के सम्बन्ध में यह बात भिन्न है क्योंकि मार्ग की दूरी को वह यात्रा में लगे समय के ज्ञान से तथा दो स्थानों के बीच यात्राओं की संख्या से भली प्रकार बता सकता था। सिंहपुर के प्रस्तुत उदाहरण में यह प्रायः निश्चित है कि सीमा की दूरी को बढ़ा चढ़ा कर लिखा गया है क्योंकि सौविर अथवा ताकी की सीमा को भी सिंधु नदी तक बताया जाता है और यदि सिंहपुर की सीमा मेरी निर्धारित सीमा से दक्षिण में होता तो उपरोक्त बात सम्भव नहीं हो सकती थी।

पुनच अथवा पूंच

ह्वेनसांग ने पुआन नू सो अथवा पुनच को काश्मीर से ११७ मील दक्षिण पश्चिम में बताया है। काश्मीरी इसे पुनत्स कहा करते है। उन्होंने पञ्जाबियों के पाचाल के स्थान पर पीर पतशाल में निहित च के कोमल उच्चारण को अपना लिया है। मूरक्राफ्ट ने इस प्रुन्च अथवा काश्मीरियों के अनुसार प्रुन्तज कहा है। जनरल कोर्ट ने भी प्रुन्च लिखा है परन्तु विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगल बेग ने इसका नाम पुँजी लिखा है तथा विजनी ने पूंच। दोनों ही इस स्थान पर गये थे। मानचित्र पर काश्मीर से इसकी दूरी बारामूला तथा उड़ी के रास्ते ७५ मील है जो वास्तविक मार्ग दूरी के १०० मील के समान है।

ह्वेनसाग ने पुनच को व्यास मे ३३३ मील कहा है जो कि वास्तविक आकार स दुगना है। यह पश्चिम में झेलम, उत्तर में पीर पाचाल पर्वत श्रेणी तथा पूर्व एव दक्षिण पूर्व म राजौरी के छोटे राज्य स घिरा हुआ है परन्तु यह सीमाये जिनमें कोटली का छोटा राज्य भी सम्मिलित है, व्यास म १७० मील से अधिक नहीं है और यदि पुनच नदी के उद्गम स्थान के प्रदेश को भी उपरोक्त सीमाओ मे सम्मिलित कर लिया जाये तो भी इसका व्यास २०० मील से अधिक नहीं होगा। परन्तु चूंकि पवतीय जिलो मे सीमा की दूरी को माग की दूरी के आधार पर आँका गया था अत सीमा रेखा की दूरी को माग दूरी मे ३०० मील के समान समझा जाना चाहिये।

सातवी शताब्दी में पूच म कोई राजा नहीं था और यह काश्मीर का आश्रित राज्य था परन्तु बाद म इस नगर का अपना प्रमुख था जिसके वशजो शेरजङ्ग खाँ तथा शम्स खाँ को जम्मू के गुलाब सिंह ने मरवा डाला था और यह छोटा राज्य पुन काश्मीर राज्य का एक भाग बन गया। r

राजपुरा अथवा राजौरी

पूँच स ह्वेनसाग को लो-शी-पू लो अथवा राजपुरा गया था जो पूच के ६७ दक्षिण पूर्व मे था जिसे मैं पहले ही काश्मीर से दक्षिण मे राजौरी की छोटी रियासत के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। इस जिले का व्यास ६६७ मील आंका गया था जो वास्तविक आंकडों से दुगना है। यदि रावी क तट तक के सभी प्रदेश इसकी सीमाओ में स्वीकार कर लिये जायें तो उपरोक्त आंकडे सही हो सकते हैं। काश्मीर के स्थानीय इतिहास से हमे पता चलता है कि घाटी के दक्षिण एवम् दक्षिण पूर्व के छोटी छोटी पहाडी जागीरें सामान्यतः काश्मीर के अधीन थी और ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि ह्वेनसाग की यात्रा के समय वह स्वतन्त्र थी।

राजौरी का विशिष्ट जिला चारो ओर लगभग ४० मील सीमा वाला प्रायः एक चतुर्भुज है जो उत्तर म पीर पाचाल पश्चिम म पूँच, दक्षिण मे भिम्बर तथा पूव मे रियासी तथा अखनूर से घिरा हुआ है। इसकी सीमाओ को पूव म चेनाब तक तथा दक्षिण में मैदानों तक बढा देने स इसमें यह सभी छोटी छोटी जागीरें सम्मिलित हो जायेंगी परन्तु इस पर भी इसकी सीमाएँ २४० मील अथवा सडक की दूरी क अनुसार लगभग ३२० मील से अधिक नहीं होगी। परन्तु यदि काश्मीर के अधीन इन पवतीय राज्यो की सीमायें पूव म रावी नदी तक बढा दी जाये तो इसका व्यास मानचित्र पर माप के अनुसार लगभग ४२० मील अथवा माग दूरी के अनुसार ५६० मील होगा।

काश्मीर के मध्यकालीन इतिहास में राजापुरी का बारम्बार उल्लेख मिलता है परन्तु मुख्य रूप स इसका उल्लेख ग्यारहवीं एवम् बारहवीं शताब्दियो में किया गया है जिस समय यह अपने ही शासक के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य था। पन्द्रहवीं शताब्दी म यहाँ के हिन्दू राजघराने का काश्मीर के मुस्लिम शासक के एक पुत्र के लिये परच्युत

कर दिया गया था तथा उसके वंशज को गुलाबसिंह ने इतना दबाया कि उसने १८४६ में प्रसन्नता पूर्वक राजौरी की छोटी रियासत के बदले कांगड़ा के अङ्गरेजी जिले में एक जागीर स्वीकार कर ली थी।

पञ्जाब के पर्वतीय राज्य

चूंकि चीनी तीर्थ यात्री ने पञ्जाब के पर्वतीय राज्यों में बहुत कम राज्यों का उल्लेख किया है अत मैं उस सूचना की संक्षिप्त बाह्य रूपरेखा यहाँ जोड़ देना चाहता हूँ जिसे मैं स्वयं इन राज्यों के सम्बन्ध में एकत्रित कर सका हूँ।

प्रचलित विचारानुसार पर्वतीय पञ्जाब के छोटे छोटे राज्यों में २२ मुस्लिम एवम् २२ हिन्दू राज्य थे। मुस्लिम राज्य चेनाब नदी के पश्चिम में तथा हिन्दू राज्य इसके पूर्व में थे। एक प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार इन्हे तीन वर्गों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक वर्ग का नाम राज्यों के सङ्गठन में सब शक्तिशाली राज्य के नाम पर रखा गया था। ये राज्य थे काश्मीर, डोगरा तथा त्रिगर्त। प्रथम राज्य में काश्मीर की समृद्ध घाटी तथा सिन्धु एवम् झेलम के मध्य के सभी छोटे राज्य सम्मिलित थे। द्वितीय राज्य में जम्मू तथा झेलम एवम् रावी के बीच के सभी छोटे राज्य थे तथा तृतीय राज्य में जलन्धर तथा रावी एवम् सतलज के बीच के अनेक छोटे छोटे राज्य सम्मिलित थे।

तीन वर्गों का यह विभाजन सम्भवत सातवीं शताब्दी से पूर्व का था क्योंकि हम देखते हैं कि रावी नदी से पूर्व के राज्य काश्मीर से पूर्णतया स्वतन्त्र थे जबकि उरशा, पूर्व तथा राजौरी के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार कहा जाता है जिससे यह प्रतीत हो कि काश्मीर के अधीन होने से पूर्व ये राज्य अपने अपने राजा के अधीन स्वतन्त्र थे। काश्मीरी इतिहास में त्रिगर्त का एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में बारम्बार उल्लेख किया गया है और इसके निजी इतिहास से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जलन्धर की पहाड़ियों के छोटे-छोटे राज्यों में आधे राज्य एक ही परिवार के आधिपत्य में राज्य के विभाजन से उत्पन्न हुये हैं।

निम्नलिखित सूची में काश्मीर अथवा पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी खण्ड से सम्बन्धित राज्यों के नाम एवम् अधिकार क्षेत्र दिये गये हैं —

खाक
- (१) काश्मीर
- (२) तिङ्गुल, वेहात नदी पर अवस्थित
- (३) मुजफ्फराबाद
- (४) खागान, कुनिहार नदी पर
- (५, मही

अफगान
(६) रश, पखली नदी पर
(७) धन्तावर, डोर नदी पर
(८) गण्डगढ़
(९) दरबन्द, सिंधु नदी पर
(१०) तोरबेला „ „

गक्कर
(११) फरवाल, बेहात नदी के समीप
(१२) सुल्तानपुर, बेहात नदी पर
(१३) खानपुर, हारो नदी पर

बारामूला से नीचे बेहात नदी की घाटी पर तथा काश्मीर के उत्तर पश्चिम में कुनिहार नदी के सम्पूर्ण भाग पर खाक बम्ब सरदारो का अधिकार था। वे सभी मुस्लिम धर्मावलम्बी थे तथा सम्भवतः देश के प्रारम्भिक निवासियो के वशज थे जो अफगान आक्रमण कारियो के बढ़ाव के कारण अपने वर्तमान स्थान पर आकर बस गये थे।

काश्मीर के दक्षिण पश्चिम म पखली एव डोर नदियो की घाटियों पर अफगान सरदारो का अधिकार था। वह सभी मुसलमान हैं और इस देश मे उनका निवास कुछ ही समय का है। अब्बुलफजल ने लिखा है कि अकबर के समय से पूर्व पखली का राजा काश्मीर का आश्रित था। उसका यह भी कथन है कि तैमूर इस जिले में अपने सनिको की एक छोटी टुकडी छोड गया था जिनके वशज उसके समय में अब भी मौजूद थे।

झेलम की निचली घाटी तथा काश्मीर के दक्षिण पश्चिम म हारो नदी के ऊपरी भाग पर गक्कर सरदारो का अधिकार था। वह सभी भी मुसलमान हैं परन्तु उनका धर्म परिवर्तन अपेक्षाकृत नया है क्योंकि तैमूर के आक्रमण के समय तक उनके नाम भारतीय थे। इस जिले पर उनका अधिकार अधिक प्रारम्भिक काल से है परन्तु वे तुरानी हैं आर्य नहीं, क्योकि गक्कर को छोड अन्य कोई भी व्यक्तियो गक्कर से विवाह सम्बन्ध नही करेगा। यह प्रथा हिन्दू धर्म से पूर्ण विरोधी प्रथा है जिसमे (हिन्दू धर्म म) किसी भी व्यक्ति को अपनी जाति में विवाह करने की स्वीकृति नहीं हैं। पूर्वी दोआब के अनेक भागो जैसे गुज्जर खाँ के समीप गुलियाना तथा बाल नाथ की उन्नत पहाडी के नीचे बुगियाल पर भी गक्करो का अधिकार था। सातवी शताब्दी म ह्वेनसांग की यात्रा के समय ये जिले यद्यपि काश्मीर के अधीन थे परन्तु ये जिले समुचित रूप से पहाडी जिले नही थे।

निम्नलिखित सूची म पश्चिम पजाब के मध्य अथवा जम्मू खण्ड से सम्बन्धित राज्यो के नाम एव स्थान दिये गये हैं। —

हिन्दू
(१) जम्मू चेनाब नदी के पूर्व म
(२) माओ

मुस्लिम
(३) रिहासी चेनाब नदी पर
(४) अरखनू
(५) पूच पुनच नदी पर
(६) राजौरी तोही नदी पर
(७) कोटाली, पुनच नदी पर
(८) भिम्बर, पहाडियो के नीचे
(९) खरियाली, भिम्बर के समीप
(१०) काष्टवार, अप्पर चेनाब नदी पर
(११) भद्रवार, काष्टवार के दक्षिण मे

हिन्दू
(१२) चनेनी, भद्रवार के पश्चिम मे
(१३) बन्दराल्ट, चनेनी के दक्षिण म
(१४) साम्बा, बन्दराल्ट के दक्षिण पश्चिम मे

हिन्दू
(१५) जसरोटा, बन्दराल्ट क दक्षिण मे
(१६) टीरीकोट, जसरोटा के समीप
(१७) मानकोट, बन्दराल्ट के दक्षिण म
(१८) बदवाल, अथवा बडडीवास
(१९) बल्लावर, अथवा विसोहली

जम्मू तथा माओ के नगर, जिनका निर्माण दो भाइयो द्वारा कराया गया था तोही नाम की एक छोटी नदी के दोनों किनारो पर अवस्थित थे। यह नदी पहाडियो के नीचे चिनाव नदी से मिलती है। मुस्लिम इतिहास में तैमूर द्वारा बलपूर्वक राजा क धर्म परिवतन के समय से लेकर पिछली शताब्दी के अन्त तक जम्मू का बारम्बार उल्लेख किया गया है। रणजीतसिह के दरबार के तीन प्रसिद्ध बन्धुआ गुलाब सिह ध्यान सिह तथा सुचेत सिह इसी परिवार की नई पीढ़ी से सम्बन्धित थे तथा गुलाब सिह का पुत्र इस समय काश्मीर एवम् पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी एवम मध्य खण्डा के सभी राज्यों पर शासन कर रहा है।

रिहासी तथा अखनूर के छोटे सरदार जम्मू परिवार की शाखायें थे जिन पर वह प्राय आश्रित रहा करते थे। पूच सदा कम स्वतन्त्र या परन्तु काश्मार से अपनी समीपता क कारण यह राज्य अपने अधिक शक्तिशाली पडोसी की दया पर निर्भर था। रजौरी तथा कोटाली काश्मीर के राजघराने की दो शाखाओं के अधिकार म थे परन्तु

मध्य काल में हिंदू शासकों के अधिपत्य में पोटाली पूंच का एक भाग था। एक ही घाटी के भाग होने के कारण यह प्राकृतिक रूप से पूंच से सम्बन्धित था। भिम्बर तथा खरियाली, कांगड़ा तथा जसरूर के सोम वंशी राजाओं की चिब अथवा चिबान शाखा के खंड थे। प्रारम्भ में भिम्बर का नाम बहुत कम प्रयोग में लाया जाता था। सामान्य नाम चिब्बान था जिसका उल्लेख जिमाल के स्वरूप में शिरूफद्दीन द्वारा लिखित तैमूर के इतिहास में मिलता है। इस परिवार के मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लेने की तिथि सम्भवतः बाद की तिथि है क्योंकि फरिश्ता ने ८६१ हिजरी अथवा १४८६ ई० में हिब्बर के हाऊन राजा का उल्लेख किया है। परन्तु इन पर्वतीय सरदारों में अधिकांश ने मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के बाद भी अपने हिंदू नामों को अपनाये रखा था अतः केवल हिंदू नाम का ही धर्म अपरिवर्तित रहने का निश्चित प्रमाण स्वीकार नहीं किया जा सकता। कास्टवार तथा भद्रवार, काश्मीर के दक्षिण पूर्व में ऊपर चेनाब नदी के विपरीत किनारों पर अवस्थित हैं परन्तु ये राज्य प्रायः काश्मीर के आश्रित थे। मध्य खण्ड की छोटी रियासतों को पश्चिमी खण्ड को १३ से जोड़ देने से हम २२ मुस्लिम राज्य प्राप्त होते हैं जिसे जन साधारण में पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी अर्द्ध भाग में सम्बन्धित किया जाता था।

इस खण्ड के शेष आठ रियासतों के सम्बन्ध में मैं अधिक सूचना देने के योग्य नहीं हूँ क्योंकि उनमें अधिकांश सिख राज्य के प्रारम्भिक काल में लुप्त हो गई थीं और इस समय जम्मू परिवार ने इन सभी को काश्मीर के विशाल राज्य में सम्मिलित कर लिया है। पहाड़ियों की बाह्य श्रेणी में जसरोटा, एक समय कुछ महत्व का राज्य था तथा यहाँ के शासक ने पर्वतीय पञ्जाब के अन्य राजपूत परिवारों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किये थे परन्तु मैं किसी भी इतिहास में इस स्थान का उल्लेख नहीं ढूंढ सका हूँ। बल्लावर तथा बदवाल निश्चित ही एक समय एक ही शासक के अधीन थे क्योंकि सुरक के पुत्र कलस का नाम जिसका राजतरङ्गिणी में १०२८ के लगभग बल्लापुर के शासक के रूप में दो बार उल्लेख किया है—दोनों परिवारों के वंशावली में लिखा गया है। यह सत्य है कि इसी इतिहास में बाहीवास को प्रारम्भ में एक भिन्न जिला कहा गया है परन्तु चूँकि किसी राजा का उल्लेख नहीं मिलता अतः इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह बल्लापुर के छोटे राज्य का भाग रहा हो। चूँकि दोनों वंशावलियों में कलस नाम के पश्चात् नामों में अंतर है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् यह राज्य छिन्न भिन्न हो गया हो। यह निश्चित है कि वह काश्मीरी राजनीति से सम्बन्धित था और चूँकि पड़ोसी चम्ब राज्य के तत्कालीन राजा का काश्मीर के राजा अनन्त ने वध करा दिया था अतः मेरा निष्कर्ष है कि बल्लावर भी इसी समय अधिकार में कर लिया गया होगा।

मैं यह उल्लेख करना चाहूँगा कि मध्य खण्ड के सभी राजा जिनकी वंशावलियाँ

मेरे पास हैं स्वय को सूय वशी कहा करते थे। मिम्बर का विधान ही एक मात्र अप वाद था। जम्मू, जसरोटा तथा बल्लावर के शासक एवम उनके वशज जो छोटे छोटे राज्यो म कुल आठ राज्या में शासन करते थे—सूर्यवशी होने का दावा करने थे और पडोस के अय राजपूत उनके इस दावे को स्वीकार करते थे।

निम्नलिखित सूची म पर्वतीय पजाब के पूर्वी अथवा जलधर खण्ड के विभिन्न राज्यो के नाम एवम स्थान दिये गय है —

सोमवशी
(१) कागडा अथवा काटोच
(२) गुलेर, कागड़ा के दक्षिण पश्चिम म
(३) जसवाल, सुहान नदी पर
(४) दतारपुर, निचली व्यास नदी पर
(५) सिवा, निचली व्यास नदी पर

सूरजवशी
(६) चम्बा, रावी तट पर
(७) कुलू, ऊपर व्यास नदी पर

पुण्डीर अथवा पाण्डव
(८) मण्डी, मध्य व्यास नदी पर
(९) सुकेट, मण्डी के दक्षिण म
(१०) नूरपुर, रावी एवम व्यास नदियो के बीच
(११) कोटिला, नूरपुर के पूव मे
(१२) कोटलेहार

इन राज्यो मे कम से कम पाँच राज्य एक समय के समृद्ध जलधर राज्य के उपखण्ड मात्र थे जिसम रावी एवम सतलज के मध्य का सम्पूर्ण दोआब अथवा समतल प्रदेश, तथा रावी एवम मण्डी तथा सुकेट की सीमाओ क मध्य का सम्पूर्ण भू भाग सम्मिलित था। इसमे नूरपुर कोटिला तथा कोट विहार सम्मिलित थे और चूकि मण्डी एवम सुखेट प्रारम्भ म एक ही शासक क अधीन थे अत पवतीय पञ्जाब के पूर्वी खण्ड मे मूल रूप से केवल चार राज्य थे अर्थात् जलधर, चम्बा, कुलू तथा मडी।

जलन्धर

पञ्जाब के मैदानो पर मुसलमानो के अधिकार के समय से जलधर का प्राचीन राज्य लगभग पूरी तरह से अपनी पवतीय सीमाओ तक सीमित रहा है जो अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध दुर्ग के नाम पर सामान्य रूप से कांगडा के नाम से प्रख्यात था। इस जिले का काटोच जिसका अर्थ अनात है तथा त्रिगत (१) कहा जाता था जो पुराणो एवम काश्मीर के स्थानीय इतिहास म पाया जाने वाला सामान्य सस्कृत नाम है।

(१) हेमकोष जलधरास्त्रिगर्तास्यु "जालधर जो त्रिगत है।"

सातवीं शताब्दी में चीनी तीर्थ यात्री ने जलन्धर को पूर्व से पश्चिम लम्बाई में १६७ मील तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ाई में १३३ मील कहा है। यह आंकड़े यदि सत्य के समीप भी थे तो जलन्धर की सीमाओं में, उत्तर में चम्बा राज्य, पूर्व में मण्डी एवम् सुकेत राज्य एवम् दक्षिण पूर्व में सतद्रु सम्मिलित होते। चूंकि सतद्रु का एक मात्र जिला ही सतलुज के पूर्व में है अतः मेरा अनुमान है कि यह अवश्य ही जालन्धर राज्य का भाग रहा होगा। इन जिलों को जोड़ देने से प्रान्त का आकार चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये आंकड़ों से भली भांति मिल जायेगा।

ह्वेनसांग की यात्रा के समय जलन्धर ही राज्य की राजधानी थी जिसे उसने व्यास से दो मील से कुछ ऊपर बताया है। इसकी प्राचीनता निस्सन्देह है क्योंकि टालमी ने कुलिण्ड्राईन अथवा कटुलिनड्राईन के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसे सरलतापूर्वक कुलिण्ड्राईन पढ़ा जा सकता है क्योंकि यूनानी भाषा में 'क' एवम 'स' अक्षरों की प्राय अदला बदली होती है। पद्म पुराण के अनुसार जालन्धर नगर महान दैत्य राज जालन्धर की राजधानी थी जो अपनी कठोरता के कारण अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर अविजयी बन गया था। अन्त में शिव ने किसी प्रकार अशोभनीय कपट से उसे पराजित किया तथा योगिनियों ने उसके शरीर का भक्षण किया, परन्तु स्थानीय पुराण (जालन्धर पुराण) में उस कथा का अन्तिम भाग भिन्न रूप से दिया गया है। इस पुराण के अनुसार शिव ने उसे एक विशाल पर्वत से कुचल कर मार डाला था। उस समय उसके मुख से जो ज्वालामुखी के नीचे था ज्वालायें निकल रही थीं, उसका शरीर दोआब के ऊपरी भाग के नीचे था जिसे आज भी जालन्धर पीठ कहा जाता है और उसके चरण दोआब के निचले भाग मुल्तान में थे। अकबर ने नदियों के बीच भिन्न दोआबों का नाम करण करते समय उपर्युक्त कथा के इसी मत का आंशिक अनुसरण किया था और सतलज एवम् व्यास के बीच की भूमि को सब दोआब कहने के स्थान पर दो आब ए बिस्ट जालन्धर अथवा बिस्त जालन्धर कहा था। यदि वह पूर्वी नदी के प्रथम अक्षर से नामकरण करता जैसा कि उसने बारी एवम चज दोआब के नामों में किया है तो उपर्युक्त दोआब का नाम 'सब दोआब' होना चाहिये था।

जालन्धर तथा कांगड़ा का राज परिवार भारत के प्राचीनतम परिवारों में है और अपने संस्थापक सुशर्मचन्द्र के समय से इनकी वंशावली मुझे राजपूताना के अधिक शक्तिशाली परिवारों द्वारा दी गई नामों की लम्बी सूची से अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है। इस घराने के सभी भिन्न भिन्न वंशज सूर्यवंशी होने का दावा करते हैं और उनका दावा है कि मुल्तान जिले पर उनके पूर्वजों का अधिकार था एवम उन्होंने महायुद्ध में पाँच पाण्डवों के विरुद्ध दुर्योधन की ओर से युद्ध लड़ा था। युद्ध के पश्चात् उन्हें अपना देश त्याग देना पड़ा तथा वह अपने नेता सुशर्मचन्द्र के नेतृत्व में जालन्धर दोआब की ओर चले गये जहाँ उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया एवम् कांगड़ा के सुदृढ़

दुर्ग का निर्माण किया। जिसके एक का मौलिक अधिपत्य जालन्धर अथवा कांगड़ा सदी पर समाप्त हो गया था परन्तु कांगड़ा के किले अर्थात् जालन्धर के राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार की थी। कश्मीरी इतिहास के राजा अनन्त की भाषा उल्लिख है जिसमें त्रिगर्त के गुप्तों का अधीन उल्लेख है, एक बार तक उसने इन्द्रचन्द्र को आत्मसमर्पण की थी। एक दूसरे लेख में लगभग ८०४ ई० के एक लेख में जालन्धर के राजा का नाम जयचन्द्र दिया गया है जो गुप्तों का जय चन्द्र है तथा अधीन की सातवीं पीढ़ी में है। अनन्त ई० १०२८ से १०८१ तक कश्मीर के राजा अनन्त ने जालन्धर के राजा इन्दुचन्द की दो कन्याओं से विवाह किया था। यह राजा कांगड़ा की वंशानुक्रम सूची का इन्दुचन्द है। यह उदाहरण यह प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है कि जालन्धर मुस्लिम अधिकार से पूर्व कई शताब्दियों तक स्वतन्त्र राज्य था।

गुलेर, जसवान, नादारपुर तथा सिबा के अतिरिक्त छोटे राज्य कांगड़ा वंश की ही शाखायें हैं। गुलेर अथवा हरिपुर का स्वतन्त्र राज्य १४०० ई० में हरिश्चन्द्र ने स्थापित किया था जब उसने कांगड़ा अपने कनिष्ठ भ्राता कर्मचन्द्र को सौंप दिया था। अन्य रियासतों की स्थापना की तिथि अज्ञात है परन्तु मेरा अनुमान है कि मुसलमानों के आक्रमण के समय तक यह सभी रियासतें मूल राज्य की आश्रित थीं। महमूद गजनी की कांगड़ा विजय से इन रियासतों को अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने का अवसर प्राप्त हुआ।

फ्रांसीसी यात्री थेवेनाट ने दिल्ली साम्राज्य के अपने विवरण में लिखा है कि "ऐसे अनेक राजा हैं जो महान मुगल सम्राट का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते हैं।" परन्तु इन राजाओं के राज्य पहाड़ियों के भीतरी भाग में रहे होंगे क्योंकि हम जानते हैं कि बाह्य पहाड़ियों के सभी राज्य मुगल सम्राटों के अधीन थे। थेवेनाट ने "काकारोज बङ्किश, नगर कोट, सिबा और मुगल सम्राटों के अधीन उत्तर के दूरस्थ राज्यों में आयोढ अथवा हाऊद" का विशेष उल्लेख किया है। काकरोज निश्चित ही गक्खर थे। जिन्होंने झेलम के पश्चिम में निचली पहाड़ियों पर अधिकार कर रखा था। टेरी ने उन्हें कक्करोज एवम उनके मुख्य नगरों को दीकाली तथा पुरहाल (अथवा दांगली तथा फरवाल) कहा है। बङ्किश, टेरी के 'बनचिश' हैं जिनका मुख्य नगर बिशूर (पेशावर) कश्मीर के पूर्व (पश्चिम पढ़े) अथवा किसी सीमा तक दक्षिणी दिशा में पड़ता था। सिंधु नदी इस नगर को कश्मीर से अलग करती थी। नगरकूट कांगड़ा अथवा नगरकोट है जिसका उल्लेख इसी नाम से अबुरिहान ने भी किया है जो महमूद गजनी द्वारा इस नगर पर अधिकार के समय वहाँ उपस्थित था। सिबा कांगड़ा के समीप का छोटा राज्य नहीं है परन्तु यह गङ्गा नदी पर अवस्थित जिला है जिसका मुख्य नगर "हरद्वार (अथवा हरिद्वार) था जहाँ गङ्गा नदी विशाल चट्टानों से निकल कर एक

बड़ी नदी में परिवर्तित हो जाती है।" इन व्याख्यानों से यह स्पष्ट है कि पश्चिम में पेशावर से लेकर पूर्व में गङ्गा तक निचली पहाड़ियों के सभी राज्य दिल्ली सम्राट के अधीन थे। थेवेनाट द्वारा दिये गये अर्बोद अथवा हाउन्द के सामान्य नाम के सम्बन्ध में मैं केवल इतनी कल्पना कर सकता हूँ कि यह नाम हिमावत अथवा हिमवत का भ्रष्ट स्वरूप हो सकता है। हिमवत हिमालय पर्वतों का एक सर्व प्रसिद्ध नाम है जिसे यूनानियों ने इमोदस तथा ईमाउस के दो विभिन्न स्वरूपों में सुरक्षित रखा है।

चम्पा अथवा चम्बा

चम्बा एक विशाल जिला है जिसमें रावी के सभी सहायक नदियों की घाटियाँ एवम् लाहूल एवम् काष्टवार के बीच चेनाब की ऊपरी घाटी का एक भाग सम्मिलित है। ह्वेनसांग ने इसका उल्लेख नहीं किया है अतः इस बात की सम्भावना है कि उसने इसे काश्मीर की सीमाओं में सम्मिलित कर लिया था। इसकी प्राचीन राजधानी बुधिल नदी पर बरमपुर अथवा बरमावर थी। जहाँ आज भी अनेक सुन्दर मन्दिर एवम् एक पूरे आकार का पीतल का बना बैल इसके प्रारम्भिक शासकों की समृद्धि एवम् धर्मनिष्ठा की साक्षी के रूप में खड़े हैं। शिलालेखों के अनुसार यह निर्माण कार्य नवीं एवम् दसवीं शताब्दियों में हुआ था। काश्मीर के स्थानीय इतिहास में चम्पा के नाम से इस देश का बारम्बार उल्लेख किया है और स्थानीय वंशावलियों से प्रत्येक उल्लेख की पुष्टि होती है। १०२८ तथा १०३१ के बीच काश्मीर के राजा अनन्त ने इस राज्य पर आक्रमण कर दिया था और यहाँ के राजा साल को पराजित कर उसका वध करा दिया था। उसके पुत्र ने चम्पावती देवी के नाम पर चम्पापुर नाम की नवीन राजधानी की स्थापना की थी जो चम्बा के नाम से आज भी जिले का मुख्य स्थान है। तत्पश्चात् काश्मीर के राजाओं ने चम्बा परिवार से विवाह सम्बन्ध स्थापित किये तथा मुसलमानी आक्रमणों के परिणाम स्वरूप फैली अराजकता में यह छोटी रियासत स्वतन्त्र हो गई और वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक काल में गुलाब सिंह द्वारा कुचल दिये जाने के समय तक स्वतन्त्र बनी रही।

कुलू

ह्वेनसांग ने क्यू-लो-टो के राज को-जालंधर से ११७ मील उत्तर-पूर्व में बताया है जो व्यास नदी की ऊपरी घाटी में कुलू के जिले की स्थिति से ठीक ठीक मिलता है। विष्णु पुराण में उलूत अथवा कुलूटा लोगों का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः वही लोग हैं जिन्हें रामायण एवम् वृहत् संहिता में कौलूटा कहा गया है। चूँकि इस नाम का उपयुक्त स्वरूप चीनी क्यूलूटो से मिलता है अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आधुनिक कुलू प्राचीन नाम का संक्षिप्त स्वरूप ही होगा। जिले को व्यास में ५०० मील कहा गया है और यह पूर्णतया पर्वतों से घिरा हुआ है। कुलू की वर्तमान सीमित

सीमाओं के लिये यह आकार अत्यधिक पूर्ण अतिशयोक्ति है परन्तु प्राचीन राज्य में जन-साधारण के अनुसार पश्चिम में मण्डी एवम् सुखेत तथा सतलज के दक्षिण में सीमा का बहुत बड़ा भाग सम्मिलित था अतः यह सम्भव है कि यदि भाग दूरी से सीमा की लम्बाई आंकी जाये तो ५०० मील की कथित लम्बाई वास्तविक लम्बाई के समीप हो सकती है।

घाटी की वर्तमान राजधानी सुल्तानपुर है परन्तु प्राचीन राजधानी मकरसा को अभी भी नगर कहा जाता है और यह नगर इसी नाम से सब विदित है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि इस जिले में स्वर्ण रजत तथा तांबा सभी प्राप्त है परन्तु इस कथन में केवल आंशिक सत्यता है क्योंकि धुलाई में सोना बहुत कम मात्रा में प्राप्त होता है तथा चाँदी एवम् तांबे की खानें काफी समय से त्याग दी गई हैं।

ह्वेनसांग ने कुलू के उत्तर-पूर्व में लो हु-लो जिले का उल्लेख किया है जो स्पष्ट रूप से तिब्बतियों का ल्हो याल तथा कुलू एवम् अन्य पड़ोसी राज्यों के जन साधारण के अनुसार लाहुल है। उत्तर की ओर थोड़ा आगे उसने मो-लू सो के जिले का उल्लेख किया है जो उसकी व्याख्या के अनुसार लद्दाख रहा होगा। अतः मैं चीनी नाम को परिवर्तित कर मो पो पो पढ़ना चाहूँगा जो मार पो की सही नकल है। मार-पो, यहाँ की मिट्टी एवम् पर्वतों के सामान्य रङ्ग के आधार पर लाल जिला अथवा मार-पो-युल के रूप में लद्दाख प्रान्त का वास्तविक नाम है। चीनी भाषा के सो एवम् पो अक्षर इतने मिलते जुलते हैं कि उन्हें प्रायः एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाया जाता है जैसा कि पानिनी के जन्म स्थान सलातुर के प्रसिद्ध नाम में किया गया है। ह्वेनसांग की यात्राओं के मूल चीनी विवरण में सलातुर को पा ला तू लो अथवा पालातुर कहा गया है।

मण्डी तथा सुखेट

मूल रूप से मण्डी एवम् सुखेट राज्यों का एक ही राज्य था जो पश्चिम में कांगड़ा, पूर्व में कुलू उत्तर में धवलाधार पर्वतों तथा दक्षिण में सतलज से घिरा हुआ था। मण्डी का अर्थ है बाजार और दक्षिण एवम् पश्चिम से आने वाले दो मार्गों के चौराहे पर *व्यास नदी पर अपनी अनुकूल स्थिति के कारण* प्रारम्भ से ही लोग यहाँ आकर बस गये होंगे और आस पास के भू भाग में लोहे तथा काला नमक की मूल्यवान खानों की उपलब्धि के कारण यह स्थान समृद्धशाली बन गया था।

नूरपुर अथवा पठानियाँ

नूरपुर नगर का नाम सम्राट जहाँगीर की पत्नी प्रख्यात नूरजहाँ के नाम पर रखा गया था। इसका मूल नाम दहमाडी अथवा दहमाल अथवा जैसा कि अबुल फजल ने लिखा है। दहमादही था यद्यपि उसने किसी दुर्ग का उल्लेख नहीं किया है। तारीख-

ए-अलफी मे इसे दमाल कहा गया है तथा "हिंदुस्तान की सीमाओं पर एक उन्नत पहाडी के शिखर पर अवस्थित" बताया गया है। इब्राहीम गजनवी ने एक लम्बे घेरे के बाद इस दुर्ग पर अधिकार किया था। जिले का नाम पठावट है तथा मैदानों में अवस्थित इसकी राजधानी को पठियान अथवा पठियानकोट कहा जाता था जिसे वर्तमान समय में आंशिक परिवर्तन के बाद पठानकोट कहा जाता है। परन्तु यह नाम हिन्दू राजपूतों की पठान जाति से लिया गया है न कि प्रसिद्ध मुसलमान पठानों अथवा अफगानों से १८१५ ई० मे रजीत सिंह ने यहाँ के राजा को बन्दी बना लिया था तथा इस देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

नूरपुर के पूर्व मे, पठानियाँ परिवार की एक शाखा के छोटे राज्य कोटिला पर भी इसी समय सिक्खो का अधिकार हो गया तथा इसे सिक्ख राज्य में मिला लिया गया।

कोट लेहार, ज्वालामुखी के दक्षिण पूर्व मे जसवाल दून में एक छोटा राज्य था। य सामान्यत कांगड़ा का आश्रित राज्य था।

सतद्रू

चीनी तीर्थ यात्री ने शे-तो-तू लो अथवा सतद्रू जिले को व्यास में २००० ली अथवा ३३३ मील कहा है जिसकी पश्चिमी सीमा के रूप मे एक विशाल नदी है। राजधानी को कुलू के दक्षिण की ओर ७०० ली अथवा ११७ मील तथा वैरात के उत्तर पूर्व में ८०० ली अथवा १३३ मील की दूरी पर दिखाया गया है। परन्तु इन संख्याओं में कोई एक संख्या त्रुटिपूर्ण है क्योंकि कुलू तथा वैरात के मध्य की दूरी मानचित्र पर सीधे माप से ३३६ मील अथवा मार्ग दूरी से ३६० मील से कम नहीं है। अत दोनो स्थानों के बीच दूरियो मे एक दूरी में सीधी रेखा से लगभग ११० मील अथवा ७०० ली अथवा दिकाश के आधार पर चक्कर दार मार्ग से लगभग १५० मील अथवा १००० ली की कमी है। यह उल्लेखनीय है कि मथुरा से थानेसर तक समानान्तर मार्ग पर वापसी यात्रा में भी इतनी ही मात्रा की कमी है। इस दूरी को तीर्थ यात्री ने २०० ली अथवा २०० मील के स्थान पर केवल ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है जबकि वास्तविक दूरी १६६ मील है। चूँकि यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनों मार्गों में किसी अज्ञात कारण से समान मात्रा में कमी कर दी गई है अत यह सम्भवत पश्चिमी रेखा की यह कमी सतद्रू तथा वैरात के बीच दक्षिणी भाग में निहित रही हो जो मथुरा तथा थानेसर के मध्य समानान्तर रेखा के समीप है। अन्त में मैं पहले के दो स्थानों के मध्य की दूरी में १५० मील की वृद्धि कर दूंगा जिससे कुल दूरी २८३ मील हो जायेगी। वैरात की इस शुद्ध दूरी तथा कुलू से दक्षिण मे ११७ मील की उल्लिखित दूरी में सतद्रू की स्थिति सरहिन्द के विशाल नगर से प्राय ठीक ठीक

मिल जायेगी जो इतिहास एवम प्रथाओ दोनो मे देश के इस भाग का प्राचीनतम स्थान माना गया है।

सरहिन्द के वर्तमान खण्डहरों में पूर्णतया परवर्ती मुसलमानी इमारतों के खण्डहर हैं परन्तु हिन्दुओं के समय यह स्थान निश्चित ही किसी महत्व का स्थान रहा होगा क्योंकि दिल्ली के प्रथम मुसलमान सुल्तान मुहम्मद गोरी ने इस स्थान पर घेरा डाला था और अपने अधिकार में कर लिया था। प्रचलित धारणा के अनुसार यह कहा जाता है कि नगर को सरहिन्द अथवा "हिन्द की हद (सीमा)" का नाम कुछ समय पूर्व दिया गया था जब यह नगर हिन्दुओं तथा गजनी एवम लाहौर के मुस्लिम शासकों के बीच सीमान्त नगर था। परन्तु यह नाम सम्भवतः प्राचीन है क्योंकि ज्योतिषाचार्य वराह मिहिर ने कुलू निवासियों, कुलूट के पश्चात् तथा ब्रह्मपुर के निवासियों के उल्लेख से थोड़ा पूर्व सैरिन्ध जाति का उल्लेख किया है। ब्रह्मपुर, जैसा कि हमें चीनी तीर्थ यात्री से ज्ञात होता है हरिद्वार के उत्तर में पर्वतीय प्रदेश की राजधानी थी। अतः सैरिन्ध अथवा सिरिन्ध निवासी उस विस्तृत क्षेत्र में बस होंगे जहाँ वर्तमान सरहिन्द अवस्थित है और इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं हो सकता कि दोनों नाम एक ही हैं। परन्तु वराह मिहिर की भौगोलिक सूची उसके पूर्ववर्ती ज्योतिषाचार्य पराशर की सूची की अक्षरशः नकल है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह ईसा की प्रथम शताब्दी के पश्चात् जीवित नहीं था।

यदि हम कुलू तथा सतद्रू के बीच की रेखा के उत्तरी अर्द्ध भाग में ११० मील की वृद्धि को स्वीकार कर लें तो सतद्रू की स्थिति हाँसी की स्थिति से मिल जायगी जो सरहिन्द से भी अधिक शक्ति एवम प्रसिद्धि का प्राचीन सार्वभौम नगर है। परन्तु ह्वेनसाग ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि सतद्रू की सीमा व्यास से केवल १३३ मील थी तथा यह पश्चिम में एक विशाल नदी जो कि केवल सतलज अथवा सतद्रू नदी हो सकती है से घिरा हुआ था अतः यह पूर्णतया असम्भव है कि हाँसी ही के स्थान का संकेत किया गया हो क्योंकि यह स्थान उपयुक्त के समीपस्थ बिन्दु से भी १३० मील से अधिक दूरी पर है।

भटनेर के प्रसिद्ध दुर्ग का स्थान, पश्चिम में सतलज से घिरे एक छोटे जिले के विवरण के अनुकूल होगा और कुलू की शुद्ध दूरी से भी मिल जायेगा परन्तु इसकी दिशा दक्षिण के स्थान पर दक्षिण पश्चिम है तथा बैराट से इसकी दूरी तीर्थ यात्री द्वारा दी गई १३३ मील की दूरी के स्थान पर २०० मील से अधिक है। फिर भी बैराट का निर्णय भटनेर के पक्ष में है क्योंकि चीनी तीर्थ यात्री का दक्षिण पश्चिम निश्चित ही दक्षिण पूर्व के स्थान पर गलती से लिखा गया था। अथवा मथुरा से बैराट की दूरी ८३ मील की कथित दूरी के स्थान पर लगभग २५० मील होती। यदि हम ५०० ली के स्थान पर १५०० ली पढ़ना स्वीकार कर लें तो भटनेर तथा बैराट की

तुलनात्मक स्थिति तीर्थ यात्री के विवरण से भली प्रकार मिल जायेगी क्योंकि हांसी के मार्ग से दोनों स्थानों के बीच की मार्ग दूरी लगभग २५० मील है। यह भी प्रायः सम्भव है कि प्रारम्भिक चीनी भाषा के शी अथवा सा में त्रुटि हो गई हो जो पो अथवा भा के समान है और यदि ऐसा है तो चीनी अक्षर पो ता तू लो भटस्थल अथवा भटनेर का प्रतिनिधित्व करेगा। भटनेर का अर्थ है "भटियों का दुर्ग" परन्तु नगर को बन्द अथवा बन्दू कहा जाता था जो सम्भवतः भटस्थल का संक्षिप्त स्वरूप हो जैसे मारू मरुस्थल का सामान्य संक्षिप्त स्वरूप है। परन्तु नाम एवम् स्थिति में मुखद समानताओं के होते हुए भी मेरा झुकाव इस विचार की ओर है कि सरहिन्द ही वह स्थान था जिसकी ओर तीर्थ यात्री ने सतद्रू की राजधानी होने का संकेत दिया है। इस निष्कर्ष की पुष्टि तीर्थ यात्री के इस कथन से होती है कि इस देश में स्वर्ण मिलता था। जहाँ तक मेरा ज्ञान है यह कथन सरहिन्द के उत्तर में निचली पहाड़ियों पर लागू होता है। जहाँ सतलज की कुछ छोटी सहायक नदियों में अब भी सोना मिलता है।

सरहिन्द को सतद्रू की राजधानी स्वीकार कर लेने से जिले की सीमाओं को इसके आकार से प्रायः निश्चित किया जा सकता है। पश्चिम तथा उत्तर में यह जिला शिमला के पड़ोस से लेकर लुधियाना के नीचे तिहाड़ा तक १०० मील से कुछ अधिक दूरी तक सतलज से घिरा हुआ है। दक्षिण में इसकी सीमा तिहाड़ा से अम्बाला तक लगभग १०० मील तक फैली हुई है तथा पूर्व में अम्बाला से शिमला तक लगभग इतनी ही विस्तृत है। इस प्रकार उल्लिखित व्यास में मैदानों में लुधियाना तथा सरहिन्द के जिलों सहित, शिमला के पश्चिम तथा दक्षिण के पर्वतीय राज्यों का पर्याप्त भाग सम्मिलित रहा होगा। चूंकि सतलज के पूर्व में यह ही एक मात्र जिला है जिसे उत्तरी भारत की सीमाओं में सम्मिलित किया जाता है अतः मेरा अनुमान है कि यह अवश्य ही पड़ोसी जलंधर राज्य का आश्रित रहा होगा।

ताकी अथवा पञ्जाब

सिन्धु से व्यास तक तथा पर्वतों के अधोभाग से मुल्तान के नीचे पाँच नदियों के सङ्गम तक पञ्जाब का सम्पूर्ण समतल उस राज्य के अन्तर्गत था जिसे ह्वेनसांग ने शे किया अथवा ताकी कहा है। ह्वेनसांग ने चीनी अक्षर सी को (टनक्काट) सी को टनक्काट के नाम से लिखित संस्कृत के त के लिये प्रयुक्त किया है। टनक्काट का नाम कन्हारी तथा कारली (१) में पश्चिमी कन्दराओं के शिलालेखों में कम से कम पाँच

(१) डा० स्टीवेंसन ने इस नाम को यूनानी क्षेनोक्रेटीज के पाली स्वरूप में पढ़ा है परन्तु कन्हरी तथा कारली के सभी शिला लेखों में इसे स्पष्ट रूप से एक नगर अथवा देश के नाम के रूप में लिखा गया है।

चार प्राप्त हुआ है। ह्वेनसांग की यात्राओं के विवरण में इस नाम को सो नो किया या सी किया लिखा गया है जिसके अंतिम दो अक्षर परिवर्तित किये गये हैं। यह अब्बुरिहान का दनका है जो—जैसा कि आगे देखा जायेगा—सम्भवत अमरावती के आधुनिक नगर के समीप कृष्णा नदी पर अवस्थित ० धरनी कोट के प्राचीन नगर के समान है। अत सी किया-ताकी का प्रतिनिधित्व करता है जो प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी में पञ्जाब के राज्य एवम इसकी राजधानी का नाम था, ठीक उसी प्रकार जैसे लाहौर रणजीतसिंह के राज्य एवम राजधानी का नाम था। राजधानी की स्थिति का उल्लेख बाद मे किया जायेगा। इतना उल्लेख पर्याप्त होगा कि यह राजधानी अधिक प्राचीन राजधानी शो की लो के कुछ ही मीलो के भीतर थी जिसे काफी समय पूव प्रोफेसर लासेन ने महाभारत के साकला (शाकल) अथवा एरियान के सांगला के अनुरूप बताया था। महाभारत म शाकल के निवासियो को मद्र, आरट्ट, जारटिक तथा बाहिक (१) कहा गया है तथा हेमचन्द्र के शब्द संग्रह मे बाहिकों को टक्को के समान बताया गया है। पुन राजतरङ्गिणी मे टक्क देश के जिले को गुज्जर (चेनाब नदी के समीप गुजरात) राज्य का भाग बताया गया है जिसे राजा अलखान ने विवश होकर ८८३ तथा ९०१ ई० के बीच काश्मीर को समर्पित कर देना पड़ा था। इन कथनो से स्पष्ट है कि साकल टक्को की शक्तिशाली जाति की प्राचीन राजधानी थी जिनके देश को उन्ही के नाम पर टक्कदेश कहा जाता था। ह्वेनसांग ने वस्तुत नवीन राजधानी के नाम का उल्लेख नही किया है परन्तु मेरा विश्वास है कि इसका नाम ताकी अथवा टक्कावर था जिसे मैं कण्ठस्थवर्ण क को श्वास म उच्चारित ह मे बदलने से Peutingerian सूची के टहोरा के अनुरूप स्वीकार करूंगा। इस सूची मे टहोरा को सिकन्द्रिया ब्यूसीफालस के विपरीत स्पातुरा से ७० रोमन मील ६४½ ब्रिटिश मील की दूरी पर बताया गया है।

अब मैं प्रारभिक मुसलमान लेखकों की ओर ध्यान दूंगा जिन्होने काश्मीर तथा सिंध का उल्लेख किया है। अत जिन्होंने इन दोनो प्रान्तो के मध्य पंजाब जैसे इतने महत्वपूर्ण देश का उल्लेख करने म शायद ही भूल की हो। सर हेनरी इलियट के अनुसार मसूदी ने ९१५ ई० म सिंध का उल्लेख इस प्रकार किया था। (२) "एस सिंघ

---

(१) महाभारत तथा विष्णु पुराण म इस नाम को वाल्हिक कहा गया है परन्तु कुलूटो का अनुसरण करने के कारण यह निश्चित प्रतीत होता है कि शुद्ध नाम बाहिक है।

(२) सर एच० एम० इलियट को पुस्तक 'भारत म मुस्लिम इतिहासकार' पृ० ५६ तथा प्रोफेसर डाउसन के सस्करण म इसका नाम ताफन लिखा गया है परन्तु स्प्रेंजर ने 'मसूदी' के अपने अनुवाद म इसके अनेक भिन्न नाम दिये हैं जैसे ताफी, ताकन ताफन तथा तावीन।

का मिहरान एस मिघ की उन्नत भूमि, बुद्ध के राज्य म किन्नौज (कन्नौज) से सम्बन्धित प्रदेश से, तथा काश्मीर, एल कन्धार एवम् एट ताकीन के सर्वज्ञात उदगम स्थानो स निकलती है। इसकी सहायक नदियाँ जो इन देशों से निकलती हैं एल मुल्तान तक चली जाती हैं तथा वहाँ से संयुक्त नदी को मिहरान का नाम प्राप्त होता है।" इस पुस्तकाश मे ताकीन शब्द का अभिप्राय निश्चित ही पंजाब की पहाडियों से रहा होगा। काबुल तथा सिंधु दोनो ही गान्धार अथवा एल कन्धार से होकर प्रवाहित होती हैं, झेलम काश्मीर से आती है तथा व्यास एवम् सतलज जालन्धर तथा कहलूर से होकर जाती हैं जो ह्वेनसांग के समय कन्नौज के अधीन थे। सिंध की अन्य सहायक नदियों मे केवल चेनाब तथा रावी रह जाती हैं अत इनका बहाव ताकीन राज्य से होकर रहा होगा। गान्धार तथा कन्नौज के उल्लेख मे ज्ञात होता है कि मसूदी ने नदियों के वास्तविक उद्गम स्थानो का उल्लेख नही किया वरन् उसने पहाड़ियों की निचली श्रेणियों का उल्लेख किया है जहाँ यह नदियाँ मैदानो मे प्रवेश करती हैं। अतः मसूदी के समय ताकीन मुल्तान के उत्तर म पंजाब के मैदानों एवम् निचली पहाडियो का नाम रहा होगा जो उस समय काबुल के ब्राह्मण राजा के अधीन थे।

सर हेनरी इलियट ने इस नाम को ताकीन पढा है तथा गिल्डीमिस्टर ने अपनी पुस्तक में ताफन लिखा है। प्रथम पाठ को अबुरिहान तथा रशीदुद्दीन का समर्थन प्राप्त है जो इस कथन मे सहमत है कि कलारजिक (लाफ्क) के विशाल हिमाच्छादित पर्वत जो अपने गुम्बद स्वरूप से डोमावेण्ड के सदृश है उनको ताकीशर तथा लोहावर की सीमाओं से देखा जा सकता है। इलियट ने एक गद्यांश में ताकाशर को शुद्ध कर काश्मीर लिखा है परन्तु यह परिवर्तन पूर्णत अस्वीकार्य है क्योंकि पर्वत का काश्मीर से दो फरसाग अथवा लगभग ८ मील दूर होने का विशेष उल्लेख किया गया है। कोई भी व्यक्ति इसी प्रकार कह सकता है कि सेन्टपाल का गिरजाघर लुग्गेट पहाडी तथा विण्डसर से दिखाई देता है। यहाँ जिस पर्वत का संकेत किया गया है वह काश्मीर के पश्चिम म दयमूर अथवा नागा पर्वत है जिसकी ऊंचाई २६६२९ फुट है तथा जिसे मैंने २०० मील दूर चिनाब नदी पर रामनगर से बारम्बार देखा है। इसी लेखक के एक अन्य पुस्तकाश म सर हेनरी ने इस पर्वत को (१) कलारचल कहा है तथा दोनो स्थानों का जहाँ से यह पर्वत देखा जा सकता है उसने ताकस तथा लोहावर का नाम दिया है। यह ताकस अथवा ताकाशर मेरे विचार म ह्वेनसांग के सोकिया अथवा ताकी तथा मसूदी के ताकीन नामक स्थान है।

(१) यदि यह पर्वत इब्नबतूता के कराचल अथवा "कालापर्वत" के समान है तो नांगा पर्वत से इसकी अनुरूपता प्राय निश्चित है क्योंकि बर्फ के न होने के कारण नङ्गा पर्वत काला दिखाई देता है।

[illegible] हुदेवलत एवं प्रथम मुस्लिम लेखक है जिसने टाकी का उल्लेख किया है तथा जिसने ८२१ ई० में पूर्व की यात्रा की थी, जब उसकी यात्रा का विवरण लिखा गया था। ताक्क का उल्लेख करते हुए उसने लिखा है कि यह बहुत बड़े विस्तार का क्षेत्र नहीं था तथा यहाँ का राजा दुर्बल था तथा पड़ोसी राजकुमारों का आश्रित था। परन्तु उसने यह भी लिखा है कि उसके पास "सम्पूर्ण भारत की सब श्रेष्ठ गोर वर्ण स्त्रियाँ थीं। चूँकि फारसी चरित्र में ताक्क तथा ताकीन लगभग एक समान है अत ताक्क को पञ्जाब के अनुरूप समझने में मुझे कोई हिचक नहीं है जहाँ (पञ्जाब) की स्त्रियाँ विशेषत निचली पहाड़ियों की स्त्रियाँ, भारत में सबसे गोर वर्ण एवम् श्रेष्ठ हैं।

इब्न-खुरदाद बा ने—जिसकी मृत्यु ९१२ ई० में हुई थी, ताफ के राजा को प्रसिद्धि में बलहा रा से द्वितीय स्थान पर बताया है। अन्त में, काजविनी ने तैफन्द को दुगम पर्वत के शिखर पर एक सुदृढ भारतीय दुर्ग कहा है जिसे महमूद गजनी ने १०२३ ई० में अपने अधिकार में कर लिया था। यह विवरण सांगला की वास्तविक पहाडी से मिलता है जो तीन ओर से प्राय अगम्य है तथा चौथी ओर से जल के कारण सुरक्षित है।

ताकीन, ताफन, ताफक, ताफा, ताकश तथा ताकीशर के अल्पमात्र भिन्नता वाले नामों को मैं केवल ताकी अथवा ताकीन के मूल स्वरूप के विभिन्न उच्चारण मात्र समझता हूँ जिन्हे स्वरो की विशिष्ट चिह्नो के बिना लिखने पर भिन्न भिन्न प्रकार से पढ़ा जा सकता है। एम० रिनाड ने इसे ताबन लिखा है जिसे स्वरों के विशिष्ट चिह्नों के अभाव मे ताफन के अन्य स्वरूप के रूप मे भिन्न भिन्न प्रकार से पढ़ा जा सकता है। अतः मेरा यह निष्कर्ष है कि देश के नाम का वास्तविक स्वरूप ह्वेनसांग द्वारा दिया गया टाकी अथवा टाका था। राजधानी का नाम सम्भवत या तो शाकीन था अथवा तक्कावर, जिनमे प्रथम नाम काजविनी के तैफन्द स ठीक-ठीक मिलता है तथा दूसरा नाम पेटिंगेरियन सूची के ताहोरा से मिलता है। मैं इसे प्राय निश्चित समझता हूँ कि यह नाम टाक अथवा टक जाति से लिया गया होगा जो एक समय पञ्जाब के अधिपति शासक थे तथा जो आज भी झेलम तथा रावी के बीच निचली पहाड़ियों में अनेक कृषक जातियों के रूप में निवास करते हैं।

इस जाति के पूर्ववर्ती महत्व को सम्भवत इस तथ्य से भली भाँति दिखाया जा सकता है कि प्राचीन नागरी स्वरूप जो बामियान से लेकर यमुना के तट तक सम्पूर्ण प्रदेश मे अब भी प्रचलित है, उसे टाकरी नाम दिया गया था जिसका कारण सम्भवत यह था कि इस विशिष्ट स्वरूप को टाकों अथवा टक्कों ने प्रचलित किया था। मैंने इस भाषा के स्वरूप को सिन्धु के पश्चिम तथा सतलज के पूर्व बस्तियों में और साथ ही साथ कश्मीर तथा कांगड़ा के ब्राह्मणों में इसी नाम से प्रचलित पाया है। शिमला तथा — कश्मीर एवम् कांगड़ा की मुद्राओं पर इसका प्रयोग किया गया है। इसे मण्डी

के सती स्मारकों तथा पिन्जोर के शिलालेखों में भी देखा जा सकता है और अन्त में, काश्मीर की राजतरङ्गिणी की एक मात्र प्रतिलिपि टाकरी लिपि में सुरक्षित रखी गई थी। मैंने पेशावर तथा शिमला के बीच २६ विभिन्न स्थानों से इस वर्ण माला की प्रतिलिपियाँ प्राप्त की है। इनमे अधिकाश स्थानो मे टाकरी को मुण्डा तथा लुण्डी (अथवा मुण्डे लुण्डे) भी कहा जाता है परन्तु इन शब्दो के अर्थ अज्ञात हैं। इस वर्ण-माला को मुख्य विशेषता यह है कि स्वरो को व्यञ्जना के साथ नही जोडा जाता परन्तु छोटा 'अ' के एक मात्र अपवाद को छोड उन्हें अलग-अलग लिखा जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस वर्णमाला म गणनात्मक सख्याओ के प्रारम्भिक अक्षरो का लगभग वही स्वरूप है जैसा स्वरूप वतमान समय मे प्रयोग की जाने वाली सख्याओ का है।

सातवीं शता॰्दी म ताकी राज्य तीन प्रान्तो में विभाजित था, उत्तर तथा पश्चिम मे ताकी, पूर्व में शोरकोट तथा दक्षिण मे मुल्तान। ताकी प्रान्त में सिन्धु नदी स व्यास नदी तक मुल्तान जिले के उत्तर का भू-भाग अथवा सिन्ध सागर, रिचना तथा बारी के तीन दोआबा के उत्तरी भागों सहित सम्पूर्ण चज दोआब सम्मिलित था। शोरकोट प्रान्त में इन दोआबा के मध्य भाग सम्मिलित थे तथा मुल्तान प्रान्त मे इनक निचले भाग सम्मिलित थे। यह भी सम्भव है कि मुल्तान का अधिकार क्षेत्र सिन्धु के पश्चिम और साथ ही साथ सतलज के पूर्व फैला हुआ हो जैसा कि अकबर के समय में था।

ताकी अथवा उत्तरी पजाब

ताकी प्रान्त ने प्राचीन भारत के प्रसिद्ध स्थानों मे अनेक स्थान सम्मिलित थे जिनमें कुछेक सिकन्दर के युद्धो म प्रसिद्ध हुए, कुछेक को बौद्ध इतिहास मे ख्याति प्राप्त हुई और अय स्थान केवल जनसाधारण की दूर-दूर तक फैली हुई प्रथाओं मे प्रसिद्ध हुए थे। निम्नलिखित सूची में प्राचीन स्थानों में सर्वाधिक महत्व के स्थानों के नाम पश्चिम से पूर्व उनकी भौगोलिक स्थिति क अनुसार दिये गये हैं। दोआबो के नामो का प्रचलन अकबर ने दो नदियों के नामो को मिला कर किया था। इस प्रकार चज, चेनाब तथा झेलम नदिया के दोआब का सक्षिप्त नाम है, रिचना, रावी तथा चेनाब का तथा बारी, व्यास तथा रावी नदियो के बीच के स्थान का सक्षिप्त नाम है।

सिन्ध सागर दोआब { (१) जोबनाथ नगर अथवा भिड / (२) बुकेफला अथवा दिलावर

चज के दोआब { (३) निकेया अथवा मोंग / (४) गुजरात

रिचना दोआब	(५) शाकल अथवा सागला (६) तावी अथवा असरूर (७) नरसिंह अथवा रांसी (८) अम्मकाटिस अथवा अम्बका
बारी दोआब	(६) लोहावर अथवा लाहौर (१०) कुसावर अथवा कसूर (११) चिना पट्टी अथवा पट्टी

जोवनाथनगर अथवा भिड

भिड अथवा भेडा का आधुनिक नगर भेलम क बायें अथवा पूर्वी तट पर अव-स्थित है परन्तु नदी के दूसरे तट पर अहमदाबाद के समीप खण्डरों का अत्यधिक विस्तृत टीला है जिसे पुराना भिड अथवा राजा जोवनाथ अथवा चोवनाथ के रूप मे जोवनाथ नगर कहा जाता है। इस स्थान पर नमक के काफलों के दो बडे माग क्रमश लाहौर तथा मुल्तान की ओर मुड जाते हैं और प्राचीन समय की राजधानी इसी स्थान पर थी तथा मेरा विश्वास है कि सिकन्दर महान् के समकालीन सोफीटीज की राज-धानी भी इसी स्थान पर थी। एरियन के अनुसार सिकन्दर ने सोपीथोस की राज-धानी के स्थान पर ही वह स्थान निश्चित किया था जहाँ क्रेटरस तथा हेफस्टियन को नदी के दोनो तटो पर अपना पडाव डालकर स्वय सिकन्दर क नेतृत्व मे नौकाओं क बडे एवम फिलिप के नेतृत्व म सैनिका के मुख्य दल की प्रतीक्षा करनी थी। चूंकि सिक न्दर निश्चित स्थान पर तीसरे दिन पहुँच गया था अत हम जानते हैं कि सोफीटीज की राजधानी हाईडस्पीज पर, निकाया से भरी नौकाओं की तीन दिन की यात्रा पर थी। अब भिड नौका यात्रा द्वारा मोग से केवल तीन दिन की यात्रा की दूरी पर है जो जैसा कि मैं दिखाने का प्रयत्न करुगा—प्राय निश्चित ही निकाया का स्थिति थी। जहाँ सिकन्दर ने पोरस को पराजित किया था। पिण्ड दादन खाँ द्वारा अपना स्थान ग्रहण किये जाने के समय तक भिड ही देश के इस भाग का सदैव मुख्य नगर था। भिड के स्थान पर ही चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने ४०० ई० मे झेलम नदी को पार किया था तथा ग्यारह शताब्दी पश्चात् साहसी बाबर ने भारत मे अपना प्रथम सैनिक अभि-यान भिड के विरुद्ध चलाया था।

सोफीटीज के शासन क्षेत्र के सम्बन्ध म प्राचीन उल्लेख परस्पर विरोधी है। स्ट्रैबो के कथन म इस प्रकार लिखा है—कुछ लेखको ने एक राजा सोपीथीज के देश कथइया को दो नदियों (हाईडस्पीज तथा अकेसीनीज) क मध्य क प्रदेश म अवस्थित बताया है। कुछ लेखकों ने इस अकेसीनीज तथा हाईड्राओटीज के दूसरी ओर एक अन्य पोरस प्रथम पोरस के भतीजे—जिसे सिकन्दर ने बन्दी बना लिया था—की सीमाओं पर अवस्थित बताया है और उन्होने उसके देश को गाधारिस कहा है।' मेरा विश्वास

है कि इस नाम को गुन्दलबार अथवा गुन्दर बार के आधुनिक जिले के अनुरूप समझा जा सकता है। बार शब्द का प्रयोग प्रत्येक दोआब के मध्य भाग के लिये किया गया है जिसकी ऊंची भूमि में दोनों नदियों का जल सिंचाई कार्य हेतु नहीं पहुँचाया जा सकता। इस प्रकार सन्दल अथवा सन्दर बार झेलम एवम् चेनाब के मध्य चज दोआब के मध्य भाग का नाम है। गुन्दल बार दोआब का ऊपरी भाग जिसको लेकर वर्तमान गुजरात जिला बनाया गया है उस समय सिकन्दर के प्रतिद्वन्दी प्रसिद्ध पोरस के अधिकार में था तथा सन्दर बार दोआब का ऊपरी भाग उसके भतीजे, अन्य पोरस के अधिकार में था जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने गडारोडाय के पास शरण ली थी। टिप्पणी कारों ने इस नाम को बदल कर गङ्गारीडाय अथवा गङ्गा तट के निवासी कर दिया है परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दिवोडारस की पुस्तक सम्भवत सब शुद्ध है तथा गडारीडाय गङ्गडारिस जिले के पड़ोस के निवासियों का नाम रहा होगा जो सोफीटीज के अधीन थे।

भारतीय राजा का शासन हाईडस्पीस तथा अकेसिनीज के मध्य दोआब तक ही सीमित नहीं था क्योंकि स्ट्रैबो ने लिखा है कि "सोपीथीज की सीमाओं में सेंधा नमक का एक पर्वत है जो (नमक) सम्पूर्ण भारत के लिये पर्याप्त है।" चूंकि यह विवरण नमक की पहाड़ियों की सब नात खानों की ओर संकेत करता है अत सिन्ध सागर दोआब का सम्पूर्ण ऊपरी भाग सोपीथीज के राज्य में रहा होगा। अतः उसका अधिकार क्षेत्र पश्चिम में सिन्धु से लेकर पूर्व में अकेसीनीज तक फैला हुआ था और इस प्रकार उसमें वर्तमान पिण्ड दादन तथा शाहपुर के सम्पूर्ण जिले सम्मिलित थे। प्लिनी के लेख में दिये गये एक देश के नाम के दो अक्षरों में साधारण अदला बदली करने से भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नमक की मूल्यवान खानें सोपीथीज अथवा सोफीटीज के राज्य में थी। प्लिनी द्वारा इस देश के नाम ने सभी टिप्पणी कारों को अभी तक दुविधा में रखा है। प्लिनी का कथन है कि "जिस समय सिकन्दर महान् अपने भारतीय अभियान पर था अलबानिया के शासक ने उसे एक असामान्य आकार का कुत्ता भेंट में दिया था। जिसने उसके सामने ही एक शेर तथा एक हाथी दोनों पर ही सफलता पूर्वक आक्रमण किया था। उसके अनुकर्ता सोलिनस ने देश के नाम में किसी प्रकार के परिवर्तन के बिना इसी कथा को दोहराया है। अब स्ट्रैबो डियोडोरस तथा कर्टियस के संयुक्त साक्षी से हम जानते हैं कि सिकन्दर को इन लड़ाकू कुत्तों की भेंट देने वाला भारतीय राजा सोपीथीज था। अत वह ही अलबानिया का शासक रहा होगा। प्रथम दो अक्षरों की साधारण अदला-बदली से मैं इस नाम को लबानिया पढ़ने का प्रस्ताव करता हूँ। इस प्रकार अलबान लबान बन जायगा जिससे तुरन्त ही यह संकेत मिलता है कि अभी तक के अविदित नाम का मूलरूप संस्कृत का 'लवण' था। प्लिनी ने पर्वत का नाम ओरोमेनस रखा है तथा उसका कथन है कि यहाँ के राजा को स्वर्ण

अथवा मोतियों की अपेक्षा नमक से अधिक आय प्राप्त होती थी। यह नाम सम्भवतः संस्कृत के रोमक के लिये लिखा गया है जो पण्डितों के अनुसार रूमा नामक देश की पहाड़ियो से निकाले गये नमक का नाम है। एच० एच० विलसन ने रूमा को साम्भर के अनुरूप बताया है और चूंकि रोम का अर्थ नमक है अतः यह सम्भव है कि राजपूताना की साम्भर झील तथा पञ्जाब की नमक की पहाड़ियों दोनों को ही यह नाम दिया गया हो।

सिकन्दर के इतिहासकारो ने सोफीटीज, उसके देश तथा उसकी अधीन जनता के सम्बन्ध मे अनेक विचित्र एवम् विस्तृत विवरण सुरक्षित रखे हैं। स्वयं राजा के सम्बन्ध मे कर्टियस ने लिखा है कि वह बर्बर लोगों में सुन्दरता के लिये प्रख्यात था डियोडोरस ने यह जोड़ दिया है कि वह छ फुट लम्बा था। मेरे पास यूनानी कारीगरी की एक मुद्रा है जिसके एक ओर टोप धारण किए हुए एक सिर बनाया गया है और दूसरी ओर एक विशिष्ट नाम सहित खड़ा मुर्गा दिखाया गया है। इस बात को विश्वास करने में अनेक अच्छे कारण हैं कि यह मुद्रा भारतीय राजा से सम्बन्धित रही होगी। इसका चेहरा अति होदण तथा विशिष्ट आकृति के लिये उल्लेखनीय है। सोफीटीज की जनता भी अपनी व्यक्तिगत सुन्दरता के कारण प्रसिद्ध थी। डियोडोरस के अनुसार वह अपनी सुन्दरता को सुरक्षित रखने के लिए उन सभी बच्चो को हत्या कर देते थे जो सुन्दर नही होते थे। स्ट्रैबो ने कथायी की इसी वस्तु का उल्लेख किया है परन्तु उसने चूंकि यह लिखा है कि यह लोग सब सुन्दर व्यक्ति को अपना राजा चुना करते थे, उसका विवरण सोफीटीज की जनता के लिये ही दिया गया होगा क्योंकि सांगला के कथाइयों का अपना कोई राजा नही था। फिर भी कथायी तथा सोफीटीज की जनता के सम्बन्ध मे दिये गये सभी लेखकों के विवरणों मे इतनी अधिक गड़बड़ी है कि यह अति सम्भव प्रतीत होता है कि वह दोनों एक ही जनता के नाम थे। निश्चित ही यह एक दूसरे के पड़ोसी थे और चूंकि दोनों की विशिष्ट प्रथायें एक समान प्रतीत होती हैं और व्यक्तिगत सुन्दरता में समान रूप से उल्लेखनीय हैं। अतः मेरा निष्कर्ष है कि वह एक ही जाति के विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित रहे होगें।

बुकेफल अथवा दिलावर

सिकन्दर अथवा पोरस के बीच युद्ध का स्थान काफी लम्बे समय से विद्वानो की कल्पना शक्ति एवम् आकर्षण केन्द्र रहा है। न्यायप्रिय एलफिन्स्टन ने इसे जलालपुर के विपरीत बताया है परन्तु बर्नर्स इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यह स्थान झेलम के समीप रहा होगा, क्योंकि यह तरतारी से आने वाले विशाल मार्ग पर अवस्थित है। सिकन्दर को इस मार्ग का अनुसरण करते हुए बताया गया है। १८३६ में जनरल कोर्ट ने इस विषय पर विवेचना की थी जिन्हें अपने प्रारम्भिक सैनिक प्रशिक्षण एवम् पञ्जाब

में लम्बी अवधि के निवास से निरीक्षण हेतु प्राप्त असाधारण अवसरों से किसी सुनिश्चित विचार पर पहुँचने के सम्भव साधन प्राप्त हुये थे। जनरल कोर्ट ने सिकन्दर के पडाव को झेलम में निश्चित किया, नदी पार करने का स्थान झेलम से ऊपर ३ कोस अथवा ६ मील की दूरी पर खिलीपटम में, पोरस के साथ युद्ध का स्थान झेलम से ८ मील पूर्व जावा नदी पर पट्टी कोटी में, तथा निकाया की स्थिति को वेस्सा अथवा भेसा के स्थान पर बताया, जो पधी अथवा पट्टी कोटी के ३ मील दक्षिण पूर्व में है। स्वर्गीय लार्ड हार्डिंग को इस विषय में अत्यधिक रुचि थी और उन्होंने १८४६ तथा १८४७ में मेरे साथ दो बार इस विषय पर पत्र व्यवहार किया था। उनका विचार मेरे विचार से मिलता है कि सिकन्दर का पड़ाव सम्भवतः जलालपुर के समीप था। अगले वर्ष जनरल कोर्ट ने पोरस एवम् सिकन्दर के युद्ध क्षेत्र का विस्तृत विवरण छापा था जिसमें उन्होंने सिकन्दर के पड़ाव को झेलम में तथा पोरस के पडाव को नदी के दूसरे तट पर नौरङ्गाबाद के समीप बताया था। नदी पार करने के स्थान को उन्होंने झेलम से लगभग १० मील ऊपर भूना में तथा युद्ध क्षेत्र को सुखचेनपुर के १ मील उत्तर पकराल के समीप निश्चित किया था। १८६३ तक यह प्रश्न इसी स्थिति में रहा और उस समय पञ्जाब के अपने दौरे पर मुझे जलालपुर से लेकर झेलम तक हाईडस्पीस के तटों का समुचित निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त हुआ।

सिकन्दर की गतिविधियों पर विवेचना करने से पूर्व मैं जलालपुर से झेलम के मध्य नदी के साथ-साथ विभिन्न स्थानों का पश्चिम की ओर से वहाँ पहुँचने के सभी मार्गों सहित उल्लेख करना उचित समझता हूँ। अब हम उस स्थान का निर्णय कर लेंगे जो कुर्केफल के विवरण से सर्वाधिक समानता रखता है तो हम सिकन्दर के पड़ाव के रूप में जलालपुर तथा झेलम के अपेक्षाकृत दावों पर निश्चय करने की स्थिति में हो जायेंगे। इस विवेचन में मैं जिन दूरियों का उल्लेख करूंगा वह सभी वास्तविक माप से ली गई है।

झेलम नगर, जलालपुर से ३० मील उत्तर पूर्व तथा लाहौर से ठीक १०० मील उत्तर, उत्तर पश्चिम में नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। प्राचीन नगर के अवशेषों में वर्तमान नगर के पश्चिम लगभग १२०० फुट वर्गाकार एवम् ३० फुट ऊंचा एक विशाल ध्वस्त टीला सम्मिलित है जो टूटी हुई ईंटों एवं चीनी के बर्तनों से ढंके खेतों से घिरा हुआ है। वर्गाकार टीले को मैं दुर्ग के खण्डहर समझता हूँ कहा जाता है कि इसका नाम पुट्टा था। वर्षा के पश्चात् इस टीले से आज भी अनेक मुद्रायें प्राप्त होती हैं परन्तु वह मुद्रायें जिन्हें मैं एकत्रित कर सका था वह सभी पश्चात्वर्ती इण्डो सीथियन राजाओं, काबुल के ब्राह्मणों तथा काश्मीर के राजाओं से सम्बन्धित थीं। चूंकि जनरल कोर्ट तथा जनरल एबाट ने पिछले वर्षों में इसी प्रकार की तथा इससे पूर्व समय की अनेक मुद्रायें प्राप्त की थी अतः यह निश्चित है कि यह नगर ईसा की

प्रथम शताब्दी से पूर्व बस रहा होगा। परन्तु उत्तरी पञ्जाब से होकर जाने वाले दो मुख्य मार्गों में एक पर अवस्थित होने के इतने अधिक लाभ हैं कि मेरे विचार में अधिक प्राचीन समय में यह नगर बसा होगा। पुराने टीले की खुदाई में प्राप्त बड़ी बड़ी ईंटों की प्राप्ति से इस विचार की पुष्टि होती है।

दारापुर के समीप का ध्वस्त नगर जिसका बर्नस तथा कोर्ट ने उल्लेख किया है—झेलम से २० मील नीचे तथा जलालपुर से १० मील ऊपर नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। उनके समय में यह टीला निर्जन था परन्तु १८३२ ई० के लगभग दिलावर के निवासियों पश्चिम की पहाड़ी पर अवस्थित गाँव को त्याग कर ध्वस्त नगर के स्थान पर बस गये थे। उस समय से पूर्व इस स्थान को प्रायः पिण्ड अथवा 'टीला' कहा जाता था यद्यपि इसका वास्तविक नाम उधम नगर अथवा उद्‌नगर कहा जाता है। बर्नीस ने भी इसी नाम का उल्लेख किया है परन्तु कोर्ट ने जिन्होंने इन खण्डहरों की ओर दो बार संकेत किया है, किसी नाम का उल्लेख नहीं किया है। हो सकता है कि उन्होंने इन नामों को गधीराखी के अंतर्गत माना हो जिसके खण्डहरों को उन्होंने 'जलालपुर के समीप से लेकर दारापुर तक हाईडस्पीस के' तटों पर फैल गये बताया है। इस विवरण के अनुसार यह खण्डहर लम्बाई में ६ अथवा ७ मील से कम नहीं होंगे। मैं यह सम्भव समझता हूँ कि दो विभिन्न स्थानों के मध्य कुछ शङ्का रही है जिन्हें मिलाकर खण्डहरों का एक ही विस्तृत क्षेत्र बना दिया गया है। गिरझाक, जिसे मैं कोर्ट के गधीराखी का मूल स्वरूप समझता हूँ जलालपुर के उत्तर में पहाड़ी के शिखर पर एक प्राचीन ध्वस्त दुर्ग है, जो जनसाधारण के अनुसार अति विस्तृत था। परन्तु यह दारापुर से कम से कम ८ मील की दूरी पर है तथा गहरी कन्दरा खाइयों द्वारा तथा जिन पहाड़ियों के अधोभाग में दिलावर अवस्थित है उन पहाड़ियों की ऊँची खड़ी श्रेणियों द्वारा दारापुर से अलग कर दिया गया है। बर्नस ने भी प्राचीन नगर को "तीन अथवा चार मील" विस्तृत कहा है परन्तु यह निश्चित ही अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि मैं खण्डहरों को लम्बाई में एक मील तथा चौड़ाई में आधा मील से बाहर नहीं ढूँढ़ सका था। इन अवशेषों के अंतर्गत लगभग आधा मील की दूरी पर दो विशाल टीले तथा उनके मध्य दो छोटे टीले हैं। दक्षिणी टीले जिस पर दिलावर अवस्थित है—शिखर पर लगभग ४०० फुट वर्गाकार है तथा अधोभाग में यह १०० अथवा १२०० फुट है एवं इसकी ऊँचाई ५० से ६० फुट है। उत्तरी टीला जिस पर दारापुर अवस्थित है—६०० फुट वर्गाकार तथा ३० से ३० फुट ऊँचा है। इन टीलों के मध्य के खेत टूटी ईंटों तथा चीनी के बर्तनों से ढके हुए हैं तथा कहा जाता है कि सम्पूर्ण स्थान पर एक ही नगर के अवशेष हैं। दिलावर के भवनों की दीवारें इस टीले से खोद कर निकाली गई विशाल पुरानी ईंटों से बनाई गई हैं जो आकार में दो प्रकार की हैं। एक ११½×८½×३ इंच मोटी है और दूसरी इससे केवल आधी मोटाई की है।

दिलावर के टीले से पुरानी मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती हैं। कहा जाता है कि दिलावर से जलालपुर बाजार को यह वस्तुयें भेजी जाती हैं ठीक उसी प्रकार जैसे जोगनाथ नगर के अवशेषों से पिण्ड दादन को यह वस्तुयें प्राप्त होती हैं। मैंने जिन मुद्राओं को प्राप्त किया था वह प्रथम इण्डोसीथियन राजाओं, काबुल के ब्राह्मणों, काश्मीर के राजाओं तथा कारलूकी हजारा के प्रमुखों, हसन एवं उसके पुत्र मुहम्मद के समय की है। अतः यह स्थान ईसा काल के दूसरी शताब्दी के समय से बसा होगा। कहा जाता है कि राजा भारती ने—जिसकी आयु अज्ञात है—इस नगर का निर्माण करवाया था। फिर भी मेरा निष्कर्ष है कि अपनी स्थिति के कारण दिलावर अत्यधिक प्रारम्भिक काल में बस गया होगा क्योंकि यह झेलम के मार्ग पर उस बिन्दु पर नियन्त्रण करता है जहाँ पश्चिम की ओर से आने वाला निचला मार्ग बुनहार नदी के मुहाने में ठीक नीचे पहाड़ियों को छोड़ देता है।

जलालपुर नगर झेलम नदी के पश्चिमी तट पर उस स्थान पर अवस्थित है जहाँ कन्दार खाई नदी के पुराने मार्ग से मिल जाती है। यह नदी अब दो मील दूर है और मध्यवर्ती भाग जिसका कुछ भाग छोटे वृक्षों से ढका हुआ है—अब भी रेतीला है। कहा जाता है कि नगर का यह नाम अकबर के सम्मान में रखा गया था जिसके समय में सम्भवतः यह अधिक समृद्ध स्थान रहा होगा। परन्तु नदी के हट जाने के समय से और विशेष रूप से पिण्ड दादन की स्थापना के समय से यह स्थान धीरे धीरे घटता गया और अब यहाँ पर लगभग ४००० निवासियों सहित केवल ७३८ गृह हैं। इस स्थान को देखने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस नगर का प्रारम्भिक विस्तार वर्तमान विस्तार से लगभग तीन अथवा चार गुना अधिक रहा होगा। यह भवन नमक की पहाड़ियों के दूरस्थ पूर्वी छोर की अन्तिम ढलान पर बनाए गये हैं। यह स्थान सड़क से धीरे धीरे १५० फुट की ऊंचाई तक ऊपर उठ जाता है। इसका पुराना हिन्दू नाम गिरझाक बताया जाता है और चूंकि इस नाम को अब्दुल फजल की आइने-अकबरी में सिंध सागर का परगना (गिरजक देखें) लिखा गया है अतः हमारे पास इस बात का प्रमाण है कि यह नाम अकबर के समय तक प्रचलित था और उसके समय में इसका नाम बदल कर जलालपुर रखा गया था। परन्तु जनसाधारण मङ्गल की पहाड़ी के शिखर पर दीवारों के अवशेषों को आज भी गिरझाक नाम से पुकारते हैं। यह पहाड़ी जलालपुर से ११०० फुट ऊंची उठी हुई है। जन श्रुतियों के अनुसार गिरझाक पश्चिम उत्तर पश्चिम में ११ मील की दूरी पर बाघनवाल के पुराने मन्दिर तक विस्तृत था। परन्तु यह केवल अपनापन की सामान्य अभिव्यक्ति है जैसा कि अन्य सभी प्राचीन स्थानों के सम्बन्ध में किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह नगर किसी समय पश्चिम की ओर कुछ अधिक दूरी तक विस्तृत था क्योंकि उस ओर लगभग आधे मील की दूरी तक सम्पूर्ण स्थान पर चीनी के बर्तनों के टुकड़े अधिक मात्रा

में फैले हुए हैं। इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है क्योंकि यहाँ पर प्राप्त होने वाली मुद्रायें सिकन्दर के उत्तराधिकारियों के समय की हैं। परन्तु मेरा विश्वास है कि यह स्थान अत्यधिक पुराना है क्योंकि निचले मार्ग के दक्षिण पूर्वी छोर पर अपनी अनुकूल स्थिति के कारण निश्चित ही यह स्थान अधिक प्रारम्भिक काल में बस गया होगा। अत मेरा विचार है कि यह स्थान रामायण के गिरिराज के अनुरूप समझा जा सकता है। प्रथाओं में काम कमारत नाम के केवल एक राजा का नाम रखा गया है जिसे मोंग के संस्थापक मोगा की बहिन का पुत्र बताया जाता है। मुगलबेग ने इस नाम को गिर-जेहाक लिखा है और यहाँ के कुछ निवासियों द्वारा भी इस नाम को इस प्रकार लिखा जाता है क्योंकि यह नाम गिरि-जोहाक अथवा जोहाक की पहाड़ी से लिया गया है परन्तु इसके उच्चारण के अनुसार इसे भाक लिखा जाता है।

झेलम से जलालपुर तक नदी का भाग पर्वतों की लगभग दो समानान्तर श्रेणियों के बीच उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर है। यह श्रेणियाँ सामान्य रूप से टीला तथा पबी पहाड़ियों के नाम से ज्ञात है। टीला श्रेणी जो लम्बाई में लगभग ३० मील है, मङ्गला से नीचे नदी के विशाल पूर्वी घुमाव से लेकर जलालपुर के १२ मील उत्तर में बुनहार नदी तक पश्चिमी तट के साथ फैली हुई है। टीला का अर्थ है शिखर, अथवा पहाड़ी और इसका पूरा नाम गोरख नाथ का टीला है। इसका पुराना नाम बालनाथ का टीला था। यह दोनों नाम शिखर पर बने मन्दिर से लिये गये हैं जो प्रारम्भ में बालनाथ के रूप में सूर्य का मंदिर था परन्तु जहाँ वर्तमान समय में शिव के स्वरूप गोरखनाथ की पूजा होती है। फिर भी दूसरा नाम अधिक पुराना नहीं है क्योंकि मुगलबेग जिसने १७८४ तथा १७९४ ई० के बीच इस देश का सर्वेक्षण किया था—इसे "जोगियान-दो टिब्बी, अथवा जोगियों की अटारी कहा है जिनके मुखिया को बिलनाट कहा जाता है। अब्बुल फजल ने भी "बलनाट की कन्दरा" तथा जोगियों अथवा भक्तों का उल्लेख किया है जिनके नाम पर कभी-कभी इस पहाड़ी को जोगी टीला कहा जाता है। परन्तु बालनाथ का नाम सम्भवत सिकन्दर के समय से अधिक पुराना है क्योंकि प्लूटार्च ने लिखा है कि जिस समय पोरस सिकन्दर का सामना करने के लिए अपनी सेना को एकत्रित कर रहा था उस समय राजकीय हाथी सूर्य की पवित्र पहाड़ी की ओर भागा तथा मानव भाषा में उसने घोषणा की, कि "ए महान् राजा तुम गिगासोयस के वंशज हो अतः तुम सिकन्दर का विरोध त्याग दो क्योंकि स्वयं गिगासियस भी जोव की जाति से सम्बन्धित था।"

"सूर्य की पहाड़ी" बालनाथ का टीला का केवल अक्षरशः सा अनुवाद है परन्तु प्लूटार्च का कथन है कि इस बात में "हाथी का पहाड़ी" कहा जाता था जिसे मैं बालनाथ से इसकी अनुरूपता का एक अन्य प्रमाण समझता हूँ क्योंकि जनसाधारण में इस नाम को सामान्यतः बिलनाट पुकारा जाता है और चूँकि मुगलबेग ने इस इसी नाम से

लिखा है अत: मैसीडोनियाँ के निवासियों ने जो फारस से होकर उस समय वहाँ पहुँचे थे, इसे निश्चित ही गलती से फिल-नाय, अथवा पिल-नाय अर्थात् 'हाथी' समझ लिया होगा। परन्तु सिकन्दर का पड़ाव भेलम अथवा जलालपुर कहीं भी रहा हो यह निश्चित है कि मैसीडोनिया के निवासी इस महत्वपूर्ण पहाड़ी की ओर आकर्षित हुये होंगे क्योंकि यह हाईडसपेस से ५० मील के भीतर सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। इसकी सबसे ऊँची चोटी समुद्र से ३२४२ फुट अथवा नदी के स्तर से लगभग २५००० फुट ऊंची है।

नदी के पूर्वी तट पर पहाड़ियों की सभी श्रेणी भिम्बर के पड़ोस के लेकर रसूल तक लगभग ३० मील तक फैली हुई है। यह श्रेणी बहुत नीची है क्योंकि उच्चतम बिन्दु समुद्र से १४०० फुट से अधिक ऊंचा नहीं है तथा नदी के स्तर से ५०० फुट से कम है। परन्तु पहाड़ी के दोनो ओर ऊंचा नीचा एवम् दुगम स्थान एक रुकावट का काम करता है जो उतना ही दुगम है जितना कि एक अधिक उन्नत पहाड़ी हो सकती है। पञ्जाब पर अङ्गरेजी अधिकार हो जाने के समय तक इमी पहाड़ियों को रसूल के उत्तर पूर्व में पाँच मील की दूरी पर केवल कोहरी दर्रे के माग से तथा भेलम के दस मील दक्षिण पूर्व में खारियान दर्रे से एक पगडण्डी द्वारा पार किया जा सकता था। यद्यपि मुख्य सडक को अब खारियान दर्रे स ल जा ा जा चुका है फिर भी मूसलाधार वर्षा के पश्चात् यह सडक बन्द हो जाती है।

पश्चिम की ओर से हाईडस्पीस तक पहुँचने के लिए सिकन्दर के पास दो विभिन्न माग थे जिन्हें बाबर ने ऊपरी एवम् निचला माग कहा है। सिन्धु नदी से हसन अब्दाल अथवा शाहढेरी तक यह दोनों माग एक ही थे। तत्पश्चात् ऊपरी माग मारगल दर्रे के रास्ते रावलपिण्डी तथा मानिक्याल से होकर धमाक तथा बकराल तक चला गया है जिस स्थान से यह माग काहन नदी के माग से टीला श्रेणी के मध्य रिक्त स्थान स होते हुए रोहतास तक नीचे चला जाता है और वहाँ से खुले मैदान से होकर भेलम तक चला जाता है। बकराल से भेलम तक एक पगडण्डी भी थी जो रोहतास से लगभग छ मील उत्तर पूर्व में टीला श्रेणी से होकर जाती है। परन्तु यह दर्रा घोड़ों तथा ऊंटों के लिये सदैव भयानक तथा पैदल यात्रियों के लिए भी कठिन माग था। शाहढेरी से रोहतास के माग से भेलम तक यह ऊपरी माग ६४ मील लम्बा था परन्तु अब इसे नई सडक द्वारा घटाकर ८७ मील कर दिया गया है। इस माग के कारण रोहतास तथा धमाक के माग से दो लम्बे घुमाओं से बचा जा सकता है।

निचला माग तक्षशिला अथवा शाहढेरी से मारगल दर्रे से होकर जङ्गी तक जाता है जहाँ से यह चाऊन्तरा से होकर दुधियाल की ओर चला जाता है। इस स्थान पर यह सडक दो शाखाओं में बंट जाती है। दक्षिण की ओर जाने वाला माग चकवाल तथा नमक की खानों के माग से पिण्ड दादन तथा अहमदाबाद तक चला जाता है। पूर्व की ओर जाने वाला माग असनोट तथा बुन्हार नदी के माग से रसूल के विपरीत

दिलावर तक अथवा असनोट तथा मङ्क में माग से जलालपुर तक चला जाता है। शाहढेरी से दुधियाल की दूरी २५ मील है। वहां से असनोट तक ३३ मील है और तत्पश्चात् दिलावर अथवा जलालपुर तक प्रत्येक २ मील दूर है इस प्रकार इस माग से मडक की कुल दूरी ११८ मील है। यदि यात्री नमक की पहाड़ियों के अधोभाग से सीधे जलालपुर चला जाये तो उपर्युक्त दूरी को घटाकर ११४ मील किया जा सकता है। एक तीसरा माग भी है जो मानिक्याल स्तूप से ६ मील दक्षिण में मण्डरा पर ऊपरी माग से अलग हो जाता है तथा चकावाल तथा पिण्ड दादन के माग से जलालपुर चला जाता है। इस माग से शाहढेरी से जलालपुर तक की कुल दूरी ११६½ मील अथवा नमक की पहाड़ियों से माग को छोड़कर साथ जलालपुर जाने से ११२½ मील है। इन तीन विभिन्न मार्गों की दूरी क्रमशः १०६, ११४ तथा ११२½ मील है और दूरी ११२½ मील है।

अब प्लिनी ने सिकन्दर के सर्वेक्षक डियोगनितीज तथा बैटन द्वारा दिये गये माप के आधार पर तक्षशिला से हाईडसपीज की दूरी १२० रोमन मील आंकी है जो सिमथ के "प्राचीनता के काल में निश्चित ०९१९१ की दर से ११०½ मील के समान है। चूंकि प्लिनी की प्रत्येक प्रतिलिपियां में एक ही सख्या दी गई है अतः हम इसे सम-मार्ग की वास्तविक दूरी के स्वरूप में स्वीकार कर लेना चाहिए जिसका सिकन्दर ने तक्षशिला से हाईडसपीज पर अपने पड़ाव तक अनुसरण किया था। इस दूरी को शाहढेरी से झेलम तथा जलालपुर की उपरोक्त दूरियों से तुलना करने पर हम निस्संकोच झेलम को अस्वीकार कर सकते हैं जो कथित दूरी से कम से कम १६ मील कम है जबकि जलालपुर इस दूरी से २ मील से कम के अन्तर पर है। परन्तु एक अन्य आपत्ति भी है जो समान रूप से झेलम के विरुद्ध है। स्ट्रैबो के अनुसार "हाईडसपीज की दूरी तक सिकन्दर की यात्रा की दिशा अधिकांश रूप से दक्षिण की ओर थी। तत्पश्चात् हिपानीज तक यह पूर्व की ओर अधिक थी।" अब यदि मानचित्र पर सिन्धु नदी पर ओहिन्द से तक्षशिला के मध्य से झेलम तक सीधी रेखा को आगे बढ़ाया जाए तो यह रेखा गुजरात तथा सोना से होकर जलन्धर तथा सरहिन्द तक चली जाएगी। चूंकि गङ्गा नदी तक जाने के लिए यह सबसे उत्तरी मार्ग है जिसका सम्भवतः सिकन्दर अनुसरण कर सकता था अतः झेलम से होकर उसका माग एक निरन्तर सीधी रेखा पर रहा होगा और यह स्ट्रैबो के स्पष्ट कथन का पूर्ण विरोधी है। यदि हम जलालपुर के दावे को स्वीकार कर लें तो यह कठिनाई दूर हो जायेगी क्योंकि दिशा में परिवर्तन २५ डिग्री पूर्व में अवश्य रहा होगा। झेलम के विरोध में तीसरी आपत्ति यद्यपि पिछली आपत्तियों के समान ठोस आपत्ति नहीं है फिर भी यह एक ही विचार के पक्ष में एक अतिरिक्त साक्षी के रूप में महत्वपूर्ण है। एरियान के अनुसार निकाया से हाईडसपीज में नीचे की ओर जाते समय नौकाओं का बेड़ा सोफियोज की राजधानी में

तीसरे दिन पहुँचा था। मैं यह पहले ही सिद्ध कर चुका हूँ कि सोपियीज का निवास जोबनाथ नगर अथवा अहमदाबाद में था जो लदी हुई नाव के लिए जलालपुर से तीन दिन की यात्रा पर परन्तु झेलम में छः दिन की यात्रा पर है। चूंकि इन प्रत्येक भिन्न परीक्षणों में सभी तथ्य जलालपुर के पक्ष में, और झेलम के उतने ही विरोधी हैं, अतः मेरा विचार है कि हम जलालपुर को सिकन्दर के पडाव के सम्भावित स्थान के रूप में उचित रूप से स्वीकार कर सकते हैं।

अब हमें यह देखना है कि जलालपुर के पास नदी एवम् प्रदेश सिकन्दर द्वारा हाइडसपाज को पार करने के अभियान तथा पोरस के साथ पश्चात्‌वर्ती युद्ध के कथित विवरण से किस प्रकार सहमत होगा। एरियन के अनुसार "नदी के तट पर बाहर की ओर निकला हुआ वन क्षेत्र था तथा पडाव से १७½ मील ऊपर तथा इसके ठीक सामने घने जङ्गल सहित एक टापू था।" कर्टियस ने भी घने जङ्गल वाले टापू का उल्लेख "उसके सैनिक अभियान पर पर्दा डालने योग्य स्थान" के रूप में किया है। उसने यह भी लिखा है कि "यहाँ पर एक गहरी खाई भी थी जो उसके पडाव से अधिक दूर नहीं थी तथा जिसमें न केवल पैदल सेना छिप सकती थी वरन् घुडसवार सेना भी छिपे रूप में रह सकती थी।" एरियन से हमें ज्ञात होता है कि यह खाई नदी के समीप नहीं थी क्योंकि "सिकन्दर अपनी सेना को तट से कुछ दूरी पर ले गया था ताकि शत्रु को यह आभास न हो कि वह घने जङ्गल अथवा टापू की ओर जा रहा है।" जलालपुर के उत्तर में एक खाई है जो दोनों इतिहासकारों द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार है। यह खाई कन्दनाला का पाट है जो अपने उद्‌गम स्थान से जलालपुर तक ६ मील के बाद मरुभूमि में लुप्त हो जाती है। इस खाई के ऊपर एक मार्ग सदैव रहा है परन्तु झेलम की ओर जाने वाली सडक दुर्गम थी। समुद्र से १०८० फुट तथा नदी स्तर से ३१५ फुट ऊँचे बन्दर शिखर से यह सडक ३ मील तक उत्तरी दिशा में काशी नामक एक अन्य खाई के साथ नीचे चली जाती है। तत्पश्चात् यह सडक अचानक पूर्व की ओर मुड जाती है और ६½ मील के बाद पुनः १½ मील दक्षिण की ओर जाती है जहाँ यह दिलावर से नीचे झेलम में मिल जाती है इस प्रकार जलालपुर से कुल दूरी ठीक १७ मील है। सिकन्दर की यात्रा की सम्भावना पर विचार करने के उद्देश्य से मैं स्वयं इस खाई के साथ साथ सडक पर गया था और मुझे सन्तोष है कि इस यात्रा में प्रथम आधे भाग में थोडे उतार चढाव के कारण होने वाली थकावट तथा दूसरे आधे भाग में मरुस्थल में चलने की कठिनाई को छोड अन्य कोई कठिनाई नहीं है। जैसा कि एरियन ने लिखा है, यह खाई "तट से कुछ दूरी पर है।" क्योंकि काशी का मोड झेलम से ७ मील की दूरी पर है और जैसा कर्टियस ने लिखा है यह खाई "अधिक गहरी खाई" भी है क्योंकि इसके प्रत्येक ओर पहाडियाँ १०० से २०० तथा ३०० फुट ऊँची उठ जाती हैं। अतः इस सम्बन्ध में दिये गये तीन प्रमुख

तथ्यों म इस खाई का विवरण प्राचीन इतिहासकारों के विवरण से ठीक-ठीक मिलता है।

अन्य छोटी-छोटी बातो मे एक बात मुझे नदी के उस भाग से विशेष रूप से सम्बन्धित प्रतीत होती है जो जलालपुर से ठीक ऊपर है। एरियन ने लिखा है कि सिकन्दर ने नदी तट के साथ साथ धावक प्रहरी नियुक्त किये थे जो एक दूसरे से केवल इतनी दूरी पर थे कि वह परस्पर देख सकें एवम् उसकी आज्ञायें प्रसारित कर सकें। अब, मेरा विश्वास है कि चैतन्य शत्रु के सम्मुख यह काय दिलावर तथा जलालपुर के मध्य नदी तट को छोड अन्य किसी स्थान पर नहीं किया जा सकता था। अन्य सभी भागों मे नदी के पश्चिमी तट पर कोई बाधा नही है परन्तु इस भाग मे घनी एवम् पथरीली पहाड़ियाँ नदी की ओर ढलवा हो जाती हैं तथा अकेले सन्तरियों के छिपाने के लिये पर्याप्त स्थान प्रदान करती हैं। चूकि नदी तट के साथ की दूरी १० मील से कम है तथा पड़ाव के पूर्वी छोर से यह ७ मील स अधिक दूर नही था अत इस बात को समझना सरल है कि सिकन्दर ने क्यो अधिक लम्बे भाग—जिस पर उसने स्वय आगे बढ़ना था—की अपेक्षा इस भाग पर सन्तरियों को नियुक्त किया था। नदी भाग मे एक चट्टान की उपस्थिति एक अन्य ऐसी बात है जहाँ कर्टियस के अनुसार एक नाव टकरा गई थी। आज भी कोटेरा, मेरियाल, मलिकपुर तथा शाह कबीर के स्थान पर नदी मे चट्टानें मिलती हैं और यह सभी स्थान दिलावर तथा जलालपुर के मध्य है। कोटेरा गाँव एक घने जङ्गल वाले उभडे भाग के अन्तिम छोर पर अवस्थित है जो दिलावर स एक मील नीचे नदी के ऊपर उभरा हुआ है इस घने उभडे भाग के साथ की चट्टान सहित मैं एरियन के आता तथा कर्टियस के पेत्रा के अनुरूप समझता हूँ। इस चट्टान के दूसरी ओर घने जङ्गल वाला टापू था जिसके कारण उभडे भाग का निचला भाग नदी के दूसरे तट से नहीं देखा जा सकता था। जलम के इस भाग में अनेक टापू हैं परन्तु जब एक ही वर्ष इनमे किसी एक टापू को समाप्त करने के लिये है तो २००० वर्षों के पश्चात् सिकन्दर के टापू को ढूँढने की आशा करना असङ्गत होगा। परन्तु १८४६ ई० म कोटेरा के सामने २½ मील लम्बा तथा आधा मील चौड़ा इस प्रकार का एक टापू था जो आज भी विशाल रेतीले तट के रूप म दिखाई देता है। चूकि यह यात्रा वर्षा ऋतु म हुई थी। अतः विशाल रेतीले तट के टापू पर झाऊ की झाड़ियों का निकल आना स्वाभाविक था जिनकी ऊँचाई पैदल सेना तथा पैदल घुड़सवारों की गतिविधियों को छिपाने के लिए पर्याप्त थी।

मेरे विश्वासानुसार दोनों पड़ावों की स्थिति इस प्रकार थी—तक्षशिला के मोफिस के नेतृत्व मे ५००० भारतीय सैनिकों सहित लगभग ५०,००० सैनिकों के साथ सिकन्दर का मुख्यालय जलालपुर म था तथा उसका पड़ाव सम्भवत जलालपुर से दो मील उत्तर पूर्व में शाह कबीर से लेकर जलालपुर के नीचे ४ मील पश्चिम दरियाए

पश्चिम से स्यादपुर तक विस्तृत था। पोरस का मुख्यालय मोंग से ४ मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में तथा जलालपुर से ३ मील दक्षिण पूर्व में मुहाबतपुर के पास रहा होगा। हाथियों, धुनधारियों तथा रथ सेना सहित उसको ५०००० सेना भी मैसोडोनिया की सेना के समान ही विस्तृत क्षेत्र में रही होगी अतः इसका विस्तार मुहाबतपुर से २ मील ऊपर तथा ४ मील नीचे रहा होगा। ऐसी स्थिति में सिकन्दर के पड़ाव का वाम पक्ष कोटेरा के घने उभड़े भाग से केवल ६ मील दूर रहा होगा जहाँ वह नदी को पार करने के प्रयत्न को गुप्त रखना चाहता था तथा भारतीय सेना का दाहिना पार्श्व मोंग से २ मील तथा कोटेरा के विपरीत बिंदु से ६ मील दूर रहा होगा।

चूंकि मेरा तत्कालिक उद्देश्य सिकन्दर एवं पोरस के युद्ध स्थल की पहचान करना है न कि युद्ध के उतार चढ़ाव का उल्लेख करना, अतः सिकन्दर के निजी पत्रों के आधार पर प्लूटार्च द्वारा युद्ध सम्बन्धी विवरण को उद्धृत करना पर्याप्त होगा—"उसने एक गहरी काली एवं तूफानी रात का लाभ उठाते हुए अपनी पैदल सेना के एक अंश तथा चुने हुए घुड़सवारों सहित भारतीयों से कुछ ही दूरी पर नदी के छोटे टापू पर अधिकार कर लिया। वहाँ पर उसे एवं उसके सैनिकों को अत्यधिक भयानक तूफान तथा गरजते बादलों एवम् चमकती हुई बिजली सहित वर्षा का सामना करना पड़ा।" परन्तु तूफान एवम् वर्षा के होते हुये भी वह आगे बढ़ते गये तथा छाती तक गहरे जल को पार करते हुये वह सुरक्षा पूर्वक नदी के दूसरे तट तक पहुँच गये। सिकन्दर के पत्रों को उद्धृत करते हुये (१) प्लूटार्च लिखता है, "नदी के पार पहुँच जाने पर वह घुड़सवार सेना सहित ढाई मील तक बढ़ गया और उसको पद सेना पीछे था। उसका यह अनुमान था कि यदि शत्रु अपनी घुड़सवार सेना सहित आक्रमण करे तो उसकी निजी सेना उससे श्रेष्ठ होनी चाहिये और यदि वह अपनी पद सेना की गतिविधियों को बढ़ाए तो उसकी पद-सेना, उनका सामना करने के लिए समय पर पहुँच सके।" एरियन से हमें पता चलता है कि जैसे ही शत्रु ने टापू एवं मुख्य भूमि के मध्य जल को पार करना आरम्भ किया उन्हें भारतीय गुप्तचरों ने देख लिया था और उन्होंने तुरन्त पोरस को सूचना दी। कुछ कठिनाइयों के पश्चात् नदी को पार करने पर सिकन्दर ने अपनी ६००० पद सेना तथा १०००० घुड़सवारों की छोटी सेना को सङ्गठित करने हेतु विश्राम किया तत्पश्चात् वह "५००० घुड़ सवारों सहित शीघ्रता

---

(१) 'सिकन्दर की जीवनी' में सर डब्लू नेपियर ने दोनों जनरलों की उचित सराहना की है। सिकन्दर द्वारा कारनिकम को पार करने के कार्य का उल्लेख करते हुए उनका कथन है कि 'सिकन्दर की सैनिक योग्यता के लिये इस कार्य की उसके हाईडस्पीज पार करने एवं पोरस को पराजित करने के कार्य से तुलना नहीं की जा सकती, उस महान व्यक्ति के सम्मुख वह उसी साहसिक कार्य को नहीं कर सकता था।'

से आगे बढ गया और पद सेना को सुविधानुसार एव अनुशासन पूर्वक आगे बढ़ने के लिये पीछे छोड गया।' जिस समय यह गतिविधियाँ हो रही थीं पोरस ने दो अथवा ३ हजार घुडसवारो एव एक हजार बोस रथो सहित अपने पुत्र को सिकन्दर का सामना करने के लिए भेजा। दोनो सेनायें नदी पार करने के स्थान से २६ मील, अथवा मोंग से लगभग दो मील उत्तर पूर्व मे आमने सामने खडी हुई। यहाँ गीली एव चिकनी मिट्टी पर रथ व्यर्थ सिद्ध हुए और सभी पर शत्रु का अधिकार हो गया फिर भी यह युद्ध तीव्र रहा होगा क्योकि सिकन्दर के प्रिय घोडे बुसेफलस को युवक राजकुमार (पोरस का पुत्र) ने घातक चोट दी थी और वह स्वय अपने ४०० साथियो सहित मारा गया था। जब पोरस को अपने पुत्र की मृत्यु की सूचना मिली तो तुरन्त ही उसने अपनी अधिकाश सेना लेकर सिकन्दर का सामना करने के लिए प्रस्थान किया। परन्तु एक मैदान म पहुँचने पर जहाँ भूमि कठिन तथा चिकनी नही थी परन्तु ठोस एव रेतीली थी और उसके रथो की गतिविधियो के अनुकूल थी उसने अपना बढाव रोक लिया और अपनी सेना को युद्ध हेतु तैयार करने लगा। उसके २०० हाथी पद सेना के आगे लगभग एक प्लेथरन अथवा १०० फुट की दूरी पर पक्तिबद्ध खडे थे तथा उसके रथ एव घुडसवार पास म ही नियुक्त किये गये थे। इस प्रबन्ध के अनुसार उत्तर पूर्व की ओर सम्मुख सेना का अगला भाग नदी तट से सकनावाली तक लगभग ४ मील के क्षेत्र म फैला होगा और सेना का मध्य बिन्दु जहाँ तक सम्भव है वर्तमान मोंग नगर के स्थान पर रहा होगा। इस स्थान के चारो ओर मिट्टी ठोस एव रेतीली है परन्तु उत्तर पूर्व की ओर जहाँ सिकन्दर ने युवक भारतीय राजकुमार का सामना किया था भूमि पर ठोस लाल मिट्टी की तह जमी हुई है जो वर्षा ऋतु के पश्चात् भारी एव चिकनी हो जाती है। (१)

जब सिकन्दर ने भारतीय सेना की व्यूह रचना को देखा तो उसने अपनी पद-सेना की प्रतीक्षा के लिए तथा शत्रु के स्थानो का भेद लेने के लिए, पडाव डाल लिया। चूकि घुडसवार सेना म उसकी सेना पोरस की सेना से कहीं अधिक श्रेष्ठ थी उसने पोरस की सेना के मध्य भाग पर आक्रमण न करने का निश्चय किया क्योकि वहाँ हाथियो की सुदृढ पक्ति को अपार पद सेना की सहायता प्राप्त थी। उसने दोनो मोर्चों पर आक्रमण करने एव भारतीयो को अव्यवस्थित करने का निश्चय किया। स्वय सिकन्दर के नेतृत्व म सेना के दाहिने भाग ने शत्रु की घुडसवार सेना को हाथियों की

(१) मैं युद्ध के कुछ दिन पश्चात् शिशिर काल को युद्ध भूमि के वास्तविक निरीक्षण के पश्चात लिख रहा हूँ। उस समय देश म मूसलाधार वर्षा हो चुकी थी। दोनो ही युद्ध भूमि पहाडियों के दक्षिणी छोर तथा मोंग नगर के बीच एक ही स्थान पर लडे गये थे।

पंक्ति तक पीछे ढकेल दिया, तत्पश्चात् हाथियों की सेना आगे बढ़ी और मैसीडोनिया की सेना के बढ़ाव को रोक दिया। "पोरस ने जहां कहीं घुड़सवारों को बढ़ते देखा उसने हाथियों के साथ उनका सामना किया परन्तु यह सुस्त एवम् स्थूल पशु घोड़ों की तीव्र गतिविधियों का सामना न कर सके।" अन्त में घायल एवम् भयभीत हाथी मदमत्त होकर भाग खड़े हुए और अपनी एवम् शत्रु सेना को रौंदने लगे। तत्पश्चात भारतीयों की छोटी घुड़सवार सेना घेरे में आ गई और मैसीडोनिया निवासियों ने उसे पराजित कर दिया। लगभग सभी घुड़सवार मारे गये। भारतीय पद सेना के अधिकांश भाग पर चारों ओर से विजयी घुड़सवारों द्वारा आक्रमण होने लगा और यह सेना जो अभी तक शत्रु का सफलतापूर्वक सामना कर रही थी इस आक्रमण के बाद अस्त-व्यस्त हो गई और भाग खड़ी हुई। एरियान का कथन है कि तत्पश्चात् "क्रेटरस तथा उसके साथी सैनिकों ने, जो नदी के दूसरी ओर थे, मैसीडोनिया की सेना की विजय श्री का अनुमान लगाते ही नदी के पार हो गये और भागते हुए भारतीयों का भयानक रूप से वध किया।"

उपरोक्त कथन से, जिसे मैंने उद्धृत किया है यह स्पष्ट है कि सिकन्दर के पड़ाव से युद्ध क्षेत्र को देखा जा सकता था। अब, यह कथन भाग के आस-पास के भू भाग के लिए विशेष रूप से सत्य है। यह मैदान शाह कबीर के स्थान पर सिकन्दर के पड़ाव के पूर्व में सरलता पूर्वक देखा जा सकता था। निकटतम बिन्दु केवल दो मील की दूरी पर है। सिकन्दर के पड़ाव के रूप में जलालपुर के पक्ष में इस अन्तिम सुदृढ़ साक्षी के पश्चात् मैं इस रुचि पूर्ण प्रश्न पर विचार विमर्श समाप्त करता हूँ। परन्तु यूनान के इतिहासकार श्री ग्रोटे जैसे कुछ पाठक अब भी यह सोचते हैं कि जनरल एबाट ने अपने इस विचार के पक्ष में "अत्यधिक स्वीकार्य कारण" दिये हैं कि सिकन्दर का पड़ाव झेलम में था। अतः मैं यहाँ यह उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि पबराल गाँव जिसे उसने युद्ध क्षेत्र के रूप में चुना है झेलम से १८ मील से कम दूरी पर नहीं है। अतः सिकन्दर के पड़ाव से इसे देखना असम्भव है। मैं एबाट की निजी स्वीकृति को भी उद्धृत कर सकता हूँ कि सुखेत्र नदी का तल जो एक मील चौड़ा समतल है "भारी वर्षा के पश्चात् तीव्र धारा वाली नदी बन जाती है और अधिक रेत के कारण यह सैनिक अभियान के प्रतिकूल हो जाता है।" अब यह सुखेत्र नदी वस्तुतः पबराल तथा झेलम के विपरीत भारतीय पड़ाव के बीच पड़ता है और चूंकि हम जानते हैं कि युद्ध से पूर्व की रात मूसलाधार वर्षा हुई थी अतः युद्ध के समय में सुखेत्र को पार करना असम्भव रहा होगा और इसी प्रकार जड़ नदी को भी पार करना असम्भव रहा होगा, जो सुखेत्र नदी के ठीक नीचे झेलम में मिलती है। मध्य की इन दो नदियों के कारण जो चाहे गीली हों अथवा सूखी भारतीय सेना के लिये विशेष रूप से भारतीय सेना और उनके रथों को पार जाने के लिए समान रूप में बड़ी बाधा रही होगी।

बुकेफल की स्थिति पर विचार विमर्श अभी शेष है। स्ट्रैबो के अनुसार बुकेफल का नगर नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था जहाँ सिकन्दर ने इसे (नदी) पार किया था परन्तु प्लूटार्क का कथन है कि यह हाईडस्पीज के समीप उस स्थान पर था जहाँ बुकेफलस दफनाया गया था। परन्तु एरियान का कथन है कि इसका निर्माण उस (सिकन्दर) के पड़ाव के स्थान पर किया गया था तथा उसके अश्व की स्मृति में इसका नाम बुकेफल रखा गया था। डियोडोरस, कर्टियस तथा जस्टिन ने वास्तविक स्थिति को अनिश्चित छोड़ दिया है परन्तु वे सभी इस बात पर सहमत हैं कि यह निकाया की ओर आने वाली नदी के दूसरे तट पर था। जिसका निर्माण निश्चित ही युद्ध के स्थान पर किया गया था। हमारे पथ प्रदर्शन के लिए केवल इन विपरीत कथनों की उपलब्धि के कारण किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना कठिन है। स्ट्रैबो अथवा एरियान का अनुसरण करने के परिणाम स्वरूप हम बुकेफल के दिलावर अथवा जलालपुर के स्थान पर दिखाना पड़ेगा। दोनों स्थान मोंग के युद्ध क्षेत्र से समान दूरी पर है और मोंग को मैं निःसङ्कोच निकाया का स्थान समझता हूँ। यदि दोनों नगर एक ही योजनानुसार बनाए गए हों, जो कि असम्भव नहीं है तो बुकेफल के प्रतिनिधि के रूप में दिलावर अधिक अनुकूल है क्योंकि इसका ध्वस्त टीला आकार एवम् ऊँचाई में मोंग के समान है। एक अन्य स्थान पर मैंने इस बात की सम्भावना का उल्लेख किया है कि जिस जिले में दिलावर अवस्थित है उसका युगियाद अथवा युगियान नाम बुकेफालिया का संक्षिप्त नाम हो सकता है। परन्तु यह केवल एक अनुमान है। मैं केवल इस विषय पर इस तथ्य को छोड़ अन्य कुछ नहीं कह सकता कि जलालपुर का प्राचीन नाम निश्चित ही गिरजाक था जबकि दिलावर का नाम पूर्णतया अनिश्चित है क्योंकि उदि-नगर का नाम कम से कम तीन विभिन्न स्थानों के लिए प्रयुक्त किया गया है। दिलावर तथा जलालपुर के दावे, स्थिति सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण बिन्दु को छोड़ सम्भवतः सन्तुलित हैं और इस स्थिति में जलालपुर निश्चित ही श्रेष्ठ है और चूँकि यह श्रेष्ठता निकिदिया के संस्थापक के तीव्र निरीक्षण से नहीं बची होगी अतः मेरा विचार है कि जलालपुर ही बुकेफल के प्रसिद्ध नगर का स्थान रहा होगा।

निकाया अथवा मोग

मोग की स्थिति का उल्लेख पहले किया जा चुका है, परन्तु मैं यह दोहरा सकता हूँ कि यह नगर जलालपुर से ६ मील पूर्व में तथा दिलावर के दक्षिण में इतनी ही दूरी पर था। इसका उच्चारण मोग अथवा मूग किया जाता है परन्तु इसे लिखने में नासिका सम्बन्धी चिह्न का प्रयोग नहीं किया जाता और कहा जाता है कि इसका निर्माण राजा मोगा अथवा मूगा ने करवाया था। उसे राजा शङ्कहर भी कहा जाता है जिसे मैं शकों का राजा समझता हूँ। उसके बन्धु राम ने रामपुर अथवा राम नगर

आधुनिक रसून का निर्माण करवाया था जो मोंग के छ मील उत्तर पूर्व में तथा दिलावर के ठीक दूसरी ओर है। उसका राजा काम-कमारत गिरजाक अथवा जलालपुर का राजा था। प्राचीन ध्वस्त टीला जिस पर ग्राम अवस्थित है ६०० फुट लम्बा ४०० फुट चौड़ा तथा ५० फुट ऊंचा है और यह चारों ओर से अनेक मीलों तक दिखाई देता है। यहाँ पर पुरानी विशाल ईंटों से बने ६७५ गृह तथा ५००० निवासी हैं जो मुख्यत जाट हैं। पुराने कुए बहुत अधिक हैं और मुझे सूचना देने वाले के अनुसार उनकी ठीक सख्या १७५ है।

मैं यह पहले ही लिख चुका हूँ कि मोंग को मैं निकाया अर्थात् उस नगर का स्थान समझता हूँ जिसे सिकन्दर ने पोरस के साथ अपने युद्ध के स्थान पर बनवाया था। मेरे विचार में इस विषय पर प्राप्त साक्षी उतनी ही पूर्ण हैं जितनी कि हम आशा कर सकते हैं परन्तु मुझे अभी भी इस बात का विश्लेषण करना है कि किस प्रकार निकाया का नाम मोंग हो गया। इस तथ्य से कि श्री राबर्ट के तक्षशिला के शिलालेख में महाराजा मोगा का उल्लेख किया गया है। इस प्रथा की पुष्टि होती है कि नगर का निर्माण राजा मोगा ने करवाया था। अब, मोगा एवम् मोआ एक ही नाम है तथा मोआ अथवा मोअस की मुद्रायें मोंग में आज भी प्राप्त होती हैं परन्तु इन मुद्राओं पर सामान्य यूनानी चिह्नों से 'निक' बनता है जिसे मैं निकाया, अर्थात् मुद्रा बनाने के स्थान का सन्निप्त स्वरूप समझता हूँ। यदि यह अनुमान सही है और मैं विश्वास करता हूँ कि यह ऐसा ही है, तो निकाया महान राजा मोग का मुख्य मुद्रा नगर रहा होगा। अतएव यह अत्यधिक महत्वपूर्ण नगर रहा होगा। चूंकि राजा मोग को मोंग के संस्थापक के रूप में बताया जाता है अतः हम उचित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उसने मोगा ग्राम के नवीन नाम के अन्तर्गत इसका पुनर्निर्माण करवाया होगा अथवा इसका विस्तार करवाया होगा और मोगा ग्राम को बोलचाल की भाषा में मोगाँव अथवा मोंग कर दिया होगा। मोग के सभी इण्डो सीथियन राजकुमारों की मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है और मैं इस बात में सन्देह का कोई कारण नहीं देखता कि यह स्थान सिकन्दर के समय जितना पुराना है। नाम विहीन इण्डो-सीथियन राजा की ताँबे की मुद्रायें विशेष रूप से इतनी मात्रा में प्राप्त होती है कि उन्हें आस पड़ोस में सामान्यत मोगा साही कहा जाता है।

गुजरात

गुजरात नगर चेनाब नदी के ६ मील पश्चिम में झेलम से लाहौर जाने वाले मुख्य मार्ग पर अवस्थित है। प्रारम्भ में नगर को हैरात तथा जिले को हैरात देश कहा जाता था। (१) इसकी मूल स्थापना को बचनपाल नामक एक सूर्यवंशी राजा

(१) मेरे विचार में हैरात, अराट्ट का उच्चारित स्वरूप है।

से सम्बन्धित बताया जाता है जिसके सम्बन्ध में अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसके पुनर्निर्माण को अमो ?' नामक एक गुम्बद से सम्बन्धित किया जाता है जिसका नाम आश्चर्यजनक रूप से गुज्जर के राजा अलखान से मिलता है जिसे शंकर वर्मा ने ८८३ तथा ९०१ ई० में पराजित किया था। इन जनश्रुतियों का अनुसरण करने में गुजरात को, ११०२ ई० में नष्ट हुआ तथा ९९६ हिजरी अथवा १५८८ ई० में अकबर के शासन में गुज्जरों द्वारा पुनः निर्मित बताया जाता है।

सांगल अथवा सांगला,

सिकन्दर के सांगला का काफी समय पूर्व शाकला का स्थान तथा बौद्धों का सागल स्वीकार कर लिया गया है और यदि सम्भवतः ६३० ई० में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने इस स्थान की यात्रा न की होती तो इसकी स्थिति सम्भवत आज भी अनिश्चित रहती। एरियन तथा कर्टियस दोनों ने सांगला को हाइड्राओटीज अथवा रावी के पूर्व में बताया है परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा सूची से पता चलता है कि यह रावी के पश्चिम में और जहाँ तक सम्भव है वर्तमान सांगला वाला टीबा अथवा सांगला पहाड़ी के स्थान पर था। मैं सर्वप्रथम १८३९ ई० में इस स्थान से परिचित हुआ था जब मुझे विल्फोर्ड द्वारा एकत्रित मुगलयुग के हाथ के बने मानचित्र की एक प्रतिलिपि प्राप्त हुई थी जिसने एशियाटिक रिसर्चेज में इसकी स्थिति का तीन बार उल्लेख किया है परन्तु मैं १८५४ ई० तक इस स्थान का कोई भी विवरण प्राप्त नहीं कर सका। उस समय मुझे कर्नल जी हैमिल्टन जो इस स्थान पर गये थे—तथा कैप्टन पर्स जिन्होंने इस स्थान का सर्वेक्षण किया था—से यह सूचना प्राप्त हुई कि सांगला वस्तुतः एक पहाड़ी है जिस पर भवनों के चिह्न शेष हैं तथा जिसके एक ओर जल भी उपलब्ध है। पञ्जाब में भ्रमण करते समय मैं स्वयं इस पहाड़ी पर गया था और अब मैं सन्तुष्ट हूँ कि यह ही सिकन्दर का सांगला रहा होगा यद्यपि इसकी स्थिति इतिहासकारों द्वारा दिये गये विवरण के समदृश्य नहीं है।

ह्वेनसांग के समय में शो-की-लो अथवा शाकल जर्जर अवस्था में था और जिले का मुख्य नगर शो किया अथवा चीकिया था जिसे टक अथवा टक भी पढ़ा जा सकता है। तीर्थ यात्री ने इस नवीन नगर को शाकल के २३ मील उत्तर पूर्व में बताया है परन्तु उस क्षेत्र के भीतर चूँकि सम्पूर्ण प्रदेश खुला हुआ एवम् समतल था अतः यह निश्चित है कि इङ्गित स्थान पर किसी नगर के होने की सम्भावना नहीं हो सकती फिर भी इसी दिशा में परन्तु १६ मील की दूरी पर मुझे असरूर नामक एक विशाल नगर के अवशेष मिले थे जो तीर्थ यात्री द्वारा टसेकिया के नवीन नगर के दिये गये उल्लेख से प्रायः ठीक ठीक मिलता है। इस स्थान की स्थिति को निश्चय करना आवश्यक है क्योंकि आने के समय तथा जाने के समय भी ह्वेनसांग के आँकड़े शाकल के स्थान पर

इससे सम्बन्धित हैं। काश्मीर से तीर्थ यात्री, पूंछ के मार्ग से निचली पहाड़ियों के एक छोटे नगर राजपुरा गया था जिसे अब राजौरी कहा जाता है तत्पश्चात् वह दक्षिण पूर्व में एक पर्वत के ऊपर तथा चिन त-लो-पो किया नामक नदी के पार शी-यी-पू लो अथवा जयपुरा (सम्भवत हफीजाबाद) तक गया था। जहाँ वह एक रात ठहरा था। उपर्युक्त नदी चन्द्रभाग अथवा आधुनिक चेनाब है। दूसरे दिन वह स्मीकिया पहुँचा था इस प्रकार कुल दूरी ११६ मील थी। चूंकि दक्षिण पूर्व दिशा की यात्रा तीर्थ यात्री को रावी के पूर्व में ले जाती है, अत हम उसकी त्रुटि पूर्ण दिशा को शुद्ध करने के सर्व श्रेष्ठ साधन के रूप में उसके पश्चात्वर्ती मार्ग में किसी ज्ञात स्थान को ढूँढ़ना होगा। इस निश्चित स्थान को हम शी-लान तो लो, सब प्रसिद्ध जलन्धर में प्राप्त करते हैं जिसे तीर्थ यात्री ने ५००×२०×१४० अथवा १५० लो अथवा स्मीकिया के पूर्व में कुल मिलाकर ६६० अथवा ७०० लो की दूरी बताया है। अत जहाँ तक सम्भव है यह स्थान राजौरी तथा जलन्धर के समान दूरी पर था। अब मानचित्र पर सीधी रेखा से असरूर इन दोनों स्थानों से ठीक ११२ मील की दूरी पर है और चूंकि यह निस्सन्देह अधिक विस्तार का एक अति प्राचीन स्थान है, मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि यह स्थान ह्वेनसांग द्वारा वर्णित स्मीकिया नगर रहा होगा।

६३० ई० में तीर्थयात्री ने शाकल की दीवारों को पूर्णतः जर्जर अवस्था में पाया था परन्तु उनकी नीवें शेष थीं जिनका घेरा लगभग ३½ मील था। इन खण्डहरों के मध्य में उस समय भी प्राचीन नगर का एक छोटा भाग बसा हुआ था जिसका व्यास केवल १ मील था। नगर के भीतर एक सहस्र भिक्षुओं का मठ था जिन्होंने हिनयान अथवा बौद्ध धर्म के साधारण सिद्धान्तों का अध्ययन किया था। इसके साथ ही २०० फुट ऊँचा एक स्तूप था जहाँ पिछले चार बुद्धों ने अपने पद चिह्न छोड़े थे। यहाँ से १ मील से कुछ कम, उत्तर पश्चिम में २०० फुट ऊँची एक अन्य स्तूप था जिसका निर्माण सम्राट अशोक ने उस स्थान पर करवाया था जहाँ पिछले चार बुद्धों ने न्याय पर विवेचना की थी। सांगला वाला टीबा एक त्रिभुज के दो किनारे बनाती हुई एक छोटी चट्टानी पहाड़ी है जिसका खुला भाग दक्षिण पूर्व की ओर है। पहाड़ी का उत्तरी भाग २१५ फुट ऊँचा उठ जाता है परन्तु उत्तर पूर्वी भाग केवल १६० फुट ऊँचा है। त्रिकोण का भीतरी भाग धीरे धीरे दक्षिण पूर्व की ओर ढलवाँ होता जाता है और फिर एकाएक यह धरती से ३२ फुट ऊँचे अति ढलवाँ तट पर समाप्त हो जाती है। इस तट पर किसी समय ईंटों की एक दीवार थी जिनके चिह्न मैं पूर्वी छोर पर ढूंढ सका था जहाँ यह चट्टान के साथ मिल जाती थी। सम्पूर्ण क्षेत्र में टूटी हुई ईंटें फैली हुई हैं जिनमें मुझे दो वर्गाकार आधार-शिलाएँ मिली थीं। ये ईंटें बहुत बड़े आकार अर्थात् १५×६×३ इंच बड़ी हैं। पिछले १५ वर्षों में इन ईंटों को बहुत बड़ी संख्या में हटा दिया गया है। लगभग ४००० ईंटें उत्तर में ६ मील की दूरी पर

इन ईंटों को सर्वे-
माट नामक विशाल गाव मे ले जाई गई थी और इतनी ही मात्रा में
क्षण कार्य हेतु एक अटारी के निर्माण के लिए पहाडी के शिखर पर ले जाया गया था।
पहाडी का अधोभाग प्रत्येक ओर स १७०० से १८०० फुट अथवा व्यास में प्राय एक
मील था। पूर्वी तथा दक्षिणी किनारो पर पहाडी पर पहुँचने का माग आधा मील
लम्बी तथा लगभग एक चौथाई मील चौडी एव विशाल दलदल स ढका हुआ था जो
प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु म सूख जाती है परन्तु वर्षा काल म इसकी सामान्य गहराई प्राय
तीन फुट होती है। सिकन्दर के समय म यह एक तालाब रहा होगा जिसकी गहराई
प्रति वर्ष की वर्षा मे पहाडी से बह कर आने वाली मिट्टी से धीरे धीरे कम हो गई है।
पहाडी के उत्तर पूर्वी किनारे पर दो विशाल भवनो के अवशेष है जिनसे मुझे १७½ ×
११ × ३ इच के बहुत बडे आकार की पुरानी ईंटें प्राप्त हुई थी। समीप ही एक पुराना
कुआ है जिसे कुछ समय पूर्व भ्रमण-कारी यात्रियो द्वारा साफ किया गया था। उत्तर
पश्चिमी भाग मे १००० फुट की दूरी पर २५ से ३० फुट ऊची तथा लगभग ५० फुट
लम्बा मुण्डा-का पुरा नामक एक निचला पर्वत पृष्ठ है जो पहल ईंटों से बन भवनों से
ढका हुआ था। दक्षिण में १½ मील की दूरी पर अरना तथा छोटा सागला नामक
तीन छोटी पहाडियों का एक अन्य पर्वत पृष्ठ है। यह सभी पहाडियाँ उसी गहरी भूरे
चट्टान की है जो चनोट तथा चनाब के पश्चिम कराना पहाडियो में मिलती है। इस
चट्टान मे अधिक लोहा होता है परन्तु ईंधन की कमी के कारण इसे निकाला नहीं
जाता। ह्वेनसांग ने भी लोहे की उत्पत्ति का उल्लेख किया है।

इस विवरण की चीनी तीर्थ यात्री के विवरण से तुलना करने पर मैं केवल दो
स्थानों को पहचान सकता हूँ। प्रथम स्थान आधुनिक नगर का स्थान है जो व्यास में
प्राय एक मील था तथा खडहरो पर अवस्थित था। इस मैं स्वय पहाडी ही समझता
हूँ जो विवरण स ठीक ठीक मिलती है तथा निचले खुले समतल के किसी भी भाग की
अपेक्षा इसकी सुरक्षित स्थिति के कारण लोग यहाँ आकर बस गये होंगे। दूसरा अशोक
का स्तूप है जो नगर क भीतर मठ के उत्तर पश्चिम मे एक मील से कम दूरी पर
अवस्थित था। इस मैं मुण्डा-का-पुरा नामक उत्तर पश्चिम क निचले पर्वत पृष्ठ के
अनुरूप समझता हूँ जिसके उत्तर पश्चिमी छोर पर उच्चतम बिन्दु ४००० फुट अथवा
नगर के त्रिभुजा कोण क्षेत्र से तीन चौथाई से अधिक दूरी पर है। पहाडी के उत्तर
तथा पश्चिम भाग के समतल में टूटे हुए चीनी के बतन तथा ईंटों के टुकडे अधिक दूरी
तक फैले हुए है जिनसे यह पता चलता है कि यह नगर किसी समय इन दोनों दिशाओं
में विस्तृत रहा होगा। परन्तु इन अवशेषों का सम्पूर्ण व्यास १½ अथवा १¾ मील
अथवा ह्वेनसांग के माप के आधा से अधिक प्रतीत नहीं होता। शाकल के सम्बन्ध में
ब्राह्मणों द्वारा दिये गये विवरण को प्रोफेसर लासेन ने अपनी 'पेंटापोटामिया इंडिका'
में महाभारत से लिया होगा। उस कविता के अनुसार मद्रों की राजधानी शाकल,

इरावती अथवा रावी के पश्चिम अपगा नामक छोटी नदी पर अवस्थित थी। मद्रों को आरटिक तथा बाहिक भी कहा जाता था। इस स्थान पर पूर्व की ओर से पीलू वन के सौम्य मार्गों से पहुँचा जा सकता था।

"पीलू पञ्जाब के इस प्रदेश में समान्यतः लकड़ी है और रिचना दुआब में विशेष रूप से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पीलू वन के इन सौम्य मार्गों पर यात्री को दुर्भाग्य-वश लुटेरों द्वारा अपने कपड़ों से वञ्चित किए जाने का भय था। महाभारत के लेखक के इस विवरण की पुष्टि ह्वेनसांग ने ६३० ई० में की थी तथा पुनः मैंने १८६३ ई० में इस विवरण की पुष्टि की है। शाकल छोड़ने पर चीनी तीर्थ यात्री पूर्व की ओर पा लो-शी वृक्षों के वन में गया था जहाँ उसके दल को ५० लुटेरों का सामना करना पड़ा, जिन्होंने उनके कपड़े छीन लिए। नवम्बर १८६३ में मैं पूर्व की ओर से पीलू वृक्षों के निरन्तर जङ्गल से होकर शाकल के समीप गया था तथा मैंने पहाड़ी के अधोभाग पर अपना डेरा गाड़ा था। रात्रि के समय डाकुओं के दलों ने तीन बार डेरे तक पहुँचने का प्रयत्न किया परन्तु मेरे प्रहरी कुत्तें की सतर्कता के कारण उन्हें देख लिया गया। एम० जुलीन ने ह्वेनसांग के पो-लो शी को पालासा अर्थात् ढाक वृक्ष कहा परन्तु वन में चूंकि ह्वेनसांग के समय से पूर्व एवम् पश्चात् पीलू वृक्ष थे, मैं पी लो शी को शुद्ध कर पीलो लिखने का प्रस्ताव करूँगा। मेरा अनुमान है कि चीनी तीर्थ यात्री की जीवनी के सम्पादक ने जो सम्भवतः पीलू शब्द से अनभिज्ञ था—ह्वेनसांग द्वारा बारम्बार उल्लिखित सब ज्ञात पलासा को इस विश्वास के कारण बदल दिया था कि ऐसा करने से वह एक आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण शुद्धि कर रहा है।

यह प्रदेश मद्र देश अथवा मद्रा के जिले के नाम से अब भी सब ज्ञात है। कुछ लोगों के अनुसार यह व्यास से झेलम तक विस्तृत था परन्तु अन्य लेखक इसे केवल चेनाब तक विस्तृत बतलाते हैं। जहाँ तक अपगा नदी का सम्बन्ध है, मेरा विश्वास है कि इसे आयक नाम की एक छोटी नदी के अनुरूप समझा जा सकता है जो स्यालकोट के उत्तर पूर्व में जम्मू की पहाड़ियों से निकलती है। स्यालकोट के पश्चात् आयक नदी सोधरा के समीप पश्चिम की ओर मुड़ जाती है जहाँ वर्षा ऋतु में इसका अतिरिक्त जल चेनाब नदी में चला जाता है। तत्पश्चात् यह नदी बद्धा तथा नन्नवा से भुगाला तक दक्षिण दक्षिण पश्चिम दिशा में मुड़ जाती है तथा असरूर से कुछ मीलों की दूरी तक यह इसी दिशा में प्रवाहित होती है। यहाँ यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है जो असरूर के पूर्व एवम् पश्चिम से होकर गुजरने के बाद सांगला वाला तीबा के २½ मील दक्षिण में पुनः मिल जाती है। राजस्व सम्बन्धी सर्वेक्षण मानचित्रों में इस नदी के मार्ग को सांगला के दक्षिण-पश्चिम में १५ मील की दूरी तक दिखाया गया है जहाँ इसे नन्नवा नहर कहा जाता है। असरूर के एक बुद्धिमान व्यक्ति ने मुझे सूचित किया था कि उसने दक्षिण-पश्चिम में २० कोस की दूरी तक नन्नवा का मार्ग देखा

था और यह भी बताया कि वह सदा से यही सुनता आया है कि यह नदी अधिक दूर जाकर रावी में गिरती है। अत यही एरियान की 'छोटी नदी' रही होगी जिसके समीप, हाइड्रस्पीज के साथ अपने सङ्गम से नीचे अकेसिनीज के ११½ मील पूर्व सिकन्दर ने अपना पडाव डाला था। अत उस समय आयक का प्रवाह सागला के नीचे अधिक दूरी तक रहा होगा और सम्भवत यह रावी में गिरती होगी जैसा कि मुझे सूचना देने वाले ने कहा है। असरूर तथा सागला के समीप आयक अब सभी ऋतुओं म सूखी रहती है पर नु असरूर स केवल २४ मील ऊपर ठकवाल के स्थान पर शाहजहाँ के शासन काल के समय तक इसमे जल रहा होगा क्योंकि उस समय उसके पुत्र दारा शिकोह ने यहाँ स अपने आखेट स्थान शेखूपुरा तक एक नहर बनवाई थी जिसे आयक अथवा भिलरी नहर भी कहा जाता है।

शाकल के बौद्ध उल्लेख, मुख्य रूप से बुद्ध धर्म से सम्बन्धित इसके इतिहास का सकेत करते हैं। इनमे सात राजाओं की एक कथा आती है जो राजा कुश की पत्नी प्रभावती का हरण करने के लिए सागल की ओर गये थे। परन्तु राजा हाथी पर चढ़ कर नगर के बाहर उन्हें मिला तथा "मैं कुश हूँ", की घोषणा इतनी ऊँची आवाज मे की कि उसका गर्जन सम्पूर्ण ससार में सुना गया और सातों राजा भयभीत होकर भाग गये। यह कथा अम्ब काप के सात बन्धुओं एव बहनो से सम्बन्धित हो सकती है। अम्ब काप सागला क पूर्व में केवल ४० मील की दूरी पर है। ईसा काल के प्रारम्भ से पूर्व सागल राजा मिलिन्द की राजधानी थी जिसका नाम पवित्र नागसेन के चतुर विरोधी के रूप मे सभी बौद्ध देशों में प्रसिद्ध है। उस समय इस प्रदेश को योन अथवा यवन कहा जाता था जो सम्भवत यूनानी विजेताओं अथवा उनके इन्डो-सीथियन उत्तराधिकारियों की ओर सकेत करता है। परन्तु नागसेन को चूंकि बुद्ध के ४०० अथवा ५०० वर्ष पश्चात् जीवित बताया गया है अत मिलिन्द का समय अनिश्चित है। मिलिन्द ने स्वय कहा है कि उसका जन्म अलसद्दा मे हुआ था जो सागल से २०० योजन अथवा १४०० मील की दूरी पर था। अत निस्सदेह वह एक विदेशी था और अतिशयोक्तिपूर्ण दूरी के होते हुए भी मैं उसके जन्म स्थान को काबुल के लगभग ४० मील उत्तर म हिन्दूकुश के अधोभाग पर अवस्थित सिकन्द्रिया ओपीयाने के अनुरूप समझूँगा। इससे कुछ समय पश्चात् शाकल मिहिरकुल क अधीन था जिसने मगध के राजा बालादित्य के विरुद्ध एक असफल आक्रमण स अपना राज्य खो दिया था। परन्तु विजेता द्वारा स्वतन्त्र कर दिए जाने क पश्चात् उसने कपट पूर्वक काश्मीर पर अधिकार कर लिया। मुझे ६३३ ई० तक शाकल के किसी उल्लेख का भान नहीं है। ६३३ ई० में ह्वेनसांग इस स्थान पर गया था और उसने टा-क्या के पडोसी नगर को एक विशाल राज्य की राजधानी के रूप म बताया है जो सिन्धु से व्यास तक तथा पहाड़ियों के अधोभाग से पाँच नदियों के सगम तक विस्तृत था।

। सांगला के अधिकृत वर्णन एरियन तथा कर्टियस के ऐतिहासिक उल्लेखों एवं डियोडोरस के आकस्मिक उल्लेख तक सीमित हैं। कर्टियस ने हमें केवल "एक विशाल नगर कहा था जो न केवल एक दीवार से वरन् एक दलदल से भी सुरक्षित था।" परन्तु यह दलदल गहरी थी क्योंकि यहाँ के कुछ निवासी इसे तैर कर पार कर गये थे। एरियन ने इसे एक झील कहा है परन्तु उसने यह भी जोड़ दिया है कि यह गहरी नहीं थी, नगर की दीवार के समीप थी तथा एक द्वार इस ओर खुलता था। उसने नगर को कृत्रिम एवं प्राकृतिक रूप से ईंटों की दीवारों एवं झील के कारण सुरक्षित बताया था। नगर के बाहर एक निचली पहाड़ी थी जिसे कथायियों ने अपने पड़ाव के सुरक्षार्थ गाड़ियों की तीन पंक्तियों से घेर रखा था। इस छोटी पहाड़ी को मैं उत्तर पश्चिम ओर मुण्डापुरा नामक निचले पथरीले पृष्ठ के अनुरूप समझूंगा जो निश्चित ही नगर की दीवारों के बाहर प्रतीत होगा क्योंकि टूटी हुई ईंटें एवम् बर्तनों के टुकड़े इतनी दूर तक नहीं फैले हुए हैं। मेरा निष्कर्ष है कि पहाड़ी का पड़ाव मुख्य रूप में अन्य स्थानों से भाग कर आये हुए व्यक्तियों द्वारा स्थापित किया गया था जिनके लिए जन पूर्ण नगर में कोई स्थान नहीं था। यह पहाड़ी नगर की दीवारों के समीप रही होगी क्योंकि यूनानियों द्वारा गाड़ियों की द्वितीय पंक्ति का छिन्न भिन्न किये जाने के पश्चात् कथायियों ने नगर में शरण ली थी और नगर के द्वार बन्द कर दिये थे। अतः यह स्पष्ट है कि गाड़ियों की तीन पंक्तियाँ पहाड़ी को केवल तीन ओर से घेर सकती थीं और चौथी दिशा में वह नगर की ओर खुली थी। इस प्रकार पहाड़ी अस्थाई एवम् बाह्य रक्षा पंक्ति के रूप में सम्बन्धित रही होगी जहाँ से सैनिक दबाव पड़ने पर दीवारों के पीछे सुरक्षित हो सकते थे। चूंकि सिकन्दर द्वारा अधिकार में ला गई गाड़ियों की संख्या केवल ३०० थी, यह पहाड़ी अति छोटी रही होगी क्योंकि यदि हम प्रत्येक पंक्ति में १०० गाड़ियों को स्वीकार करें तो भीतरी पंक्ति जहाँ वह १०, १० फुट के फासले पर खड़ी की गई थी। अधोभाग के तीनों ओर लम्बाई में १००० फुट से अधिक रही था। मध्य पंक्ति को भीतरी पंक्ति से ५० फुट आगे रखने पर इसकी लम्बाई १२०० फुट रही होगी और इसी दूरी के अनुसार बाह्य पंक्ति १४०० फुट अथवा एक चौथाई मील से थोड़ा अधिक रही होगी। अब यह मुण्डापुरा पहाड़ी के आकार से इतनी अधिक मिलती है कि मुझे अपनी अनुरूपता के सही होने का अधिक विश्वास होता है क्योंकि टालमी ने इन गाड़ियों का प्रयोग झील के बाहर अकेली रुकावट के रूप में किया था अतः हमें इनकी संख्या ज्ञात हो जाता है क्योंकि १७ फुट की दूरी पर ३०० गाड़ियाँ ५००० फुट से अधिक विस्तृत नहीं रही होगी। परन्तु झील के तट पर अनेक वृक्ष रहे होंगे अतः हो सकता है कि यह रुकावट ६००० फुट तक विस्तृत रही होगी। अतः, यह उल्लेखनीय है कि यह लम्बाई मेरे सर्वेक्षणानुसार बाह्य पंक्ति से ठीक मिलती है जो वर्षा ऋतु में झील के सर्वाधिक विस्तार को दिखाती है। मैं किसी दीवार अथवा खाई

का चिह्न नही देख सका जिसकी सहायता लेकर सिकन्दर ने नगर का घेरा डाला था परन्तु मैं असन्तुष्ट भी नही था क्योंकि दो हजार वर्षों की वर्षा ने इन्हें काफी समय पूर्व समाप्त कर दिया होगा।

कथायनो ने रात्रि के समय झील पार कर भगने का असफल प्रयत्न किया था परन्तु गाडियो की बाधा से वह आगे नहीं बढ़ सके और उन्हे पुन नगर मे खदेड दिया गया। तत्पश्चात् दीवार को सेंध लगा कर तोड दिया गया और आक्रमण के बाद इस स्थान पर यूनानियो का अधिकार हो गया। एरियन के अनुसार इस आक्रमण म १७,००० कथायन मारे गये तथा ७०,००० को बन्दी बना लिया गया। कर्टियस ने मृत कथायनो की सख्या ८००० दी है। मैं यह समझता हूँ कि त्रुटि अथवा अतिशयोक्ति के कारण एरियन क आकडे अशुद्ध हैं क्योंकि यह एक छोटा नगर था और ४०० अथवा ५०० वग फुट के पीछे एक व्यक्ति की दर से इस नगर में १२,००० स अधिक निवासी नही हो सकते। यदि हम इस सख्या का बाहर से भाग कर आने वाला की सख्या के कारण दुगना अथवा तिगुना भी कर दें कुछ तो सख्या लगभग १०,००० रही होगी। अत मैं एरियन की सख्याओं को ७,००० मृत एव १७,००० बन्दी पढ़ना चाहूँगा। इस प्रकार मृतकों की सख्या कर्टियस की सख्या स मिल जायेगी तथा उसकी कुल सख्या सम्भावित आकडा से मिल जायेगी।

कर्टियस तथा एरियन दोनो इस कथन मे सहमत हैं कि सिकन्दर ने सांगला के विरुद्ध जाने से पूव हाईड्राओटीज को पार किया था। अत जिस नदी के पूर्व में होना चाहिये था। परन्तु ह्वेनसाग के विस्तृत आकडे इतने यथार्थ हैं, महाभारत म इस का विवरण इतना स्पष्ट है तथा दोनों नामों की समानता इतनी स्पष्ट है कि उन्हें सरलता पूर्वक अस्वीकार नही किया जा सकता। अब, एरियन तथा कर्टियस दोनों ने यह लिखा है कि सिकन्दर गगा की ओर तीव्र गति से आ रहा था जब उसे सूचना मिली कि 'कुछ स्वतन्त्र भारतीया एव कथायनो ने उसके उस ओर अग्रसर होने पर उससे युद्ध करने का निश्चय कर लिया है। इस सूचना के मिलते ही सिकन्दर ने कथायनो की ओर प्रस्थान किया अर्थात् अपनी यात्रा की पूव दिशा को बदल कर उसने सागला की ओर प्रस्थान किया। शत्रु को अपने पीछे न छोड़ने की ही निरन्तर योजना थी जिसका सिकन्दर ने एशिया म अपने दैनिक अभियानों में अनुसरण किया था। जिस समय वह ईरान की ओर बढ़ रहा था, वह टायर पर घेरा डालने के लिये मुड गया, डारियस के हत्यार बीसस का पीछा करते समय वह दरङ्गियाना तथा अरकोसिया पर अधिकार करने क लिय दक्षिण की ओर मुड गया और जिस समय वह भारत म प्रवेश करने को उत्कृष्ट इच्छा रखता था वह अपने सीधे माग से मुड कर एओरनास का घेरा डालने चला गया था। कथायनों की ओर स भी समान उत्तेजना थी। टायर, दरगियाना तथा एओरनास के निवासी बजारियनों की भाँति ही वह सिकन्दर का

सामना करने के स्थान पर उसे टाल देना चाहते थे परन्तु आक्रमण होने की स्थिति में उन्होंने उसका सामना करने का निश्चय कर लिया था। उस समय सिकन्दर हाईड्राओटीज अथवा रावी के पूर्वी तट पर था और नदी से यात्रा करने के दूसरे दिन वह पिम्प्रम नगर पहुँचा था जहाँ उसने घोड़ों को आराम देने के विचार से पड़ाव किया था और तीसरे दिन वह सांगला पहुँचा था। चूँकि दो दिनों की यात्रा के पश्चात् ही उसे विश्राम करने पर बाध्य होना पड़ा अतः यह यात्रायें २५ मील प्रति दिन की दर की कठिन यात्रायें थीं जबकि अंतिम दिन की यात्रा १२ से १५ मील की साधारण यात्रा थी। अतः सांगला नदी तट के पड़ाव से ६० अथवा ६५ मील की दूरी पर रहा होगा। अब, लाहौर से सांगला पहाड़ियों की ठीक यही दूरी है जो (लाहौर) सम्भवतः सिकन्दर के पड़ाव का स्थान था जब उसे कथायनों के विरोध की सूचना मिली थी। अतः मेरा विश्वास है कि सिकन्दर ने गंगा की ओर जाने का अपना विचार तुरन्त छोड़ दिया और अधीनता अस्वीकार करने के दुःसाहस के परिणाम स्वरूप सांगला के निवासियों को दण्ड देने के लिये उसने रावी का पुल पार किया।

ताकी तथा असरूर

मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि असरूर ह्वेनसांग के चीकिया का सम्भावित स्थान था जो ६३३ ई० में पञ्जाब की राजधानी थी। यह लाहौर तथा पिण्ड भट्टियों के मध्य सड़क के २ मील दक्षिण में अवस्थित था और प्रथम स्थान से ४५ मील तथा द्वितीय स्थान से २४ मील की दूरी पर था। सांगला से सड़क की दूरी से यह १६ मील दूर है परन्तु सीधे मार्ग से यह दूरी १९ मील से अधिक नहीं है। इसके प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है परन्तु जनसाधारण का कथन है कि मूल रूप से इसे उदयनगर अथवा उदनगरी कहा जाता था और अकबर के शासन काल तक कई शताब्दियों तक यह स्थान निर्जन था। अकबर के समय में उप शाह नामक एक डोगर ने एक मस्जिद का निर्माण करवाया था जो टीले के ऊपर आज भी दिखाई देती है १८×१०×३ इन्च की विशाल ईंटों से जो खण्डहरों के चारों ओर प्राप्त हैं तथा प्रतिवर्ष की मूसलाधार वर्षा के पश्चात् यहाँ प्राप्त होने वाली इण्डो-सीथियन मुद्राओं की अपार संख्या से इस स्थान की कथित प्राचीनता की पुष्टि होती है। अतः यह स्थान ईसा काल से पूर्व की प्रथम शताब्दी जितना पुराना है और इसकी स्थिति से मैं इसे सिकन्दर का पिम्प्रम समझता हूँ।

असरूर के अवशेषों में १५६०० फुट अथवा प्रायः तीन मील के घेरे का एक विस्तृत टीला है। इसका उच्चतम बिन्दु उत्तर पश्चिमी भाग में है जहाँ यह टीला पास के खेतों से ५९ फुट ऊपर उठ जाता है। यह भाग जिसे मैं प्राचीन राजमहल समझता हूँ ६०० फुट लम्बा तथा ४०० फुट चौड़ा एवम् प्रायः नियमित आकार का है। इसमें

अनुसार इस परिवार में सिर-कप, सिर-सुक तथा अम्ब नामक तीन बन्धु एवं कापी, कल्पी, मुण्डी तथा मण्डे हो नामक चार बहनें थीं और इनमें प्रत्येक ने शेखपुरा के दक्षिण में तथा रासी के समीप ही एक नगर का निर्माण करवाया था। इन नगरों के अवशेष निम्न स्थानों पर बताये जाते हैं।

प्रथम—सिर-कप शेखपुरा के ६ मील दक्षिण में बलरह नामक गाँव के समीप अवशेषों का एक टीला है। यह उल्लेखनीय है कि सिंध सागर दोआब की कथाओं में बलरह के नाम को सिर कप से सम्बन्धित बताया जाता है। इन कथाओं में इस बलरह स्तूप को इस राजा का स्थान बताया जाता है।

द्वितीय—सिर-सुक शेखपुरा के ३½ मील दक्षिण में, तथा सिर-कप टीले के २½ मील उत्तर में मुराद गाँव के समीप एक ध्वस्त टीला है।

तृतीय—अम्ब शेखपुरा से ६ मील से कुछ अधिक दक्षिण में तथा रासी के एक मील पूर्व में एक विशाल ध्वस्त टीला एवम् गाँव है।

चतुर्थ—कापी अथवा कापी जैसा कि इसे लिखा जाता है एवम् इसका उच्चारण किया जाता है, लाहौर की ओर जाने वाले उच्च मार्ग पर अम्ब के २½ मील पूर्व में एक छोटा टीला है।

पञ्चम—कल्पी, सिर कप एवम् अम्ब के टीलों के मध्य मुर्दपुर नामक ग्राम के समीप एक अन्य छोटा टीला है।

छठा—मुण्डी, रासी एवम् अम्ब के दक्षिण में ८ मील की दूरी पर बाग बच्चा नदी के पश्चिमी तट पर एक ध्वस्त टीला एवम् गाँव है।

सातवा—मुण्डे हो अम्ब एवं कापी के दक्षिण पूर्व में दोनों से ३½ मील की समान दूरी पर एक ध्वस्त टीला एवं गाँव है।

यह सभी टीले बाग बच्चा नदी के पश्चिमी तट पर हैं तथा लाहौर के पश्चिम की ओर लगभग २५ मील की औसत दूरी पर है। उपयुक्त सभी गाँव लाहौर जिले के विशाल मानचित्र में देखे जा सकते हैं परन्तु टीलों को केवल सहकपुर परगना के विशाल मानचित्र में दिखाया गया है। मैं यह उल्लेख कर चुका हूँ कि बाग बच्चा नदी का नाम सम्भवतः "भूखे शेर के सात बच्चों" की कथा से सम्बन्धित है जिनके नाम उपयुक्त सात टीलों के नामों में सुरक्षित रखे गये हैं। यहाँ भी उसी कथा का उल्लेख किया जाता है जो सिंध सागर दोआब में इतनी जनप्रिय है। स्यालकोट का राजा रसालू एक मानव सिर की शर्त पर सिर-कप से चौपड़ खेलता है और शर्त जीत जाने पर शर्त की वस्तु के स्थान पर उसकी पुत्री कोक्लिा से विवाह कर लेता है। जन साधारण को इस कथा के सत्य होने पर असंदिग्ध विश्वास है और अपने विश्वास के प्रमाण स्वरूप वह निम्नलिखित कविता को उद्धृत करते हैं।

"अम्ब कप पाई लड़ाई
कल्पी बहन छुडावण आई"

'जब अम्ब कप मे झगडा हुआ तो उनकी बहन कल्पी उनका झगडा समाप्त कराने आई।

चूकि वह इस झगडे के स्वरूप का कोई उत्तर नही दे सकते थे अत इस कविता से सात बधुओ एव बहनो के सम्बध में हमारी सूचना मे कोई वृद्धि नही हो सकती है। फिर भी मैं इतना कहना चाहूँगा कि अम्ब एवम् कापी ये दो नामों का मिश्रण इतना पुराना है जितना टालमी का समय, क्योकि उसने अमकारीज अथवा अमकापीज नामक नगर को रावी के पश्चिम म एव लबोक्ला अथवा लाहौर के निकटस्थ प्रदेश में दिखाया है।

अम्ब का टीला ६०० वग फुट है तथा इसकी ऊचाई २५ से ३० फुट है और चूकि लगभग ६०० फुट की चौडाई तक चारो ओर के खेत टूट हुए बतनो से ढके हुए है अत प्राचीन नगर का पूण विस्तार ८००० फुट से कम नही होगा अथवा इसका घेरा ३ मील से अधिक होगा। यह टीला भी बडे आकार की टूटी हुई ईंटों से ढका हुआ है जिन म मने ढाली गई इटो के अनेक टुकडे प्राप्त किये थे। मुझे भूरे रग के एक बलुआ पत्थर का टुकडा एव लोहे की छड का चित्तकबरा टुकडा प्राप्त हुआ था जो सागला तथा कराना पहाडियो म प्राप्त टुकडों के समान था। जन साधारण के कथनो क अनुसार इस कथन का निर्माण राजा अम्ब ने १८०० अथवा १६०० वर्ष पूर्व अथवा ईसवी काल के प्रारम्भ के समय करवाया था। इस तिथि के अनुसार यह तीनो बधु इण्डो सीथियनो की यूची अथवा कुषान जाति के तीन महान राजाओ हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क के समकालीन थे और अय कारणो के आधार पर मैं उन्हें इन्हीं राजाओं के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

लोहावर अथवा लाहौर

लाहौर का विशाल नगर जो लगभग ६०० वर्षों तक पञ्जाब की राजधानी रहा है राम के पुत्र लव अथवा लो द्वारा बनवाया गया था और उन्हीं के नाम पर इसका नाम लोहावर रखा गया था। अब्रु रिहान ने इसी स्वरूप के अ तगत इसका उल्लेख किया है परन्तु इसके तत्कालिक स्वरूप का लाहौर नाम जिसे मुस्लिम विजेताओं ने शीघ्र अपना लिया था अब सर्व प्रसिद्ध हो गया है। श्री थाटन ने रुचिकर सूचनाओ से ओत प्रोत एक पूण एवम् योग्य विवरण म इसक इतिहास का उल्लेख किया है। उसने लाहौर को टालमी के लबोकला के अनुरूप स्वीकार किया है। (१) जो लव नाम का

(१) टालमी के अनुसार उसके लबोक्ला की लाहौर से अनुरूपता का उल्लेख सर्व प्रथम कीपट के द्वारा 'भारत के मानचित्र' मे मिलता है। "हिस्ट्री एण्ड एन्टीक्यू-

प्रतिनिधित्व करने के लिये प्रथम दो अक्षरों लवो के लेने से मेरे विश्वासानुसार सही है। परन्तु मैं कला को परिवर्तित कर सका पढ़ूंगा और इस प्रकार यह नाम लवोलक अथवा लवालक अर्थात् लव का पेट' बन जायेगा।

ह्वेनसांग ने लाहौर का उल्लेख नहीं किया है यद्यपि यह निश्चित है कि ताकी से जलन्धर जाते समय वह इस स्थान से होकर गया होगा। उसने लिखा है कि वह ताकी की पूर्वी सीमा पर एक विशाल नगर मे एक मास तक रहा था और चूंकि पूर्व में इस राज्य का विस्तार व्यास नदी तक था अतः पूर्वी सीमा के 'विशाल नगर' को रावी के स्थान पर व्यास नदी पर देखना होगा। अधिक सम्भावना यह है कि यह नगर कसूर नगर था। लाहौर का प्रथम विशिष्ट उल्लेख महमूद गजनी के आक्रमणों मे मिलता है जब काबुल की घाटी के ब्राह्मण राजाओं ने पेशावर तथा ओहिन्द से निकाल दिये जाने के पश्चात्, पहले झेलम नदी पर भिड के स्थान पर अपनी राजधानी बनाई और बाद में लाहौर के स्थान पर इस प्रकार फरिश्ता ने महमूद के दो उत्तरोत्तर विरोधियों जयपाल एवम उसके पुत्र आनन्दपाल को लाहौर का राजा कहा है। यह हिन्दू परिवार १०३१ ई० मे पदच्युत हो गया जब लाहौर गजनी के अधीन मुस्लिम गवर्नर का निवास स्थान बन गया था। (१) एक शताब्दी से कुछ समय पश्चात् ११५२ ई० में जब गोर अफगानों ने बहराम को गजनी से निष्कासित किया तो उसके पुत्र खुसरो ने लाहौर में राज्य सत्ता सम्भाल ली। परन्तु यह राज्य ११८६ ई० तक केवल दो पीढ़ियों तक चल सका। ११८६ ई० में इस जाति के अन्तिम शासक खुसरो मलिक के बन्दी बना लिये जाने पर गजनी की सत्ता का अन्तिम रूप से ह्रास हो गया।

कुसावर अथवा कसूर

जन साधारण की प्रथाओं के अनुसार कसूर का निर्माण राम के पुत्र कुश ने करवाया था जिसके नाम पर इसका नाम कुसावर रखा गया था और लोहावर के समकालीन नगर की भाँति ही इस नाम के दो व्यंजनों में अदला बदली द्वारा परिवर्तित कर दिया गया है। यह नगर लाहौर के दक्षिण दक्षिण पूर्व मे ३२ मील की दूरी पर पुरानी व्यास नदी के ऊंचे तट पर अवस्थित है और प्रचलित है कि किसी समय इस नगर में १२ दुर्ग थे जिनमें अब केवल सात हैं। इसकी प्राचीनता असन्दिग्ध है। किसी महत्व के भवन अथवा अवशेष यहाँ नहीं है परन्तु इन अवशेषों का विस्तार बहुत अधिक

टिज आफ लाहौर के लेखक श्री टी० एच० थार्नटन की खोज से इसकी पुष्टि होती है।

(१) यह तिथि फरिश्ता से ली गई है परन्तु अरबी तथा संस्कृत लेखों सहित महमूद की मुद्रायें भी प्राप्त हैं जो १०१६ हिजरी में महमूदपुर में बनाई गई थी। श्री थामस ने इसे लाहौर के अनुरूप माना है। अबु रिहान तथा अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने लाहौर की राजधानी मण्डुकूर के भ्रष्ट रूप में इसका उल्लेख किया है।

है तथा फिरोज के विपरीत व्यास एवम सतलज के पुराने सङ्गम स्थान एवम् लाहौर के मध्य भाग पर इसकी स्थिति इतनी अनुकूल है कि यह स्थान अधिक प्रारम्भिक काल से बसा होगा। इसकी स्थिति भी सुदृढ़ है क्योंकि दक्षिण में यह व्यास नदी से एवम् अन्य सभी ओर गहरी खाइयों से सुरक्षित है। प्राचीन नगर की सीमाओं को निर्धारित करना प्रायः असम्भव है क्योंकि वर्तमान नगर के उपनगरों में मकबरा मस्जिदों एवम अन्य बड़ी इमारतों के खण्डहर फैले हुए हैं परन्तु मेरे विचार में इसका कुल विस्तार एक वर्ग मील से कम नहीं था जिससे एक दीवार युक्त नगर का घेरा लगभग चार मील हो जायेगा। इनमें अनेक मकबरे वर्तमान नगर से ठीक एक मील की दूरी पर है और खण्डहरों से भरे मध्यवर्ती क्षेत्र का कम से कम आधा भाग नगर से सम्बन्धित रहा होगा। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि ताकी की पूर्वी सीमा अर्थात् व्यास नदी पर यही 'विशाल नगर" रहा होगा जहाँ ताकी की राजधानी से चिनापट्टी जाते समय ह्वेनसाग एक मास तक ठहरा था। दुर्भाग्यवश उसने सामान्य विस्तृत वर्णन को छोड़ दिया है क्योंकि इसकी स्थिति के निर्धारण में हमारी सहायतार्थ इस तथ्य को छोड़ अन्य कुछ भी नहीं है कि यह लाहौर के विपरीत व्यास के दाहिने तट पर किसी स्थान पर अवस्थित था।

चिनापट्टी अथवा पट्टी

ह्वेनसाग ने चिनापट्टी नगर को ताकी के पूर्व में ८३ मील की दूरी पर दिखाया है। यह स्थिति कसूर से २७ मील उत्तर पूर्व तथा व्यास नदी से १० मील पश्चिम में अवस्थित एक विशाल एवम अति प्राचीन नगर चिनापट्टी से ठीक ठीक मिलती है। ह्वेनसाग ने इस नगर के पश्चात् जिस स्थान की यात्रा की थी दुर्भाग्यवश उसकी कथित दूरी में कुछ त्रुटि है अन्यथा चिनापट्टी की स्थिति का निर्धारण जलन्धर के सर्व ज्ञात नगर से दिकांश एवम दूरी के आधार पर किया जा सकता था। ह्वेनसाग की जीवनी में चिनापट्टी को तामस-वन मठ के उत्तर पश्चिम की ओर आठ मील की दूरी पर बताया गया है। यह मठ जलन्धर से २५ मील दक्षिण पश्चिम में था। परन्तु ह्वेनसाग की यात्राओं के विवरण में मठ को चिनापट्टी से ८३ मील की दूरी पर दिखाया गया है। यह अन्तिम दूरी पूर्णतया असम्भव है क्योंकि इससे चिनापट्टी ताकी के ८३ मील पूर्व में होने के स्थान पर इससे ३० मील उत्तर में चला जायेगा। तीर्थ यात्री ने अपनी पुस्तक में इस ताकी के ८३ मील पूर्व में बताया है। दूसरी ओर आठ मील की कम दूरी इस नगर को व्यास नदी के रेतीले भाग में ले जायगी जहाँ आज तक कोई नगर नहीं बसा है। अतः मैं इस २५ मील पढ़ने का प्रस्ताव करूंगा जिससे चिनापट्टी पट्टी नगर के स्थान पर उसी स्थिति में हो जायेगा जिसे पहले ही ताकी से दिकांश एवं दूरी के आधार पर निश्चित किया जा चुका है।

पट्टी अत्यधिक प्राचीनता का ईंटों का विशाल नगर है। बर्स के अनुसार इसका निर्माण अकबर के समय में हुआ था परन्तु उनका कथित निश्चित रूप से गलत है क्योंकि यह नगर हुमायूं के समय में परगना का मुख्य स्थान था जिसे उसने अपने दास जौहर को दे दिया था। अबुल फजल ने इस पट्टी हैबतपुर कहा है और आज भी यह हैबतपुर पट्टी के नाम से ज्ञात है। जन साधारण के अनुसार नगर को यह मुस्लिम नाम हैबत खाँ से प्राप्त हुआ था जिसका समय अज्ञात है। परन्तु मेरे विचार में यह सम्भव है कि उसे हैबत खाँ शेरवानी समझना चाहिये जो सिकन्दर लोदी के समय में प्रमुख सरदार था तथा जिसने फारस यात्रा से वापसी पर हुमायूं के विरुद्ध अफगान राजा की सेनाओं का नेतृत्व किया था। पट्टी की प्राचीनता नगर के आस-पास प्राप्त जली हुई ईंटों एवं पुराने कुओं की संख्या से प्रमाणित होती है। सम्राट हुमायूं के दास जौहर ने ३०० वर्ष पूर्व इन पुराने सूखे कुओं का उल्लेख किया था और ईंटों के विचित्र बनावट से बर्स चकित रह गया था जिसका कथन है "यहाँ के घर ईंटों के बने हुए हैं और यहाँ की गलियों में भी ईंटें बिछाई गई हैं। इसके पड़ोस में कुआँ खोदते समय कुछ श्रमिकों को एक अन्य पुराना कुआँ प्राप्त हुआ था जिस पर एक हिन्दू लेख था। इसमें लिखा था कि इसका निर्माण किसी अगरवाला ने करवाया था जिसके सम्बन्ध में प्रथाओं में कोई उल्लेख नहीं मिलता।" मैं बर्स के कुछ ही वर्ष पश्चात् १८३८ में इस स्थान पर गया था परन्तु मुझे यह शिला-लेख नहीं मिल सका।

प्राचीनता का एक अन्य प्रमाण एक लम्बी कबर अथवा मकबरे की उपस्थिति है जिसे जनता बर्स के अनुसार "पट्टी का नौ गज कहती है परन्तु ये मकबरे जो उत्तर पश्चिमी भारत में सामान्य रूप से पाये जाते हैं सामान्यतः गजनियों से सम्बन्धित किये जाते हैं जो इस्लाम धर्म के प्रारम्भिक काल में काफिरों के विरुद्ध लड़ते हुए मारे गये थे। अतः मैं इन कबरों का महमूद गजनी के समय की एवं इनके ऊपर बनाये गये ईंटों के मकबरों को अकबर के शासन काल में निर्मित बतलाऊंगा।

ह्वेनसाग के अनुसार चिना पट्टी के जिले का घेरा ३३३ मील था। इन आकड़ों के अनुसार इस जिले में पहाड़ियों के अधोभाग से लेकर फिरोजपुर के समीप पास एवम् सतलज के पुराने सङ्गम स्थान तक व्यास तथा रावी के मध्य सम्पूर्ण ऊपरी दोआब सम्मिलित रहा होगा। चो-न पो-ती अथवा चिना पट्टी के नाम को महान् इण्डो सीथियन सम्राट कनिष्क के समय से सम्बन्धित किया जाता है जिसने अपने चीनी अतिथियों के लिए यह स्थान निश्चित किया था। यात्री ने यह भी जोड़ दिया है कि चीनियों के निवास से पूर्व भारत में न तो आड़ू थे न नाशपातियाँ और यह दोनों चीनी अतिथियों द्वारा लाये गये थे। नाशपातियों को चो न-नी अथवा चीनानी अर्थात् चीन से लाया गया कहा जाता था तथा आड़ुओं को ची-न लो शी-फो-ता लो

अथवा चीना राज पुत्र अर्थात् चीनी राजा का पुत्र कहा जाता था। यह पूर्णतय सही नहीं है कि नाशपाती एवम् आड़ू दोनों फल ही पड़ोस की पहाड़ियों में पाये जाते हैं परन्तु आजकल दो प्रकार के आड़ुओं की कृषि की जाती है एक गोल एवम् रसभरे तथा दूसरे चिपटे एवम् मीठे। प्रथम को हिन्दी में आड़ू तथा फारसी में शफतालू कहा जाता है यह पूर्णतयः भारतीय फल है परन्तु दूसरा जिसे चीनी शफतालू कहा जाता है सम्भवत वही फल है जिसे ह्वेनसांग ने चीन से लाया गया बतलाया है।

शोरकोट

शोरकोट खण्डहरों का एक विशाल टीला है जिससे परगना अथवा शोर खण्ड अथवा रिचना दोआब के निचले भाग का शोरकोट नाम रखा गया है। बर्न्स ने इस स्थान की यात्रा की थी और उसने इस स्थान का उल्लेख "एक मिट्टी के एक टीले के रूप में किया है जो ईंटों की दीवार से घिरा हुआ है तथा इतना उन्नत है कि इसे ८ मील के घेरे से देखा जा सकता है।" उसने यह भी लिखा है कि यह सहवान के टीले से अधिक बड़ा है जो (सहवान) डी-ला होस्टे के आकड़ों के अनुसार १२०० फुट लम्बा तथा ७५० फुट चौड़ा है। मेरी सूचना के अनुसार शोरकोट हड़प्पा से अधिक छोटा है तथा अकबर के आकार का अर्थात् २००० फुट लम्बा तथा हजार फुट चौड़ा है परन्तु इन दोनों से ऊंचा है। यह टीला बड़े आकार की ईंटों की दीवार से घिरा हुआ है जो इसकी प्राचीनता का असंदिग्ध प्रमाण है। बर्न्स को जन साधारण ने सूचित किया था कि लगभग १३०० वर्ष पूर्व पश्चिम से किसी राजा ने उनके नगर का विनाश किया था। स्थिति के कारण बर्न्स इसे वह स्थान समझता है जहाँ सिकन्दर घायल हुआ था और उसके अनुसार सिकन्दर ने ही इस नगर का विनाश कराया था। मैंने भी इस नगर के विनाश की इसी कथा को सुना था परन्तु मैं इस श्वेत हूणों से सम्बन्धित समझता हूँ जिन्होंने छठीं शताब्दी में अथवा कथा में दिये गये समय में ही पश्चिम की ओर से पञ्जाब में प्रवेश किया था।

इस नगर की स्थापना को शोर नामक एक कल्पित राजा से सम्बन्धित किया जाता है जिसके सम्बन्ध में नाम को छोड़ अन्य कुछ भी ज्ञान नहीं है। मैं यह सम्भव समझता हूँ कि शोरकोट स्टीफस बाईजेंटाईन का सिकन्दरिया सोरियाने है जिसने इस तथ्य को छोड़ अन्य कोई संकेत नहीं दिया है कि यह भारत में था। यह दोनों नाम इतने ठीक ठीक मिलते हैं कि मुझे इस प्रस्ताव को रखने की प्रेरणा मिलती है कि फिलिप ने शोरकोट का विस्तार किया होगा एवं इसे सुदृढ बनाया होगा जिसे सिकन्दर ने ओक्सड्रेकाय तथा मल्ली के गवर्नर के रूप में पीछे छोड़ दिया था। यह प्रस्ताव उस समय अधिक सम्भव प्रतीत होता है जब हम यह देखते हैं कि शोरकोट हाइडस्पीज तथा एकिसनीज के सङ्गम स्थान से मल्ली की राजधानी तक सिकन्दर के सीधे मार्ग में

पड़ता था। अतः मैं इसे मल्ली नगर के अनुरूप स्वीकार करूँगा जिसने डियोडोरस तथा कर्टियस के अनुसार अल्प कालीन घेरे के पश्चात् आत्म समर्पण कर दिया था। कर्टियस ने इसे नदियों के सङ्गम स्थान से २८½ मील बताया है और यह स्थिति शोर कोट की स्थिति से ठीक ठीक मिलती है। एरियन का विवरण अन्य अनेक महत्वपूर्ण बातों में अन्य दोनों इतिहासकारों के विवरणों से भिन्न है। उसका कथन है कि नदियों के सङ्गम स्थान को छोड़ने के पश्चात् सिकन्दर ने जिस प्रथम नगर पर अधिकार किया था वह एकिसीनीज (चेनाब) से ४६ मील दूर था तथा इस पर आक्रमण कर अधिकार किया गया था। मेरा अनुमान है कि यह नगर कोट कमालिया था और मैं दोनों विवरणों के त्रुटि को एरियन द्वारा इस अभियान के दिये गये विस्तार से तुलना करने से समझाऊंगा। सिकन्दर ने अपनी सेनाओं को तीन बड़े दलों में विभाजित किया। इनमें अग्रिम दल हीफस्टियन के नेतृत्व में पाँच दिन पूर्व यात्रा कर रहा था। मध्य दल का नेतृत्व वह स्वयं कर रहा था तथा अंतिम दल जो टालमी के नेतृत्व में था तीन दिन के पश्चात् अनुसरण कर रहा था। चूँकि यह आक्रमण मल्लों के विरुद्ध था अतः मेरा निष्कर्ष है कि सेना ने सीधे मार्ग से शोरकोट के मार्ग से मुल्तान की ओर यात्रा की थी। जो निश्चय ही मल्लों की राजधानी थी। इस प्रकार शोरकोट पर होफस्टियन ने अधिकार किया होगा जो सेना के अग्रिम दल का नेतृत्व कर रहा था। जिस समय मैं कोट कमालिया का विवरण दूंगा उसी समय मैं सिकन्दर के निजी मार्ग का उल्लेख भी करूंगा।

शोरकोट की प्राचीनता का अनुमान यहाँ प्राप्त होने वाली मुद्राओं से लगाया जा सकता है। इनमें मुख्यतः सभी कालों का इण्डो सीथियन ताँबे की मुद्रायें हैं, कुछेक हिन्दू मुद्राओं के नमूने भी हैं तथा मुस्लिम काल की मुद्रायें अधिक मात्रा में मिलती हैं। अपोलोदोतस का एक मात्र ताँबे की मुद्रा वर्न्स को प्राप्त हुई थी। इन आंकड़ों से मैं अनुमान लगाऊंगा कि यह नगर निश्चित ही एरियन तथा पञ्जाब के यूनानी राजा के समय जितने प्रारम्भिक काल में बस गया होगा तथा १२६ ई० पू० से २१० ई० तक अथवा उससे भी कुछ समय पश्चात् इण्डो-सीथियनों के आक्रमण के समय यह नगर समृद्ध अवस्था में था। चूंकि शोरकोट में मुझे प्राप्त होने वाली हिन्दू मुद्रायें काबुल की घाटी तथा पञ्जाब के ब्राह्मण राजाओं तक ही सीमित थीं अतः मेरा निष्कर्ष है कि मध्य काल में यह स्थान या तो निर्जन था अथवा बहुत ही जर्जर अवस्था में था तथा दसवीं शताब्दी में इनमें किसी ब्राह्मण राजा ने या तो इस पर पुनः अधिकार स्थापित किया था अथवा इसे पुनर्जीवित किया था।

कोट-कमालिया

कोट कमालिया रावी के उत्तरी तट के दाहिने छोर पर जो नदी के इस ओर

अधिकतम बढाव की सीमा है—एक अकेले टीले पर अवस्थित छोटा परन्तु प्राचीन नगर है। यह हाइडस्पेस तथा एकिसीनीज के मङ्गम स्थान से ४४ मील दक्षिण पूर्व मे तथा शोर से ३५ मील पूर्व दक्षिण पूर्व मे है। यहा जली हुई ईटो का एक प्राचीन टीला है और शोरकोट तथा हडप्पा के विनाश के समय ही किसी पश्चिमी राजा द्वारा इसका विनाश बताया जाता है। कुछ लोगो के अनुसार इसका आधुनिक नाम कमालु-उद-दीन नामक एक मुस्लिम गवनर के नाम से लिया गया था परन्तु यह निश्चित बात नही है और मैं इसे प्राय सम्भव समझता हूँ कि इस नाम का मूल रूप मल्ली जाति से लिया गया था जो आज भी देश के इस भू भाग मे निवास करती है। परन्तु नाम चाहे पुराना हो अथवा नहीं यह निश्चित है कि यह स्थान अति प्राचीन स्थान है और मैं यह विश्वास करने लगा हूँ कि इसे मल्ली के विरुद्ध आक्रमण के समय सिकन्दर द्वारा अधिकृत प्रथम नगर के अनुरूप समझा जाना चाहिये।

एरियन द्वारा दिया गया उपयुक्त आक्रमण का विवरण इतना स्पष्ट एवम् सक्षिप्त है कि मैं उसी के शब्दों को उद्धृत कर इसका वर्णन करूगा। नदियों के सगम स्थान को छोडने के पश्चात् सिकन्दर ने "एक मरुप्रदेश से मल्ली के विरुद्ध प्रस्थान किया तथा प्रथम दिन एकसीनीज के तट से ११½ मील की दूरी पर एक छोटी नदी के तट पर अपना खेमा खडा किया। अपने सैनिको को भोजन एवम् विश्राम हेतु थोडा समय देने के पश्चात् उसने प्रत्येक व्यक्ति को सभी बतन पानी से भर लने की आज्ञा दी और ऐसा हो जाने पर उसने शेष दिन एवम् पूरी रात अपनी यात्रा जारी रखी और दूसरे दिन प्रात काल वह एक ऐसे नगर पहुँचा जहाँ अनेक मल्लियों ने भाग कर शरण ली थी और यह नगर एकिसीनीज से ४५ मील की दूरी पर था।" उपयुक्त छोटी नदी मेरे विश्वासानुसार आयक नदी का निचला भाग है जो पहाडियो की बाह्य शृङ्खला से निकलती है तथा स्यालकोट के समीप से प्रवाहित होकर साँगला की ओर चली जाती है। इससे नीचे कुछ दूरी तक इस नदी का पाट दिखाई देता है। यह झङ्ग के १८ मील पूर्व मे पुन दिखाई देती है और शोरकोट के १२ मील पूर्व में अन्तिम रूप से लुप्त हो जाती है। सिकन्दर ने इन दो स्थानो के बीच किसी स्थान पर आयक नदी को पार किया होगा क्योकि मरुप्रदेश जिसे उसने पार किया था इसके तुरन्त बाद शुरू हो जाता है। यदि वह दक्षिण की ओर जाता तो वह शोरकोट मे पहुँचता परन्तु इस ओर उसे किसी मरुस्थल का सामना नही करना पडता क्योकि उसका मार्ग सान्दर अथवा चेनाब की घाटी के निचले प्रदेश से होकर गुजरता था। दक्षिणी दिशा में ४६ मील की यात्रा उसे हाइड्राओटीज अथवा रावी के दाहिने तट पर ले जाती है और यह एक ऐसा स्थान है जहाँ एरियन के अनुसार सिकन्दर एक अन्य रात्रि की यात्रा के पश्चात् पहुँचा था। चूंकि यह यात्रा पूर्वाह्न के समय से सूर्योदय के समय तक निरन्तर रही अत यह यात्रा १८ अथवा २० मील की ...

दूरी कोट कमालिया से तुलम्बा के विपरीत रावी की दूरी से ठीक ठीक मिलती है। अतः सिकन्दर की यात्रा की दिशा दक्षिण पूर्व की ओर रही होगी, सर्व प्रथम आयक नदी तक जहाँ उसने सैनिकों को विश्राम देने तथा पानी भरने के लिए पड़ाव किया और तत्पश्चात् सन्दर बार नामक ठोस मिट्टी एवम् जलविहीन प्रदेश को पार किया। सन्दर बार सन्दर अथवा चन्द्र नदी का मरुस्थल है। इस प्रकार नदी की स्थिति, निर्जन प्रदेश का उल्लेख तथा नदियों के संगम स्थान से नगर की दूरी, यह सभी कोट कमालिया के दुर्ग की ओर संकेत करने में हम सहमत हैं जहाँ सिकन्दर ने आक्रमण किया था।

एरियन ने इस स्थान का दीवारयुक्त नगर के रूप में उल्लेख किया है जहाँ दुर्गम चढ़ाई के स्थान पर एक दुर्ग था जिसे भारतीयों ने अधिक समय तक सुरक्षित रखा। अन्त में एक भीषण आक्रमण के बाद इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया तथा वहाँ के २००० सैनिकों को तलवार के घाट उतार दिया गया।

हड़प्पा

जिस समय सिकन्दर उपर्युक्त नगर पर आक्रमण में व्यस्त था उस समय एरियन के अनुसार उसने पेरडिक्कस को घुड़सवार सेना सहित 'मल्लों के एक अन्य नगर की ओर भेजा था जहाँ भारतीयों के एक बहुत बड़े दल ने भाग कर शरण ली थी।' उसकी आज्ञा उसके वहाँ पहुँचने तक नगर को घेरे रखने की थी परन्तु वहाँ के निवासियों ने पेरडिक्कस के समीप आने की सूचना मिलते ही नगर को त्याग दिया तथा आस पास की दलदल में शरण ली थी। मुझे विश्वास है कि यह नगर हड़प्पा था। दलदलों का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि यह रावी के समीप रहा होगा और चूँकि पेरडिक्कस को सिकन्दर के आगे आगे भेजा गया था अतः यह कोट कमालिया से आगे अर्थात् इसके पूर्व अथवा दक्षिण पूर्व की ओर रहा होगा। यह हड़प्पा की ठीक-ठीक स्थिति है जो कोट कमालिया के १६ मील पूर्व दक्षिण पूर्व में तथा रावी के दूसरे ऊँचे तट पर अवस्थित है। उसके आस-पास निचली भूमि में अनेक दलदलें हैं।

दो सब प्रसिद्ध यात्रियों बर्न्स तथा मसोन ने हड़प्पा का विवरण दिया है और मैं यद्यपि भिन्न समय में इस स्थान पर तीन बार रहा हूँ परन्तु इन दोनों यात्रियों द्वारा दिये गये विवरण में अधिक जोड़ना मेरे लिए सम्भव नहीं है। बर्न्स ने खण्डहरों के विस्तार का लगभग तीन मील के घेरे में होने का अनुमान लगाया है जो वास्तविक विस्तार से ½ भाग अधिक है क्योंकि खण्डहरों का वास्तविक टीला केवल ढाई मील अथवा दो मील घेरे का एक असमान चतुर्भुज बनाता है। परन्तु इसमें सन्देह होकर कुछ नगर के प्रवास की संभावना है जिसके रूप में ध्वंस ... उन खण्डहरों अथवा टूटी हुई ईंटों एवम् अन्य अवशेषों के बड़े ढेरों को सम्मिलित कर सकते हैं जिनसे प्राचीन नगर का कुल विस्तार बर्न्स द्वारा अनुमानित विस्तार से मिल जायेगा। मसोन

मे एक प्रथा का उल्लेख किया है जिनके अनुसार हडप्पा किसी समय पश्चिम की ओर चिचावत्नी तक अर्थात् १२ मील की दूरी तक विस्तृत रहा होगा जिससे कम से कम नगर के पूर्ववर्ती विस्तार एवम् महत्व मे जनसाधारण का विश्वास प्रगट होता है।

खण्डहरों का अधिकाश ढेर पश्चिमी भाग मे है जहाँ यह टीला मध्य म ६० फुट की ऊचाई तक ऊपर उठ जाता है। इस स्थान पर विशाल ईटो की बनी अनेक विशाल दीवारें हैं जो निस्सन्देह किसी विस्तृत भवन की अवशेष हैं। टीले के अन्य भाग ३० से ५० फुट की भिन्न भिन्न ऊचाई के हैं जिनम अधिकाश टीले पूर्णतय टूटी हुई ईटो के ढेर हैं। प्रथाओ में अज्ञात काल के किसी राजा हडप्पा ने इसकी स्थापना की थी तथा छठी शताब्दी मे पश्चिम के किसी राजा ने इस नगर का विनाश करवाया था जिसने शोरकोट का विनाश भी कराया था और जिसे मैं श्वेत हूणो का नेता समझता हूँ। इस राजा के पाप कर्मों से जो प्रत्येक विवाह म पति के विशेषाधिकारो का प्रयोग करना चाहता था—यह प्रदेश देवताओ के कोप का भाजन बना और हडप्पा अनेक शताब्दियों तक निजन रहा। चूकि यहाँ प्राप्त होने वाली मुद्रायें शोरकोट स प्राप्त मुद्राओ के समान हैं अत मेरा विचार है कि दोनो स्थानों का समान भाग्य रहा होगा। अत मैं इसके विनाश का उत्तरदायित्व अरबो पर डालूँगा जिन्होंने ७१३ ई० मे मुल्तान पर अधिकार के बाद तुरत सम्पूर्ण पञ्जाब को रौंद डाला था।

अकबर

अकबर गाँव लाहौर स मुल्तान की ओर जाने वाले ऊँचे माग पर गुगेरा से ६ मील दक्षिण पश्चिम में तथा लाहौर से ८० मील की दूरी पर अवस्थित है। प्राचीन नगर के खण्डहरो मे जो गाँव के समीप ही है—१००० फुट के वग का एक विशाल टीला है जिसके उत्तरी छोर पर २०० फुट वर्गाकार तथा ७५ फुट ऊँचा दुग है। इन खण्डहरों में दक्षिणी छोर पर ८०० फुट लम्बा तथा ४०० फुट चौडा एक अन्य निचला टीला भी है। यह अत्यधिक प्राचीन स्थान रहा होगा क्योंकि मुझे २०×१०×३½ इञ्च की अत्यधिक बडी ईट प्राप्त हुई थी जिनका पिछली अनेक शताब्दियों से उत्पादन नहीं हुआ है। यह स्थान १८२३ ई० तक निजन था जब गुलाबसिंह पोविन्दिया ने वतमान अकबर गाँव की स्थापना की थी। प्राचीन नाम अब पूर्णतय लुप्त हो चुका है और हमें इस बात का दुःख है क्योंकि खण्डहरों में प्राप्त होने वाली हुई ईटो से यह ज्ञात होता है कि इस स्थान पर निर्माण कला के महत्वपूर्ण भवन रहे होंगे।

सतगढ

सतगढ गुगेरा के १३ मील पूव ऊँचे तट के बाहर निकले हुये भाग मे एक माग पर अवस्थित है जो पूव म रावी के घुमावो की अन्तिम सीमा है। नाम का अर्थ है 'सात दुग' परन्तु इस समय इनम एक भी दिखाई नहीं देता। एक टीले पर ईंटों का दुग एवम् टूटी हुई ईटों एवम अन्य अवशेषो से ढके अनेक अकेले टीले हैं जो प्राचीन

नगर के स्थान का संकेत देते हैं। इण्डो सीथियन राजाओं एवम् उनके बाद के राजाओं की प्राचीन मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती हैं। अतः यह स्थान सम्भवतः ईसा काल के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक निरन्तर बसा हुआ है।

दीपालपुर

दिल्ली के पठान सम्राटों के शासन काल में दीपालपुर उत्तरी पञ्जाब की राजधानी थी। यह फिरोज शाह का मनवांछित निवास स्थान था। उसने नगर के बाहर एक विशाल मस्जिद का निर्माण करवाया तथा यहाँ की भूमि की सिंचाई हेतु सतलज से एक नहर निकलवाई थी। तैमूर के आक्रमण के समय आकार एवम् महत्व में यह केवल मुल्तान से दूसरे नम्बर पर था परन्तु यह प्रचलित था कि यहाँ ८४ बुर्ज, ८४ मस्जिदें तथा ८४ कुएँ थे। वर्तमान समय में यह प्रायः निर्जन है क्योंकि दो द्वारों के मध्य जाने वाली केवल एक गली में ही लोग बसे हुए हैं। आकार में यह लगभग १६०० फुट का एक चतुर्भुज है जिसके दक्षिण पूर्वी भाग में ५०० फुट का एक चतुर्भुज बाहर की ओर निकला हुआ है। दक्षिण पश्चिम में एक उन्नत ध्वस्त टीला है जिसे एक दुर्ग का खण्डहर कहा जाता है। नगर से यह एक पुल से जुड़ा हुआ है जो आज भी खड़ा हुआ है और इसकी उन्नत एवम् नियन्त्रण करने वाली स्थिति के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि यह अवश्य ही एक दुर्ग रहा होगा। पूर्व तथा दक्षिण में भी अवशेषों के लम्बे टीले हैं जो निःसन्देह उपनगरों के अवशेष हैं। दुर्ग एवम् उपनगरों से हटकर दीपालपुर के वास्तविक खण्डहर लम्बाई में तीन चौथाई मील तथा चौड़ाई में आधा मील फैले हुए हैं अर्थात् इनका घेरा २½ मील है परन्तु समृद्धि के दिनों में यह नगर अधिक बड़ा रहा होगा क्योंकि पूर्व की ओर नहर के किनारे तक गली घर ईंटों से भरे हुए हैं। फिरोजशाह की मस्जिद इसी नगर के समीप बनवाई गई थी। दीवारों से बाहर नगर के विस्तार का अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि तैमूर के आक्रमण के समय दीपालपुर निवासियों ने भटनेर में शरण ली होगी और यदि उनका नगर पूर्णतः सुरक्षित होता तो वह ऐसा नहीं करते।

अजुधान अथवा पाक पटन

अजुधान का प्राचीन नगर दीपालपुर के २८ मील दक्षिण पश्चिम में तथा नगर के वर्तमान भाग से १० मील की दूरी पर पुरानी सतलज के ऊँचे तट पर अवस्थित है। कहा जाता है कि इसका निर्माण एक हिन्दू सन्यासी अथवा उसी नाम के एक राजा ने करवाया था जिसके सम्बन्ध में अन्य कुछ नहीं लिखा गया है। दोआब का यह भाग अभी भी सुराट देश के नाम से ज्ञात है जिससे अब यूनानी लेखकों के सुद्रेकाय अथवा ओगड्रेकाय का स्मरण हो आता है। अब, यूनानी लेखकों ने सुद्रेकाय को सदैव मल्लिया से जोड़ा है ठीक उसी प्रकार जैसे मुस्लिम इतिहासकारों ने अजुधान तथा मुल्तान को एक साथ जोड़ दिया है। अतः मेरा विचार है कि हम अजुधान तथा इसके पड़ोसी दीपालपुर को सूद्रका अथवा सूरका के दो मुख्य नगरों के रूप में देखना चाहिये। जो सिकन्दर के समय में भारत की स्वतन्त्र जातियों में थे। दियोनीसियस तथा नौनस ने हुडरकाय नाम का प्रयोग किया है। प्लिनी ने सैड्राकाय का—जो स्ट्रैबो के सुड्रकोय में मिलता है तथा दियोडोरस ने इसे सुरकौसाय लिखा है। केवल कर्टियस तथा एरियन ने ओग्जड्राकाय लिखा है। स्ट्रैबो ने यह भी जोड़ दिया है कि यह बुक्चस के वंशज थे। मैटीलोन के चरीस ने लिखा है कि भारतीय देवता का अर्थ "शराबी" है अतः मेरा अनुमान है कि उन लोगों ने जो स्वयं को बुक्चस का वंशज होने का दावा करते थे उन्होंने स्वयं को सुराक अथवा वघोड़ाय भी कहा होगा। सुड्राय में ड अक्षर यूनानियों ने व्यर्थ रूप से जोड़ दिया है। एरियन के अड्रस्ताय तथा दियोडोरस के अड्रिमताय में भी यही अक्षर जोड़ा गया है। इन लोगों का संस्कृत नाम अराष्ट्रक था जिसे जस्टिन ने अपने अरिस्टाय शब्द में समुचित रूप से सुरक्षित रखा है। सुराकाई अर्थात् सुरा के वंशज ही इसका वास्तविक यूनानी स्वरूप होगा। दियोडोरस द्वारा दिये गये लम्बे नाम में इसकी पुष्टि होती है जिसे सम्भवतः संस्कृत सुरा तथा कुश "मदमस्त" से लिया गया है। इस प्रकार इसका साधारण अर्थ होगा 'शराबी' और इसमें सन्देह नहीं कि यह उपनाम उनके पड़ोसी आर्यों ने दिया होगा जो पञ्जाब की तुरानियन जनता को उपनाम देने में अधिक उदार थे। इस प्रकार साधना के कथाओं को महाभारत में "लुटेरे बाहिक और साथ ही साथ 'शराबी" एवम् "गोमांसाहारी' कहा गया है। उन्हें मद्र, बाहिक, अरट्ट तथा जारट्टिक आदि भिन्न भिन्न नामों से अलंकृत किया गया है। एक बार भी उनके निजी नाम से उनका उल्लेख नहीं किया गया जबकि सिकन्दर के इतिहासकारों से हम ज्ञात होता है कि उनका वास्तविक नाम कठायो था जो आज भी वर्तमान काठी शब्द में सुरक्षित है। अतः मैं स्वीकार करता हूँ कि अधिकांश जाति सम्बन्धी विशिष्ट नाम जिन्हें यूनानियों ने हमारे लिये छोड़ रखा है केवल उपनाम अथवा अपशब्द युक्त पदवियाँ थी जो ब्राह्मणवादी आर्यों ने अपने तुरानियन पड़ोसियों के लिये प्रयोग में लाये गये थे। उदाहरणार्थ कम्बिर म्योली नाम, जिसे एरियन ने हाडाओटीज

अथवा रावी के तट के निवासियों को लिया है सम्भवतः संगम के दक्षिण स्थल अर्थात् शराब वाले से लिया गया है जो गुरासीयन अथवा शराबियों के स्थान हेतु स्वाभाविक अराख्य" होगा । इसी प्रकार ओग्यदराय को मैं अगुराख अथवा सराय समझूँगा ।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या गुराए अथवा "सराबी" इस जाति का वास्त-विक नाम हो सकता था । एरियन ने ओग्यदराय को हाईडस्पीज तथा अकिसीनास के सङ्गम स्थान का निवासी कहा है जहाँ कर्टियस ने सोबी, डियोडोरस ने इबोर तथा स्ट्रैबो ने सिबाय निवासियों का लिखाया है । इस भूमि के एकमात्र उत्तर मैं यह दे सकता हूँ कि यह सोबी अथवा एरियन के सोबिया तथा सोरी अथवा गुराए के बीच सम्भावित शब्द के कारण हो सकता है । प्रथम नाम सोगीयोज अथवा सोबोगोज की जनता का नाम था जिसका राज्य हाईडस्पीज तथा अकिसीनीज के सङ्गम स्थान से ऊपर नमक की पहाड़ियों तक फैला हुआ था । दूसरे नाम को मैं सोरसोन से सम्बन्धित करूँगा जिसे मैं पहले ही निरङ्किया सोरियानो के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ । यह आज भी शोर जिले की राजधानी है जो हाईडस्पीज तथा अकिसीनीज के सङ्गम स्थान से ठीक नीचे पड़ता है । अतः सोबी सोरी के पड़ोसी थे और इनमें प्रथम जाति नदियों के सङ्गम से ऊपर के प्रदेश में तथा द्वितीय जाति इस स्थान से नीचे निवास करती थी ।

सारी अथवा गुराए जाति की इस स्थिति से एरियन के इस कथन का उत्तर मिलता है कि कठायी ओग्जूड्रकोय एवम् मल्लो के सहयोगी मित्र थे । यह पड़ोसी जातियाँ थी जो सदैव परस्पर युद्ध में व्यस्त रहती थी परन्तु सामान्य शत्रु के सम्मुख एक हो जाया करती थीं ।

प्लिनी ने पूर्वी की सीमा में सिकन्दर के अभियान का हाईफासिस अथवा ब्यास नदी के दूसरे तट तक सीमित बताया है । इस बिन्दु से हेड्रस नदी अर्थात् हेसी-ड्रस अथवा सतलज नदी तक की दूरी को उसने १५४ मील बताया है और हेड्रस से जोमानीज अथवा यमुना तक इतनी ही दूरी बताई है । परन्तु ब्यास से यमुना तक अथवा पहाड़ियों के अधोभाग से प्रथम नदी पर कपूर तक तथा दूसरी नदी पर करनाल तक की दूरी १५० से १६० मील है अतः मेरा अनुमान है कि प्लिनी की मूल पुस्तक में केवल एक ही दूरी का उल्लेख किया गया है । हाइफासिस के पूर्वी तट का प्रसिद्ध स्थान जहाँ सिकन्दर ने विश्राम एवम् कूच किया था कपूर तथा फजिलपुर के विप-रीत सतलज एवम् ब्यास नदियों के पुराने सङ्गम स्थान से कुछ दूरी पर इन दोनों नदियों के बीच निचली भूमि पर कहीं रहा होगा । इस बिंदु से ऊपर २० मील की दूरी तक दोनों नदियाँ प्रारम्भिक काल से १७९६ ई० तक प्रायः समानान्तर एवम् एक दूसरे से कुछ ही मीलों के अंतर पर बहती हैं । १७९६ ई० में अचानक ही सतलज नदी ने अपना मार्ग बदल दिया और अब यह हरी-की पटन के पास ब्यास से मिलती है । २० मील के भीतर इन दो नदियों के मध्य का क्षेत्र इतना छोटा था कि सिकन्दर

के पड़ाव से यमुना की दूरी का उल्लेख करते समय इसे भूल जाना सम्भव था। फिर भी मेरा विश्वास है कि सिकन्दर के समकालीनों ने वस्तुतः इसका उल्लेख किया था क्योंकि यमुना तट की दूरी का वर्णन करने के बाद प्लिनी का कथन है कि "कुछ प्रतिलिपियों में ५ मील अधिक जोड़ दिया गया है।" अब यह रोमन मील व्यास के पूर्वी तट से सतलज के पुराने मार्ग की दूरी का सही सही वर्णन करते हैं और सम्भव है कि कुछेक प्राचीन लेखकों ने इस माप को कम महत्वपूर्ण समझकर इसकी अवहेलना की हो। सभी आंकड़ों पर सामान्य रूप से विचार करने से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर की वेदी के स्थान को हरी की-पटन से कुछ मील नीचे सतलज के वर्तमान मार्ग पर देखना चाहिये और यह सोबराँव के सर्वेक्षण नाले से अधिक दूर नहीं था जो सतलज के पुराने मार्ग के अनेक घुमावों से ५ मील से अधिक दूर नहीं है। अतः सिकन्दर के के समय में सुद्रकाय अथवा सुराकस की सीमायें इस बिंदु तक विस्तृत रही होंगी।

कई शताब्दियों तक अजुधान सतलज को पार करने का मुख्य घाट रहा है। यहीं पर पश्चिम की ओर से डेरा गाजी खाँ तथा डेरा इस्माईल खाँ से आने वाले दो मार्ग मिलते हैं। प्रथम मार्ग मानकेरा शोरकोट तथा हड़प्पा के रास्ते आता है दूसरा मार्ग मुल्तान से होकर आता है। इसी स्थान पर महान् विजेताओं, महमूद एवम् तैमूर ने तथा महान यात्री इब्न बतूता ने सतलज नदी को पार किया था। कहा जाता है कि पञ्जाब में लूट पाट के अपने अभियानों के समय सबुक्तगीन ने ३६७ हिजरी अथवा ९७७-७८ ई० में इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया था और पुनः ४७२ हिजरी अथवा १०७९ ८० ई० में इब्राहिम गजनवी ने इस पर अधिकार किया था। तैमूर के आक्रमण के समय अधिकांश जनता भाग कर भटनेर चली गई थी और शेष जनता को उस निर्मोही बर्बर ने प्रसिद्ध फकीर फरीदुद्दीन शक्कर गञ्ज के सम्मान में छोड़ दिया था जिसकी समाधि अजुधान में है। इस फकीर से इस स्थान को पाक पट्टन अथवा 'शुद्ध व्यक्ति के घाट' का आधुनिक नाम प्राप्त हुआ है। शुद्ध व्यक्ति फरीद को कहा गया है जिसके अन्तिम दिन अजुधान में व्यतीत हुये थे। कहा जाता है कि निरन्तर उपवासों के कारण उसका शरीर इतना शुद्ध हो गया था कि क्षुधा को शान्त करने के लिये वह मिट्टी तथा पत्थरों सहित किसी भी वस्तु को मुँह में डालते तो वह तुरन्त चीनी में परिवर्तित हो जाती थी। इसी कारण उसका नाम शक्कर गञ्ज अर्थात् 'शक्कर का भण्डार' रखा गया था। इस अद्भुत शक्ति को फारसी के एक सब प्रसिद्ध दोहे में लिखा गया है —

'संग दर दस्त आ-गुहार गरदद,
ज़हेर दर काम-ओ शक्कर गरदद।"

जिसका अर्थ इस प्रकार से किया जा सकता है। 'उसके हाथ में पत्थर मानो अन्न भार हैं तथा उसके मुँह में विष मधु समान हो जाता है।'

उसकी स्मृति में लिखे एक जय दोह से हमें ज्ञात होता है कि उसकी मृत्यु ६६४ हिजरी अथवा १२६५-६६ ई० में हुई थी और उस समय उनकी आयु ९५ वर्ष की थी। परन्तु अजुधान का पुराना नाम ही एक मात्र नाम है जिसका उल्लेख १३३४ ई० में इब्न बतूता ने तथा १३९७ में तैमूर के इतिहासकारों द्वारा किया गया है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि पाक पटटन का वर्तमान नाम अपेक्षाकृत पश्चात्वर्ती समय का होगा। सम्भवतः यह अकबर के शासन काल से अधिक पुराना नहीं है जब इस फकीर के वंशज नूर उद-दीन ने अपनी प्रार्थनाओं द्वारा सम्राट के उत्तराधिकारी का जन्म पर अपने घराने की पूर्ववर्ती ख्याति प्राप्त कर ली थी।

मुल्तान प्रान्त

पञ्जाब का दक्षिणी प्रान्त मुल्तान है। ह्वेनसांग के अनुसार इसका घेरा ६६७ मील था जो नदियों के मध्य वास्तविक प्रदेश के घेरे से इतना अधिक है कि उपरोक्त घेरे के अनुसार यह प्रान्त नदी पार तक विस्तृत रहा होगा। अकबर के समय में कम से कम १७ जिले अथवा भिन्न भिन्न परगने मुल्तान प्रान्त से सम्बन्धित थे जिनमें उच, दिरावल मोज तथा मरोट आदि वह सभी जिले जिन्हें मैं पहचान सकता हूँ सतलज के पूर्व में थे। यह नाम इस बात का दर्शाने के लिये पर्याप्त हैं कि मुल्तान की पूर्वी सीमा घघर नदी के पुराने मार्ग में पर बीकानेर की मरु भूमि के समीप तक विस्तृत थी। इस प्रदेश की जो अब बहावलपुर की सीमाएं बनाता है विशाल मरुस्थल की प्राकृतिक रुकावट इसे पूर्व के समृद्ध प्रान्तों से अलग करती है। एक सुदृढ़ सरकार के अन्तर्गत यह सदैव मुल्तान का एक भाग रहा है और दिल्ली के मुस्लिम साम्राज्य के पतन के समय ही बहावल खाँ ने एक भिन्न छोटा राज्य की स्थापना की थी। अतः मेरा अनुमान है कि सातवीं शताब्दी में मुल्तान प्रान्त की सीमाओं में नदियों के बीच के प्रदेश के अतिरिक्त बहावलपुर का वर्तमान सीमाओं का उत्तरी अर्द्ध भाग सम्मिलित रहा होगा। उत्तरी सीमा को पहले ही सिन्धु नदी पर डेरा दीन पनाह से लेकर सतलज नदी पर पाक पटटन तक १५० मील विस्तृत बताया जा चुका है। पश्चिम में खानपुर तक सिन्धु नदी की सीमान्त रेखा १६० मील लम्बी है। पूर्व में पाक पट्टन से पुरानी घघर नदी तक यह सीमा ८० मील है तथा दक्षिण में खानपुर से घघर तक इस सीमा की लम्बाई ४२० मील है। कुल मिलाकर यह सीमा रेखा ६६० मील है। यदि ह्वेनसांग के आंकडे पञ्जाब के छोटे कोस पर आधारित थे तो कुल घेरा ६६७ मील का $\frac{5}{6}$ वां भाग अथवा ४३७ मील होगा और इस स्थिति में यह प्रान्त दक्षिण में मिठानकोट से आगे विस्तृत नहीं हो सकता था।

मुल्तान के भूगोल का वर्णन करते समय उन महान् परिवर्तनों को ध्यान में रखना आवश्यक है जो इस प्रान्त में प्रवाहित होने वाली सभी नदियों के मार्गों में हुये

हैं। तैमूर तथा अकबर के समय मे चेनाब तथा सिंधु नदियों का सङ्गम मिठानकोट के वतमान सङ्गम स्थान से ६० मील ऊपर उछ के विपरीत होता था। यह उस समय भी अपरिवर्तित था जब १७८८ ई० मे रेनेल ने "भारत का भूगाल" लिखा था और उसके बाद १७९६ ई० में जब विल्फोड के सर्वेक्षक मिर्जा मुगल बेग ने इस स्थान की यात्रा की थी उस समय भी यह अपरिवर्तित था परन्तु वतमान शताब्दी के प्रारम्भ में सिंधु नदी धीरे-धीरे अपना माग बदलती गई और उछ के ऊपर २० मील की दूरी पर अपने पुराने माग को छोड मिठानकोट मे पुराने माग में पुन प्रवाहित होने तक इस नदी का प्रवाह दक्षिण-दक्षिण पश्चिम की ओर है।

रावी एवम् चेनाब का वतमान सङ्गम मुल्तान स ३० मील से अधिक ऊपर दिवाना सनन्द के समीप होता है परन्तु सिकन्दर क समय म हाईड्राओटीज तथा अकिसीनीज का सगम मल्ली की राजधानी से कुछ दूर नीचे की ओर हाता था जिसे (मल्ली) मैं मुल्तान के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। पुराना माग अब भी है और मुल्तान जिले के बडे मानचित्रो मे इस समुचित रूप से दिखाया जाता है। यह वतमान माग को सराय सिंधु मे छोड देती है तथा दक्षिण दक्षिण पश्चिम की ओर ३० मील तक घुमावदार माग मे प्रवाहित होती है। तत्पश्चात् यह अठारह मील के लिए अचानक पश्चिम की ओर मुल्तान तक प्रवाहित होती है और मुल्तान के दुग का पूरी तरह घेर डालने के बाद मुल्तान के नीचे ५ मील तक पश्चिम की ओर चली जाती है। तत्पश्चात् यह अचानक दक्षिण दक्षिण पश्चिम की ओर मुड जाती है और १० मील के बाद यह चेनाब क पाट की निचली भूमि मे अन्तिम रूप से लुप्त हो जाती है। आज तक रावी अपने प्राचीन माग स चिपटी हुई है और अधिक बाढ के समय नदी का पानी आज भी पुराने माग स मुल्तान तक चला जाता है जैसा कि दो अवसरो पर मैं स्वय देख चुका हूँ। परिवतन की तिथि अज्ञात है परन्तु निश्चित ही यह परिवतन ७१३ ई० म मुल्तान पर मुहम्मद बिन कासिम ने अधिकार के बाद हुआ है और पुराने माग से निकाली गई नहरों की अत्यधिक सख्या से मेरा अनुमान है कि मुख्य नदी अपेक्षाकृत निकट भूतकाल तक और सम्भवत तैमूर ने आक्रमण के समय तक पुराने माग से प्रवाहित थी। फिर भी यह परिवतन अकबर के शासन काल से पूव हुआ था क्योंकि अबुलफजल ने चेनाब तथा झेलम क सङ्गम स चेनाब तथा रावी के सङ्गम स्थान को २७ मील तथा अन्तिम स्थान से चेनाब तथा सिंधु के सङ्गम स्थान को ६० मील की दूरी पर बताया है और यह दोनो आंकडे इन नदियों की पश्चात्वर्ती स्थिति से मिलते हैं।

व्यास एव सतलज का वतमान सगम केवल १८६० ई० मे हुआ है जब सतलज धर्मकोट मे अपना पुराना माग त्याग कर हरी की पटटन म व्यास नदी स मिलती है। पिछली अनेक शताब्दियो तक यह सगम स्थान निरन्तर कसूर तथा फीरोजपुर के बीच हरी की-पटटन के घाट से कुछ ऊपर रहा था। जौहर ने १५५४ ई० म उच्च

अबुल फजल ने १५९६ ई० में इस सगम का उल्लेख किया है। यद्यपि फ़िरोजपुर के समीप दोनो नदियो का सगम स्थान काफी समय से निर्धारित रहा है फिर भी कुछ समय पश्चात् भी व्यास नदी का जल पुराने माग से प्रवाहित होता रहा है क्योकि अबुल फजल ने लिखा है कि—"फिरोजपुर के समीप १२ कोस की दूरी तक व्यास एव सतलज नदियाँ सयुक्त रूप से प्रवाहित हैं। तत्पश्चात यह हर, हरी, दण्ड तथा नुरनी नामक चार छोटी नदियो म विभाजित हो जाती हैं और यह धारा मुल्तान नगर के समीप पुन मिल जाती हैं।' व्यास एव सतलज के यह पुराने माग अभी भी देखे जा सकते हैं और इनसे सतलज तथा व्यास के ऊँचे तट के मध्य सम्पूण दोआब मे सूखी नहरो का जटिल जाल बिछा हुआ है। ग्लेडविन द्वारा आईन ए अकबरी के अनुवाद म दिये गये नामो मे अब कोई नाम नही मिलता। मेरे विचार मे इसका कारण फारसी वणमाला की त्रुटि है जिसके कारण नामो का उच्चारण करने म निरन्तर त्रुटि हुआ करती है। मैं हर को ररा, हरो को रावी तथा नुरनी को मूक-नई समझता हूँ जो हडप्पा के दक्षिण म व्यास नदी के सूखे माग हैं। दण्ड सम्भवत सतलज का एक पुराना माग धमक अथवा दक है जो आगे चल कर भटियारी कहलाती है तथा महलमी, कहरूर तथा लोधरान से होकर चेनाब से अपने सगम से थोडा ऊपर अपने नवीन माग में मिल जाती है। हमारे अधिकाश मानचित्रों मे पुराने व्यास को भटियारी के निचले माग मे मिलता हुआ दिखाया गया है जबकि इसका सुनिश्चित एव जीवित माग शुजाहाबाद से २० मील नीचे चेनाब मे मिलता है और इसका दूरस्थ दक्षिणी बिन्दु भटियारी क समीपस्थ घुमाव से १० मील की दूरी पर है।

ऊपर बताये गय परिवतन पञ्जाब की नदियो के केवल प्रमुख परिवतन हैं जो बारम्बार अपना माग बदल देते हैं। व्यास नदी के परिवतन उल्लेखनीय हैं क्योकि इस नदी ने लगभग अपना स्वतन्त्र माग त्याग दिया है और अब यह सतलज की सहायक नदी मात्र रह गई है। इस प्रकार कलोवाल के नीचे चेनाब की घाटी लगभग ३० मील चौडी है तथा गुगेरा के समीप रावी की घाटी २० मील चौडी है। दोनो नदियो की दूरस्त सीमायें सुनिश्चित ऊँचे तटो द्वारा निर्धारित हैं जिन पर पञ्जाब के अधिक प्राचीन नगरो म अधिकाश नगर अवस्थित हैं। मुल्तान खण्ड म यह प्राचीन स्थान अधिक सख्या म दिखाई देते हैं परन्तु यह सभी अब अधिकाश रूप से निजन तथा नाम विहीन है तथा सम्भवत नदियो के वहाँ से हट जाने के साथ साथ जनसाधारण ने इन्हे त्याग दिया होगा। तुलम्बा क प्राचीन नगर के साथ निश्चित ही यही कारण था जिस रावी के माग म परिवतन के परिणाम स्वरूप १५० वर्ष पूर्व ही त्याग दिया बताया जाता है क्योकि इस परिवतन से नगर को पानी का मिलना पूणतय बन्द हो गया था। तुलम्बा के पश्चिम दक्षिण पश्चिम म २० मील की दूरी पर एक ध्वस्त नगर अटारी के निजन हो जाने का यही कारण था यद्यपि यह तुलम्बा से कुछ समय पश्चात् निजन हुआ था।

इस नगर की जल पूर्ति पुरानी रावी से एक नहर द्वारा की जाती थी। अपने वर्तमान विवरण में मैं जिन स्थानों का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ वह निम्न प्रकार से है —

बारी दोआब — (१) तुलम्बा, (२) अटारी, (३) मुल्तान

जलन्धर पीठ सगम पर — (४) कहरोर, (५) उच्छ

इनमें चार स्थान भारत के इतिहास में प्रसिद्ध हैं और द्वितीय स्थान अटारी को मैंने इसके विस्तार एवं स्थिति के कारण सम्मिलित किया है जिसने निश्चित ही सिकन्दर एवं पञ्जाब के अन्य विजेताओं का ध्यान आकर्षित किया होगा।

तुलम्बा

तुलम्बा नगर मुल्तान से ५२ मील उत्तर पूर्व में रावी के बायें तट पर अवस्थित है। यह चारों ओर से ईंटों की दीवार से घिरा हुआ है तथा यहाँ के गृह मुख्यतः तुलम्बा के प्राचीन दुर्ग से लाई गई जली ईंटों से बनाये गये हैं। यह दुर्ग वर्तमान नगर से एक मील दक्षिण में अवस्थित है। मसोन के अनुसार यह 'प्राचीन समय में विशेष रूप से सुदृढ़ दुर्ग रहा होगा और निस्सन्देह यह ऐसा ही था क्योंकि तैमूर ने इसे अछूता छोड़ दिया था अन्यथा इस पर घेरा डालने से उसकी प्रगति में बाधा पड़ती थी। विचित्र बात है कि यह स्थान बर्न्स के उल्लेखों से बचा रहा क्योंकि इसकी उन्नत दीवारें जिन्हें अधिक दूरी से देखा जा सकता है सामान्यत यात्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। मैं दो बार इस स्थान पर गया हूँ। इसमें एक खुला हुआ नगर था जो दक्षिण की ओर से १००० फुट चतुराकार एवम् उन्नत दुर्ग से सुरक्षित है। इसकी बाहरी दीवारें मिट्टी की बनी हुई हैं और बाहर से २० फुट ऊंची हैं। इसके ऊपर इसी ऊंचाई की मिट्टी की एक अन्य दीवार है। प्रारम्भ में इन दोनों दीवारों में १२×८×२½ इञ्च की ईंटें लगाई गई थीं। मिट्टी की दीवार के भीतर १०० फुट चौड़ा स्थान अथवा खाई है। जिसने ४०० फुट वर्गाकार एवम् ४० फुट ऊँचे भीतरी दुर्ग को चारों ओर से घेर रखा है और इसके मध्य में ७० फुट ऊंचा एक चतुर्भुजाकार दुर्ग है जो सम्पूर्ण दुर्ग पर नियन्त्रण करता है। चारों ओर फैले हुए ईंटों के अनेकानेक टुकड़े तथा बाहरी ओर अनेक स्थानों पर ईंटों के लगाये जाने के चिह्न जनसाधारण के इन कथनों की पुष्टि करते हैं कि मिट्टी की दीवारों में पहले ईंटें लगाई गई थीं। मैं यह बता चुका हूँ कि इस प्राचीन दुर्ग को लगभग ३०० वर्ष पूर्व रावी के जल मार्ग में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप त्याग दिया गया था क्योंकि यह स्थान पूर्ण रूपेण

-रावी के जल पर निर्भर था। ईंटों के हटाये जाने के कार्य को शुजावल खाँ से सबंधित किया जाता है जो मुल्तान के महमूद लङ्गा का दामाद एवम् वजीर था तथा १५१० से १५१५ तक उसके उत्तराधिकारी का बहनोई था।

तुलम्बा की प्राचीनता प्रथाओं एवम् विशाल आकार की ईंटों से प्रमाणित होती है जो मुल्तान के खण्डहरों एवम् उनकी दीवारों में प्राप्त प्राचीनतम ईंटों के समान हैं। प्राचीन नगर को तैमूर ने लूट लिया था एवम् जलाकर भस्म कर दिया था और यहाँ के निवासियों का वध करवा दिया था। परन्तु य० दुर्ग उसकी क्रूरता से बच गया था। इसका कारण कुछ अंशों तक इसकी अपनी सुदृढ़ स्थिति थी और कुछ अंशों का यह कारण था कि आक्रमणकारी शीघ्र अति शीघ्र दिल्ली की ओर जाना चाहता था। एक प्रथा के अनुसार महमूद गजनी ने तुलम्बा पर अधिकार कर लिया था जिसके सत्य होने की अधिक सम्भावना है क्योंकि यह नगर उसके मुल्तान जाने के सीधे मार्ग से कुछ ही परे रहा होगा। इसी कारण से मैं यह विश्वास करने लगा हूँ कि यह नगर भी सिकन्दर द्वारा अधिकृत नगरों में रहा होगा। मसोन ने पहले सूचना दी है कि यह 'मल्लों की राजधानी' थी अथवा सम्भवतः यह "ब्राह्मणों के अधिकार में एक दुर्ग था जिन्होंने हठ पूर्वक इसकी रक्षा की जबकि यह रक्षा उनके लिये घातक थी और यह दुर्ग प्रत्यक्ष रूप से मल्लों की राजधानी का एक भाग था। परन्तु मैं इनमें किसी भी प्रस्ताव से सहमत नहीं हूँ अतः मैं अब सिकन्दर के मार्ग के इस भाग के विभिन्न विवरणों पर विचार एवं उनकी तुलना करूँगा।

कोट कमालिया के अपने विवरण में मैं इस स्थान को हाईड्रस्पाज तथा अकिसीनाज के संगम स्थान से मल्लों के विरुद्ध यात्रोपरान्त सिकन्दर द्वारा अधिकृत प्रथम नगर के अनुरूप समझने के कुछ ठोस कारण बता चुका हूँ। एरियन ने सब लिखा है कि अपने सैनिकों को भोजनादि एवं विश्राम हेतु कुछ समय देने के पश्चात् सिकन्दर ने रात्रि के प्रथम पहर में आगे बढ़ना शुरू किया तथा उस रात की कठिन यात्रोपरान्त लगभग सूर्योदय के समय हाइड्राओटीज नदी पर पहुँच गया और यह जानकर कि मल्ली राज्य के कुछ दलों ने कुछ ही समय पूर्व नदी को पार किया है उसने तुरन्त उन पर आक्रमण कर दिया और अनेक सैनिकों का तलवार के घाट उतार दिया और अपनी सेना सहित स्वयं नदी पार कर उस ओर भाग कर जाने वाले शत्रुओं का पीछा किया। उसने अनेक सैनिकों का वध करा दिया और अनेक बन्दी बना लिये। फिर भी कुछ सैनिक बच कर भाग निकले और एक नगर में घुस गये जो कृत्रिम एवं प्राकृतिक रूप से सुदृढ़ बना हुआ था। आठ अथवा नौ घण्टों की सम्पूर्ण रात्रि की यात्रा २५ मील से कम नहीं रही होगी जो कोट कमालिया से तुलम्बा के विपरीत रावी की ठीक दूरी है। अतः मेरा अनुमान है कि यहाँ सिकन्दर ने रावि नदी को पार किया होगा और मैं तुलम्बा को ही 'कृत्रिम एवं प्राकृतिक रूप से सुदृढ़ बनाया गया

नगर" समझता हूँ जिससे कृतिम कार्य था । ईंटों की दीवार एवम् प्राकृतिक सहयोग मिट्टी की दीवारो के अनेक टोलो के रूप मे था । कर्टियस का विवरण एरियन के विवरण से मिलता है, "एक नदी के तट पर एक अन्य राष्ट्र ने ४००० सैनिको की सेना लेकर उसका सामना किया । नदी पार कर उसने उन पर आक्रमण कर दिया और जिस दुर्ग में उन्होंने शरण ली थी उस पर भीषण आक्रमण कर अधिकार कर लिया ।' डियोडोरस ने अगलसाय नामक जाति के सम्बन्ध मे इसी कथा का उल्लेख किया है कि उन्होंने ४००० पैदल सेना एवम् ३ हजार घुडसवार सेना एकत्रित कर सिकन्दर का सामना किया था । यह भी विवरण प्रत्यक्ष रूप से एक ही स्थान की ओर सकेत करते हैं जो रावी के बायें तट के समीप एक सुदृढ़ दुर्ग था । यह विवरण हड़प्पा के लिए भी उपयुक्त हो सकता है परन्तु मैं यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि यह सम्भवत वह नगर था जिसके विरुद्ध पैरडिक्कस को भेजा गया था । इसके अतिरिक्त कोट कमालिया से इसकी दूरी १६ मील से अधिक नहीं है । इसके विपरीत तुलम्बा सभी बातों का उचित उत्तर दे सकता है और यह मल्लो की राजधानी मुल्तान की ओर जाने वाले मार्ग पर अवस्थित है जिस ओर सिकन्दर अग्रसर हो रहा था ।

अगलसाय अथवा अगलेसेनसाय का नाम भ्रम मे डालने वाला है । एरियन के अनुसार नगर की जनता मल्ली थी परन्तु यह उल्लेखनीय है कि डियोडोरस तथा कर्टियस ने कुछ समय पूर्व तक ओक्सड्रेकाय अथवा मल्ली के नाम का उल्लेख नहीं किया था । जस्टिन ने गस्टियानी नामक जाति को अरेस्टाय अथवा क्षत्रायों जाति के साथ सम्बन्धित किया है अत इन्हें मल्ली अथवा ओक्सड्रेकाय के समान होना चाहिये । अलग अथवा अगलासा नगर का नाम रहा होगा परन्तु दुर्भाग्यवश तुलम्बा अथवा आस पास के किसी भी स्थान के नाम से इसकी समानता नहीं है ।

अटारी

सभी इतिहासकारो ने मल्लो के विरुद्ध सैनिक अभियान के अन्तर्गत सिकन्दर द्वारा अधिकृत तीसरे नगर का उल्लेख एक ही ढग से किया है । एरियन के अनुसार 'सिकन्दर तब ब्राह्मणो के किसी नगर की ओर बढ़ा जहा उसकी सूचनानुसार मल्लियो का एक अन्य दल शरण लिये हुए था ।' जिस पर आक्रमण होने की स्थिति मे उन्होंने अपने घरो को आग लगा दी और उस अग्नि मे जल कर भस्म हो गये । इस घेरे के समय लगभग ५००० मल्ली मारे गये तथा उनका शौर्य इतना महान था कि बहुत कम व्यक्ति जीवितावस्था मे शत्रु के हाथ लगे ।' कर्टियस तथा डियोडोरस दोनो ने ही अग्नि एव दुर्ग की सेना द्वारा ठोस मुकाबला किये जाने का उल्लेख किया है । अंतिम लेखक ने इस सेना की सख्या २०,००० बताई है जिनमे केवल ३० ० सैनिक दुर्ग मे जाकर

सुरक्षित हो सके। यहाँ उन्होंने सिकन्दर से संधि कर ली। कर्टियस ने भी लिखा है कि दुर्ग को कोई क्षति नहीं हुई थी तथा सिकन्दर ने अपनी सैनिक टुकड़ी छोड़ दी थी।

यह सभी विवरण अटारी के ध्वस्त नगर एवं दुर्ग की स्थिति एवं आकार से भली भांति मिलते हैं जो तुलम्बा के २० मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में तथा मुल्तान की ओर जाने वाली सड़क पर अवस्थित है। इन अवशेषों में ७५० फुट वर्गाकार तथा ३५ फुट ऊंचा एक सुदृढ़ दुर्ग है जिसके चारों ओर खाई है तथा जिसके मध्य में ५० फुट ऊंचा एक बुर्ज है। दो किनारों पर नगर के अवशेष हैं जिनसे २० फुट ऊंचा एवं १२०० फुट वर्गाकार टीला बना हुआ है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र १८०० फुट लम्बा एवं १२०० फुट चौड़ा खण्डहरों का एक ढेर है। इसके इतिहास के सम्बन्ध में कोई प्रमाण तक नहीं है परन्तु ईंटों का विशाल आकार यह दिखाने के लिये पर्याप्त है कि यह महत्व-पूर्ण प्राचीनता का स्थान रहा होगा। प्राचीन नगर का नाम अज्ञात है। अटारी केवल पड़ोस के गाँव का नाम है जिसे निकट भूत काल में सिक्खों के अटारीवाला परिवार के किसी सदस्य ने स्थापित करवाया था। परन्तु इसके विस्तार एवं दृढ़ता को देखकर एवं तुलम्बा तथा मुल्तान के मध्य इसकी अनुकूल स्थिति से मेरा अनुमान है कि अटारी के ध्वस्त टीले को ब्राह्मणों के सुदृढ़ नगर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जहाँ सिकन्दर का डट कर मुकाबला किया गया था।

कर्टियस ने इस नगर के सम्बन्ध में कुछ विस्तृत विवरण दिया है जिसकी ओर एरियन अथवा डियोडोरस ने संकेत तक नहीं किया, परन्तु वह कुछ महत्व दिये जाने के हकदार हैं क्योंकि सम्भव है कि इसे दोनों सहयोगियों के कथनों में किसी एक से सम्बन्धित किया जा सके। उसने लिखा है कि "सिकन्दर ने एक नाव में बैठ कर दुर्ग की परिक्रमा की थी" जो सम्भव हो सकता है क्योंकि इस खाई को निश्चित रूप से इच्छानुसार रावी के जल से भरा जा सकता था जैसा कि मुलतान की खाई के सम्बन्ध में किया जा सकता है। अब, अटारी का पुराना दुर्ग आज भी चारों ओर खाई से घिरा हुआ है जिसे समीप से गुजरती पुरानी नहर से भरा जा सकता था। इस स्थान पर नहरों के मार्गों की संख्या विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मैंने अटारी के ठीक पश्चिम में इन नहरों के १२ समानान्तर पुराने मार्ग गिने थे और यह सभी नहरें सराय सिधु के दक्षिण में पुरानी रावी से निकाली गई थी। अतः मैं इस सम्भावना को स्वीकार करने के लिये पूर्णतया तत्पर हूँ कि ब्राह्मणों का नगर चारों ओर से जल से भरी खाई से घिरा हुआ था और सिकन्दर उनकी मोर्चा बन्दी देखने के उद्देश्य से इस खाई में गया था। परन्तु जब कर्टियस यह लिखता है कि गङ्गा को छोड़ भारत की तीन बड़ी नदियाँ अर्थात् सिंधु हाईड्राओटीज तथा अकिसानीज दुर्ग के चारों ओर खाई बनाने के लिये एक साथ मिल जाती हैं तो मैं केवल यह अनुमान लगा सकता हूँ कि यह विवरण सम्भवतः पाँच नदियों के संगम स्थान नीचे किसी अन्य नगर के पश्चात्वर्ती

घेरे के विवरण से त्रुटिपूर्वक लिया गया है अथवा लेखक ने दुर्ग की खाइयों एवं नदियों के सगम के दो विभिन्न विवरणों को एक साथ मिला दिया है। दियोडोरस ने भी नदियों के सगम का उल्लेख किया है परन्तु उसने इनके जाल द्वारा किसी दुर्ग के चारों ओर खाई बनाये जाने का कोई सकेत नहीं दिया अत यह सम्भव है कि तीन नदियों का यह विवरण कर्टियस की कल्पना की उड़ान हो सकती है।

मुल्तान

मुल्तान की प्रसिद्ध महानगरी मूल रूप से रावी के दो टापुओं पर अवस्थित थी परन्तु नदी ने काफी समय पूर्व ही अपना पुराना मार्ग त्याग दिया है तथा अब इसका निकटतम बिन्दु ३० मील से अधिक दूरी पर है। परन्तु बाढ़ के समय रावी का जल अब भी पुराने मार्ग मे प्रवाहित होता है तथा मैंने दो बार मुल्तान की खाइयों को नदी के अतिरिक्त जल से भरते हुए देखा है। (१) मुल्तान के अतर्गत दीवारों से घिरा एक नगर एवं एक सुदृढ़ नगर है जो पुरानी रावी के विपरीत किनारों पर अवस्थित थे। यह नदी किसी समय इन दोनों के बीच एवं इनके चारों ओर प्रवाहित थी। इनके मूल स्थान पर दो छोटे टीले थे जिनकी ऊचाई प्रदेश की सामान्य ऊचाई से ८ अथवा १० फुट से अधिक नहीं थी। इनकी वर्तमान ऊचाई ४५ से ५० फुट तक है और ३५ से ४० फुट की यह भिन्नता कई शताब्दियों मे खण्डहरों के एकत्रित हो जाने के कारण है। मैंने व्यक्तिगत रूप से यहाँ की प्राकृतिक मिट्टी तक अनेक कुए खुदवा कर इस तथ्य की पुष्टि की थी। प्राकृतिक मिट्टी से मेरा आशय ईटों राख एवं मानव अधिकार के अन्य प्रमाणों से रहित मिट्टी से है।

दुर्ग को एक असमान अर्ध व्यास कहा जा सकता है जिसका अर्ध व्यास अथवा उत्तर की ओर उन्मुक्त सीधी रेखा २५०० फुट लम्बी अथवा नगर की ओर तिरछा भाग ४१०० फुट है। इस प्रकार इसका पूर्ण व्यास ६६०० फुट अथवा १¼ मील है। इस नगर में चार द्वारों के पार्श्व मे दो दो बुर्जों सहित ४६ बुर्ज थे। दीवार युक्त नगर जिसमे तिरछे अर्ध व्यास के दो तिहाई भाग तक दुर्ग को घेरा हुआ है, की लम्बाई ४२०० फुट एवं इसकी चौड़ाई २४०० फुट है जिसकी लम्बी सीधी रेखा दक्षिण पश्चिम की ओर है। नगर एवं दुर्ग सहित मुल्तान की दीवारों का कुल व्यास १५०० फुट

(१) बर्न्स ने 'पजाब, बोखारा आदि की यात्राओं' में गलती से मुल्तान के आस-पास के प्रदेश के जल मग्न होने का कारण "चेनाब एवं उसकी नहरों" को बताया है। यदि वह स्थलमार्ग से स्थान पर जल मार्ग से यात्रा करता तो उसे यह स्पष्ट हो जाता कि यह जल रावी मे बाढ़ आ जाने से वहाँ आया था तो सराय सिधु से अपने पुराने मार्ग में प्रवाहित होकर मुल्तान की ओर आ जाती है। मैंने १८५६ ई० की अगस्त में इस क्षेत्र की यात्रा की थी तथा रावी के पुराने मार्ग को पूर्ण बाढ़ मे देखा था।

अथवा लगभग ३ मील है एवं उपनगरों सहित इस स्थान का पूर्ण व्यास ४½ मील है। यह अन्तिम आंकड़े ह्वेनसांग के आंकड़ों के अत्यधिक समीप है। जिसने मुल्तान के व्यास को ३० ली अथवा ५ मील बताया है। यह आंकड़े एलफिन्स्टन के आंकड़ों से अधिक समानता रखते हैं जिसने मुल्तान को "पूर्ण व्यास में साढ़े चार मील से कुछ अधिक" बताया है और उसके आंकड़े सामान्यतः शुद्ध हैं। जिस समय एलफिन्स्टन तथा बर्न्स ने इस दुर्ग को देखा था, यहाँ खाइयाँ नहीं थीं क्योंकि मूलतः यह रावी के जल से घिरा हुआ था। परन्तु बर्न्स की यात्रा के कुछ ही समय पश्चात् रणजीतसिंह के प्रतिभाशाली गवर्नर सावनमल द्वारा एक खाई खुदवाई गई थी। कहा जाता है कि इसकी दीवारों का निर्माण शाहजहाँ के सबसे छोटे पुत्र मुरादबख्श ने करवाया था। परन्तु १८५४ ई० में मुल्तान के दुर्ग को गिराते समय मैंने देखा था कि यह दीवारें सामान्यतः दो पंक्तियों में थीं जिसकी बाहरी दीवार लगभग ४ फुट मोटी तथा भीतरी ३½ फुट से ४ फुट मोटी थी। (१) अतः मेरा निष्कर्ष है कि मुरादबख्श ने केवल बाहरी दीवार का निर्माण करवाया था। सम्पूर्ण दीवारें बाहरी दीवारों को छोड़ जली हुई ईंटों एवम् मिट्टी की बनी हुई हैं। बाहरी दीवार पर चूने का ६ इञ्च मोटा पलस्तर किया हुआ है। मुल्तान अनेक विभिन्न नामों से प्रसिद्ध है परन्तु यह सभी नाम विष्णु अथवा सूर्य से सम्बन्धित हैं। इस दुर्ग के किसी समय के प्रसिद्ध मन्दिर में सूर्य की पूजा की जाती थी। अबुरेहान ने कश्यपपुर, हंसपुर, भागपुर, साम्बपुर, नामों का उल्लेख किया है और इस सूची में मैं प्रह्लादपुर तथा अधिष्ठान के नाम जोड़ देना चाहता हूँ। जनता की प्रथाओं के अनुसार कश्यपपुर का निर्माण कश्यप ने करवाया था जो १२ अदित्यों एवम् दैत्यों का पिता था। यह अदित्य अथवा सूर्य देवता अदिति के पुत्र थे जबकि दैत्य दिति के पुत्र थे। उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकश्यप नाम का दैत्य था जो विष्णु के सर्व व्यापी होने के तथ्य को स्वीकार न करने के कारण सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। जिसके कारण नरसिंह अवतार हुआ था। उसका उत्तराधिकारी उसका अधिक प्रसिद्ध पुत्र एवं विष्णु का उत्साही पुजारी प्रह्लाद था जिसके नाम पर नगर का नाम प्रह्लादपुर रखा गया था। उसका प्रपौत्र बाण, जिसे बाणासुर कहा जाता था कृष्ण का असफल विरोधी था जिसने (कृष्ण) मुल्तान पर अधिकार कर लिया था। यहाँ कृष्ण के पुत्र साम्ब ने मित्रवन की वृक्षवाटिका में

---

(१) यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि सीमी दरवाजा के समीप दीवार को गिराने पर मुझे वह दोनों गोले प्राप्त हुए थे जिन्हें १०० पौण्ड की प्रसिद्ध तोप से फेंका गया था। इस तोप का प्रयोग सिक्खों के भङ्गी मिसल ने इस शताब्दी के प्रारम्भ काल में मुल्तान के विरुद्ध किया था। यह दोनों गोले ७ फुट मोटी ईंटों की दीवार के पार चले गये थे तथा दोनों ही एक दूसरे से केवल ३ फुट के भीतर थे।

शरण ली थी एवम् मित्र अथवा सूर्य की उपासना से उसका कोढ़ जाता रहा था। तत्पश्चात् उसने अधिष्ठान अर्थात् "प्रथम पूजा स्थान" नामक मन्दिर में मित्र की स्वर्ण मूर्ति बनवाई थी और इस प्रकार साम्ब द्वारा प्रारंभ की गई सूर्य की पूजा मुल्तान के स्थान पर वतमान समय तक प्रचलित है।

कृष्ण के पुत्र साम्ब की कथा का उल्लेख भविष्य पुराण मे मिलता है और चूंकि इस पुराण में मित्रवन को चन्द्रभाग अथवा चेनाब नदी के तट पर दिखाया गया है अत यह ग्रन्थ अपेक्षाकृत पश्चात्वर्ती समय मे लिखा गया है जब मुलतान क समीप पुरानी रावी के प्रवाहित रहने की सभी स्मृतियाँ लुप्त हो चुकी थी। फिर भी अन्य ग्रन्थों से हम जानते हैं कि मुल्तान के स्थान पर सूर्य की पूजा अधिक प्राचीन समय से प्रचलित है। सातवीं शताब्दी मे ह्वेनसांग ने अत्यधिक सुसज्जित देवता की स्वर्ण मूर्ति सहित एक सुन्दर मन्दिर को देखा था जिसमे भारत के सभी भागो क राजा भेंट भेजा करते थे। अतः प्रारम्भिक अरब विजेताओं मे यह स्थान "स्वर्ण मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध था तथा मसूदी ने इस बात की पुष्टि की है कि एल मुलतान का अर्थ "स्वर्ण की चरागाहे" था। ह्वेनसांग ने इसे म्यू-लो सान पो कहा है जो श्री एम विविन डी सेन्ट मार्टिन के अनुसार मूलस्थान.पुर का अनुवाद है। स्वयं जनसाधारण म यह स्थान मूल-स्थान नाम से प्रचलित है जो अबुरिहान द्वारा उद्धृत मूल तान के स्वरूप से मिलता है जिसे एक काश्मीरी लेखक से लिया गया था। मूल का अर्थ है "जड़ अथवा उत्पत्ति' तथा बोल चाल की भाषा में थान का अर्थ है 'स्थान अथवा पूजा गृह।' इस प्रकार मूल-स्थान का अर्थ है "मूल का मन्दिर" जिसे (मूल को) मैं सूर्य का विशिष्ट नाम समझता हूं। अमरकोश मे सूर्य का एक नाम ब्रधन दिया गया है जो मूल का पर्यायवाची शब्द है। अत ब्रधन को लेटिन के रडिक्स अथवा रेडियस से सम्बन्धित किया जा सकता है परन्तु रडिक्स न केवल मूल उत्पत्ति अथवा जड का सकेत करता है वरन् एक विशेष जड मूली का प्रतिनिधित्व भी करता है। इसी प्रकार मूल उत्पत्ति अथवा जड और मूलक, मूली का सकेत करते हैं। सूर्य की किरण एव मूलो का परस्पर सम्बन्ध दोनों की आकृति मे समानता में निहित है अत रेडियस अथवा मूल शब्दों का प्रयोग एक चक्के की तीलियों के लिए भी किया जाता है। विल्सन का कथन है कि मूल स्थान का अर्थ है "स्वर्ग, आकाश, अन्तरिक्ष, वायुमण्डल, परमात्मा" और इनमे प्रत्येक नाम आकाशीय अन्तरिक्ष के अधिष्ठाता के रूप म सूय के लिये प्रयोग किया जा सकता है। इन्हीं कारणों से मेरा अनुमान है कि "मूल किरणों के देवता के रूप मे सूर्य की केवल एक विशिष्ट उपाधि है तथा मूलस्थानपुर का अर्थ केवल "सूर्य मन्दिर वाला नगर" है। भाग तथा हस सूर्य के दो सर्व ज्ञात नाम है अत भागपुर एवम् हसपुर मुल्तान के पर्यायवाची शब्द हैं। प्राचीनतम नाम कश्यपपुर अथवा सामान्य उच्चारणा-नुसार कश्यपुर बताया जाता है जिसे मैं हेकाटस के कसपापुरोस तथा हिरोदतस के

कस्पातुरोस और साथ ही साथ टालमी के कस्पीरा के अनुरूप समझता हूँ। अन्तिम नगर को रहुडिस अथवा रावी के निचले जलभाग पर सन्दोभाग अथवा चन्द्रभाग के साथ अपने सङ्गम स्थान से ठीक ऊपर एक मोड़ पर अवस्थित बताया गया है। अत कस्पीरा की स्थिति कश्यपपुर अथवा मुल्तान की स्थिति से ठीक ठीक मिल जाती है जो रावी के पुराने तट के उस बिन्दु पर अवस्थित है जहाँ यह नदी दक्षिण पूर्व से पूर्व की ओर मुड़ जाती है। यह अनुरूपता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि कस्पीरेई की सीमाओ में जिसकी सीमायें काश्मीर से मथुरा तक विस्तृत थीं मुल्तान अथवा कस्पीरा ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी के मध्य में पञ्जाब का मुख्य नगर था। परन्तु सातवी शताब्दी मे इसे मूलस्थान अथवा मुल्तान का नाम प्राप्त हो चुका था और अबुरिहान के समय तक अरब लेखकों को यहा एक मात्र नाम ज्ञात था। संस्कृत का ज्ञान होने के कारण अबु रिहान को स्थानीय साहित्य में झांकने का अवसर प्राप्त हुआ और इसी साहित्य से उसने उपयुक्त नामों में कुछ नाम प्राप्त किये थे। भविष्यपुराण में आद्यस्थान अथवा "प्रथम मन्दिर" नाम सूर्य के मूल मन्दिर को दिया गया था जिसे कृष्ण के पुत्र साम्ब ने बनवाया था परन्तु आदया सम्भवत आदित्य अथवा सूर्य का अपभ्रंश है जिसे सामान्यत अदित अथवा एत लिखा जाता है जैसा कि आदित्यवार अथवा रविवार के लिये अदितवार अथवा एतवार में लिखा गया है। बिला-दूरी ने इस मूर्ति को हजरत अयूब की मूर्ति कहा है और यह आदित्य के स्थान पर अयूब पढ़े जाने की त्रुटि के कारण लिखा गया है। प्रह्लादपुर अथवा पह्लादपुर नरसिंह अवतार के मन्दिर से सम्बन्धित है जिसे आज भी पह्लादपुरी कहा जाता है। बर्न्स जिस समय मुल्तान मे था उस समय यह मन्दिर इस नगर का मुख्य मन्दिर था परन्तु इसकी छत जनवरी १८४९ के घेरे में बारूद के भण्डार मे आग लग जाने के कारण उड़ गई थी और आज तक इसका पुनर्निमाण नहीं कराया गया है। यह मन्दिर दुर्ग के उत्तर पश्चिमी कोण पर बहावल के मकबरे के समीप है। सूर्य का प्रसिद्ध मन्दिर दुर्ग के मध्य में था परन्तु औरङ्गजेब के समय में इसे तोड़कर इसके स्थान पर जामा ए मस्जिद का निर्माण करवाया गया था। यही मस्जिद सिक्खों का बारूद भण्डार थी जिसे १८४९ में उड़ा दिया गया था।

कश्यपपुर को टालमी के कस्पीरा अनुरूप स्वीकार करने मे मैं यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि मुल्तान ईसवी काल द्वितीय शताब्दी के मध्य भाग में रावी के तट पर अवस्थित था। दुर्भाग्यवश ह्वेनसाग ने नदी का कोई उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसकी यात्रा के कुछ समय पश्चात् सिंध के चच्च नामक ब्राह्मण राजा ने मुल्तान पर आक्रमण किया तथा इस पर अधिकार कर लिया था और उसके आक्रमण के विस्तृत विवरण से पता चलता है कि रावी सातवीं शताब्दी के मध्य भाग में भी इसकी दीवारों के नीचे बहती थी। इनसे यह भी पता चलता है कि उस समय व्यास नदी

मुल्तान के पूर्व एवम् दक्षिण में स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित थी। सिंध की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार चच व्यास नदी के दक्षिणी तट पर पाभिया अथवा बहोया तक बढ़ा था और वहाँ से वह मुल्तान के पूर्व में कुछ ही दूरी पर रावी नदी के तट पर अवस्थित सुदृढ़ अथवा सिक्का तक बढ़ गया था। इस स्थान के सुरक्षा सैनिकों ने शीघ्र ही इसे त्याग दिया और मुल्तान की ओर हट कर रावी नदी के तट पर चच का सामना करने के उद्देश्य से राजा बज्हर से मिल गये। एक भीषण युद्ध पश्चात् मुल्तानी चच द्वारा पराजित हुए और अपने दुर्ग में चले गये जिसने एक दीर्घकालीन घेरे के पश्चात् संधि वार्ता के परिणाम स्वरूप आत्म समर्पण किया।

चच के आक्रमण के संक्षिप्त उल्लेख से हम मल्लो की राजधानी के विरुद्ध सिकन्दर के अभियान को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे। अपने अन्तिम उल्लेख में मैंने उसे सुदृढ़ ब्राह्मण नगर में छोड़ा था जिसे मैं मुल्तान के उत्तर पूर्व में ३४ मील की दूरी पर तथा तुलम्बा से आने वाले उच्च भाग पर अवस्थित अटारी के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। यहाँ मैं एरियन के विवरण को पुनः उद्धृत करूंगा। "अपनी सेनाओं को ताजा करने के लिए एक दिन ठहरने के पश्चात् उसने अपनी यात्रा का रुख उसी राष्ट्र के अन्य निवासियों की ओर किया जिन्होंने उसकी सूचना के अनुसार अपने नगरों का त्याग दिया था तथा मरुभूमि में चले गये थे। अन्य एक दिन के विश्राम के पश्चात् उसने पाइथन तथा घुड़सवारों के नेता दिमित्रियस को अपनी सम्पूर्ण सेनाओं एवं पैदल सेना की एक टुकड़ी के साथ तुरन्त नदी की ओर वापिस जाने की आज्ञा दी। इसी समय में उसने सेनाओं को मल्लो की राजधानी के विरुद्ध भेजा जहाँ, उसको सूचना दी गई थी कि अन्य नगरों के अनेक निवासी अधिक सुरक्षा के लिए भाग कर आ गये थे।" यहाँ हम देखते हैं कि सिकन्दर ने ब्राह्मणों के नगर से राजधानी तक केवल दो यात्राएं की थी जो अटारी तथा मुल्तान के मध्य ३४ मील की दूरी से अधिक अच्छी तरह मिलता है। मल्लो अथवा माली के मुख्य नगर को ढूंढते समय हमें यह याद रखना चाहिए कि मुल्तान सदैव निचले पञ्जाब की राजधानी रहा है तथा यह अन्य किसी स्थान की अपेक्षा आकार में चौगुणा है एवं निश्चित ही देश के इस भाग का सबसे सुदृढ़ दुर्ग है। यह सभी गुण मल्लो के मुख्य नगर में भी थे। यह देश की राजधानी थी, यहाँ एरियन के अनुसार पचास हजार सैनिक अथवा सुरक्षा सैनिकों की सबसे बड़ी संख्या थी और इसी कारण यह सबसे बड़ा स्थान था और अन्त में, यह स्थान सबसे सुदृढ़ स्थान रहा होगा क्योंकि एरियन ने लिखा है कि अन्य नगरों के निवासी "अपनी अधिक सुरक्षा हेतु" भाग कर इस नगर में आ गये थे। इन कारणों से मैं पूर्णतः संतुष्ट हूँ कि मल्लो की राजधानी का नगर आधुनिक मुल्तान था परन्तु जैसे-जैसे हम एरियन के विवरण को पढ़ते जायेंगे उपर्युक्त अनुरूपता की अधिक पुष्टि होती जाएगी।

सिकन्दर के समीप आने पर भारतीय सैनिक अपने नगर के बाहर आ गये तथा "हाईड्राओटीज नदी का पार कर उन्होंने नदी के तट पर अपनी सेनाओं को खड़ा कर दिया जो अधिक ढालुआ एवं दुर्गम था। उनका विचार था कि इस प्रकार वह उसके मार्ग को अवरुद्ध कर देंगे । जब वह वहां पहुँचा एवं उसने शत्रु की सेनाओं को सामने तट पर खड़े देखा तो उसने बिना विलम्ब किए अपने साथ लाई गई घुड़सवार सेना सहित नदी में प्रवेश किया।" आरम्भ में भारतीय सैनिक पीछे हट गये, "परन्तु जब उन्होंने यह अनुमान लगाया कि उनका पीछा करने वाली सेना घुड़सवार सेना की एक टुकड़ी है तो वह पुनः पीछे मुड़ आए और संख्या में ५० हजार होने के कारण उन्होंने उसका सामना करने का निश्चय किया।" इस विवरण से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर पूर्व की ओर से मुल्तान की ओर बढ़ा होगा तथा बाद के समान ही उसका बढ़ाव देश के प्राकृतिक भू भाग द्वारा निर्धारित रहा होगा। अब, मुल्तान से ऊपर पुरानी रावी का मार्ग १८ मील तक ठीक पश्चिम में है और इसके परिणामस्वरूप सिकन्दर की यात्रा उस मुरह अथवा गिरका के दुर्ग तक ले गई होगी जो मुल्तान के पूर्व में कुछ ही दूर पर रावी के तट पर अवस्थित था। इस बिन्दु से आगे एक ही विवरण दोनों विजेताओं की प्रगति का उल्लेख करेगा। रावी के पूर्वी तट का नगर इसके सैनिकों द्वारा त्याग दिया था। जो नदी के पार चले गये हैं जहाँ उन्होंने पड़ाव तथा युद्ध किया था और पराजित हो जाने पर उन्होंने दुर्ग में शरण ली थी। मुरह दुर्ग वर्तमान मारासीतल के समीप किसी स्थान पर रहा होगा जो मुल्तान के २३ मील पूर्व में रावी के पुराने तट पर अवस्थित है।

राजधानी पर आक्रमण के समय सिकन्दर को गहरी चोट लगी थी तथा उसके सैनिकों ने न बुढ़ों को छोड़ा, न स्त्रियों को और न बच्चों को ही। प्रत्येक जीव को उन्होंने तलवार के घाट उतार दिया। डियोडोरस एवं कर्टियस ने इस नगर को प्रात्रकाय लोगों का नगर कहा है परन्तु एरियन ने इस विचार का विशेष रूप से खण्डन किया है "क्योंकि यह नगर" उसके कथनानुसार, "मल्लियों का नगर था तथा उन्होंने ही सिकन्दर को घायल किया था।" वस्तुतः मल्ली ओक्सुड्रकाई की सेनाओं के साथ मिलने एवं सिकन्दर के साथ युद्ध करने का विचार रखते थे परन्तु शुष्क एवं ऊसर प्रदेश से होकर सिकन्दर के तीव्र एवं अचानक आक्रमण ने शत्रु सेनाओं को मिलने नहीं दिया और इस प्रकार वह एक दूसरे की सहायता नहीं कर सके।' स्ट्रैबो ने भी लिखा है कि सिकन्दर मल्लियों के नगर पर अधिकार करते समय घायल हुआ था।

जिस समय सिकन्दर ने मल्ली के विरुद्ध अपना अभियान आरम्भ किया था उस समय उसने हेफायशियन की सेना के मुख्य भाग सहित पाँच दिन पूर्व आगे भेज दिया था और उसे अकिसीनीज तथा हाईड्राओटीज के सङ्गम पर उसके पहुँचने तक प्रतीक्षा करने की आज्ञा दी। तदानुसार मल्ली की राजधानी पर अधिकार कर लेने के पश्चात्

"जितना शीघ्र उसका स्वास्थ्य उसका साथ दे सका उसने स्वयं को हाइड्राओटीज नदी के तट तक ले जाये जाने की आज्ञा दी और तत्पश्चात् नदी मार्ग द्वारा पड़ाव तक ले जाए जाने की आज्ञा दी जो हाईड्राओटीज तथा अकिसीनीज के सङ्गम के समीप था, जहाँ हैफायशियन सेना का तथा नियरकस जल सेना का नेतृत्व कर रहा था।" यहाँ उसने ओग्नुड्रकाय एवम् मल्लों के राजदूतों का सम्मान किया जो मित्रता करने के लिए उपस्थित हुए थे। तत्पश्चात् वह अकिसीनीज के मार्ग से सिंधु नदी से इसके सङ्गम स्थान तक गया जहाँ उसने, "परडीकस के आने तक अपनी नौकाओं के बेड़े को रोके रखा। जो अपने मार्ग में भारत की स्वतन्त्र जातिओं में अवस्तानी जाति का दमन करने के पश्चात् अपनी सेना सहित वहाँ पहुँचा था।"

सातवीं शताब्दी के मध्य में चच द्वारा मुल्तान पर अधिकार किये जाने के समय रावी नदी दुर्ग की दीवारों के नीचे प्रवाहित थी परन्तु ७१२ ई० में जिस समय मुहम्मद बिन कासिम ने इस दुर्ग पर घेरा डाला था तो बिलदूरी के कथनानुसार, 'नगर की जलपूर्ति, नदी से निकली एक नहर द्वारा होती थी (एम रीवाड ने नदी का नाम नहीं लिखा है।) मुहम्मद ने इस नहर को काट दिया और प्यास से पीड़ित निवासियों ने इच्छानुसार आत्म समर्पण कर दिया। शस्त्र धारण करने योग्य सभी व्यक्तियों का वध कर दिया गया और मंदिर के ६००० पुजारियों सहित स्त्रियों एवं बच्चों को दास बना लिया गया। कहा जाता है कि एक देश द्रोही ने मुहम्मद को यह नहर दिखाई थी। मैं इस विवरण को एक प्रमाण स्वरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि रावी का मुख्य प्रवाह अपने पुराने मार्ग से हट चुका था परन्तु यह पूर्णतय असम्भव है कि जल की कमी के कारण मुल्तान को आत्म-समर्पण करने पर बाध्य होना पड़ा हो। मैं यह बतला चुका हूँ कि रावी की एक शाखा मुल्तान के दुर्ग एवं नगर के मध्य से होकर जाती थी जहाँ अधिकाश समय में लेशमात्र मिट्टी हटाने से जल प्राप्त किया जा सकता है और कुछ मिनटों की साधारण खुदाई में यहाँ हर समय जल प्राप्त किया जा सकता है। कहा जाता है कि इदरिसी के समय भी नगर का भू भाग एक छोटी नदी द्वारा सींचा जाता था और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि रावी की कोई शाखा मुल्तान से होकर प्रवाहित रही होगी। यद्यपि आत्म समर्पण के सम्बन्ध में बिलदूरी का विवरण निश्चित ही त्रुटिपूर्ण है फिर भी मैं यह विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि अन्य सभी परिस्थितियाँ पूर्णतय सत्य हो सकती है। अतः जब रावी का मुख्य प्रवाह मुल्तान से दूर हो गया तो भी यह नगर जिनके दुर्ग मुख भाग में दीवारें नहीं बनाई गई थीं—नदी के पुराने मार्ग से पास दुर्ग तक बनी नवीन दीवारों से सुरक्षित किया गया होगा। इस नवीन दीवारों में नहर अथवा रावी की शाखा जो कुछ भी यह रही हो को प्रवाहित रखने के लिए स्थान छोड़ा गया होगा। जो आधुनिक काल समान रहे होंगे। इदरिसी ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि मुल्तान की रक्षा एक दुर्ग द्वारा की गई थी जिसके

चार द्वार थे तथा जिसके चारों ओर खाई थी। अत मेरा अनुमान है कि मुम्मद बिन कासिम ने नगर में प्रवाहित जल धारा को अन्य मार्ग में मोड़ देने से मुल्तान पर अधिकार कर लिया था ठीक उसी प्रकार जैसे साईरस ने बेबीलोन पर अधिकार किया था। इस प्रकार वह नदी के सूखे मार्ग से वह नगर में प्रवेश कर सकता था और तत्पश्चात यह प्राय सम्भव है कि जल के अभाव के कारण दुर्ग को आत्म-समर्पण करना पड़ा हो। आजकल इस दुर्ग में अनेक कुएं हैं परन्तु उनमें केवल एक कुआँ ही प्राचीन बताया जाता है और एक कुआँ ५००० सैनिकों के एक छोटे दल की जलपूर्ति के लिये भी अपर्याप्त है।

कहरोर

कहरोर का प्राचीन नगर मुल्तान के दक्षिण पूर्व में ५० मील की दूरी पर तथा बहावलपुर से २० मील उत्तर पूर्व में पुरानी व्यास नदी के तट पर अवस्थित है। इसका उल्लेख उन नगरों में एक नगर के रूप में किया जाता है जो सातवीं शताब्दी के मध्य में मुल्तान पर अधिकार किये जाने के पश्चात चच को समर्पित कर दिये गये थे। परन्तु कहरोर की ख्याति ७६ ई० में विक्रमादित्य तथा शकों के मध्य महान युद्ध का स्थान होने के कारण है। अबु रिहान ने इसे मुल्तान तथा लोनी दुर्ग के मध्य अवस्थित बताया है। अन्तिम नाम सम्भवत कहरोर से ४४ मील पूर्व दक्षिण-पूर्व तथा मुल्तान के ७० मील पूर्व दक्षिण पूर्व में सतलज नदी के पुराने मार्ग के समीप अवस्थित एक प्राचीन नगर लुधान के लिये लिखा गया है। अत इसकी स्थिति मुल्तान एवं लुधान के मध्य में है जैसा कि अबु रिहान ने लिखा है।

उच्छ

उच्छ का प्राचीन नगर मुल्तान के दक्षिण दक्षिण पश्चिम में ७० मील की दूरी पर तथा मिठानकोट के स्थान पर सिंधु नदी के साथ पचनद के वर्तमान सङ्गम स्थान से ४५ मील उत्तर पूर्व में पचनद के पूर्वी तट पर अवस्थित है। सिंधु नदी के मार्ग में यह परिवर्तन विल्फोर्ड के सर्वेक्षक मिर्जा मुगल बेग के समय में हुआ था जिसने १७८६ ई० से १७९६ तक पञ्जाब एवं काबुल का सर्वेक्षण किया था और इस भाग का सर्वेक्षण १७८७ ८ में किया गया था। नाला पुरान के नाम से पुराना मार्ग अब भी जीवित है। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में ही उच्च का अर्थ है ऊंचा, उन्नत अत उच्च नगर ऊंचे स्थान पर अवस्थित किसी नगर का एक सामान्य नाम है। इस प्रकार हम दिल्ली के ४० मील दक्षिण पूर्व में काली नदी के ऊँचे तट पर अवस्थित ऊंचा गाँव का नाम प्राप्त होता है जिसे मुसलमानों ने बुलन्दशहर कहा है। एक अन्य उच्च झेलम तथा चेनाब के सङ्गम स्थान के पश्चिम में एक टीले पर मिलता है तथा एक टीले पर ही अवस्थित तीसरा उच्छ हमारे वर्तमान विवरण का विषय है। बर्नस के अनुसार उच्छ तीन

विशिष्ट नगरों का बना हुआ है जो एक दूसरे से कुछ हजार गजों की दूरी पर है तथा प्रत्येक नगर ईंटों की दीवारों से घिरा हुआ है। यह सभी अब जर्जर अवस्था में है। मसोन ने केवल दो विभिन्न नगरों का उल्लेख किया है परन्तु जन साधारण का अपना कथन यह है कि किसी समय यहाँ उच्च नगर नाम के सात विभिन्न नगर थे। मुगलवेग के मानचित्र में उच्छ के सामने टिप्पणी दी गई है 'जिसमें सात विशिष्ट ग्राम हैं।" मसान के अनुसार उच्छ मुख्य रूप से 'पूर्ववर्ती नगरों के अवशेषों के कारण प्रसिद्ध है जो अधिक विस्तृत थे तथा जिनसे इस स्थान का पूर्वकालीन समृद्धि की पुष्टि होती है।' बनस के अनुसार उच्छ एक टील पर अवस्थित है जो भवनों के अवशेषों से बना हुआ है। यह विचार निश्चित हो सहा है क्योंकि यह नगर बारम्बार नष्ट हुआ है एवं इसका पुनर्निमाण किया गया है। ६३१ हिजरी अथवा १५२४-२५ ई० में हुसन शाह अरगुन द्वारा इस स्थान के अन्तिम मन्वन् घेरे के पश्चात उच्छ की दीवारों को भूमि सात कर दिया गया था एवं इसके द्वार तथा अन्य सामग्री नाव द्वारा भक्कर ले जाई गई थी। पञ्जाब की नदियों के पुराने सङ्गम स्थान पर अवस्थित होने के कारण यह स्थान प्राचीनतम समय से महत्वपूर्ण स्थान बन गया होगा। तदनुसार हमें एरियन से ज्ञात होता है कि सिकन्दर ने 'दो नदियों के सङ्गम स्थान पर एक नगर के निर्माण की आज्ञा दी। उसका विचार था कि इस स्थिति के लाभों के कारण यह नगर समृद्ध एवं जन पूर्ण हो जायगा। सम्भवतः यह वही नगर है जिसका रशीदुद्दीन ने सिकन्दर के पश्चात् सिन्ध के शासक काफन्द के पुत्र आयन्द के अधीन सिन्ध के चार राज्यों में एक राज्य की राजधानी के रूप में उल्लेख किया है। उसने इस स्थान का असकालन्द-उसह कहा है जो अलेक्जेंड्रिया उस्सा अथवा उस्सा का सरल भ्रष्ट स्वरूप है। यूनानियों ने उच्च को सम्भवतः उसाह लिखा था। मेरा भी विचार है कि उच्छ बच नामों का इस चन्दर अथवा सिकन्द्रिया रहा होगा जिसे मुल्तान पर आक्रमण के समय चच ने अपने अधिकार में कर लिया था। मुस्लिम अधिकार के पश्चात इस स्थान का उल्लेख इसके स्थानीय नाम उच से किया गया है। महमूद गजनवी एवं मुहम्मद गोरी ने इस स्थान पर अधिकार कर लिया था तथा नासुरुद्दीन कुबाचा के अधीन यह नगर सिन्ध का मुख्य नगर था। कुछ समय पश्चात यह मुल्तान के स्वतन्त्र राज्य का एक भाग था जिसकी स्थापना तैमूर के आक्रमण के पश्चात फैली अराजकता के समय में हुई थी। १५२४ ई० में सिन्ध के शाह हुसेन अथवा हुसन अरगुन ने इस पर अधिकार कर लिया था और जैसा कि मैं उल्लेख कर चुका हूँ इसकी दीवारों को भूमिसात कर दिया गया था परन्तु मुल्तान पर अधिकार के पश्चात हुसन ने उच्छ के पुनर्निर्माण की आज्ञा दी और अपनी तत्कालीन विजय को सुरक्षित रखने के लिए एक विशाल सेना वहाँ छोड़ गया। अकबर के शासन काल में उच्छ को स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। अबुल फजल ने इसे मुल्तान के विभिन्न जिलों में सम्मिलित किया है। —

कर्टियस ने पञ्जाब की नदियो के संगम स्थान को सम्ब्रकाय अथवा सब्रकाय से तथा दियोडोरस ने इसे सम्बस्ताय जाति का प्रदेश कहा है। एरियन ने कम से कम इस नाम से इनका उल्लेख नही किया है परन्तु मेरा विचार है कि ओसदी जिन्होंने नदियो के सगम स्थान पर सिकदर की अधीनता स्वीकार की थी वह इसी जाति के लोग थे। य भी सम्भव है कि अवस्तानी जिन्ह परडिक्कस ने पराजित किया था इसी जाति से सम्बन्ध रखते थे। परडिक्कस को सिकन्दर ने रावी के पूव मे भेजा था जहाँ उसने एक नगर पर अधिकार किया था जिसे मैं हडप्पा के अनुरूप बता चुका हूँ। मेरा अनुमान है कि उसका अभियान दीघ कालीन रहा गोगा क्योंकि सिकदर को जिसकी *गतिविधियाँ उसके घायल हो जाने के कारण शिथिल पड गई थी—नदियो के संगम* स्थान पर उसकी प्रतीक्षा हेतु रुकने पर बाध्य होना पडा था। अत यह अत्यधिक सम्भव प्रतीत होता है कि उसने सतलज के तट पर अजुधान तथा यूनानी पताका फह राई हो जहाँ से वह इसी माग से साथ साथ लुधान मैलसी, कहरोर तथा लोधरान होते हुए उछ के स्थान पर सिकदर के पडाव तक गया होगा। इस माग म उसे जोहिया राजपूतो का सामना करना पडा होगा जो आदि काल से अजुधान से उछ तक सतलज नदी के दोनो तटो पर बसे हुए हैं। अत मेरा विचार है कि अवस्तानी जिन्ह परडिक्कस ने पराजित किया था उन्हें जोहिया राजपूत स्वीकार किया जा सकता है। मुल्तान के *आस-पास के प्रदेश को अब भी जोहिया बार अथवा यौद्धेयावार कहा जाता है।*

जोहिया राजपूत, लङ्गुवीर अथवा लकवीर, माधोवीर अथवा माधेरा तथा अदमवीर अथवा अदमेरा नामक तीन जातियों में विभाजित है। सम्ब्रकाय भी तीन शाखाओं में विभाजित प्रतीत होते हैं जो एक स्वतन्त्र भाँति के लोग थे तथा जिन्होंने एक शासक की अनुपस्थिति मे यूनानियो का सामना करने के लिए तीन सैनिक अधि-कारियो को अपना नेता स्वीकार किया था। अब जोहिया ओढीया का सक्षिप्त रूप है जिसे सस्कृत में योधेय कहा जाता है और इस जाति की मुद्रायें इसी काल की प्रथम शताब्दी से सम्बन्धित है जिनसे ज्ञात होता है कि योधेय उस समय भी तीन जातियो मे विभक्त थे। यह मुद्रायें तीन प्रकार की हैं प्रथम मुद्रा म केवल जय योधेय गनस्य लिखा गया है जिसका अर्थ है विजयी योधेय जाति की मुद्रा।" द्वितीय श्रेणी की मुद्रा म द्वि तथा त्रि लिखा गया है जो मेरे विचार में द्वितीयास्य तथा तृतीयास्य अर्थात् द्वितीय तथा तृतीय का सक्षिप्त स्वरूप *समझता हू। जिसका प्रयोग योधेयों की द्वितीय एव तृतीय* जाति की मुद्राओ क लिए किया गया था। चूँकि मुद्रायें सतलज के पूर्व म दीपालपुर, सतगढ़ अजुधान कहरोर तथा मुल्तान और पूर्व में भटनेर अभोर, सिरसा, हाँसी, पानीपत तथा सोनपत म प्राप्त होती है अत यह प्राय निश्चित है कि यह मुद्रायें जोहिया जाति की मुद्रायें थी जो इस समय सतलज के दोनों किनारों पर बस हुए हैं तथा जो अकबर क समय तक सिरसा म पाये जाते थे। इलाहाबाद के स्थान पर

समुद्रगुप्त के शिलालेख में यौदय जाति का उल्लेख मिलता है और इससे पूर्व पानिनी द्वारा जूनागढ़ में रुद्र दाम के शिला लेखों में इसका उल्लेख किया गया है। यह महान् व्याकरणाचार्य निश्चित ही चन्द्रगुप्त मौर्य से पूर्व हुआ है। यौद्धेय के सम्बन्ध में उसके उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह सिकन्दर के समय से पूर्व जानी मानी जाति थी। रुद्र दामा के शिलालेख में जहाँ यौद्धेयों का दमन करने का गर्व पूर्ण उल्लेख किया गया है यह स्पष्ट हो जाता है कि इस शक्तिशाली जाति की पताका सुदूर दक्षिण तक फहराई होगी अन्यथा सौराष्ट्र के राजकुमारों से उनका सामना नहीं हो सकता था। इन तथ्यों से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर के समय में जोहिया राजपूतों का अधिकार क्षेत्र सम्भवतः भटनेर तथा पाकपट्टन से उच्छ एवं भक्कर के मध्य सञ्जकोट तक विस्तृत रहा होगा।

अब मैं उन सभी जातियों के नामों पर विचार करूंगा जिन्होंने पञ्जाब की नदियों के संगम स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी। कर्टियस के अनुसार उन्हें सम्ब्राय अथवा सम्ब्राय कहा जाता था। ओरोसियस ने उन्हें सम्ब्राय कहा है तथा दियोडोरस जिसने उन्हें नदी के पूर्वी तट का निवासी कहा है उसके अनुसार इस जाति को अम्बस्ताय कहा जाता था। यह शक्तिशाली लोग थे जो साहस एवं संख्या में भारत की जातियों में अद्वितीय थे। इनके सेना में ६०००० पैदल सैनिक, ६००० घोड़े एवं ५०० रथ थे। इनकी सैनिक ख्याति के कारण यह सम्भावित प्रतीत होता है कि यूनानियों ने इनके स्वभावानुसार इनका उल्लेख किया होगा। यौद्धेय का अर्थ है "योद्धा अथवा सैनिक" अतः मेरा अनुमान है कि इसका वास्तविक यूनानी नाम संस्कृत समवायी के स्थान पर सम्ब्राय रहा होगा जो तीन जातियों की संयुक्त सेना के लिये उपयुक्त उपाधि रही होगी। इस प्रस्ताव की पुष्टि में मैं इस तथ्य का उल्लेख कर सकता हूँ कि जिस प्रदेश की राजधानी अब बीकानेर है उसे बागडदेस अथवा बागडी अथवा योद्धाओं का देश कहा जाता था जिनके नेता का नाम बागड़ी राव था। (१) भट्टी का अर्थ भी योद्धा अथवा सैनिक है। अतः वर्तमान समय में हमें तीन ऐसी जातियाँ मिलती हैं जो स्वयं को 'योद्धा' कहा करती हैं तथा जो सतलज के पूर्वी प्रदेश में बहुमत में हैं। यह जातियाँ इस प्रकार हैं—नदी के साथ साथ निवास करने वाले यौद्धेय बीकानेर के बागड़ी तथा जैसलमेर के भट्टी। यह सभी चन्द्रवंशी होने का दावा करते हैं और यदि साम्ब्रागी का मेरा प्रस्तावित अर्थ सही है तो यह सम्भव है कि यह नाम यौद्धेयों की तीन जातियों के स्थान पर इन तीन जातियों के लिये प्रयोग किया गया हो।

(१) यह सूचना मुझे बीकानेर की सीमा में भटनेर के प्रसिद्ध दुर्ग के स्थान पर प्राप्त हुई थी। निश्चित ही यह नाम जहाँगीर के समय जितना पुराना है क्योंकि चैम्लिन टेरी ने बीकानेर को 'बक्करा का मुख्य नगर' कहा है।

फिर भी मेरा विचार है कि सतलज के तट पर बसे रहने के कारण एवं अपनी असंदिग्ध प्राचीनता के कारण यौधेय जाति का दावा ठोस है। मैं अजुधान अथवा अयोधानम् अर्थात् 'युद्ध क्षेत्र' की स्थापना का श्रेय इन्हें देता हूँ जो प्रत्यक्ष रूप से उनके निजी नाम यौधेय अथवा अजुधिया अर्थात् 'योद्धा' से सम्बन्धित है। सम्भवतः इस नाम का अन्तिम स्वरूप एरियन के ओक्सुड्री में सुरक्षित है जिन्होंने पञ्जाब की नदियों के संगम स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी। अतः एरियन की ओक्सुड्रो जाति दियोडोरस की सम्बस्ताय तथा कर्टियस की सम्बराय जाति थी जिन्होंने एक ही स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी।



पश्चिमी भारत

ह्वेनसांग के अनुसार पश्चिमी भारत सिंध, गुज्जर तथा बल्लभी नामक तीन विशाल राज्यों में विभाजित था। प्रथम राज्य के अन्तर्गत डेल्टा एवं कच्छ द्वीप सहित पञ्जाब से समुद्र तक सिंधु नदी की सम्पूर्ण घाटी सम्मिलित थी। द्वितीय राज्य में पश्चिमी राजपूताना तथा भारतीय मरुस्थल सम्मिलित थे तथा तीसरे राज्य में तटीय क्षेत्र के कुछ भाग सहित गुजरात का पठार सम्मिलित था।

सिन्ध

सातवीं शताब्दी में सिंध चार प्रमुख भागों में बटा हुआ था जिन्हें मैं अधिक स्पष्ट रूप से दिखाने के उद्देश्य से उनकी भौगोलिक स्थिति अर्थात् ऊपरी सिंध, मध्य सिंध, निचला सिंध एवं कच्छ के क्रमानुसार दिखाऊँगा। यह सम्पूर्ण क्षेत्र अपर सिंध के राजा के अधीन एक ही राज्य का भाग था। यह राजा ६४१ ई० में ह्वेनसांग की यात्रा के समय स्यू तो लो अथवा शूद्र था। कुछ समय पश्चात् चच के समय में मन्त्री बुद्धिमान ने राजा को सूचना दी थी कि सम्पूर्ण प्रदेश पूर्ववर्ती काल में चार जिलों में विभाजित था। प्रत्येक जिला अपने ही शासक के अधीन था जो चच के पूर्ववर्ती राजा की सार्वभौमिकता को स्वीकार करते थे इसमें भी कुछ समय उपरान्त सिंध को कफन्द के पुत्र अयन्स के समय में चार प्रमुख भागों में विभाजित बताया गया है। कफन्द सिकन्दर महान के कुछ ही समय पश्चात सिंध का शासक था। यह चारों जिले जोर असकलन्दुस, मामिद तथा लोहाना थे और जैसे जैसे इनका उल्लेख ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित खण्डों में मिलता है इन सभी पर भी उसी समय विचार किया जायगा।

अपर सिन्ध

अपर (ऊपरी) सिंध का अकेला राज्य जिसे सामान्य रूप से सिरो अर्थात् "शिर अथवा ऊपरी" खण्ड कहा जाता है व्यास में ७००० ली अथवा ११६७ मील था और यदि पश्चिम में कच्छ गण्डाव के सम्पूर्ण क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जाये तो, यह आकड़े बहुत अधिक नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शक्तिशाली शासन के अधीन ऐसा ही रहा होगा और चच के पूर्ववर्ती शासक निश्चित ही शक्तिशाली थे। इस विचार धारा के अनुसार अपर सिंध में कच्छ गण्डाव शाहन शिकारपुर तथा लरकाना, सिंधु

के पश्चिम में तथा इसके पूर्व जयसलमेर तथा जोधपुर के वर्तमान जिले सम्मिलित रहे होंगे। अतः सीमान्त रेखा की लम्बाई, उत्तर में १४० मील, पश्चिम में २१० मील, पूर्व में १८० मील तथा दक्षिण में ७६० मील अथवा कुल मिलाकर २०३० मील रही होगी। यह आंकड़े ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ों के अधिक समीप है।

सातवीं शताब्दी में प्रान्त की राजधानी का नाम पी चेन पो पू-लो था जिसके अनुसार स्टेनर एवं जुलीन ने इसे विचवापुर कहा है। एम विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने यह प्रस्तावित किया है कि इसका संस्कृत नाम विचावपुर अथवा 'मध्य सिन्ध का नगर' था। परन्तु सिन्धी एवं पञ्जाबी का बिच तथा हिन्दी का बीच संस्कृत से नहीं लिये गये हैं। संस्कृत में समान बात को व्यक्त करने के लिये मध्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। यदि ह्वेनसांग स्थानीय भाषा का अनुसरण करता तो उसका नाम हिन्दी के आधार पर बीचवापुर अथवा मध्य नगर' पड़ जाता परन्तु ह्वेनसांग ने सदैव संस्कृत स्वरूप का प्रयोग किया है अतः मेरा विचार है कि हमें उसके पी-चेन पो पू लो के मूलस्वरूप के लिये शुद्ध संस्कृत स्वरूप की खोज करनी चाहिये। अब, हम अरबों से एवं साथ ही साथ स्थानीय इतिहासकारों से पता चलता है कि ह्वेनसांग की यात्रा से पूर्व एवं पश्चात् सिन्ध की राजधानी अलोर थी। अतः यह नवीन नाम किसी प्राचीन नगर का तनिक परिवर्तित नाम रहा होगा न कि द्वितीय राजधानी का हिन्दुओं के समय में विशाल नगरों को अनेक नाम दिये जाने की प्रथा थी जैसा कि हम मुल्तान के सबंध में देख चुके हैं। इनमें कुछ नाम केवल कविता सम्बन्धी विशेषण हैं—उदाहरणार्थ पाटलीपुत्र के लिये कुसुमपुर तथा नरवर के लिये पद्मपुर लिखा गया है। वाराणसी अथवा बनारस आदि कुछ नाम निर्देशक विशेषण के रूप में रखे गये थे। यह नाम काशी नगर के लिये यह दर्शाने के लिये रखा गया था कि यह वरणा तथा असी नाम की छोटी नदियों के मध्य में अवस्थित था। इसी प्रकार एक सर्व प्रसिद्ध कथा के स्थान के रूप में कन्नौज को कान्य कुब्ज 'कुबड़ी कन्या' कहा जाता था। नामों की भिन्नता का अर्थ यह नहीं है कि नवीन राजधानी बनवाई गई थी। यह पुराने नगर की नवीन उपाधि भी हो सकती है अथवा यह किसी पुराने नाम की पुनरावृत्ति हो सकती है जिसे अस्थाई रूप से त्याग दिया गया था। यह सत्य है कि सिन्ध के इतिहासकारों ने अलोर के किसी अन्य नाम का उल्लेख नहीं किया परन्तु ह्वेनसांग के समय में अलोर ही राजधानी थी अतः यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि इसका पी चेन-पो पू-लो इसी नगर का केवल एक अन्य नाम था।

यह महत्व पूर्ण है कि इस स्थान की अनुरूपता को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाये क्योंकि तीर्थयात्री ने राजधानी को सिन्धु नदी के पश्चिम में दिखाया है जबकि अलोर अथवा अरोर के वर्तमान अवशेष नदी के पूर्व में हैं। परन्तु यही भिन्नता

इसकी अनुरूपता के शुद्ध होने की पुष्टि करती है क्योंकि सिन्ध नदी पूर्व काल मे अलोर के पूर्व मे पुराने मार्ग से प्रवाहित थी जिसे अब नारा कहा जाता है। जल मार्ग में परिवर्तन राजा दाहिर के समय अर्थात ह्वेनसांग की यात्रा के लगभग ५० वर्ष पश्चात हुआ था। स्थानीय इतिहासकार राजा दाहिर की धूर्तता को अलोर से सिन्धु नदी के हट जाने के कारण मानते हैं परन्तु पन्जाब की सभी नदियाँ जिनका प्रवाह उत्तर से दक्षिण की ओर है, धीरे धीरे पश्चिम की ओर दबाव डालती है और पश्चिम की ओर यह दबाव पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की ओर निरंतर चक्कर काटने का स्वाभाविक परिणाम है जिसके कारण इन नदियों का जल पश्चिमी तट की ओर अधिक दबाव डालता है। (१) प्रारम्भ में सिन्धु नदी अलोर श्रेणी के पूर्व मे बहती थी। परन्तु धीरे धीरे इसका जल पश्चिम की ओर बढता गया और अंत में नदी रोरी की पर्वत श्रेणियो के उत्तरी छोर से मुड़ गई और रोरी एवम् भक्कर के मध्य चूने की पहाड़ियो से अपना मार्ग बना लिया। चूंकि नदी के मार्ग का परिवर्तन राजा दाहिर के शासन काल के प्रारम्भ में हुआ बताया जाता है अतः यह परिवर्तन ६८० ई० में उसके सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय पश्चात् हुआ होगा क्योंकि इससे केवल ३० वर्ष पश्चात् मुहम्मद बिन कासिम को अलोर जाने के लिये सिन्धु नदी को पार करना पड़ा था। अतः यह निश्चित है कि नदी ७११ ई० से पूर्व ही अपने वर्तमान मार्ग में स्थाई हो गई थी।

सिन्धु नदी का पुराना मार्ग आज भी नारा नाम से प्रख्यात है और अलोर के खण्डहरों से कच्छ के रन तक इसके जल मार्ग का सर्वेक्षण किया जा चुका है। अलोर से जकराओ लगभग १०० मील की दूरी तक इसका प्रवाह प्रायः ठीक दक्षिण की ओर है। इस स्थान पर यह नदी अनेक शाखाओं में विभाजित हो जाती है और प्रत्येक शाखा को भिन्न भिन्न नाम दिया गया है। सबसे पूर्वी शाखा जिसे नारा का नाम प्राप्त है, किप्रा तथा उमरकोट के दक्षिण पूर्व में बहती है जिसके समीप यह दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ कर वज्ञ बाजार तथा रामक बाजार तक जाकर वहां कच्छ के विशाल रन में लुप्त हो जाता है। सबसे पश्चिमी शाखा को पुराना कहा जाता है और यह ब्राह्मनाबाद तथा नसीरपुर के खण्डहरों से होकर दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम में हैदराबाद

(१) वह सभी नदियाँ जिनका प्रवाह उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव से भूमध्य रेखा की ओर है धीरे धीरे पश्चिम की ओर बढ़ती हैं जबकि भूमध्य रेखा से उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव की ओर प्रवाहित नदियों का झुकाव पूर्व की ओर रहता है। यह विरोधी प्रभाव भूमि की ध्रुव एवम् भूमध्य रेखा सम्बन्धी गति का उसी भिन्नता का परिणाम है जिसके कारण अयन वृत्तों से भूमध्य रेखा की ओर निरन्तर बहने वाला वायु का उत्थान होता है।

तक चली जाती है जिसके नीचे यह पुन दो शाखाओ मे विभाजित हो जाती है। इनमे एक शाखा दक्षिण पश्चिम की ओर मुड जाती है तथा इसका जल हैदराबाद से १५ मील नीचे तथा जरक से १२ मील ऊपर वतमान नदी म गिरता है। गुना नाम की दूसरी शाखा दक्षिण पूर्व को ओर मुडती है तथा रोमक बाजार से ऊपर न श मे मिल जाती है। पुराना एवम् नारा के बीच कम स कम दो अन्य शाखाए हैं जो जकराओ के नीचे शाखाओ मे विभाजित हो जाती है परन्तु इनका जलमाग केवल आशिक रूप स ज्ञात है। अलोर से जकराओ तक पुराना नारा का उत्तरी भाग शुष्क एव रेतीला है जिसमे समय समय पर सिन्ध नदी की बाढ का जल भर जाता है। उद्गम स्थान से जामीजो तक यह शाखा पश्चिम की ओर से एलार की पहाडियो स निरन्तर घिरी हुई है और यह प्राय २०० फुट से ३०० फुट तक चौडी एवम् १० फुट गहरी है। जामीजो स जकराओ तक, जहाँ यह शाखा ६०० फुट चौडी तथा १२ फुट गहरी है वहा नारा क दोनो ओर निचली रेतीली पहाडियो की चौडी श्रेणियाँ है। जकराओ स नीचे पश्चिमी तट की रेतीली पहाडियाँ अचानक समाप्त हो जाती है तथा बाढ क जल स बने समतल पर फैल कर नारा दो मुख्य शाखाओ मे विभाजित हो जाता है और जैसे-जैसे यह शाखाए आगे बढती जाती है इनका पाट चौडा होता जाता है और गहराई कम हो जाती है और अन्त मे पश्चिमी शाखाए ठोस भूमि म, एवम् पूर्वी शाखाए दल-दलो के निरन्तर समूह मे लुप्त हो जाती है। परन्तु हाला एव किप्रा के नीचे पुन प्रगट हो जाती है और इनका प्रवाह जारी रहता है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है।

ऊपरी सिन्ध मे उल्लेखनीय प्राचीन स्थान इस प्रकार है —अलोर, रारी, भक्खर तथा लरकाना क समीप महोत। सिकन्दर, चच, मुहम्मद बिन कासिम तथा हुसैनशाह अरगुन क सैनिक अभियानो मे अन्य अनेक स्थानो का उल्लेख मिलता है परन्तु इन स्थानो क बीच की दूरी का उल्लेख न होने क कारण उनकी स्थितियो को पहचानना कठिन है, विशेषत जबकि नामो म निरन्तर परिवतन हुए हैं। सिकन्दर क सैनिक अभियानो मे हमे मस्सनाए सोग्डी, मुसिकानी तथा प्रायस्टी क नामो का उल्लेख मिलता है। इन सभी स्थानो को निश्चित ही ऊपरी सिन्ध मे देखा जाना चाहिए। अब मैं इन्हे पहचानने का प्रयत्न करूँगा।

मस्सनाए तथा सोड्राए अथवा सोग्डो

पञ्जाब की नदियो क सगम स्थान को छोडने के पश्चात् सिकन्दर ने सिन्धु नदी क माग स सोग्डी के राज्य म प्रवेश किया, जहा एरियन क अनुसार, 'उसने एक अन्य नगर का निमाण करवाया था। डियोडोरस ने इन्ही लोगो का एक भिन्न नाम क अन्तगत उल्लेख किया है —"नदी के माग से अपनी यात्रा को जारी रखते समय नदी क दोनो तटों क निवासियो सोड्राए एव मस्सनाए जातियों ने उसकी अधीनता स्वीकार

ार ली एव उसने एक अय सिकन्द्रिया की स्थापना की जहाँ उसने १०००० निवासी से थे। ' कर्टियस ने यद्यपि इनके नामो का उल्लेख नही किया है फिर भी इन्ही लोगो का उल्लेख इस प्रकार किया है —"चौथे दिन वह अय राष्ट्रो मे पहुँचा जहा उसने सकन्द्रिया नामक एक नगर का निमाण करवाया।" इन उल्लेखो से यह स्पष्ट है कि एरियन के सोग्दी तथा दियोडरस के सोढाय एक ही जाति के लोग हैं यद्यपि मि० टाड । प्रथम नाम को सोढा राजपूतो के अनुरूप तथा वात्स न द्वितीय नाम को नीच शूद्रो के अनुरूप स्वीकार किया है। सोढा राजपूत जो परमार राजपूतो की एक शाखा है उमरकोट के समीप सिन्ध के दक्षिणी पूर्वी जिले मे बसे हुए हैं परन्तु एम, मुरडा जो अत्यन्त विश्वसनीय निरीक्षक हैं के अनुसार इस बात मे विश्वास करने के अच्छे कारण प्रस्तुत हैं कि किसी समय सिन्धु नदी के तट पर अलोर के उत्तर तक सिन्धु नदी के तटो के विशाल क्षेत्र पर इस जाति का अधिकार था। सोढा राजपूतो के पूर्ववर्ती अधिकार क्षेत्र को इस सीमा का स्वीकार करते समय मैं आंशिक रूप से अबुल फजल के इस कथन से प्रभावित हुआ हूं कि अकबर के शासन काल म भक्खर से उमरकोट तक सम्पूर्ण प्रदेश म सोढा एव करेजा लोग रहा करते थे। आंशिक रूप से यह विश्वास भी है कि दियोडोरस के मस्सनाय लोग टालमी के मुसरनी हैं जिनका नाम मिठानकोट के नीचे सिन्धु नदी के पश्चिम मे मुजरका जिले म आज भी सुरक्षित है। टालमी ने मुसरना नामक जिले का उल्लेख भी किया है जिसे उसने अरकन नाम की एक छोटी नदी के उत्तर मे सिन्धु नदी की एक छोटी शाखा पर अवस्थित बताया है। अतः मुसरना नाम की शाखा कहान नामक छोटी नदी होगी जो पुलाजी तथा शाहपुर से होकर खान गढ अथवा जकोबाबाद तक चली जाती है तथा मुसरना शाहपुर नगर हो सकता है जो शिकारपुर के उत्थान से कुछ समय पूर्व कुछ महत्वपूर्ण स्थान था। "आस पास के प्रदेश मे जो अब निर्जन हैं अधिक विस्तार तक कृषि के चिह्न प्राप्त होते हैं।" सोग्डी अथवा सोडाय को मैं स्याराय के निवासियों के अनुरूप समझूगा जिसे हुमनशाह अरघुन ने भक्खर मे मुल्तान जाते समय अपने अधिकार में कर लिया था। १५२५ ई० म उसके समय इसे "उस प्रदेश के सुदृढ़तम दुग के रूप म" बताया गया है। तथापि यहाँ के सैनिको ने इस त्याग दिया तथा विजयी आक्रमणकारी ने इसकी दीवारों को मिट्टी म मिला देने की आज्ञा दे दी थी। इसकी वास्तविक स्थिति अज्ञात है परन्तु सम्भवत यह सबजल कोट तथा खोग अहमदपुर के मध्य फाजिलपुर के समीप था जहाँ मसोन को यह सूचना प्राप्त हुई थी कि वहा किसी समय एक महत्वपूर्ण नगर था तथा 'इससे सम्बंधित एव सख्या म ३६० कुआ को उस समय भी जङ्गलो में देखा जा सकता था।" अब, पुराने मानचित्र म इसी स्थान पर अर्थात सब्जलकोट के लगभग ८ मील उत्तर पूर्व मे Sirwahi सिरवाही नाम का एक गाँव अङ्कित किया गया है जो सम्भवत सिन्धी इतिहास के स्योराई का प्रतिनिधि हो सकता है। यह

सीधी रेखा में उच्छ से ६६ मील नीचे तथा अलोर से ८५ मील ऊपर अथवा दोनों के लगभग मध्य में पड़ता है। जल मार्ग से उच्छ से उसकी दूरी एक तिहाई अधिक हो जायेगी अर्थात् १२० मील से कम नहीं होगी और यह दूरी कर्टियस के इस कथन का समर्थन करती है कि सिकन्दर चौथे दिन इस स्थान पर पहुँचा था। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह अनुरूपतायें पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं हैं परन्तु जब हम सिन्धु नदी के मार्ग में हुए अनेक परिवर्तनों एवं इसके तट पर अवस्थित नगरों के नामों में हुए बारम्बार परिवर्तनों की ओर ध्यान देते हैं तो सम्भवतः उपर्युक्त अनुरूपतायें उतनी ही शुद्ध हैं जितनी शुद्ध उन्हें वर्तमान समय में बनाया जा सकता है। एरियन द्वारा सुरक्षित एक तथ्य फाजिलका के समीप प्राचीन स्थान को सोग्डी नगर के अनुरूप स्वीकार किये जाने के पक्ष में हैं। तथ्य यह है कि इसी स्थान पर सिकन्दर ने क्रेटरस को सेना के मुख्य भाग एवं सभी हाथियों सहित अरकोटी तथा ड्रंगी की सीमाओं के मार्ग से भेजा था। अब गण्डाव तथा बोलन दर्रे के मार्ग से पश्चिम की ओर सिन्धु नदी को पार करने का सर्वाधिक प्रचलित घाट बायें तट पर फजिलपुर तथा दाहिने तट पर कममोर के मध्य पड़ता है। और चूँकि घाट अथवा नदी को पार करने के स्थान सदैव सड़क की स्थिति को निर्धारित करते हैं अतः मेरा अनुमान है कि क्रेटरस ने अरकोसिया तथा ड्रंगियाना की ओर अपनी लम्बी यात्रा को इसी स्थान से आरम्भ किया होगा। जो सिन्धु नदी से एक विशाल सेना के पश्चिम की ओर प्रस्थान करने के लिए सबसे उत्तरी स्थान है। फिर भी यह सम्भव प्रतीत होता है कि मुशिकनस के विद्रोह के कारण क्रेटरस को कुछ समय तक रुकना पड़ा हो क्योंकि एरियन ने सिकन्दर द्वारा सिंदोमना के समीप ब्राह्मण नगर पर अधिकार करने के पश्चात् पुनः उसके प्रस्थान का उल्लेख किया है।

स्थानीय इतिहासकारों और साथ ही साथ प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने मुल्तान तथा अलोर के बीच भाटिया नामक एक सुदृढ़ दुर्ग को अवस्थित बताया है जिसे इसकी स्थिति को देखते हुए उस नगर के अनुरूप समझा जा सकता है, जिसे सिकन्दर ने सोग्डी राज्य में निर्मित करवाया था क्योंकि यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि इस क्षेत्र के इस समतल भू भाग में अधिक सामरिक स्थान थे। दुर्भाग्यवश विभिन्न लेखकों ने नाम को विभिन्न रूप से लिखा है। इस प्रकार पोल्लनस ने इसे पाया बाहिया तथा भाग्या, सर हेनरी इलियट ने इसे भाटिया, बाटया तथा भाग्या कहा है जबकि ब्रिग्स ने इसे बटाटिया कहा है। यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह वह नगरी का स्थान है जहाँ आम जानर ने सिन्धु नदी को पार किया था और सम्भवतः भाटिला अथवा महाल्मिता भी यही स्थान था जो सातवीं शताब्दी में सिन्धु के छः विशाल दुर्गों में एक था।

फरिश्ता ने भाटिया को एक अति सुदृढ़ स्थान के रूप में बनाया है जो एक ऊँची दीवार एव गहरी चौड़ी खाई से सुरक्षित बनाया गया था। ३९३ हिजरी, अथवा

१००३ ई० में महमूद गजनी ने इस पर अधिकार कर लिया था। इस आक्रमण में अधिक देर तक दुर्ग की रक्षा करने के पश्चात् यहाँ का राजा बज्जर अथवा बाजी-राय मारा गया था। लूट में महमूद को कम से कम २८० हाथी प्राप्त हुए थे। यह हिन्दू शासन की समृद्धि एवं शक्ति का सर्वाधिक ठोस प्रमाण है।

मुसीकानी अलोर

सोग्डी अथवा सोढ़ाए की सीमाओं से सिकन्दर ने सिंधु नदी के मार्ग से मुसी-कानस नामक राजा की राजधानी तक अपनी यात्रा जारी रखी। स्ट्रैबो, डियोडोरस तथा एरियन के अनुसार यह स्थान मुसिकनस की राजधानी थी जबकि कर्टियस के अनुसार यह मुसिकानी नाम के लोगों की राजधानी थी। एरियन से हमें पता चलता है कि सिकन्दर को इस राज्य के सम्बन्ध में यह सूचना दी गई थी कि "यह राज्य भारत के सभी राज्यों में सर्वाधिक समृद्धशाली एवं जनपूर्ण है" तथा स्ट्रैबो से हमें ओनेसीक्रीटस का विवरण प्राप्त होता है कि 'देश में प्रत्येक वस्तु प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती थी' जिससे यह पता चलता है कि स्वयं यूनानी इस स्थान की उपज को देखकर आश्चर्य चकित हो गये थे। अब, यह विवरण केवल ऊपरी सिंध के समृद्धशाली तथा शक्ति-शाली राज्य के लिए हो सकते हैं। अलोर इस राज्य की कई वर्षों से जानी-मानी राजधानी थी। जब दूरियों का उल्लेख नहीं किया गया है तथा नामों में भिन्नता है ऐसी स्थिति में एक सामान्य विवरण से किसी स्थान की स्थिति को निर्धारित करना कठिन है जब तक कि स्थान अथवा निर्माण कार्यों के सम्बन्ध में कुछ विशेषताएँ अथवा अन्य बातों का ज्ञान न हो जो इसकी अनुरूपता को सिद्ध कर सकते हैं। वर्तमान उदाहरण में हमारे निर्देशन हेतु इस सामान्य विवरण को छोड़ अन्य कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं है कि मुसिकनस का राज्य, "सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक समृद्धशाली एवं जनपूर्ण था।" परन्तु सिंध की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकें एवं जन-श्रुतियाँ इस कथन में सहमत हैं कि अलोर देश की प्राचीनतम राजधानी थी अतः यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि यह मुसिकनस की राजधानी थी। अन्यथा यह प्रसिद्ध नगर सिकन्दर के इतिहासकारों के ध्यान से पूर्णतः छूट जाएगा जो यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त असम्भावित है। प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों से हमें ज्ञात है कि अलोर का प्रदेश समृद्ध एवं उपजाऊ था। यह सभी भूगोल शास्त्री इस स्थान की प्रशंसा में एक मत थे। अलोर के खंडहर चूने के पत्थर की पहाड़ियों की निचली श्रेणी के रिक्त स्थान के दक्षिण में अवस्थित हैं। यह श्रेणी भक्खर से दक्षिण की ओर लगभग २० मील तक विस्तृत है और अन्त में यह रेतीली पहाड़ियों की चौड़ी पंक्तियों में लुप्त हो जाती है जो नगर अथवा सिंधु नदी के पुराने मार्ग को पश्चिम की ओर से घेरे हुए हैं। किसी समय सिंधु नदी की एक शाखा इस रिक्त स्थान से होकर बहा करती थी जो नगर को

उत्तर पश्चिम की ओर से सुरक्षित रखती थी। उत्तर पूर्व म यह नदी की एक अन्य शाखा से सुरक्षित थी जो दूसरी शाखा से तीन मील की दूरी तक प्रवाहित थी। ६८० ई० मे राजा दाहिर के समय दूसरी शाखा सम्भवत सिंधु नदी का मुख्य मार्ग थी जो प्राचीन नार के अपने मूल मार्ग से धीरे धीरे पश्चिम की ओर बढ़ती चली गई थी। स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तको के अनुसार अन्तिम परिवतन भक्खर एव रोरी के मध्य पहाडियो की श्रेणी क उत्तरी छोर से एक नहर निकाले जाने के कारण शीघ्र हो गया।

अलोर का वास्तविक नाम पूणत निश्चित नही है। वतमान समय म सामान्य उच्चारण के अनुसार इसे अरोर कहा जाता है परन्तु यह सम्भावित प्रतीत होता है कि इसका मूल नाम रोरा था तथा प्रारम्भिक व्यञ्जन अरबी के उपसर्ग अल से लिया गया है क्योंकि बिलदूरी, इदरिसी तथा अय अरब लेखको न इसे अलोर लिखा है। पडोस के रोरी नगर के नाम से उपयुक्त शब्द व्युत्पत्ति शब्द का समर्थन होता है क्योंकि नामों की इस प्रकार नकल करना भारत की एक सामान्य प्रथा है। अत रोरा तथा रोरी का अर्थ होगा बडा तथा छोटा रोरा। सस्कृत मे इस शब्द का कोई अर्थ नही है परन्तु हिन्दी मे "शोर, चिल्लाहट, गजन तथा ख्याति के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। अत यह सम्भव है कि नगर का पूरा नाम रोरापुर अथवा रोरानगर अर्थात् "प्रसिद्ध नगर' रहा होगा। अलोर के खण्डहरो के दो मील दक्षिण पश्चिम में पहाडियो क अधोभाग पर अवस्थित एक गाँव को दिए गये नाम अभिजान् से मुझे उपयुक्त अर्थ को प्रस्तावित करने का ध्यान हुआ था। अभिजान सस्कृत मे 'ख्याति के लिए प्रयुक्त किया जाता है और ह्वेनसाग के पी चेन पो पु लो स इसका सम्बध असम्भावित नहीं है जिस प्रारम्भ म ओ अक्षर जोड देने से अभिजानवपुर पढा जा सकता है। मेरे विचार म यह सम्भव है कि अलोर टालमी का बिनागरा रहा होगा क्योंकि इस सिंध नदी के तट पर ओसकना क पर्व की ओर दिखाया गया है जो एरियन तथा कर्टियस का ओक्सीकनस प्रतीत होता है। टालमी द्वारा दिया गया नाम बिनागरा सम्भवत चीनी स्वरूप का विपरीत पाठ है क्योंकि पूनो अथवा पुग नागरा के समान है तथा पीचिन पो प्रारम्भिक अक्षर बो का पूण स्वरूप हो सकता है।

प्रत्यक्ष रूप से मुसिकनस का नगर कुछ महत्वपूर्ण स्थान था क्योंकि एरियन ने लिखा है कि सिकन्दर ने 'क्रेटरस को नगर में एक दुर्ग का निर्माण करवाने की आज्ञा दी थी और वह स्वय इस कार्य को पूर्ण होते देखने क लिए रुका था। यह कार्य पूर्ण हो जाने क पश्चात् उसने वहाँ पर एक सुदृढ सेना छोड दी थी क्योंकि यह दुर्ग पडोसी राज्यों को अपने नियन्त्रण एव अधिकार मे रखने क लिए अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता था। इसम सन्देह नही कि अलोर की स्थापना मूलरूप म इसी कारण की गई थी और यह नगर इस स्थान म नदी क हट जाने क समय तक जनपूर्ण रहा। उस समय भक्खर के सुदृढ दुर्ग ने इसका स्थान ले लिया।

प्रोएस्ति-पोर्टीकनस, अथवा ओक्सीकनस

मुसिकनस की राजधानी से सिकन्दर ने अपनी नौकाओं के अपने बेड़े को सिन्धु नदी में नीचे की ओर जाने की आज्ञा दी थी जब कि, एरियन के अनुसार, वह स्वयं ओक्सीकनस नाम के पड़ोसी राजा के विरुद्ध बढ़ा तथा पहले ही आक्रमण में उसके दो मुख्य नगरों पर अधिकार कर लिया। कर्टियस ने ओक्सीकनस को प्रोएस्ति नामक लोगों का राजा कहा है तथा उसका कथन है कि सिकन्दर ने तीन दिन के घेरे के पश्चात उसके मुख्य नगर पर अधिकार किया था। डियोडोरस तथा स्ट्रैबो ने राजा को पोर्टीकनस कहा है। अब, इन विभिन्न विवरणों में सम्भावना का संकेत मिलता है कि यह नाम नगर का नाम था जिसे ऊंचा ग्राम अथवा पाटाग्राम के रूप में इसकी ऊंचाई के संकेत के आधार पर केवल 'उन्नत नगर' समझा जा सकता है। कर्टियस द्वारा इसके दुर्ग के दो बुर्जों के गिरने से हुई "भयानक गड़गड़ाहट" के उल्लेख से प्रतीत होता है कि यह स्थान सामान्य ऊंचाई से अधिक ऊंचा रहा होगा अतः मैं इसे लरकाना से १० मील घार नदी के तट पर अवस्थित महोरता के विशाल टीले के अनुरूप समझूंगा। मसान ने 'मैहोता नामक एक विशाल टीले पर अवस्थित एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहरों' के रूप में इसका उल्लेख किया है। सर्वेक्षकों ने इस नाम को महारटा लिखा है जो सम्भवतः महा+उद+ग्राम अथवा "विशाल उन्नत नगर" के स्थान पर महाद के लिए लिखा गया है। और शुद्ध संस्कृत रूप में इसके आधुनिक नाम होने की सम्भावना नहीं है। मुझे उपर्युक्त अनुरूपता, न केवल नामों की अति समानता के विवरण से वरन् सिन्धु नदी के पुराने मार्ग के सम्बन्ध में एलोर तथा महोरता की अपेक्षाकृत स्थितियों के विवरण में भी अधिक सम्भावित प्रतीत होती है। वर्तमान समय में महोरता नदी के कुछ ही मीलों के भीतर है परन्तु सिकन्दर के समय में, जब सिन्धु नदी नारा के मार्ग से प्रवाहित थी, नदी का निकटतम बिन्दु अलोर था जहाँ से महोरता दक्षिण पश्चिम में ४५ की दूरी पर था। अतः सिकन्दर को विवश होकर अपनी नौकाओं का बेड़ा छोड़ देना पड़ा एवं उसे ओक्सीकनस के विरुद्ध जाना पड़ा। महोरता का स्थान सदैव व्यापारिक एवं राजनैतिक रूप में अधिक महत्व का स्थान रहा होगा क्योंकि यह सिन्ध में कच्छ गंडावा के मार्ग से कन्धार जाने वाली प्रधान सड़क पर नियन्त्रण रखता था। इसे त्याग दिए जाने के समय से इन्हीं लाभों के कारण महोरता के १० मील पश्चिम में एक छोटी नदी पर अवस्थित लरकाना को सिन्ध के सर्वाधिक समृद्धशाली स्थानों में एक स्थान बना दिया है। घार नाम की छोटी नदी मैलान के समीप निकलती है तथा मूल एवं गंडावा दर्रे की सम्पूर्ण लम्बाई का चक्कर लगाती है और अब यह नदी इन दर्रों के नीचे मरुस्थल में लुप्त हो गई है परन्तु इसके मार्ग को आज भी पहचाना जा सकता है। तथा यह नदी सिन्ध की सीमाओं पर पुनः प्रगट

के अनुसार ओ पान-च की स्थिति बम्भर-का तूल अथवा 'ध्वस्त बुज अथवा साधारण बम्भर नामक प्राचीन नगर के खण्डहरो के समीप निश्चित होगी। उन अवशेषों के अनुसार यह नगर किसी समय ब्रह्मनवास अथवा ब्राह्मणाबाद के प्रसिद्ध नगर का स्थान था अत ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित आफानचा अथवा अव दा राज्य मध्य सिन्ध के प्रान्त से मिलता है जिसे आजकल विचाला कहा जाता है।

वर्तमान समय मे सेहवान, हाला, हैदराबाद तथा उमरकोट सिंध के उपयुक्त खण्ड के मुख्य स्थान हैं। मध्य काल मे हिंदू शासन के अन्तर्गत सदूसान ब्राह्मण अथवा ब्राह्मवा तथा निरुनकोट विशाल नगर थे परन्तु जैसा कि मैं अभी दिखाने का प्रयत्न करूगा निरनकोट सम्भवत आधुनिक हैदराबाद तथा प्राचीन पटाला था। अत इसे निचले सिन्ध अथवा लार प्रान्त में सम्मिलित करना अधिक उचित होगा। ब्राह्मवा के समीप प्रारम्भिक मुसलमानो ने मसूर की स्थापना की थी जो उनके राज्यपालो ने निवास स्थान के रूप मे प्रान्त की वास्तविक राजधानी का निर्माण किया था, शीघ्र ही यह नगर सम्पूर्ण सिंध का सबसे बडा नगर बन गया। सिकन्दर के समय मे सिन्दोमान तथा ब्राह्मणो के एक नगर का उल्लेख किया गया है जिसे दियोडोरस ने हरमतेलया नाम दिया है अब मैं सबसे उत्तरी स्थान से शुरू करते हुए इन स्थानो का विस्तृत विवरण करूगा।

सिन्दोमान-अथवा सेहवान

ओक्सीकनस के नगर से सिकन्दर अपनी सेनाओ को सम्बस के विरुद्ध ले गया जिसे उसने पहले भारतीय पर्वतो का गवर्नर घोषित किया था।" राजा ने सिन्दोमान नामक अपनी राजधानी को त्याग दिया जिसे, एरियन के अनुसार सम्बस के मित्रो एव घरेलू गृह सम्बन्धियो ने सिकन्दर को समर्पित कर दिया। ये सभी धन एव हाथियो के उपहार सहित सिकन्दर से मिलने आये थे। कर्टियस ने राजा को सबुस कहा है परन्तु उसने राजधानी के नाम का उल्लेख नहीं किया। उसने केवल इतना लिखा है कि सिकन्दर ने "अनेक नगरो द्वारा अधीनता स्वीकार कर लिये जाने के पश्चात् सुदृढतम नगर को सुरगें बना कर अधिकार मे कर लिया था। दियोडोरस द्वारा दिए गये विवरण में भी राजधानी के नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसका कथन है कि सम्बस ३० हाथियो सहित अधिक दूरी तक पीछे हट गया था। स्ट्रैबो ने विस्तृत विवरण दिए बिना राजा सबस तथा उसकी राजधानी सिन्दोमान का उल्लेख किया है। केवल कर्टियस ने यह लिखा है कि सिकन्दर राजा के सुदृढतम नगर पर अधिकार करने के पश्चात् नावो के अपने बेडे मे वापिस आ गया था। अत यह नगर भारत से कुछ दूरी पर रहा होगा। मैं भारत के इस भाग के प्राचीन भूगोल के पिछले सभी लेखको से सिन्दोमान को सेहवान के अनुरूप स्वीकार करने पर सहमत हूँ। इसका आंशिक कारण नामों की समानता है एव आंशिक रूप से लक्की पर्वतों से समीपता के

कारण है। इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध मे कोई सदेह नहीं हो सकता क्योंकि विशाल टीला जो किसी समय एक विशाल दुर्ग था मुख्य रूप से पहाडियो की लम्बी श्रेणी के छोर पर एक चट्टान पर सदियो से एकत्रित ध्वस्त भवनों के खण्डहरो से बना हुआ है। डी ला होस्टे ने १२०० फुट लम्बे ७५० फुट चौडे तथा ८० ऊँचे गोल टीले के रूप मे इसका उल्लेख किया है। परन्तु मैंने जब १८२५ ई० में इसे देखा था तो मुझे यह आकार मे चौकोर प्रतीत हुआ और मेरे विचार मे यह उनके अनुमान से कुछ अधिक बडा एव अधिक ऊचा था। उस समय यह सिन्धु नदी की मुख्य शाखा पर अवस्थित था परन्तु नदी के मार्ग मे निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं और सभी पुराने मानचित्रो मे इसे सिन्धु नदी की पश्चिमी शाखा पर अवस्थित दिखाया गया है। फिर भी प्राचीन समय में, जब नदी नारा की पूर्वी शाखा मे प्रवाहित थी सेहवान जहराब के स्थान पर इसके निकटतम बिन्दु से ६५ मील से कम दूरी पर नही था। जनगव के स्थान पर नारा, रेतीली पहाडियो को छोड देता है। वर्तमान समय मे सेहवान नगर की जलपूर्ति पूर्णतया सिन्धु नदी से होती है। जो न केवल नगर के पूर्वी सीमा पर बहती है वरन् अराल नामक एक छोटी शाखा के रूप मे इसकी उत्तरी सीमा के साथ साथ भी बहती है। यह शाखा विशाल चूर झील से निकलती है जिसकी जल पूर्ति दूसरे नारा अथवा सिन्धु नदी की विशाल पश्चिमी शाखा मे होती है। चूंकि जल की प्राप्ति के बिना इस स्थान का बस जाना सम्भव नही था अत यह निश्चित है कि मानचूर झील सिन्धु नदी के मार्ग मे परिवर्तन से काफी समय पूर्व अवस्थित थी। मध्य में इसकी अपार गहराई को देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि यह एक प्राकृतिक गडढा है और चूँकि इस समय भी इस झील का जल दो छोटी नदियों द्वारा एकत्रित होता है जो दक्षिण मे हाला नामी पर्वतों मे निकलती है अत यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह झील सेहवान की दीवारो तक विस्तृत रही होगी परन्तु पश्चिमी नारा की बाढ से सिन्धु नदी तक एक अन्य भाग बन गया था और इस प्रकार इस झील का स्तर स्थाई रूप से नीचे हो गया। झील में मछलियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मछलियों के कारण ही इसका नाम मानचूर पड़ा है क्योंकि मनचूर संस्कृत मत्स्य तथा हिन्दी मच्छ अथवा मछली का केवल परिवर्तित स्वरूप है अतः मेरा विचार है कि मनचूर केवल मच्छीवान नाम अथवा मछलियों वाली झील का संक्षिप्त नाम रहा होगा।

एक विशाल झील के समीप उन्नत एकांत चट्टान पर अवस्थित होने एवं खाद्यान्न एव जल की प्रचुर उपलब्धि के कारण बनी अनुकूल स्थिति मे सेहवान ने निश्चित रूप से सिन्ध के प्रारम्भिक निवासियो का ध्यान आकर्षित किया होगा। तद्नुसार हम देखते हैं कि सभी लेखको ने प्राचीन समय मे इस स्थान के बसे होने के तथ्य को स्वीकार किया है। इस प्रकार एम० पुस्तो का कथन है 'सेहवान असन्दिग्ध रूप मे अति प्राचीन स्थान है, सम्भवत अलोर अथवा पाटल से भी अधिक प्राचीन है। वर्तमान नाम

सीविस्तान का संक्षिप्त रूप बताया जाता है जिसे यहाँ के निवासियों सीवी अथवा सवी के नाम पर सीविस्तान कहा जाता था। परन्तु सभी प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने इस नाम को कुछ भिन्न रूप में लिखा है। उदाहरणार्थ सदुस्तान अथवा सदुसान अथवा शारसान। इनमें प्रथम दो नाम यूनानी सिन्दोमान शब्द से मिलते हैं। मैं सीविस्तान के नाम को हिन्दुओं द्वारा भगवान शिव के नाम से सम्बन्धित स्थान बनाये जाने की आधुनिक बात को अस्वीकार करता हूँ। यूनानियों का सिन्दो एवं प्रारम्भिक मुसलमानों का सदु देश के संस्कृत नाम सिंधु अथवा इसके निवासियों का सैन्धव अथवा सैंधु की ओर संकेत करते हैं। अतः उनके दुर्ग अथवा उनकी राजधानी को सैन्धवास्थान अथवा सिंधुस्थान कहा जाता होगा जो नासिका सम्बन्धी स्वर लोप के कारण अरब भूगोल शास्त्रियों का सदुस्तान बन गया होगा। इसी ढङ्ग से विलसन ने यूनानी सिन्दोमना को "संस्कृत के स्वीकृत शब्द सिन्दुमान अर्थात् 'सिंधु के अधिकारी' से लिया है।" फिर भी मैं यूनानी नाम के सैन्दवा-स्थानम अथवा सैन्धुवान अर्थात् "सैन्धवों के निवासस्थान से सम्बन्धित स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

आश्चर्य है कि टालमी ने सेहवान जैसे उल्लेखनीय स्थान का किसी भी पहचान योग्य नाम के अन्तर्गत उल्लेख नहीं किया है। यदि हम प्राचीन समय के मुहाने के सर्वाधिक सम्भावित मुख्य स्थान के रूप में हैदराबाद को स्वीकार कर लें तो टालमी के सीड्रास को जो सिंधु नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है सम्भवतः हैदराबाद से १२ मील ऊपर मटारी के प्राचीन स्थान से तथा पेसीपेडा को सहवान के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। मेरा विचार है कि टालमी के ओसकन को ओक्सीकनस अथवा सिकन्दर के पोर्टीकनस तथा आधुनिक समय के महोटा नामक विशाल टीले से अनुरूपता प्रायः निश्चित है। यदि ऐसा है तो सिस्त्रा अथवा पसिपेडा से वान रहा होगा।

ह्वेनसांग ने सहवान का उल्लेख नहीं किया है परन्तु सिंध के स्थानीय इतिहास में इस नगर को ७११ ई० में मुहम्मद बिन कासिम द्वारा अधिकृत नगर के रूप में उल्लेख किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महमूद गजनी ने पुनः इस पर अधिकार कर लिया था और मुस्लिम शासन के अधीन यह स्थान सिंध के सर्वाधिक समृद्ध स्थानों में सम्मिलित हुआ प्रतीत होता है। वर्तमान समय में यह अति जर्जर अवस्था में है परन्तु इसकी स्थिति इतनी अनुकूल है कि किसी भी समय इसका निर्जन हो जाना सम्भव नहीं है।

ब्रह्माना अथवा ब्रह्मानाबाद

सिन्दोमना से सिकन्दर "बाहिम नदी की ओर गया जहाँ उसने अपनी सेनाओं के बेड़े की प्रतीक्षा करने की आज्ञा दे रखी थी तत्पश्चात् नदी के मार्ग से नीचे की ओर जाते हुए चौथे दिन वह एक ऐसे नगर में पहुँचा जिसके द्वारा एक समृद्ध ढंग -

राज्य की ओर जाती थी।" जिस समय सिकन्दर ने अलोर (मुसिकनस की राजधानी) के स्थान पर ओक्सीकनस के विरुद्ध प्रस्थान करने के विचार से अपनी नौकाओं के बेड़े को छोड़ा था उस समय वह सिंदोमना की ओर जाने का विचार नहीं रखता था क्योंकि अधीनता स्वीकार कर लेने के पश्चात् राजा सम्बस को सिंधु नदी के साथ साथ पर्वतीय जिलों का क्षत्रप नियुक्त किया गया था। अतः उसने अपनी नौकाओं के बेड़े को नदी के किसी ऐसे स्थान पर प्रतीक्षा करने की आज्ञा दी होगी जो ओक्सीकनस की राजधानी से अधिक दूर नहीं था। इस स्थान को मैं कटोर तथा ताजल के नीचे पुराने नारा पर अवस्थित मरिजा दण्ड के समीप किसी स्थान पर निश्चित करूंगा क्योंकि मोर्टा जिसे मैं ओक्सीकनस के मुख्य नगर के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ, अलोर तथा कटार से समान दूरी पर है। तत्पश्चात् नदी के मार्ग से नीचे जाते हुये वह चौथे दिन एक ऐसे नगर में पहुंचा था जिससे होकर एक सड़क सम्बस के राज्य की ओर जाती थी। मरिजादण्ड अर्थात् उस बिन्दु से जहाँ मेरे विचार में सिकन्दर पुनः अपने बेड़े पर आ गया था। ब्रह्मना अथवा ब्राह्मनाबाद के ध्वस्त नगर की दूरी स्थल मार्ग द्वारा सीधी रेखा से ६० मील अथवा जल मार्ग से ८० मील है चूंकि इस दूरी को चार दिनों में सरलता पूर्वक तय किया जा सकता था अतः मेरा निष्कर्ष है कि ब्राह्मना ब्राह्मणों का वास्तविक नगर था जिसका सिकन्दर के इतिहासकारों ने उल्लेख किया था। इस नगर के राजा ने पहले सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी परन्तु यहाँ के निवासियों ने उसकी सहायता करने से इंकार कर दिया और उन्होंने नगर के द्वारों को बन्द कर लिया। एक गहरी चाल से उन्हें नगर के बाहर आने पर उत्साहित किया गया और तत्पश्चात् हुए युद्ध में टालमी को विष से बुझे खड्ग से कन्धे में गम्भीर चोट आई। टालमी की चोट के उल्लेख से हमें इस नगर को हरमतेलिया के अनुरूप स्वीकार करने में सहायता मिलती है। जिसे दिवोडोरस ने, "नदी पर ब्राह्मणों का अंतिम नगर" कहा है। अब, हरमतलिया ब्रह्मथल अथवा ब्राह्मना स्थल का केवल कोमल उच्चारण है। जैसे यूनानियों का हरमीज (वामदेव) भारतीयों के ब्रह्मा अथवा आदि देवता के स्वरूप है परन्तु ब्राह्मना, नगर का प्राचीन हिंदू नाम था जिसे मुसलमानों ने ब्रह्मना-बाद कहा था। अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि सिकन्दर द्वारा अधिकृत ब्राह्मणों का नगर नाम एवं स्थिति में ब्राह्मनाबाद के विशाल नगर से मिलता है।

दुर्भाग्यवश सिंदोमना के अधिकार के पश्चात् एरियन द्वारा दिया गया विवरण अति संक्षिप्त है। उसके शब्द इस प्रकार हैं—"उसने एक ऐसे नगर पर आक्रमण किया एवं अधिकार कर लिया, जिसने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था। विद्रोह का अभियोग लगा कर उसने उन सभी ब्राह्मणों का वध करवा दिया जो उसके चंगुल में फंस गये थे। यह विवरण डियोडोरस के कथन से जिसने लिखा है कि, सिकन्दर, 'विद्रोह का परिचालन करने वाले सभी व्यक्तियों को दण्ड देने पर सन्तुष्ट

था तथा अन्य सभी को उसने क्षमा कर दिया था।" इन तीन विवरणों की तुलना करने से मेरा अनुमान है कि हरमतलिया अथवा ब्राह्मना मुसिकनस के राज्य में था क्योंकि कर्टियस का कथन है कि नगर के राजा ने पहले सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी जबकि एरियन का कथन है कि उसने विद्रोह कर दिया था तथा डियोडोरस ने यह जोड़ दिया है कि सिकन्दर ने विद्रोह का प्रतिपादन करने वालों को दण्ड दिया था। अब, यह सभी तथ्य मुसिकनस से सम्बन्धित है जिसने सर्व-प्रथम अधीनता स्वीकार कर ली थी परन्तु बाद में विद्रोह कर दिया था और अन्त में उसका वध करवा दिया गया "तथा उसके साथ ही उन सभी ब्राह्मणों का भी वध हुआ जिन्होंने उसे विद्रोह करने की प्रेरणा दी थी। यह अनरूपता महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह पता चलता है कि मुसिकनस का राज्य पश्चिमी पर्वतों के अन्तर्गत ओक्सीकनस तथा सम्बुस के दो बाह्य जिलों को छोड़ मुल्तान तक सिन्धु नदी के सम्पूर्ण घाट में विस्तृत था। उसके राज्य का विस्तार जन साधारण द्वारा सिकन्दर का दी गई इस सूचना की व्याख्या करता है कि मुसिकनस का राज्य "सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक समृद्धि वाली एवं जनपूर्ण था।" इससे यह भी पता चलता है कि सम्बस किस कारण मुसिकनस से शत्रुता रखता था क्योंकि मुसिकनस के राज्य की दक्षिणी सीमाएं पश्चिम में सम्बस के राज्य से घिरी हुई थी। जस्टिन ने उस नगर के राजा को अम्बीगेर कहा है जहाँ टालमी एक विष में बुझे तीर से घायल हुआ था। सम्भवतः मुसिकानों के शासक मुसिकानस का यह वास्तविक नाम था जिसके राज्य में ब्राह्मना नगर अवस्थित था।

खेद है कि टालमी द्वारा सुरक्षित किसी भी नाम को निश्चित रूप से [illegible] के इस नगर के अनुरूप नहीं बताया जा सकता। परबानी स्थिति एवं [illegible] नाम में इसमें मिलता है क्योंकि प्रथम दो अक्षर, पर्व, चरम से अधिक [illegible] तथा अन्तिम अक्षर अलि ब्रह्मयल, बयल अथवा हरमतलिया का [illegible] है। टालमी के समय के पश्चात मुस्लिम विजय के समय तक [illegible] समय में ब्राह्मनानगर के सम्बन्ध में हम कोई सूचना नहीं मिलता। [illegible] स्थानीय एतिहासिक पुस्तकों से हमें ज्ञात होता है कि [illegible] प्रान्त में एक प्रान्त का मुख्य नगर था जिनमें ५०७ ई० से ६८० ई० [illegible] के अधीन सिन्ध विभाजित था तथा यह नगर ६८० ई० में [illegible] के समय तक प्रान्त का मुख्य नगर बना रहा। दाहिर ने [illegible] के पश्चात इसे अपनी राजधानी बनाया था। ६४१ ई० में ह्वेनसांग ने सिन्ध की यात्रा की थी और उसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। [illegible] विभाजित पाया था जिन्हें भिन्न भिन्न [illegible] निचला सिन्ध तथा कच्छ के नाम दे चुका हूँ। प्रथम [illegible] विवरण में दे चुका हूँ। द्वितीय, ओ-फान-च को [illegible]

प्रतिभा के आभारी हैं। यह खण्डहर हैदराबाद से ४७ मील उत्तर पूर्व में, हाला के २८ मील पूर्व अथवा पूर्व उत्तर पूर्व में तथा पूर्वी नारा के २० मील पश्चिम में सिन्धु नदी के पुराने तट पर अवस्थित हैं। यह स्थान बम्भरा का-थूल अथवा 'ध्वस्त बुर्ज' के रूप में जाना जाता है क्योंकि यहाँ की एक मात्र भवन इटों का टूटा हुआ बुर्ज है। श्री बेलासिस के अनुसार इस स्थान का वर्तमान रूप इस प्रकार है 'खण्डहरों का एक विस्तृत समूह जो अपने भवनों के मूल आकार के अनुसार आकार में भिन्न भिन्न है।" बच्चों को घुमाने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली गाड़ी के माप के अनुसार इसकी परिधि ४ मील से कुछ गज कम है परन्तु बम्भरा का-थूल के विशाल टीले के अतिरिक्त लगभग डेढ़ मील की दूरी पर 'इसके अंतिम राजा का निवास स्थान एवम् दोलार का ध्वस्त एवम् विशिष्ट नगर है तथा अन्य दिशा में पाँच मील की दूरी पर दपुर नामक ध्वस्त नगर है जो राजा के प्रधान मन्त्री का निवास स्थान था तथा इन नगरों के मध्य उपनगरों के खण्डहर हैं जो मीलों तक खुले प्रदेश में दूर दूर तक फैले हुए हैं। बम्भरा-का थूल का विशाल टीला 'पूर्णतया मिट्टी की प्राचीर में घिरा हुआ है जिस पर अनेक बुर्ज तथा बुर्ज बने हुए हैं।' अकबर के समय में इस मोर्चा बन्दी के अनेक अवशेष प्राप्त थे। अब्दुलफजल का कथन है कि 'इस भाखा बन्दी में १४० बुर्ज थे। (१) जो एक दूसरे से एक तनाब की दूरी पर थे। तनाब माप करने की एक रस्सी थी जिसे सम्राट अकबर ने लोहे की जंजीरों द्वारा जोड़े बम्बुओं के स्थान पर परिवर्तित करने की आज्ञा दी। इसकी लम्बाई ६० इलाही गज थी जिससे ३० इञ्च की दर से तनाब की लम्बाई १५० फुट प्राप्त होती है। तथा इस लम्बाई को १४० से गुणा करने पर नगर की परिधि २१००० फुट अथवा लगभग ४ मील हो जाती है। स्मरण रहे कि इन्न हाकल ने मन्सूरा को एक मील वर्गाकार अथवा परिधि में चार मील बताया है तथा श्री बेलासिस ने बम्भरा का थूल की परिधि को ४ मील से कुछ गज कम बताया है। आकार की पूर्ण समानता एवम् स्थिति की समीप समानता, जिसका मैं उल्लेख कर चुका हूँ, के कारण मेरा निष्कर्ष है कि बम्भरा का थूल का विशाल टीला सिन्ध के अरब गवर्नर की राजधानी मन्सूरा के ध्वस्त नगर का प्रतिनिधि है। अतः ब्राह्मना अथवा ब्राह्मनाबाद का हिन्दू नगर दिलूरा नामक खण्डहरों के टीले के पड़ोस में देखा जाना चाहिए जो विशाल टीले से केवल डेढ़ मील की दूरी पर है।

खण्डहरों की खोज करने वाले श्री बिलासिस के विशाल टीलों को स्वयं ब्राह्मना-

(१) आइने अकबरी में बुर्जों की संख्या १४०० बताई गई है जिससे नगर की परिधि ४० मील हो जायगी। प्रतिलिपि में इसकी संख्या १६० दी गई है। इलाही गज में ४१½ सिकन्दरी तनका हुआ करते थे और क्योंकि ६२ सिकन्द्रियों की औसतन चौड़ाई ७२.३४ इञ्च थी अतः इलाही गज की लम्बाई ३०.०१½ इञ्च रही होगी।

बाद के अनुरूप बताया है परन्तु इस सम्बन्ध मे श्री थामस ने उचित आपत्ति की है। उनका कथन है कि खुदाई के बीच प्राप्त अनेकानेक मध्यकालीन मुद्राओं मे, "हिंदू मुद्राओ की संख्या सीमित है और यह भी अन्य प्रान्तो की मुद्रायें प्रतीत होती हैं जिनमे न कोई उल्लेखनीय समानता है न किसी युग विशेष का संकेत करती है।" स्थानीय मुद्राओं मे पूर्ण रूपेण सिंध के अरब गवर्नरों की मुद्राओं के नमूने हैं। जिनके पार्श्व मे मनसूरा का नाम खुदा हुआ है और जहाँ तक मुझे ज्ञान है एक भी ऐसी मुद्रा नहीं है जिसे सिंध के किसी हिंदू राजा से सम्बन्धित किया जा सके। अतः खेद है कि श्री बिलासिस ने दिबूरा के छोटे टीले की अधिक खोज नही की जिससे सम्भवतः इसकी उच्च प्राचीनता का कोई सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त किया जा सकता।

स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों एवम् जनश्रुतियो के अनुसार ब्राह्मनावाद का विनाश दिलू राय नामक दुसरे शासक की धूर्तता के परिणामस्वरूप भूकम्प से हुआ था। इस शासक का समय संदेहपूर्ण है। एम० मुदेरो ने इसे १४० हिजरी अथवा ७५७ ई० कहा है जब दिलू का लघु छोटा भाई मक्का की तीर्थ यात्रोपरान्त वापस आया था। परन्तु दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे जब मसूदी एवम् इब्न हौकल ने मनसूरा की यात्रा की थी यह उस समय भी समृद्धशाली नगर था अतः यह स्पष्ट है यह भूकम्प ६५० ई० से पूर्व नही आया था। दिलू एवम् छोटे भाई को ब्राह्मनावाद के राय अथवा शासक अमीर का पुत्र बताया जाता है परन्तु यह विश्वास करना कठिन है कि मनसूरा मे अरब शासन के समय ब्राह्मनावाद मे कोई हिंदू शासक था। तथ्य यह है कि पञ्जाब तथा साथ ही साथ सिंध के सभी प्राचीन नगरों के सम्बन्ध मे एक ही चिरपरिचित कथा बताई जाती है। शोरकोट, हड़प्पा तथा अटारी तथा साथ ही साथ अलोर ब्राह्मना तथा ब्रम्भूरा सभी को उनके शासकों के पाप कर्मों के परिणाम स्वरूप ध्वस्त हुआ बताया जाता है। परन्तु तुलम्बा के सम्बन्ध मे भी इसी कथा का उल्लेख किया जाता है और हम जानते हैं कि यह कथा झूठी है क्योकि मैं इसके विनाश के वास्तविक कारण अर्थात् रावी द्वारा इस स्थान से हट जाने का उल्लेख कर चुका हूं। श्री बिलासिस की खोज से यह स्पष्ट हो चुका है कि ब्राह्मना का विनाश भूकम्प के कारण हुआ था। मानव हड्डियाँ "मुख्य रूप से द्वार पर प्राप्त हुई थी। लगता है कि वह भागने की चेष्टा कर रहे थे। अन्य हड्डियाँ भवनों के भीतर कोनों पर मिली है। कुछ शव सीधे खड़े थे कुछ लेटे हुये थे जिनके चेहरे,, भूमि की ओर थे। कुछ एक बैठी अवस्था मे ही दब गये थे। निश्चित ही नगर का विनाश अग्नि से नहीं हुआ था क्योकि श्री रिचर्डसन ने लिखा है कि उन्हे कोयले अथवा जली हुई लकड़ी के चिह्न नहीं मिले और न ही प्राचीन दीवारों पर अग्नि के चिह्न थे। इसके विपरीत उन्हे भी कमरों के कोनों मे दबी हुई मानव हड्डियाँ प्राप्त हुई थीं। लगता है कि अपने भवनों को अपने ही ऊपर गिरते देखकर भयभीत निवासी कमरों के कोनो मे इकट्ठा हो गये थे तथा मलबे मे दब गये थे। श्री

रिचड्सन ने एक ऐसी ईंट उठाई थी जिसकी "नोक खोपड़ी में घुस गई थी तथा निकाल जाने पर हड्डी का टुकड़ा साथ आ गया था।" उनका निष्कर्ष श्री विलालिस के समान है अर्थात "नगर का विनाश प्राकृति की भयानक भूकम्प के कारण हुआ था।"

बम्भरा-की-थूल मे प्राप्त प्राचीन मुद्रायें, नगर के प्रसिद्ध संस्थापक, मनसूर के पुत्र, जम्हूर के समय से मसूदी के समकालीन उमर के समय तक सिंध के अरब शासकों से सम्बंधित हैं। अतः सम्पूर्ण समय अर्थात् ७५० ई० से ६४० ई० अथवा कुछ समय पश्चात् तक यह स्थान बसा हुआ था।

यह मेरे उस कथन से ठीक ठीक मिलता है जिसके सम्बन्ध में मैं पहले लिख चुका हूँ कि दसवी शताब्दी के प्रथम आधे भाग में मसूदी तथा इब्नहौकल की यात्रा के समय नगर समृद्ध अवस्था मे था अतः मैं इसके विनाश का समय उस शताब्दी के द्वितीय अर्धभाग मे समझता हूँ तथा यह ६७० ई० से पूर्व नहीं हुआ था। यह सत्य है कि अगली शताब्दी के प्रारम्भ मे अब्बुरेहान ने मन्सूरा का उल्लेख किया है तथा इससे भी कुछ समय पश्चात् इदरीसी कजविनी तथा रशीदुद्दीन ने इसका उल्लेख किया है परन्तु अन्तिम तीनों लेखक केवल ग्रंथ संग्रहकर्ता थे तथा उनके विवरण तदानुसार पूर्व काल से सम्बन्ध रखते हैं फिर भी अब्बुरेहान मूल लेखक है और चूंकि भारतीय भाषाओं के ज्ञान के कारण उसे शुद्ध सूचनाएं प्राप्त करने की विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी अतः उसकी साक्षी यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि मन्सूरा उसके समय में बसा हुआ था। सिंध की भाग सूचना के सम्बन्ध में लिखते समय उसने कहा है, 'एरोर से बाम्र-मनवा जिसे एल मन्सूरा भी कहा जाता है २० परसङ्ग की दूरी है तत्पश्चात् नदी के मुहाने पर लोहरानी तक ३० परसङ्ग है।' अतः मन्सूरा उस समय बसा हुआ था जब अब्बुरेहान ने १०३१ ई० के लगभग अपनी पुस्तक लिखी थी परन्तु महमूद गजनी के आक्रमणों मे केवल एक लेखक ने इनका उल्लेख किया अतः यह प्रायः निश्चित है कि यह एक विशाल दुर्ग तथा देश की राजधानी के रूप में नहीं जाना जाता था अन्यथा यह लोभी एवम् लुटेरा विजेता इसके धन की ओर आकर्षित होता। यह सम्भव है कि अधिकांश निवासी जो महान् विपत्ति से बच गये थे अपनी दबी हुई सम्पत्ति को ढूंढने के लिए ध्वस्त नगर में वापिस आ गये हों तथा यह भी सम्भव है कि उनमें अधिकांश ने पुराने स्थानों पर अपने भवनों का पुनः निर्माण करवाया हो परन्तु नगर की दीवारें गिर चुकी थी तथा नगर सुरक्षित नहीं था। नदी धीरे-धीरे दूर चली गई थी तथा यहाँ जल का अभाव था तथा यह स्थान कुल मिलाकर इतनी अधिक जर्जर अवस्था में था कि ४१६ हिजरी अथवा १०२५ ई० मे जब सोमनाथ का विजेता सिंध से होकर वापिस गया तो मन्सूरा की लूट उसे उसके सीधे मार्ग से हट जाने की प्रेरणा देने के

लिए पर्याप्त न थी। अतः प्राचीन राजधानी की यात्रा किए बिना अथवा उसकी ओर ध्यान दिये बिना वह सहवान के मार्ग से गजनी वापिस चला गया। यदि हम इब्न-अथीर के एक मात्र कथन को स्वीकार कर लें कि इस अवसर पर महमूद ने मन्सूरा में मुस्लिम गवर्नर की नियुक्ति की थी तो उपयुक्त कथन में सन्देह किया जा सकता है।

निचला सिन्ध अथवा लार

ह्वेनसांग ने पित्तसिला के जिले अथवा निचले सिंध की परिधि को ३००० ली अथवा ५०० मील बताया है जो सिंधु नदी के पूर्व में उमरकोट के मरुस्थल तक तथा पश्चिम में कुमारी मोंज के पर्वतों तक नदी के दोनों ओर विस्तृत छोटे प्रदेश सहित हैदराबाद से समुद्र तक सिंधु नदी तक मुहाने के आकार से ठीक ठीक मिलता है। इन सीमाओं में भीतर निचले सिंध के आंकड़े इस प्रकार हैं। पश्चिमी पर्वतों से उमरकोट के पड़ोस तक १६० मील, उसी स्थान से कुमारी मोंज तक ८५ मील, कुमारी मोंज से सिंधु नदी की कोरी मुहाने तक १३५ मील तथा कोरी मुहाने से उमरकोट तक १४० मील अथवा कुल मिलाकर ५२० मील। इस भूमि में जिसे रेतीली एवम नमक युक्त कहा गया है अन्न एवम सब्जियां प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती हैं परन्तु फल एवम फूल कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं और यह कथन वर्तमान समय तक मुहाने के सम्बन्ध में सत्य है।

सिकन्दर के समय में मुहाने का एक मात्र उल्लेखनीय स्थान पटाला कहा जाता है कि अपनी नौकाओं के बेड़े को चलाने के लिये वायु की प्रतीक्षा करते हुए निचले सिंध में निवास के लम्बे समय में उसने अनेक नगरों की स्थापना की थी। दुर्भाग्यवश इतिहासकारों ने इन स्थानों के नामों का उल्लेख नहीं किया है। केवल जस्टिन ने लिखा है कि सिंधु तक अपनी वापसी के समय उसने बरसी नामक नगर का निर्माण करवाया था। अब मैं इसी का उल्लेख करूँगा। टालमी ने बारबरा, सोसीकाना, बोनिस तथा कोलक आदि अनेक स्थानों के नामों को सुरक्षित रखा है। प्रथम नाम सम्भवतः पैरीप्लस के बरबारकी, एमपोरियम तथा जस्टिन के बरसी के समान है। पैरीप्लस के लेखक के समय में निचले सिंध की राजधानी मिन्नागरा थी। जहाँ विदेशी व्यापारी बरबारकी से नदी के मार्ग से पहुँच सकते थे। सातवीं शताब्दी के मध्य में ह्वेनसांग ने केवल पित्तसिला अथवा पटाला का उल्लेख किया है परन्तु आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुहम्मद बिन कासिम के अभियान के इतिहासकारों ने हमारी अल्प सूची में देवल तथा निरनकोट के नाम जोड़ दिए हैं। दसवीं शताब्दी में अरब भूगोल शास्त्रियों ने इस सूची में वृद्धि की है। उन्होंने मनहाबारा अथवा मनहाबारी को सिंधु नदी के पश्चिम में देवल से दो दिन की यात्रा पर उस स्थान पर दिखाया है जहाँ देवल से आने वाली सड़क नदी को पार करती है। अब मैं इन स्थानों का उत्तर से पश्चिम,

उनक स्थिति के अनुसार मुहाने के सिरे पर पटाला से प्रारम्भ कर उल्लेख करूगां।

पटाला, निरनकोट

एम मुर्डो, मसोन, बटन तथा ईस्टविक क एव मत साक्षी के अनुसार निरनकोट को हैदराबाद के स्थान पर निश्चित किया गया है। केवल सर हैनरी इलियट ने इसे जरक के स्थान पर दिखाया है क्योंकि उनका विचार है कि यह स्थान स्थानीय इतिहासकारो के विवरण से अधिक मिलता है परन्तु चूकि हैदराबाद नगर का आधुनिक नाम है जिस जन साधारण अब भी निरनकोट के रूप में जानत हैं अत निरून अथवा अरब इतिहासकारों तथा भूगोल शास्त्रियो के निरुनकोट के अनुरूप स्वीकार करने म कोई सन्देह नहीं प्रतीत होगा। अब्दुलफेदा ने इसकी स्थिति को देबल से २५ परसग तथा मसूरा से १५ परसङ्ग की दूरी पर बताया है जो इस्तरवरी तथा इब्न हौकल के अपेक्षाकृत कम निश्चित कथनों से मिलता है। जिन्होंने केवल इतना कहा है कि यह देवल तथा मसूरा क बीच, परन्तु अन्तिम नगर के अधिक समीप है। यह नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था तथा अच्छे मोर्चाबन्द परन्तु छोट नगर के रूप म इसका उल्लेख किया गया है जिसमे वृक्षों की सख्या कम थी। अब, हैदराबाद ब्राह्मनाबाद अथवा मसूरा के ध्वस्त नगर से ४७ मील तथा लारी बन्दर से ८५ मील की दूरी है जिसे मैं प्राचीन देवल म सर्वाधिक सम्भावित स्थान के रूप म दिखाने का प्रयत्न करूगा। जबकि जरक ब्राह्मणाबाद से ७४ मील तथा लारी बन्दर से केवल ६० मील की दूरी पर था। अतः हैदराबाद की स्थिति जरक की अपेक्षा लिखित दूरियों से अधिक मिलती है। वतमान समय म सिन्धु नदी की मुख्य शाखा हैदराबाद क पश्चिम में बहती है परन्तु हम जानते है कि फुलेली अथवा पूर्वी शाखा पूर्व काल मे मुख्य नदी थी। एम मुर्डो के अनुसार हैद नदी के हैदराबाद से पश्चिम की ओर चले जाने की घटना १००० हिजरी अथवा १५६२ ई० क पूर्व से पहले हुई होगी तथा यह परिवतन नासिरपुर के ह्रास के समय से मिलती है जिसकी स्थापना केवल ७५१ हिजरी अथवा १३५० इ० म हुई थी। चूकि अब्दुलफजल ने थट्टा प्रान्त के एक उपखण्ड के मुख्य स्थान के रूप में नासिर पुर का उल्लेख किया है अतः सिन्धु की मुख्य शाखा अकबर के शासन काल क प्रारम्भिक समय तक हैदराबाद के निरनकोट के पूर्व में प्रवाहित रही होगी।

निरूनकोट एक पहाडी पर अवस्थित है तथा इसके पडोस म एक झील थी जिसम मुहम्मद कासिम का बेडा आ सकता था। सर हैनरी इलियट ने प्रथम को सिन्धु नदी के पश्चिम जरक की पहाडिया तथा द्वितीय को जरक के दक्षिण म हलाई के समीप किंजूर झील के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु किंजूर झील सिन्धु नदी से सम्बन्धित नहीं है अतः सिन्धु नदी के मार्ग स बेडे के ले जाए जाने के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता था अत निरनकोट के प्रतिनिधि के रूप म हैदराबाद की अपेक्षा

जरक को प्राप्त कथित साम समाप्त हो जाता है। सर हैनरी ने स्वीकार किया है "कि इसकी स्थिति का निर्धारण मुख्य रूप से अन्य स्थानों पर निर्भर करता है जिन्हें विवाद ग्रस्त नगरी विशेषतयः देवल तथा मंसूरा से सम्बन्धित किया जाता है।" प्रथम नगर को उन्होंने कराची में तथा अन्तिम नगर को हैदराबाद के अनुरूप स्वीकार किया है तथा इन्हीं के अनुसार ही वह निरनकोट को जरक के स्थान पर निश्चित करने के लिए बाध्य हैं। परन्तु 'सिन्ध में अरबों के परिशिष्ट' लिखने के पश्चात् श्री बिलासिस ने उसी स्थान पर बम्भरा का थूल नामक प्राचीन नगर की खोज की है जिसे काफी समय पूर्व एम मुर्डो ने ब्राह्मनाबाद के स्थान के रूप में माना था। मंसूरा तथा ब्राह्मणाबाद के प्रसिद्ध नगरों के स्थान से इसकी अनुरूपता के कारण हैदराबाद अथवा प्राचीन निरनकोट, बिलडूरी तथा पचनामा के निरून कोट के प्रतिनिधि के रूप में रह जाता है। बम्भर का थूल से इसकी ४३ मील की दूरी तथा लारी बन्दर से ८५ मील की दूरी अबुलफिदा के १५ तथा २५ परसगों से प्रायः ठीक ठीक मिल जाती है। यह भी पहाड़ी पर अवस्थित है अतः स्थान एवं नाम दोनों में यह निरनकोट से मिलता है। गंजा नामक पहाड़ी १½ मील लम्बा ७०० गज चौड़ी है और इसकी ऊंचाई ८० फुट है। वर्तमान दुर्ग ११८२ हिजरी अथवा १७६८ ई० में मीर गुलाम शाह द्वारा बनवाया गया था। पहाड़ी का लगभग एक तिहाई भाग पश्चिमी छोर पर दुर्ग से घिरा हुआ है। मध्य भाग मुख्य सड़क तथा नगर के घरों अथवा से तथा उत्तरी भाग मकबरों से घिरा हुआ है।

६४१ ई० में जब चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने सिन्ध की यात्रा की थी वह कच्छ की राजधानी कोटेश्वर से ११७ मील ठीक उत्तर की ओर पी ए तो नो तक गया था। तत्पश्चात् वह १०० ली अथवा ५० मील उत्तर पूर्व की ओर ओ फान च तक गया था जिसे मैं ब्राह्मणाबाद के अनुरूप बता चुका हूँ। एम० जुलीन ने चीनी अक्षर को पित्तशिला पढ़ा है परन्तु मैं इस पाटशिला अथवा "चिपटी चट्टान पढ़ने का इच्छुक हूँ। जो उस लम्बी समतल एवं सुनी पहाड़ी का सही विवरण देता है जहाँ हैदराबाद अवस्थित है। यह नाम पातालपुर का स्मरण दिलाता है जो वटन के अनुसार हैदराबाद अथवा निरनकोट का प्राचीन नाम था और चूंकि यह नगर कोटेश्वर से ठीक १५० मील उत्तर में तथा ब्राह्मणाबाद के ४७ मील दक्षिण पश्चिम में है अतः मुझे इसे चीनी तीर्थयात्री के पित्तशिला के अनुरूप स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है। पहाड़ी का आकार भी जो १½ मील लम्बा तथा ७०० गज चौड़ा अथवा परिधि में ३ मील है, पित्तशिला के आंकड़ों से अधिक समीप है। ह्वेनसांग के अनुसार पित्तशिला की परिधि २० ली अथवा ३⅓ मील थी।

पातालपुर तथा पाटशिला के नामों से इस सम्भावना का संकेत मिलता है कि हैदराबाद सिकन्दर के इतिहासकारों का पटाला हो सकता है जिसे उन्होंने एक मत

से मुहाने के सिरे के समीप बताया है। अब, मुहाने का वर्तमान सिरा हैदराबाद से १२ मील ऊपरी मट्टारी के पुराने नगर के स्थान पर है जहाँ फुलेली सिंधु नदी की मुख्य शाखा से अलग होती है। परन्तु प्राचीन काल में अब मुख्य नदी जिसे अब पुराना कहा जाता है अलोर तथा ब्राह्मणाबाद से होकर निरनकोट तक जाती थी उस समय सिंधु की शाखाओं के भिन्न भिन्न होने का प्रथम स्थान या तो स्वयं हैदराबाद में था जहाँ से मियानी से होते हुए त्रिकाल तक एक शाखा जाती थी अथवा यह स्थान इससे १५ मील दक्षिण पश्चिम में था जहाँ अब फुलेली गुनी शाखा को दक्षिण की ओर ढकेल देती है तथा यह स्वयं पश्चिम दिशा में प्रवाहित होकर त्रिकाल के स्थान पर वर्तमान सिंधु नदी में मिल जाती है। अतः प्राचीन मुहाने का मुख्य सिरा या तो हैदराबाद में था अथवा इससे १५ मील दक्षिण पूर्व में, जहाँ गुनी अथवा सिंधु की पूर्वी शाखा फुलेली अथवा पश्चिमी शाखा से अलग होती है।

अब पटाला की स्थिति को अनेक स्वतन्त्र आंकड़ों के आधार पर निश्चित किया जा सकता है —

प्रथम—टालमी के अनुसार मुहाने का सिरा ओरबन तथा लोनीबारे ओस्टियम नामक सिंधु के पूर्वी मुहाने के ठीक मध्य में था इससे पटाला की स्थिति हैदराबाद के स्थान पर निश्चित होती है जो ओक्सीकनस की राजधानी अर्थात् लरकाना के समीप महोर्टा तथा कोरी अथवा सिंधु नदी के पूर्वी मुहाने से समान दूरी पर है। कोरी लोनी नदी अथवा लोनी बारे ओस्टियम का मुहाना भी है।

द्वितीय—अरिस्टोबूलस सिंधु के मुहाने को १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील आंका था। नियर्कस ने इसे १८०० स्टेडिया तथा ओनिसिक्रीटस ने २००० स्टेडिया आंका था। परन्तु पश्चिम में घार मुहाने से लेकर पूर्व में कोरी मुहाने तक वास्तविक तटीय लम्बाई १२० मील से अधिक नहीं है। हम अन्य लेखकों की अतिशयोक्तिपूर्ण संख्याओं की अपेक्षा अरिस्टोबूलस के अनुमान को अपना सकते हैं और चूंकि ओनिसिक्रीटस ने लिखा है कि मुहाने के तीनों किनारे समान लम्बाई के थे अतः सागर से पटाला की दूरी को १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील से १२५ मील स्वीकार किया जा सकता है। अब, घारा अथवा सिंधु नदी के पश्चिमी मुहाने से हैदराबाद की दूरी ११० मील है तथा कोरी अथवा पूर्वी मुहाने से १३५ मील और यह दोनों दूरियाँ मुहाने के वास्तविक दूरी से समीप समानता रखती हैं। यह आंकड़े ओनिसिक्रीटस के विवरण का समर्थन करते हैं कि मुहाने से समभुज त्रिकोण बनता है। परिणाम स्वरूप पटाला नगर जो मुहाने के सिरे पर अथवा इसके समीप था प्रायः निश्चित रूप से वर्तमान हैदराबाद के अनुरूप समझा जा सकता है।

तृतीय—एरियन तथा कर्टियस के विवरणों की तुलना से प्रतीत होता है कि ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणों के नगर के स्थान पर पटाला के राजा ने सिकन्दर की अधी-

नता स्वीकार कर ली थी परन्तु सिन्धु नदी में नीचे की ओर तीन दिन की यात्रा पश्चात् सिकन्दर को सूचना मिली कि भारतीय शासक अपना देश त्याग कर मरु भूमि की ओर भाग गया है। सिकन्दर ने तुरन्त पटाला की ओर प्रस्थान किया। अब, स्थल मार्ग से ब्राह्मणाबाद से हैदराबाद की दूरी ४७ मील है परन्तु सिन्धु नदी का पुराना मार्ग नसीरपुर के मार्ग से घुमावदार रास्ते से जाता है अतः नदी तट के साथ साथ बना मार्ग जिसे सेना ने निश्चित रूप से अनुसरण किया होगा ५५ मील से कम नहीं है जबकि जल मार्ग से इसकी दूरी ८० मील रही होगी। स्थल मार्ग से १ अथवा १२ मील की सामान्य दर से अथवा जल मार्ग से १८ अथवा २० मील की दर से प्रथम तीन दिनों में सिकन्दर स्थल मार्ग से हैदराबाद से १६ मील तथा जल मार्ग से २६ मील के भीतर पहुँच गया होगा और इस दूरी को उसने चौथे दिन की निरन्तर यात्रा के पश्चात् सरलता पूर्वक पूरा कर लिया होगा। पटाला से नदी की पश्चिम शाखा के मार्ग से वह ४०० स्टेडिया अथवा ४६ मील दूर गया था जब उसके नव सेनानायकों ने सब प्रथम सागरीय वायु का अनुमान लगाया। मेरा विश्वास है कि यह स्थान जरक था जो स्थल मार्ग से हैदराबाद से ३० मील तथा जल मार्ग से ४५ मील अथवा ४०० स्टेडिया की दूरी पर था। यहाँ पर सिकन्दर ने मार्ग दर्शकों की सहायता प्राप्त की तथा अधिक उत्साह के साथ यात्रा को जारी रखते हुए तीसरे दिन ज्वार भाटे के कारण उसे समुद्र की समीपता का ज्ञान हुआ। चूँकि सिन्धु नदी में ज्वार भाटा समुद्र से ६० मील के पश्चात् नहीं देखा जाता अतः मेरा निष्कर्ष है कि सिकन्दर उस समय नदी की पश्चिमी शाखा घाट पर अवस्थित बाम्भरा नामक स्थान पर पहुँचा होगा जो समुद्र से स्थल मार्ग से ३५ मील तथा जल मार्ग से लगभग ५० मील की दूरी पर है। जरक से इसकी दूरी स्थल मार्ग द्वारा ५० मील तथा जल मार्ग से ७५ मील है जिसे नौसेना के बेड़े ने तीन दिन में सरलता पूर्वक पूरा कर लिया होगा। उपयुक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पटाला समुद्र से काफी दूरी पर रहा होगा अर्थात् ज्वार भाटे से पहुँच की दूरी तथा तीन दिन की यात्रा एव ४०० स्टेडिया दूर रहा होगा। स्थल मार्ग से यह दूरियाँ क्रमश ३३ मील ५० मील तथा ३० अर्थात् कुल मिला कर ११३ मील है। जो अरिस्टोबुलस के १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील के माप से प्राय ठीक ठीक मिलती है।

चूँकि उपयुक्त तीनो स्वतन्त्र विचार धाराएं पटाला के सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि के रूप में एक ही स्थान की ओर संकेत करती हैं और चूँकि सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने इसे पतशिल कहा है तथा यह स्थान आज भी पाटलपुर के नाम से जाना जाता है। अतः मेरा विचार है कि हैदराबाद को प्राचीन पटाला के अनुरूप स्वीकार करने के लिए अधिक ठोस कारण उपस्थित हैं।

सिन्धु नदी के सम्बन्ध में अपने विवरण में एरियन ने लिखा है कि, "यह नदी

अपने दो मुहाना के द्वारा एक त्रिभुजाकार आकार बनाती है जो मिस्र के मुहाने से किसी प्रकार कम नहीं है जिसे भारतीय भाषा में पाटला कहा जाता है।" चूंकि यह कथन नियर्कस के विवरण पर आधारित है जिसे सिन्ध में लम्बी अवधि तक रहने के कारण जन-साधारण म बातचीत करने के प्रचुर अवसर प्राप्त हुए थे। अत हम इसे तत्कालीन सिन्धियो के सामान्य विश्वास के रूप मे स्वीकार कर सकते हैं। अन मैं यह प्रस्ताव करूंगा कि यह नाम सिन्धु नदी के पूर्वी एव पश्चिमी शाखाओ के मध्य प्रान्त के "तुरही' आकार के कारण पाटला अर्थात् "तुरही फूल" से लिया गया है क्योंकि यह दोनो शाखाए जैसे जैसे समुद्र के समीप होती हैं यह तुरही के मुँह के समान बाहर की ओर फैलती जाती है।

मैं इस प्राचीन नगर के स्थान पर यह विचार विमर्श एक अन्य नगर क उल्लेख किए बिना समाप्त नहीं कर सकता जिसका परस्पर विरोधी विवरण निरूनकोट मे भ्रम पूर्वक सम्बन्धित प्रतीत होता है। यह नाम इस्तखरी का फिन्ज इब्नहौकल का कन्नाजबर इद्रीसी का फिरबुज है। इस्तखरी के अनुसार फिन्ज देवल से चार दिन की यात्रा पर तथा महाबारी मे दो दिन की यात्रा पर, था जो स्वय देवल स दो दिन की यात्रा पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था। इब्नहौकल तथा इदरीसी इस बात पर सहमत हैं कि कन्नजबर तथा फिरबुज की ओर जाने वाली सडक मनहाबारी अथवा मनजाबारी से होकर जाती है जो देवल से दो दिन की यात्रा पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था। परन्तु उन्होंने देवल के पश्चात् सम्पूर्ण दूरी को चार की अपेक्षा १४ दिन बताया है। अब, इब्नहौकल तथा इदरीसी ने अपने नगर को मेकरान म बताया है। १४ दिन की कथित दूरी क कारण उन्हें उपयुक्त स्थिति को स्वीकार करने के लिए प्राय बाध्य होना पड़ा था जबकि प्रथम दो दिन की यात्रा मेकरान की विपरीत दिशा म पड़ती है। यदि हम देवल से चार दिन की सक्षिप्त दूरी को स्वीकार कर ले जिसे तीन भूगोल शास्त्रियो मे प्रथम भूगोल शास्त्री इस्तखरी ने बताया है तो उनके अज्ञात नगर की स्थिति निरनकोट की स्थिति से ठीक ठीक मिल जाएगी। मैं देवल को लारी बन्दर के समीप एक प्राचीन नगर, तथा मनहाबारी को थट्टा के अनुरूप समझूँगा जो लारी बन्दर तथा हैदराबाद के प्राय मध्य म अवस्थित है। अब इब्नहौकल ने विशेष रूप स लिखा है कि मनजाबारी 'मरान के पश्चिम म अवस्थित था तथा वहाँ कोई भी व्यक्ति जो देवल से मनसूरा की ओर जाता उसे नदी को पार करना पड़ा होगा क्योंकि अंतिम नगर मनजाबारी के विपरीत था।" इस सक्षिप्त विवरण स पता चलता है कि मनजाबारी सिन्धु नदी की पश्चिमी शाखा पर अवस्थित था अत निरनकोट तथा साथ ही साथ फिन्ज अथवा कन्नजबर अथवा फिरबुज की ओर जाने वाली मुख्य सडक पर अवस्थित था। अत मैं यह प्रस्ताव करूंगा कि प्रथम नाम जो मनहाबारी से सम्बन्धित किया गया है सम्भवत इसका

प्रयोग निरून के लिए किया गया है तथा अन्य दोनों नाम निरूनकोट के लिये प्रयोग में लाए गये हैं क्योंकि मूल अरबी स्वरूप में इन्हें प्रायः समान रूप से लिखा जाता था। परन्तु मेकरान निश्चित ही लगभग समान नाम का एक स्थान था क्योंकि बिलादूरी ने लिखा है कि देवाल के विरुद्ध जाने समय मुहम्मद कासिम ने मेकरान व किज़बुन पर अधिकार कर लिया था। (१) इब्न-हौकल के कन्नज़बर तथा इदरासी के फिरबुज से इसलाम की तुलना करने पर मैं यह सम्भव समझता हूँ कि यह नाम पजगूर के लिए लिखा गया होगा जैसा कि एम० रिनाड ने प्रस्तावित किया है। १४ दिन की यात्रा इस स्थान की स्थिति से भली प्रकार मिल जाएगी।

जरक

जरक का छोटा नगर हैदराबाद तथा थट्टा के मध्य सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर प्रमुख स्थान पर अवस्थित है। जरक विचोला अथवा मध्य सिन्ध तथा लार अथवा निचले सिन्ध की वर्तमान सीमा है। निचले सिन्ध की सीमाओं को हैदराबाद तक विस्तृत स्वीकार करना पड़ा है ताकि यूनानियों का पटाला तथा चीनी तीर्थ यात्री के पितशिला को इसमें सम्मिलित किया जा सके। सम्भवतः यह सोर अथवा असलोर नामक छोटा परन्तु जनपूर्ण नगर का स्थान है जिसे इदरिसी ने मनहाबारी तथा फिर बुज अर्थात् थट्टा तथा निरनकोट के मध्य बताया है। जरक से तीन मील नीचे खण्डहरों से ढकी एक अन्य निचली पहाड़ी है जिसे जन-साधारण काफिर कोट कहा करते हैं तथा राजा मनमोरा से इसे सम्बन्धित बतलाते हैं। मुख्य खण्डहर एक वर्गाकार कमरा है जिसे समान दूरी पर बने चौकोर खम्भों से सजाया गया है। इसे एक मन्दिर के अवशेष समझा जाता है। इन खण्डहरों में बौद्ध मूर्तियों के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए थे तथा पहाड़ी से कुछ दूरी पर प्राचीन भारतीय लिपि में कुछ शिला लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें केवल पुरुष तथा भगवतस शब्द एवम् भिन्न भागों में कुछ अन्य शब्द पढ़ सके हैं परन्तु यह सभी इस बात के प्रमाण हैं कि शिला लेख एवं अन्य खण्डहर बौद्ध कालीन हैं।

मीननगर, मनहाबारी अथवा थट्टा

थट्टा नगर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट से तीन मील, सटा हुआ नदी की मुख्य धारा से बागर अथवा पश्चिमी शाखा के अलग होने के स्थान से ४ मील ऊपर एक निचली दलदल वाली घाटी में अवस्थित है। मि० लिटन वुड ने लिखा है कि 'कूड़े का ढेर जिस पर भवन खड़े किये गये हैं घाटी के स्तर से थोड़ा ऊपर उठ गया है।

---

(१) सर हेनरी इलियट ने इस्तखरी द्वारा दिये गये नाम को कनजबून पढ़ा है जिसे मुसलमान लेखकों ने किरियून पढ़ा है। इन भिन्नताओं का सर्वाधिक सम्भावित उत्तर, निम्न एवम् मकरान की राजधानी के नामों के निरिधारण अरबी भाषा में देखा जा सकता है।

१६९९ ई० म कैप्टन हैमिल्टन ने इस स्थान की यात्रा की थी जिन्होंने इसे सिंधु नदी स २ माल दूर एक खुले मैदान मे अवस्थित बताया ह । अत यह अत्यधिक सम्भव है कि यह नगर मूल रूप से नदी तट पर अवस्थित था । परन्तु मह नदी धीरे-धीरे नगर से दूर चली गई । इसके नाम से भी इसी निष्कर्ष का सकेत मिलता है क्योंकि थट्टा का अथ है "नदी तट अथवा समुद्र तट ।" अतः नगर थट्टा जो इस स्थान का सामान्य नाम है का अर्थ इस प्रकार होगा, "नदी तट पर अवस्थित नगर ।" इसकी तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नही है । परन्तु एम० मुरडो जिनका कथन सामान्य रूप से अधिक शुद्ध है, का कथन है कि इसकी स्थापना ९०० हिजरी अथवा १४९५ ई० म सिंध के शासक अथवा जाम निजामुद्दीन नन्दा ने करवाई थी । उसर समय से पूर्व निचले सिंध का मुख्य नगर सम्मा जाति की राजधानी सामी नगर था जो थट्टा के स्थान से ३ माल उत्तर पश्चिम म एक उठते हुए मैदान म अवस्थित है । एम० मुरडो का कथन है कि इसकी स्थापना दिल्ली के अलाउद्दीन के समय में हुई थी जिसन ६९५ से ७१५ हिजरी अथवा १२९५ ई० स १३१५ ई० तक शासन किया था । कल्याणकोट अथवा तुगलकाबाद का विशाल दुग इससे पुराना है जो थट्टा के ४ मील दक्षिण पश्चिम में चूने के पत्थरों की पहाड़ी पर अवस्थित है । इसका दूसरा नाम गाजीबेग तुगलक स लिया गया है जो अलाउद्दीन के शासनकाल के अंतिम भाग म, चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुल्तान तथा सिंध का गवनर था ।

थट्टा के स्थान को आधुनिक स्वीकार किया जाता है परन्तु सामी नगर कल्याण कोट क स्थानों को अत्यन्त प्राचीन बताया जाता है । जन साधारण का यह विश्वास निस्सन्देह सही है क्योंकि मुहाने के सिरे पर अवस्थित होने के कारण यह सम्पूर्ण नदी पर नियम नियन्त्रण रखता है जबकि पवतीय दुर्ग सुरक्षा प्रदान करता है । लैफ्टिनेन्ट वुड ने टिप्पणी की है कि थट्टा का स्थान व्यापारिक उद्देश्यों के लिए अत्यन्त लाभ-पूर्ण है । यह सम्भव प्रतीत होता है कि प्राचीनतम समय स इसक पडोस मे बाजार रहा हो । "परन्तु ' उसने उचित रूप से यह जोड दिया है कि "क्योंकि मुहाने का सिरा एक निश्चित बिन्दु नही है अत नदी के परिवतन के साथ साथ इस नगर क स्थान में भी परिवतन हुआ होगा ।" स्वभाविक है कि स्थान के परिवतन म, नामों म भी परिवतन हुआ होगा अतः मेरा विश्वास है कि थट्टा अरब भूगोल शास्त्रियों के मनहाबारी तथा पैरीप्लस के लखक के मनि नगर का वास्तविक स्थान था ।

सभी लेखकों ने मनहाबारी को देवल स दो दिन की यात्रा पर सिंधु नदी क पश्चिमी तट पर अवस्थित बताया है । अब, थट्टा इसी स्थान पर अवस्थित है जो लारी बन्दर से दो दिन की यात्रा पर अथवा ४० मील का दूरी पर सिंधु नदी क पश्चिमी तट पर अवस्थित है । आगे चल कर मैं बताऊंगा कि लारी बन्दर प्राय निश्चित रूप स देवल के प्रसिद्ध नगर के कुछ हा मीलों क भीतर था । मनहाबारी के

नाम को मैहाबारी तथा मण्डाबारी आदि भिन्न रूप में लिखा गया है जिसके लिए मैं प्रस्ताव करूंगा कि इसे हम सम्भवतः मण्डाबरी अथवा मण्डावरी अर्थात् "मण्डजाति का नगर" पढ़ सकते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे साम्भी नगर को "सम्मा जाति का नगर" कहा जाता है। नाम की मूल व्युत्पत्ति इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि मण्ड जाति ईसा काल के प्रारम्भ से अधिक संख्या में निचले सिन्ध में बसी हुई है। इदरिसी ने मण्ड जाति को बहुसंख्यक एवं वीर जाति कहा है जो सिन्धु तथा भारत की सीमाओं पर मरुस्थल में बसी हुई है तथा यह जाति उत्तर में अलोर तक, पश्चिम में मेकरान या तथा पूर्व में ममेहेल (अथवा उमरकोट) तक फैली हुई है। इब्न होकल ने लिखा है कि "मण्ड जाति के लोग मुल्तान की सीमाओं से समुद्र तक मिहरान के तट पर तथा मेकरान तथा कामहल (अथवा उमरकोट) के बीच मरु भूमि में बसे हुए हैं। उनके पास अनेक पशु एवम् चरागाह थे तथा उनकी जनसंख्या अधिक थी।' इस समय से पूर्व ही रशीदुद्दीन ने इन्हें सिन्ध का निवासी कहा है। उसके विवरण के अनुसार जाहा के पुत्र हाम के दो वंशज मेद तथा जट महाभारत के समय से पूर्व सिन्ध के निवासियों के पूर्वज थे। यह नाम मर, मेड, मण्ड आदि भिन्न भिन्न रूप में लिखा गया है और यह सभी नाम वर्तमान समय में भी मिलते हैं। इन नामों के साथ मैं मिन्द नाम जोड़ दूंगा जो मसूदी द्वारा दिये गये नाम का स्वरूप है। पहले ही मैं इस जाति को प्राचीन लेखकों के मेदी तथा मण्ड्रेनी के अनुरूप बता चुका हूँ और चूंकि उनके नाम केवल ईसवी काल उत्तरी भारत में पाये जाते हैं अतः मेरा निष्कर्ष है कि मण्ड्रेनी तथा ओदास के इसादी जिन्हें प्लिनी ने एक साथ जोड़ दिया है सकाय इण्डो सीथियन रहे होंगे जो पञ्जाब एवं सिन्ध में बसे हुए थे तथा जिन्होंने प्रारम्भिक मुसलमान लेख के मण्ड एवं जाट नाम से सातवीं शताब्दी के अंतिम भाग में सिन्धु नदी की सम्पूर्ण घाटी पर अधिकार कर रखा था।

यह दिखाने के लिए कि नाम के विभिन्न स्वरूप केवल उच्चारण के स्वाभाविक परिवर्तन मात्र हैं मैं शाहपुर तथा झेलम जिला के दो विशाल मानचित्रों का उल्लेख कर सकता हूँ जो अंतिम कुछ वर्षों में भारत के महा सर्वेक्षक द्वारा प्रकाशित किए गये हैं। अन्तिम मानचित्र में जलालपुर से ६ मील ऊपर झेलम नदी पर अवस्थित एक गाँव का नाम मरिआला लिखा गया है तथा प्रथम मानचित्र में इसे मण्डिआलो लिखा गया है। अबुलफज़ल ने इसी स्थान को मेरालो कहा है जबकि फरिश्ता ने इसका नाम मरिआला बताया है। अन्त में सिकन्दर के सर्वेक्षक मुगलचक ने इसे मण्डिआला लिखा है जो मुझे इन विभिन्न स्थितियों में ग्राम नाम से मिलता है जबकि जनरल कोर्ट के मानचित्र में इसे मामरिआला लिखा गया है।

मैं मीन नगर अथवा 'मान का नगर' को इन्हीं लोगों से सम्बन्धित बताऊंगा। मीन नगर ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी में निचले सिन्ध की राजधानी थी। टाल्मी

के इसी शेर की सूची में सकसटोन अथवा सिजसतान के नगरों में एक नगर के रूप में बताए जाने के कारण हम जानते हैं कि मीन एक सीथियन नाम था। सिंध में इस नाम की उपस्थिति सीथियनों की उपस्थिति को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त है परन्तु निम्न उल्लेख से सीथियनों एवं उपयुक्त नाम का सम्बन्ध असंदिग्ध हो जाता है कि मीन नगर के शासक विरोधी पार्थियन जो परस्पर एक दूसरे को पदच्युत किया करते थे। यह पार्थियन लोकस के दहाए सीथियन थे जिन्होंने सिंधु नदी की घाटी को इण्डासीथिया का नाम दिया था तथा जिनकी पारस्परिक शत्रुता प्रारम्भिक मुसलमानों के मेद तथा जाटों की शत्रुता में अनुरूपता की ओर संकेत करती है।

मीन नगर का वास्तविक स्थान अज्ञात है तथा इसके स्थान के निर्धारण का प्रयत्न करने में हमारी सहायता बहुत कम आंकड़े उपस्थित हैं। चूंकि टालमी जिसने द्वितीय शताब्दी के प्रथम अर्ध भाग में लिखा है, इसका उल्लेख नहीं किया है। अतः मेरा अनुमान है कि या तो राजधानी को उस समय तक नवीन नाम नहीं दिया गया था अथवा यह अधिक सम्भव है कि टालमी ने केवल पुराने नाम का उल्लेख किया है। यदि मैं मीन नगर अथवा 'मान का नगर' को मण्डाबारी अथवा "मण्ड जाति के स्थान' के अनुरूप स्वीकार करने में सही मार्ग पर हूँ तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि विशाल इण्डो सीथियन राजधानी थटटा में थी। इदरिसी ने मनहाबाद को एक निचले समतल पर अवस्थित तथा उद्यानों एवं बहते जल से घिरा हुआ नगर कहा है। केप्टन हेमिल्टन ने थटटा का इसी प्रकार उल्लेख किया है। उसका कथन है कि "यह नगर खुले मैदान में अवस्थित है तथा इन लोगों ने नगर में जल लाने के लिए तथा अपने उद्यानों के प्रयोग के लिए नदी से नहरें निकाल रखी थी।' पैरीप्लस के लेखक के अनुसार व्यापारिक जहाज बारबारी के विश्रामस्थल पर रुका करते थे जहाँ समान उतार लिया जाता था तथा नदी मार्ग से राजधानी को भेजा जाता था। ठीक इसी प्रकार आधुनिक समय में समुद्री जहाज लारी बन्दर पर रुकते हैं जबकि व्यापारी अपना सामान स्थल अथवा जल मार्ग से थटटा तक ले जाते हैं। मीन नगर की स्थिति का इतना स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि इसकी स्थिति के निर्धारण में इस उल्लेख से कोई सहायता नहीं मिलती। यदि यह थटटा के स्थान पर था, जैसा कि मेरा विचार है, उस स्थिति में इसे टालमी के साओसीकना के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। जिसे मैं सुसागाम अथवा "सुजाति का नगर' समझूँगा। उपयुक्त शब्द व्युत्पत्ति इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि मण्ड अथवा मेड, मु अथवा अबार के विशाल जाति की शाखा थे जिन्होंने एक नाम दजला फरात नदी के मुहाने पर सुसिआना का तथा दूसरा नाम सिंधु नदी के मुहाने पर अबीरिया को दिया था। फिर भी मुझे यह उल्लेख करना चाहिए कि एम० मुरडा के अनुसार "सिंध नगर बारहवीं शताब्दी में मुल्तान का एक आश्रित नगर था तथा अबी जाति के एक शासक तथा सिकन्दर के वंशज के

अधिकार में था। यह सोहाना दरिया पर अवस्थित था जो यमुना से अधिक दूर नहीं है तथा उस परगना में है जिसे अब बहादुरपुर कहा जाता है।" यह सन्देहास्पद स्थिति है कि पास्टन अथवा इलियट ने इस उल्लेख को प्रमाणित नहीं किया है। अन्तिम लेखक जिसने अपनी पुस्तक तोहफात उल किराम का निरन्तर उल्लेख किया है, ने उपर्युक्त उल्लेख को एम० मुडरो से लिया है। इस विवरण में मैं य, जोड़ सकता हूँ कि अभी एक सब प्रसिद्ध निचली जाति है जो नगर के उत्पादन में नियुक्त है अतः मैं यह स्वीकार करने का इच्छुक नहीं हूँ कि यह छोटा स्थान इण्डोसीथिया की विशाल राजधानी से किसी रूप में सम्बन्धित हो सकता है। इसके विपरीत मैं मीन नगर के नाम को केवल मीन का नगर समझता हूँ।

बरबारीके विक्रयालय अथवा बम्भूरा

बम्भोरा अथवा बम्भूरा का ध्वस्त नगर घार खाड़ी के सिरे पर बना हुआ है जिसे "स्थानीय व्यक्ति सिन्ध की प्राचीनतम बन्दरगाह का स्थान समझते हैं।" अब मकानों, बुर्जों एवं दीवारों के खण्डहरों को छोड़ अन्य कुछ शेष नहीं है परन्तु दसवीं शताब्दी के लगभग बम्भूरा बम्भो राजा नामक एक शासक की राजधानी थी। जन साधारण की प्रथाओं के अनुसार सिन्धु नदी की सबसे पश्चिमी शाखा किसी समय बम्भूरा से होकर बहती थी। कहा जाता है कि यह शाखा घट्टा से कुछ ऊपर मुख्य नदी से अलग हो जाती थी। एम० मुडरो ने इस तथ्य के लिए तबकात ए अकबरी को उद्धृत किया है कि अकबर के शासन काल में यह शाखा घट्टा के पश्चिम से बहा करती थी। इसी तथ्य के लिए सर हेनरी इलियट ने एन को को उद्धृत किया है जो अनेक वर्षों तक घट्टा में अङ्गरेज रेजीडेंट थे। १८०० ई० में लिखते हुए एन को ने कहा है कि "नदी के उस विचित्र परिवर्तन से जो घट्टा से कुछ ऊपर पिछले २५ वर्षों में हुआ है वह नगर छोटे मुहाने के कोण से बाहर चला गया है जहाँ यह पूर्ववर्ती समय में बिलोचिस्तान की पहाड़ियों का ओर मुख्य भूमि पर अवस्थित था। उपर्युक्त कथनों से ऐसा प्रतीत होता है कि घार नदी अन्तिम शताब्दी के द्वितीय अर्ध भाग तक सिन्धु नदी की सबसे पश्चिमी शाखा थी परन्तु एम० मुडरो के अनुसार इससे काफी समय पूर्व यह नदी नौकाओं के लिए अनुपयुक्त हो गई थी क्योंकि १२५० ई० के लगभग नदी के सूख जाने के कारण बम्भूर तथा देवल दोनों त्याग दिए गए थे। मेरी निजी पूछ ताछ से इसी तिथि का पता चलता है क्योंकि देवल उस समय बसा हुआ था जब ख्वारिज्म के जलालुद्दीन ने १२२१ ई० में सिन्ध पर आक्रमण किया था तथा १३३३ ई० में यहाँ केवल खण्डहर थे जब इब्नबतूता लारी बन्दर गया था जिसने सिन्धु नदी की विशाल बन्दरगाह के रूप में देवल का स्थान ले लिया था।

एम० मुडरो ने स्थानीय लेखकों को उद्धृत कर यह प्रदर्शित किया है कि सिन्धु

नदी की उपर्युक्त पश्चिमी शाखा सागार नदी कहलाती थी और उसका विचार है कि इन टालमी की मागपा वोल्टियम के अनुरूप समझा जा सकता है। जो उसके समय में सिन्धु नदी की सबसे पश्चिमी शाखा थी। अतः यह प्रायः सम्भव है कि एम मुरडों का अनुमान सत्य हो कि सिन्धु नदी की यह वही शाखा थी जिससे सिकन्दर ने यात्रा की थी। फिर भी नवीन मानचित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि थट्टा तथा धारा के मध्य इस नदी से एक अन्य शाखा निकल कर बाईं ओर मुड़ गई थी जो २० मील तक दूसरी शाखा के समान्तर बहती थी। तत्पश्चात् यह शाखा दक्षिण की ओर मुड़ कर लारी बन्दर से कुछ नीचे नदी की मुख्य धारा से मिल जाती थी। अब यही शाखा बम्भूरा के २ अथवा ३ मील दक्षिण में बहती है। अतः नदी के पिटी, पुन्डी बयार तथा रिनटियानी मुहानों से इस नगर में पहुँचा जा सकता था। अतः मैं बम्भूरा नगर को न केवल बरके नगर के अनुरूप समझने का इच्छुक हूँ जिसे अपनी वापसी के समय सिकन्दर ने बनवाया था वरन् मैं इसे टालमी के बरबारी तथा पैरीप्लस के लेखक के बरबारी के एम्पोरियम के अनुरूप भी समझता हूँ। अन्तिम लेखक ने अपने समय में सिन्धु नदी की केवल मध्य शाखा को बरबारीके के स्थान तक व्यापारिक नौकाओं का उपयुक्त बताया है। अन्य सभी छः शाखायें सकीर्ण एवं छिछली थीं। इस कथन से प्रतीत होता है कि २०० वर्ष ईसा से पूर्व धार नदी का जल कम होना शुरू हो गया था। टालमी ने नदी के मध्य मुहाने को जो उस समय नौकाओं के प्रवेश के लिये उन्मुक्त था खारीफान पोसाटियम कहा है। इस नाम को मैं आधुनिक समय की बयार नदी के अनुरूप समझूँगा जो ठीक उस स्थान तक चली जाती है जहाँ धार की दक्षिणी शाखा लारी बन्दर के समीप मुख्य नदी से मिल जाती है।

उपर्युक्त विचार विमर्श से मेरा निष्कर्ष है कि धार की उत्तरी शाखा सिन्धु की पश्चिमी शाखा थी जिसमें सिकन्दर एवं नियरकस ने नौकाओं द्वारा यात्रा की थी तथा २०० ई० से पूर्व इसका जल अधिक दक्षिण की ओर एक अन्य शाखा अर्थात् दक्षिणी धार में चला गया जो लारी बन्दर से कुछ नीचे सिन्धु नदी की मुख्य धारा में मिल जाती है। पैराप्लस के लेखक के समय में व्यापारी जहाज नदी की इसी शाखा से हो कर बरबारीके तक जाते थे जहाँ इनका सामान उतार लिया जाता था तथा नौकाओं में लाद कर देश की राजधानी मीन नगर तक ले जाया जाता था। परन्तु कुछ समय पश्चात् यह शाखा भी इस व्यापार के लिये अनुपयुक्त हो गई। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब अरबों ने सिन्ध पर आक्रमण किया उस समय देवल सिन्धु नदी का मुख्य बन्दरगाह बन चुका था तथा इसने बम्भूरा अथवा प्राचीन बारबरीके का स्थान पूरी तरह ले लिया था। परन्तु यद्यपि धार नदी व्यापारिक नौकाओं के लिये उपयोगी नहीं रही फिर भी इसका जल १२ वीं शताब्दी तक प्राचीन नगर से होकर गुजरता था। तत्पश्चात ऐसा प्रतीत होता है कि यह नदी पूर्णतः सूख गई थी।

देवल सिन्धी अथवा देवल

देबल का प्रसिद्ध बन्दरगाह, अथवा सिंधु नदी के मध्य कालीन व्यापारिक सामान के बिक्री का स्थान अभी तक अनिश्चित है। अबुलफजल तथा पश्चात्वर्ती मुस्लिम लेखकों ने देबल को थटटा से मिला दिया है परन्तु उनके लिखने के समय देबल बसा हुआ नहीं था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि यह सभी लेखकों को देवल थटटा के नाम से भ्रम हो गया था जो (नाम) प्रायः थटटा के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणाबाद को देवल कांगड़ा कहा जाता था तथा देवल के प्रसिद्ध बन्दरगाह को देवल सिन्धी का नाम दिया गया था परन्तु दीवल अथवा देबल का साधारण अर्थ एक मन्दिर है। अतः देवल सिन्धी का अर्थ सिंधियों के नगर अथवा उसके समीप अवस्थित मन्दिर रहा होगा। मेजर बरटन ने लिखा है कि थटटा के दुशालों को अब भी शाल ए देबाली कहा जाता है। परन्तु इससे केवल यह सिद्ध होता है कि देबल वह स्थान था जहाँ व्यापारी थटटा की शालें प्राप्त किया करते थे। ठीक इसी प्रकार मुल्तानी मटटी का नाम उस स्थान से लिया गया है जहाँ से व्यापारियों को यह वस्तु उपलब्ध होती थी क्योंकि यह मिट्टी वस्तुतः डेरा गाजीखाँन से आगे सिंधु नदी के पश्चिम में पहाड़ियों में पाई जाती है। इसी प्रकार भारतीय स्याही के नाम को भारत से लिया गया है जहाँ व्यापारियों ने इसे सर्वप्रथम प्राप्त किया था। यद्यपि अब यह सर्व ज्ञात है कि इसका उत्पादन चीन में होता है। सर हेनरी इलियट, जो सिन्ध के भूगोल के सम्बन्ध में अंतिम अनुवेषक हैं ने देवल को कराची के स्थान पर बताया है परन्तु उन्होंने स्वीकार किया है कि 'कराची के पश्चात् लारी बन्दर "द्वितीय सर्वाधिक सम्भावित स्थान है। परन्तु मैं श्री मेजर के विचार को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि देवल कराची तथा थटटा के मध्य किसी स्थान पर अवस्थित था। उनका विचार विशेष महत्व रखता है क्यों है एम० मुरदो तथा इलियट ने स्वीकार किया है कि 'स्थानीय अनुवेषक के रूप में पर्याप्त अवसर प्राप्त होने के कारण उनका विचार सतुलित था।" सर हेनरी ने इस तथ्य के लिए चचनामा उद्धृत किया है कि 'विपत्ति के समय सिरनदीप के जहाज देवल के किनारे तक लाये जाते थे। वह यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि यह बन्दरगाह समुद्र के समीप रही होगी वहाँ तङ्गामरा जाति के समुद्री डाकू जो कराची से लारी बन्दर के समुद्र तट पर बसे हुए थे ने उन पर आक्रमण किया था। इस कथन से पता चलता है कि यदि देवल को कराची अथवा लारी बन्दर के अनुरूप स्वीकार नहीं किया जा सकता तो उसे इन दोनों स्थानों के बीच किसी स्थान पर देखा जाना चाहिए।

कराची के पक्ष में सर हेनरी इलियट ने बिलादुरी को उधृत किया है जिसने लिखा है कि १५ हिजरी अथवा सन् ६३६ ई० में हाकिम ने अपने भाइ मुगीर को तयन की खाड़ी में अभियान पर भेजा था परन्तु जैसे सआनस नगर सआन की खाड़ी के तट पर

ी है उसी प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि देवल, देवल की खाडी के तट पर था।
नुत इब्न-खुर्दादबे ने इसे मेहरान के मुहाने से दो फर्साङ्ग की दूरी पर बताया है
स मसूदी ने अधिक बढा कर दो दिन की यात्रा की दूरी पर बताया है। चूँकि देबल
न्धु नदी पर अवस्थित था अत इसे कराची के अनुरूप स्वीकार नहीं किया जा
कता जो नदी के मुहाने से दूर समुद्र तट पर बसा हुआ है। हमारे सभी लेखक इस
थन म सहमत हैं कि यह नगर मेहरान अर्थात नदी की मुख्य धारा अथवा बघार के
श्चिम में था जो लारी बन्दर से होकर बहती है तथा पिट्टी, फुण्डी बघारी तथा
न्टयानी नामक अनेक भिन्न मुहानों से होकर समुद्र म गिरती है। परन्तु एम० मुरडा
भी यह प्रदर्शित करने क लिए स्थानीय लेखकों को उधृत किया है कि यह सिंधु नदी
ी सागारा शाखा पर अवस्थित था जो बम्भूरा से होकर बहती था। इन विवरणों
अनुसार देवल धार नदी की दक्षिणी शाखा अथवा सागारा शाखा क संगम स कुछ
ीचे बघार नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित रहा होगा। अत इसकी स्थिति को
नुमानत स्थान पर निश्चित किया जा सकता है जो लारी बन्दर से ५ मील उत्तर में,
म्भूरा से १ मील दक्षिण पश्चिम में तथा नदी के पिट्टी पिन्टयानी मुहानों से लगभग
१० मील दूर है। यह स्थिति सर हेनरी इलियट द्वारा उद्धृत अन्य शर्तों का भी पालन
रती है कि देबल सगामारा जाति के डाकुओं के प्रदेश में कराची अथवा लारी बन्दर
े मध्य में था। यह श्री क्रो द्वारा दिये गये स्थान से भी सहमत है जिन्होंने इसे कराची
तथा थट्टा के मध्य बताया है जो नदी के भाग का अनुसरण करते हुए प्रदेश का
ठीक ठीक विवरण है क्योंकि देवल मुहाने की एक दूसरे को काटती हुई नदियों क मध्य
अवस्थित था।

दुर्भाग्यवश मुहाने के इस भाग की सूक्ष्म खोज नहीं हुई है और मैं एक प्राचीन
नगर के खण्डहरों के सम्बन्ध में अपनी अज्ञानता का यही कारण समझता हूँ। यह
प्राचीन नगर १३३३ ई० में इब्नबतूता द्वारा उसी स्थान पर देखा गया था जो स्थान
मैंने देबल के लिए चुना है। चूंकि इसका कथन अधिक महत्वपूर्ण है अत मैं उसे पूर्ण-
रूपेण उधृत करूंगा—"तत्पश्चात् मैं सिंध के मार्ग स लाहरी नगर तक गया जो हिन्द
महासागर क तट पर उस स्थान पर अवस्थित है जहाँ सिंध समुद्र म गिरती है। यहाँ
एक विशाल बन्दरगाह है जहाँ इरान, यमन तथा अन्य स्थानों क जहाज आकर रुकते
हैं। इस नगर से कुछ मीलों की दूरी पर एक अन्य नगर क खण्डहर प्राप्त है जहाँ मानव
तथा पशुओं के आकार के पत्थर प्रचुर संख्या म मिलते हैं। इस स्थान के जन साधा-
रण का विचार है कि उनके इतिहासकारों के विचारानुसार इस स्थान पर पूर्ववर्ती समय
में एक नगर था जिसके अधिकांश निवासी इतने नीच थे कि भगवान ने उन्हें, उनके
पशुओं को, उनकी जडी बूटियों को एवम् उनके बीजों तक को पत्थर बना दिया और
वस्तुत बीच के आकार क पत्थर यहाँ प्राय असंख्य मात्रा म हैं।" मानव एव पशुओं

के आकार के पत्थरों सहित नगर के विशाल खण्डहरों को मैं देवल के किसी समय महान बिक्री का केन्द्र का खण्डहर समझता हूं। एम० मुरहो के अनुसार देवल के निवासी लारी बन्दर में चले गये तथा कैप्टन हैमिल्टन के अनुसार लारी बन्दर में बिलूचियों तथा मकरानियों से व्यापारियों की सुरक्षा के लिए 'पत्थरों का एक विशाल दुर्ग' था। मेरा विचार है कि यह कहना उचित एवं न्याय संगत होगा कि देवल को छोड़कर जाने वाले निवासी अपने प्राचीन नगर की सामग्री को नवीन नगर निर्माण हेतु ले गये होंगे अतः लारी बन्दर के दुर्ग के पत्थर देवल के निर्जन नगर से लाए गये होंगे। जिसके खण्डहरों ने १३३३ ई० में इब्नबतूता को अपनी ओर आकर्षित किया था।

इब्नबतूता के इस कथन को मैं 'अरेबियन नाइट' में एक भारतीय नगर के विचित्र विवरण से सम्बन्धित करूंगा। यह विवरण जोबेदा की कहानी में मिलता है। इस कहानी के अनुसार यह स्त्री बसारा के बन्दरगाह से चली थी तथा २० दिन की यात्रा के पश्चात् भारत में एक विशाल नगर के बन्दरगाह पर रुकी थी जहां उतरने पर उसने देखा कि वहां का राजा रानी तथा अन्य सभी निवासी पत्थर बन गए थे। केवल एक व्यक्ति इस परिवर्तन से बच गया था जो राजा का पुत्र था जिसे उसकी आया ने एक मुसलमान के रूप में उसका पालन किया था। यह आया स्वयं एक मुसलमानी दासी थी। अब यह कथा सिन्ध के स्थानीय इतिहासकारों के राजा दिलू तथा उसके बन्धु छोटा की कथा से मिलती है जिसके अनुसार छोटा मुसलमान बन गया था तथा राजा की धूर्तता के कारण ब्राह्मना नगर के भूकम्प में नष्ट हो जाने पर केवल छोटा जीवित बचा था। चूंकि पञ्जाब एवम् सिन्ध के सभी मुख्य नगरों के खण्डहरों के लिये एक ही कथा की बारम्बार पुनरावृत्ति होती है अतः 'अरेबियन नाइट' की कथा के स्थान को उचित रूप से सिन्ध में दिखाया जा सकता है तथा चूंकि देवल ही समुद्र तट का एक मात्र विशाल नगर था तथा बिक्री का मुख्य केन्द्र भी था जहां मुस्लिम व्यापारी व्यापार किया करते थे अतः मुझे यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि यही वह भारतीय नगर रहा होगा जहां जोबेदा ने सभी निवासियों का पत्थरों के रूप में देखा था।

एम० मुरहो के अनुसार ब्राह्मना नगर का विनाश १४० हिजरी अथवा ७५७ ई० में हुआ था और चूंकि जोबेदा की कहानी को खलीफा हारू उल रशीद के समय में सम्बन्धित किया जाता है जिसने ७८६ ई० से ८०८ ई० तक शासन किया था अतः दोनों कथाओं को अनुरूप समझने में तिथि सम्बन्धी कठिनाई नहीं है।

देवल को सिन्धु नदी पर अवस्थित दियाल अथवा दियान सिन्धी के नाम से सिन्धु नदी की मुख्य शाखा अथवा बघार बन्दे पर निश्चित किया जा सकता है। कैप्टन हैमिल्टन से हमें पता चलता है कि यह लारी बन्दर के समीप था। उनका कथन है कि सिन्धी नदी ' सिन्धु नदी की केवल एक छोटी शाखा है और उस प्रदेश में इसका यह

नाम लुप्त हो गया है जिसे यह इतना जल प्रदान करती है तथा अब इसे दीवेली अथवा सात मुखोंवाली कहा जाता है।' इस कथन से पता चलता है कि लारी बन्दर की ओर जाने वाली सिंधु नदी की शाखा को हेमिल्टन की यात्रा के समय अर्थात १६६६ ई० तक ेबाली कहा जाता था। यही सिंधु नदी की पिटी शाखा थी, यह अनुमान मैं इसके दूसरे नाम सिंधी से लगाता हूँ जिसे मैं टालमी की सिनथोन ओस्टियम अथवा पश्चिम की ओर स नदी का दूसरा मुहाना समझता हूँ। चूंकि पिटी बघार नदी का एक मुहाना है अत यह स्थिति पिछले सभी लेखकों की एकमत साक्षी के आधार पर दी गई इसकी स्थिति से मिलती है।

हेमिल्टन के लिखने के समय से स्वय लारी बन्दर निर्जन हो चुका है तथा मुहाने के पश्चिमी अर्द्ध भाग की आधुनिक व दरगाह धाराज है जो लारी बन्दर स केवल कुछ मील पूर्व में है।

कच्छ

सातवी शताब्दी मे सिंध का चौथा प्रान्त कच्छ था तथा अकबर के समय म भी यह सिंध का भाग था। ह्वेनसांग ने इसे सिंध की राजधानी जो उस समय सिंधु नदी पर भक्कर के समीप अलोर म थी से १६०० ली अथवा २६७ मील की दूरी पर अवस्थित बताया है। यह अन्य स्थान पर दिये गये विवरण से मिलता है जिसके अनुसार इसका माग इस प्रकार था—अलोर स ब्राह्मना तक, ७०० ली दक्षिण तत्पश्चात तिलशिला तक ३०० ली दक्षिण पश्चिम तथा वहां से कच्छ तक ७०० ली दक्षिण की ओर। इस प्रकार कुल दूरी १६५० ली थी। परन्तु इसकी सामान्य दिशा दक्षिण पश्चिम के स्थान पर दक्षिण है जो कच्छ की वास्तविक स्थिति से मिलती है। प्रान्त को ओ तिवेन पो ची-लो कहा गया है जिसे एम० जुलीन ने अध्यावकीला अथवा अत्यनवाकेला बना दिया है परन्तु उसके लिये उन्होंने अथवा एम विवान डी सेन्ट मर्टिन ने संस्कृत के पर्यायवाची शब्द का उल्लेख नहीं किया है फिर भी मेरा विचार है कि यह शब्द औडम्बतीरा अथवा औडम्बर के लिये लिखा गया है। यह नाम प्रोफेसर लासेन के कच्छ निवासियों को दिया है। वे प्लिनी के ओडम्बरे हैं परन्तु वर्तमान समय में इस नाम के कोई चिह्न नहीं मिलता।

इस प्रान्त की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील बताई गई है और यदि इनके उत्तर में नगर पार करके सम्पूर्ण जिले को इसमें सम्मिलित न किया जाय तो उपयुक्त परिधि अत्यधिक है। सम्भवत यह जिला इसमें सम्मिलित था क्योंकि इस प्रदेश को सदैव कच्छ का भाग समझा गया है और अब भी यह इसी में सम्मिलित है। इसकी उत्तरी सीमा को उमरकोट से लेकर माऊण्ट आबू तक विस्तृत स्वीकार

कर लेने से सीमा की सम्पूर्ण लम्बाई ७०० मील से कुछ अधिक होगी। की टसी शी-फा लो नामक राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। एम० जुलीन ने इस नाम को खजिस्वरा तथा प्रोफेसर लासेन ने इसे कच्छेश्वरा बना दिया है। परन्तु चूंकि चीनी अक्षर टसी मस्तिष्क सम्बन्धी तत्व का प्रतिनिधित्व करता है अतः मेरा विचार है कि टसी का समान अर्थ होगा। अतः मैं इस नाम को कोटेश्वरा पढ़ूंगा जो कच्छ के पश्चिमी तट पर एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। इसकी स्थिति के सम्बन्ध में तीर्थ यात्री के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि इसने इसी स्थान का उल्लेख किया है जिसे सिन्धु नदी तथा महा सागर के समीप प्रदेश की पश्चिमी सीमा कहा जाता है। यह विवरण पवित्र कोटसर की स्थिति का सर्वोचित विवरण है जो कच्छ की पश्चिमी सीमा पर सिन्धु नदी की कोरी शाखा के तट पर तथा हिन्द महा सागर के समीप अवस्थित है। निम्न कथन में उपयुक्त अनुरूपता की पुष्टि होती है कि नगर के मध्य में शिव का प्रसिद्ध शिवालय था। इस स्थान का नाम कोटि+ईश्वर अथवा 'एक करोड़ ईश्वर' से लिया गया है तथा छोटे लिङ्गम पत्थरों से सम्बन्धित है जो इस स्थान पर प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। ईश्वर शिव का सर्व प्रसिद्ध नाम है तथा लिंगम् उनका चिह्न है।

एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने इस राजधानी का कराची के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु अलोर से इसकी दूरी १३०० ली अथवा २१७ मील से अधिक नहीं है जबकि इस नाम का केवल प्रथम अक्षर चीनी अनुवाद से मिलता है। ह्वेनसांग ने नीचे एवं नम वायु वाले प्रदेश के रूप में इसका उल्लेख किया है तथा इसकी भूमि को नमक युक्त कहा है। यह विवरण कच्छ की निचली भूमि तथा नमक के मरुस्थल अथवा रन (संस्कृत का इरिना) के विवरण से ठीक ठीक मिलता है। कच्छ का अर्थ है कीचड़ अथवा दलदल तथा इस प्रान्त का लगभग आधा भाग नमक का मरुस्थल है। परन्तु कराची की शुष्क एवं रेतीली भूमि के लिये यह विवरण अशुद्ध है। कोटसर के ठीक दक्षिण में अनेक मीलों तक विस्तृत एक विशाल दलदल भी है।

सिन्धु के पश्चिमी जिले

सभी प्राचीन लेखक अरबी अथवा अरबटोय तथा ओरिटाय अथवा होरिटोय नामक दो पड़ोसी जातियों का निचला सिन्धु नदी के पश्चिम स्थान में सहमत हैं। यह दोनों जातियां मूल रूप से भारतीय प्रतीत होती हैं। एरियन ने अरबी जाति के प्रदेश को पश्चिम में "भारत का अन्तिम भाग" कहा है तथा स्ट्रैबो ने भी इसे "भारत का भाग" कहा है परन्तु दोनों ने ओरिटाय को सम्मिलित नहीं किया है। कर्टियस ने हारिटाय को भारत में सम्मिलित किया है जबकि डियोडोरस का कथन है कि वह भारतीयों से मिलते जुलते थे तथा एरियन ने स्वीकार किया है कि ओरिटाय जो देश के भीतरी भागों में बसे हुए थे तथा उनके कपड़े भारतीयों के ढङ्ग के कपड़े होते थे तथा

हों के समान अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग करते थे परन्तु उनकी भाषा एवम् रीति रिवाज भिन्न थे।' फिर भी सातवीं शताब्दी में कहीं अधिक योग्य लेखक चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने उनकी भाषा एवं रीति रिवाजों को भारतीयों के समान बताया है। उसके अनुसार लङ्ग की-लो जो कच्छ में कान्सर से २००० ली अथवा ३३३ मील पश्चिम था—के निवासियों के रीति-रिवाज कच्छ के निवासियों से मिलते थे तथा उनकी लिपि भारतीय लिपि से समीप समानता रखती थी जबकि उनकी भाषा भारतीयों की भाषा से कुछ भिन्न था। इन्हीं कारणों से मेरा विचार है कि ओरिटाय तथा अरबीटाय प्रदेश को उचित रूप से भारत की भूगोलिक सीमाओं में सम्मिलित किया जा सकता है यद्यपि यह प्रदेश ऐतिहासिक काल में इसकी राजनीतिक सीमाओं से बाहर रहे हैं। अथवा पूर्व की छठी शताब्दी के समय में भी यह डारियस हाईडस्पीज के आश्रित थे तथा १२ शताब्दियां पश्चात् ह्वेनसांग की यात्रा के समय यह ईरान के अधीन थे। परन्तु उनका भारतीय मूल स्वरूप असंदिग्ध है जैसा कि ओरिटाय के सम्बन्ध में लिखते समय मैं दिखाने का प्रयत्न करूंगा।

अरबी अथवा अरबीटोय

एरियन के अरबी, कर्टियस के अरबिटाय, टालमी के अरबिटी डियानीसस के अम्बाटार तथा स्ट्रेबो के अरबीज हैं। कहा जाता है कि यह नाम अराबीज, अरबीन अथवा अराबियस नदी से प्राप्त हुआ था जो उनकी सीमाओं में प्रवाहित थी तथा उनकी सीमाओं को ओरिटाय की सीमाओं से अलग करती थी। सिकन्दर की यात्राओं के वस्तुत विवरण को निर्यकस की डायरी से तुलना करने पर यह निश्चित हो जाता है कि यह सीमा द नदी पुराली नदी थी जो लास के वर्तमान जिले से होकर सोनमियानी की खाड़ी में गिरती है। कर्टियस के अनुसार सिकन्दर पटाला से ६ दिनों की यात्रा के पश्चात अरबीटाय की पूर्वी सीमा पर तथा अन्य पांच दिनों की यात्रा के बाद उनकी पश्चिमी सीमा पर पहुँचा था। अब हैदराबाद से कराची तक की दूरी ११४ मील है तथा कराची से सोनमियानी तक ५० मील। प्रथम दूरी सैनिकों द्वारा सामान्यतः ६ दिनों में तथा अन्तिम दूरी चार अथवा पांच दिनों में पूरी की जाती है। अतः कराची अरबीटाय की पूर्वी सीमा पर रहा होगा और उन सभी अन्वेषकों की सामान्य अनुमति से स्वीकार किया गया है जिन्होंने टालमी के कोलक को क्रोकोल के रेताले टापू के अनुरूप स्वीकार किया है जहाँ नियर्कस को अपने जहाजी बेड़े रक्षित रखना पड़ा था। क्रोकोल कराची की खाड़ी में एक छोटा टापू है और इस अरबी प्रदेश से दूर बनाया गया है। यह सिन्धु नदी के पश्चिमी मुहाने से १५० स्टेडिया अथवा १७½ मील था जो कराची तथा घार नदी के मुहाने की तुलनात्मक स्थिति से ठीक ठीक मिलता है। ऐसी हालत में हमें उचित रूप से स्वीकार करना होगा कि वर्तमान तटीय रेखा सिकन्दर के समय से अधीन हुई पिछली इक्कीस शताब्दियों में ५ अथवा ६ मील आगे बढ़

गई है। इस अनुरूपता की इस तथ्य से पुष्टि होती है कि "वह जिला जिसमें कराची अवस्थित है आज तक कर कल्ल कहलाता है।"

क्रोकोल छोड़ने पर नियर्कस की दाहिनी ओर इरोस पर्वत (मनोरा) तथा उसके बायें एक नीचा समतल टापू था। कराची के बन्दरगाह में प्रवेश करते समय की वस्तु स्थिति का यह सही सही उल्लेख है। मार्ग में अनेक छोटे-छोटे स्थानों पर रुकने के पश्चात् नियर्कस मोरोनटोबार पहुँचा जिसे जन साधारण "स्त्रियों का स्वर्ग" कहा करते थे। इस स्थान से उसने अरेबियस नदी के मुहाने तक ७० स्टेडिया तथा १५० स्टेडिया अथवा कुल मिला कर २२ मील की दो यात्रायें कीं। अरेबियस नदी अरेबी तथा ओरिटाय जातियों के राज्यों के बीच सीमा थी। मोरोनटोबार के नाम को मैं मुआरी के अनुरूप समझूंगा जो नाम रास मुआरी अथवा मोंज अन्तरीप अथवा पर्वतों की पब्ब श्रेणी के अंतिम बिन्दु को दिया जाता है। बार अथवा बारी का अर्थ है जहाजों के रुकने का स्थान अथवा बन्दरगाह तथा मोरोनटा प्रत्यक्ष रूप से फारसी के मर्द अर्थात् पुरुष से सम्बन्धित है जिसका स्त्रीलिंग मर्दिन काश्मीरी भाषा में आज भी सुरक्षित है। इस बन्दरगाह को मांज अन्तरीप तथा सोनमियानी के मध्य देखा जाना चाहिये परन्तु इसकी निश्चित स्थिति निर्धारित नहीं की जा सकती। एरियन द्वारा नियर्कस की यात्राओं के विवरण में दी गई दूरियों से मैं इसे बहार नामक एक छोटी नदी के मुहाने पर निर्धारित करने का इच्छुक हूँ। यह पहाड़ी नदी है जो मांज अन्तरीप तथा सोनमियानी के लगभग मध्य में समुद्र में गिरती है। यदि मुआरी को मोरोनटोबार का संक्षिप्त स्वरूप समझने का मेरा विचार ठीक है तो बहार को निश्चित ही पड़ोसी बन्दरगाह से नाम मिला होगा। अरेबियस के मुहाने पर नियर्कस को पुराली के मुहाने पर आधुनिक सोनमियानी की खाड़ी के समान एक विशाल एवं सुरक्षित बन्दरगाह मिला था जिसे पोट्टिंजर ने अन्दर की ओर खोल सतह कहा है "जहाँ बड़े से बड़ा जहाज सुगमता से जा सकता है।

ओरिटोय, अथवा हारिटोय

अरेबियस नदी को पार करने के बाद सिकन्दर ने एक मरुस्थल में होकर सम्पूर्ण रात्रि को यात्रा की थी तथा प्रातःकाल उसने एक जनपूर्ण प्रदेश में प्रवेश किया। तत्पश्चात् एक छोटी नदी पर पहुँच कर उसने अपना पड़ाव डाल दिया तथा हेफेस्टियन के अधीन सुदृढ़ सेना के आने की प्रतीक्षा करने लगा। एरियन का कथन है कि इस सेना के आने पर सिकन्दर देश के भीतर अधिक दूरी तक बढ़ कर एक छोटे गाँव तक पहुँच गया जो ओरिटोय की राजधानी की भाँति अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसका नाम राम्बाकिया था। सिकन्दर इसकी स्थिति से इतना प्रसन्न हुआ था व यह अनुभव करते हुए कि यह एक समृद्धशाली एवं जनपूर्ण नगर बन जायगा उसने हेफेस्टियन को इसकी सुरक्षा का भार सौंप दिया [illegible] के आगमन पर

ओरिटोय जाति ने विजेता की अधीनता स्वीकार कर ली जिसने अपोलोफनीज को उनका गवर्नर नियुक्त किया तथा लियोनाटस को एक विशाल सेना देकर, नौकाओं के बेड़े सहित नियर्कस के आगमन की प्रतीक्षा करने एवं नवीन नगर के निवासियों की रक्षा करने के लिए नियुक्त किया। सिकन्दर के प्रस्थान के कुछ ही समय पश्चात ओरिटोय जाति ने यूनानियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा नये गवर्नर अपोलोफनीज का वध कर दिया परन्तु अकेले ल्योनाटस ने उन्हें पराजित किया तथा उनके सभी नेता मार डाले गये। नियर्कस ने इस पराजय के स्थान को अरेबियस तथा टोमेरस नदियों के मध्य तट पर अवस्थित कोकला पर दिखाया है। प्लिनी ने अन्तिम नदी को टोनबेरोज कहा है तथा उसका कथन है कि इसके आस पास के प्रदेश में अच्छी कृषि होती थी।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर मैं ओरिटाय अथवा होरिटाय अथवा पाटेरिटोय—जैसा कि दियोडोरस ने उन्हें नाम दिया है—जाति को अघोर नदी के निवासियों के अनुरूप समझूंगा जिन्हें कण्ठ स्वर को दबाकर यूनानी अओरिटाय अथवा एओरिटाय कहा करते होंगे। होरिटाय के प्रथम अक्षर में इसके चिह्न आज भी सुरक्षित हैं। नदी के तल में कीचड़ की अनेक परतें हैं जिन्हें अनादि काल से रामचन्द्र की कूप अथवा 'रामचन्द्र का कुआँ' कहा जाता है। इस स्थान पर दो प्राकृतिक कन्दरायें हैं। एक काली को समर्पित है दूसरी हिङ्गलाज अथवा हिंगुला देवी अर्थात "रक्तवर्ण देवी" को समर्पित की गई है। अंतिम नाम काली का दूसरा स्वरूप है। परन्तु अघोर घाटी के तीर्थ यात्रा का मुख्य स्थान 'राम' से सम्बन्धित है। तीर्थ यात्री राम बाग में एकत्रित होते हैं क्योंकि राम एवम् सीता को इसी बिन्दु से यात्रा आरम्भ करते बताया गया है। तत्पश्चात यात्री गोरख तालाब तक जाते हैं जहाँ राम ने विश्राम किया था तथा वहाँ से टोगमेरा तथा उस स्थान तक जाते हैं जहाँ राम को सेना सहित हिंगुलाज तक पहुँचने में असफलता के कारण बाध्य होकर वापस आना पड़ा था। रामबाग को मैं एरियन के रम्बाकिया, तथा तुङ्गमेरा को टालमी की टोनबरोस नदी एवम् एरियन की टोमेरस नदी के अनुरूप स्वीकार करूंगा। अतः रम्बाकिया के स्थान पर हमें सिकन्दर द्वारा स्थापित नगर को ढूढ़ना चाहिये जिसे पूरा करने के लिये ल्योनाटस को वहाँ छोड़ा गया था। यह सम्भव प्रतीत होता है कि यही वह नगर है जिसका उल्लेख बाईजनटियम के स्टेफनस ने "मेलने की खाड़ी के समीप सोलहवें सिकन्दरिया" के रूप में किया है। नियर्कस ने ओरिटाय जाति की पश्चिमी सीमा को मलना नामक स्थान पर दिखाया है जिसे मैं अघोर नदी से लगभग २० मील पश्चिम में वर्तमान समय की मालान अन्तरीप अथवा रास मालान के पूर्व में मलन की खाड़ी के अनुरूप समझता हूँ। कनिंघम तथा दियोडोरस दोनों ने इस नगर की स्थापना का उल्लेख किया है परन्तु उन्होंने इसके नाम का उल्लेख नहीं किया। फिर भी दियोडोरस ने लिखा है कि इसका

निर्माण समुद्र के समीप परन्तु ज्वार भाटे की पहुँच से दूर अधिक अनुकूल स्थान पर कराया गया था।

सिन्धु नदी के पश्चिम में इतनी दूरी पर एवम् सिकन्दर के समय में रामबाग के नाम की उपस्थिति अत्यधिक रुचिपूर्ण एवम् महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे न केवल प्राचीन काल में हिन्दू प्रभाव के विस्तार का पता चलता है परन्तु राम की कथा के अत्यधिक प्राचीन होने का पता भी चलता है। यह अत्यन्त असम्भावित है कि हिन्दू प्रभाव के ह्रास के पश्चात किसी स्थान के इस प्रकार का नाम दिया गया हो। बौद्ध धर्म के चरमोत्कर्ष के समय सिन्धु नदी के पश्चिम में अनेक प्रान्तों ने भारतीय धर्म स्वीकार कर लिया। जिससे वहाँ के निवासियों के रहन सहन के ढङ्ग एवम् उनकी भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ा होगा। परन्तु सिकन्दर का अभियान बौद्ध धर्म के विस्तार से पूर्व हुआ था अतः रम्बासिया के प्राचीन नाम का मैं केवल डरियस हाईस्टेस्पीज के पूर्ववर्ती समय से सम्बन्धित कर सकता हूँ।

ह्वेनसांग ने इन जिलों का उल्लेख लांग की लो के सामान्य नाम के अन्तर्गत किया है जिसे एम० जुलीन ने लङ्गला कहा है। परन्तु एम० डी सेन्ट मार्टिन ने इसे लङ्ग जाति से सम्बन्धित बताया है परन्तु यह अत्यन्त सन्देहास्पद है कि यह प्राचीन नाम रहा हो। विष्णु पुराण से उद्धृत अन्य नाम लङ्गुलस, जांगलस का केवल परिवर्तन स्वरूप है जो प्रायः निश्चित रूप में शुद्ध स्वरूप है क्योंकि इसके तुरन्त बाद कुरु जांगलस का उल्लेख किया गया है। ह्वेनसांग ने राजधानी लांग की लो को सिन्धु में कोटेसर से २००० ली अथवा ३३३ मील पश्चिम में बताया है परन्तु चूँकि इस दिशा से यह स्थान हिन्द महासागर के मध्य में चला जायगा अतः इसकी वास्तविक दिशा उत्तर-पश्चिम होगी। अब, यह अंतिम दिशा एवम् दूरी लाकोरियान के विशाल ध्वस्त नगर की स्थिति से मिलती है जिसे मसोन ने खोजदार तथा किलात के मध्य देखा था। पुरान मानचित्रों में इस नाम को केवल लाकूरा लिखा गया है जो मुझे चीनी नाम लांग की लो अथवा लांकरा का उचित रूप से प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रतीत होता है। मसोन ने ध्वस्त मीनारों को "अपनी भव्यता एवम् ठोसपन के लिये तथा निर्माण कार्य में प्रत्यक्ष कौशल के लिये उल्लेखनीय कहा है।" इन खण्डहरों के विस्तार एवम् महत्व को देखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह एक विशाल नगर के अवशेष हैं जो पूर्ववर्ती काल में देश की राजधानी थी। चीनी तीर्थ यात्री ने प्रान्त को अनेक सौ ली लम्बा एवम् चौड़ा कहा है। अतः यह स्पष्ट है कि यह प्रान्त जहाँ तक सम्भव है बलूचिस्तान के आधुनिक जिले के समान था। जिसकी वर्तमान राजधानी किलात लाकूरा से केवल ६० मील उत्तर में है। सातवीं शताब्दी में राजधानी को सू-न्-ली सी फा लो कहा जाता था तथा इसकी परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। एम० जुलीन ने चीनी अक्षरों को सुनुरिस्वरा कहा है परन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई

ुवाद भी नहीं किया है। परन्तु चूंकि ह्वेनसाग ने नगर के मध्य में शिव के भव्य न्दिर का उल्लेख किया है अतः मेरा अनुमान है कि चीनी अनुवाद शम्भुरीश्वरा के ये किया गया होगा जो 'देवाधिदेव' के रूप में शिव की सर्वश्रेष्ठ उपाधि है। यह ीकार कर लेने से कि उपयुक्त नाम उचित रूप से मंदिर से सम्बन्धित है, अब ाम लाग की लो, अथवा लाकुरा को राजधानी तथा प्रान्त दोनों के लिये प्रयोग में ाया जा सकता है।

गुर्जर

ह्वेनसाग ने पश्चिमी भारत के द्वितीय राज्य क्यू ची लो अथवा गुर्जर को वलभी से १८०० ली अथवा ३०० मील उत्तर में तथा उज्जैन से २८०० ली अथवा ४६७ मील उत्तर पश्चिम में बताया है। राजधानी को पी लो मी-लो अथवा बालमेर कहा जाता था जो वलभी के खण्डहरों से ठीक ३०० मील उत्तर में है। उज्जैन से सीधी रेखा पर यह ३०० मील से अधिक नहीं है परन्तु वास्तविक मार्ग दूरी ४०० तथा ५०० मील के बीच है क्योंकि यात्री को उत्तर में अजमेर से होकर अथवा दक्षिण में अनलवार से होकर अरावली पर्वतों का चक्कर काटना पड़ता है। इस राज्य की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। अतः बीकानेर जैसलमेर तथा जोधपुर की वर्तमान रियासतों का अधिकांश भाग इसमें सम्मिलित रहा होगा। इसकी सीमाओं का केवल अनुमानतः बताया जा सकता है, जो इस प्रकार है। उत्तर में बलर अथवा सिरदरकोट से झुनझुनू तक लगभग १३० मील पूर्व में झुनझुनू से आबू पर्वत के समीप तक २५० मील, दक्षिण में आबू से उमेरकोट के समीप तक १७० मील तथा पश्चिम में उमेरकोट से बलर तक ३१० मील। इन आंकड़ों से कुल परिधि ८६० मील बनती है जो ह्वेनसाग के आंकड़ों के समीप है जितना उचित रूप से उनसे आशा की जा सकती है।

सभी प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने जुज अथवा जुर्ज नामक राज्य का उल्लेख किया है जो अपनी स्थिति ह्वेनसाग के क्यू ची लो के समान प्रतीत होता है। देश का नाम कुछ अंशों तक सन्देहपूर्ण है क्योंकि बिना नुक्तों के अरबी शब्द को हरज हजर तथा खरज तथा खजर और साथ ही साथ जरज अथवा जुर्ज पढ़ा जा सकता है। परन्तु भाग्यवश इसकी स्थिति के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है जिसे अनेक समान परिस्थितियों के आधार पर राजपूताना निर्धारित किया गया है। इस प्रकार ८५१ ई० में व्यापारी सुलेमान ने लिखा है कि हरज एक ओर ताफेक अथवा ताकिन से घिरा हुआ था जिसे मैं पहले ही पञ्जाब का पुराना नाम बता चुका हूं। यहां चांदी की खानें थी एवम यह राज्य भारत के अन्य सभी राज्यों की अपेक्षा घुड़सवारों की एक विशाल सेना एकत्रित कर सकता था। यह सभी बातें निश्चित रूप से राजपूताना

की ओर संकेत करती है जो पञ्जाब के दक्षिण पूर्व में है, जहाँ भारत की एक मात्र भात चाँदी की खान है तथा जो घुड़सवारों की विशाल संख्या के लिये सदैव प्रसिद्ध रहा है।

इब्न खुरदादबेह के अनुसार जिसकी मृत्यु ६१२ ई० में हुई था—हजर में तातरिया दिरहेम प्रचलित थे तथा इब्नहौकल के अनुसार जिसने ६७० ई० में लिखा था—यह दिरहेम गान्धार राज्य में भी प्रचलित थे जिसमें उस समय पञ्जाब सम्मिलित था। सुलेमान ने बल्हर अथवा वर्तमान गुजरात राज्य के सम्बन्ध में इसी बात का उल्लेख किया है तथा घटनावश हमें पता चलता है कि यही दिरहेम सिन्ध में भी प्रचलित थे क्योंकि १०७ हिजरी अथवा ७२५ ई० में राज्यकोष में कम से कम एक करोड़ अस्सी लाख तातारिया दिरहेम थे। इन मुद्राओं का मूल्य भिन्न भिन्न रूप से १½ से १¼ दिरहेम अथवा तोल के अनुसार २४ से ७२ ग्रेन बताया गया है। इन बातों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तातारिया दिरहेम चाँदी की मुद्रा है जो सामान्यतः इण्डो ससानियन के नाम से जानी जाती थी क्योंकि इन मुद्राओं में भारतीय अक्षरों को ससानियन अक्षरों से जोड़ दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्व प्रथम इन्हें सीथियन एवम् तातार शासकों ने प्रचलित किया था—जिन्होंने काबुल एवम् उत्तर पश्चिमी भारत पर राज्य किया था—क्योंकि यह मुद्रायें काबुल की सम्पूर्ण घाटी पञ्जाब तथा साथ ही साथ सिन्ध राजपूताना एवम् गुजरात में पाई जाती हैं। कर्नल स्टेसी के नमूने मुख्य रूप से अन्तिम दो देशों से लिये गये थे जबकि मेरे निजी नमूने उन सभी देशों से प्राप्त किये गये हैं। वजन में ये मुद्रायें ५० से ६८ ग्रेन हैं तथा समय के अनुसार यह पाँचवी अथवा छठीं शताब्दी से महमूद गजनी के समय तक की मुद्रायें हैं। ये मुद्रायें प्रायः काबुल के ब्राह्मण शासकों के सिक्कों के साथ-साथ मिलती हैं। यह बात मसूदी के कथन से मिलती है कि तातारिया दिरहेम अन्य मुद्राओं के साथ साथ प्रचलित थे जिन्हें गान्धार में मुद्रित किया जाता था। अन्तिम मुद्रा को मैं काबुल के ब्राह्मण राजाओं की चाँदी की मुद्रा समझता हूँ जिन्होंने ८५० ई० के लगभग अथवा मसूदी के कुछ समय पूर्व राज्यारम्भ किया था तथा जो ६१५ ई० से ६२६ ई० तक अपनी चरमावस्था में थे। मैंने अरावली पर्वतों से पूर्व मध्य भारत में एवं आरी दोआब में इण्डो ससानियन मुद्रायें अथवा तातार दिरहेम प्राप्त किये थे परन्तु इन प्रान्तों में इन मुद्राओं का अत्यधिक अभाव है क्योंकि मध्य युग में उत्तरी भारत की सामान्य मुद्रा वराह थी जिस पर विष्णु के अवतार की मूर्ति अङ्कित थी एवं जिसका वजन ५५ से ६५ ग्रेन था। मुद्राओं के निरीक्षण से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जहाँ तक सम्भव है पश्चिमी राजपूताना उस राज्य का प्रतिनिधित्व करता है जिसे प्रारम्भिक भूगोल शास्त्रियों ने हजर अथवा जुर्ज का नाम दिया था।

इब्न खुरदादबेह को उद्धृत करते हुए इदरिसी ने लिखा है कि जुर्ज अथवा जुर्ज

राजा की वंशानुगत उपाधि थी और साथ ही साथ देश का नाम था। इस कथन से जुर्ज को गुर्ज अथवा गुजर के अनुरूप स्वीकार करने के मेरे अनुमान की पुष्टि होती है। गुजर अधिक संख्या वाली जाति है जिसका नाम उत्तर पश्चिमी भारत एवं पंजाब के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों से सम्बन्धित किया गया है और गुजरात के विशाल पठार से इसे विशेष रूप से सम्बन्धित किया गया है। यह ज्ञात नहीं है कि इस विशाल पठार को यह नाम सर्व प्रथम कब दिया गया था। प्रारम्भिक समय में इसे सौराष्ट्र कहा जाता था जिसे टालमी ने सुराष्ट्रेन कहा है और ८१२ ई० तक इस प्रदेश का यही नाम रहा है जैसा कि बड़ोदा में प्राप्त ताम्र पत्रालेख से हमें ज्ञात होता है। सौराष्ट्र के राजाओं के इस लेख में गुज्जर का दो बार स्वतन्त्र राज्य के रूप में उल्लेख किया गया है। ७०० ई० के लगभग सौराष्ट्र के राजा इन्द्र ने गुज्जर राजा पर विजय प्राप्त की थी परन्तु पुनः वह सिंहासनारूढ़ हो गया एवं लगभग ८०० ई० में इन्द्र के पुत्र कक्क ने गुज्जर राजा के विरुद्ध मालवा के शासक की सहायता की थी। इन कथनों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि ६४० ई० में ह्वेनसांग की यात्रा से लगभग दो शताब्दियों के बाद भी गुज्जर, सौराष्ट्र से पूर्णतया भिन्न स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली राज्य था। इनसे इस बात का पता भी चलता है कि गुज्जर राज्य मालवा एवं सौराष्ट्र के समीप था और इस स्थिति के कारण राजपूताना से इसकी अनुरूपता स्पष्ट हो जाती है जैसा कि मैं ह्वेनसांग द्वारा दिये गये विवरण के आधार पर पहले निश्चित कर चुका हूँ।

कहा जाता है कि सातवीं शताब्दी में यहाँ का राजा एक क्षत्रिय था, अथवा क्षत्रिय था परन्तु दो शताब्दी पूर्व निश्चित ही गुर्जर अथवा गुज्जर राज परिवार महाराष्ट्र के उत्तर में शासन कर रहा था क्योंकि हम पैठन के चालुक्य राजा तथा बिना नाम के किसी प्रदेश के एक गुर्जर राजा के लेख प्राप्त हैं जिनमें एक ही व्यक्ति को भूमि प्रदान किये जाने का वर्णन किया गया है। प्रोफेसर डाउसन ने इन लेखों का अनुवाद किया है तथा उन्होंने इसकी तिथि को विक्रमादित्य के समय से सम्बन्धित किया है परन्तु छठी शताब्दी से पूर्व इस काल के प्रयोग के किसी विश्वसनीय उदाहरण के अभाव में मुझे इन प्रारम्भिक लेखों में उपयुक्त विचार को नहीं अपनाना चाहिए। इसके विपरीत शक सम्वत् का उल्लेख चालुक्य राजा पुलकेसी के लेखों में तथा ज्योतिषाचार्य आर्य भट्ट एवं वराह मिहिर की पुस्तकों में मिलता है। पुलकेसी का लेख शक सम्वत् ४११ अथवा ४८९ ई० में लिखा गया है जिससे मेरा निष्कर्ष है कि पूर्ववर्ती चालुक्य राजकुमार विजय का विवरण जिसे ३९४ में लिखा गया है—इसी काल से सम्बन्धित था। अतः गुजर राजकुमार का समकालीन वर्णन जिसे शक सम्वत् ३८० तथा ३८५ में लिखा गया था—ईसवी काल की पाँचवीं शताब्दी के मध्य से सम्बन्धित रहा होगा उपयुक्त सभी ताम्र पत्रालेख अहमदाबाद के समीप खेड़ा में प्राप्त हुए थे। गुजर राजा के प्रथम लेख में किन्हीं ब्राह्मणों को भूमि दिये जाने का उल्लेख

है "जो जम्बुसार नगर छोड़ने के पश्चात् भड़ौंच जिले में सम्मिलित गिरनाइक नामक ग्राम में बस गये थे।' पाँच वर्ष पश्चात् इन्हीं ब्राह्मणों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है जिन्हें जम्बुसार नगर में निवास करता है।" तदनुसार चालुक्य लेख में जिसे उपर्युक्त गण में दो वर्ष पश्चात् लिखा गया था इन्हें सम्पूर्ण जम्बुसार नगर का निवासी बताया गया है। निश्चित ही यह नगर सम्भवतः भड़ौंच के समीप अब जम्बुसार नगर है और पूर्व यह महाराष्ट्र के चालुक्य राजाओं के अधीन था अतः गुर्जर राज्य नर्मदा के उत्तर में अर्थात् राजपूताना में रहा होगा जहाँ इसे मैं ह्वेनसांग एवं अन्य स्वतन्त्र प्रमाणों के आधार पर लिया हुआ है।

बलभद्र अथवा बलभी

बलभिपुर प्राचीन नगर के खण्डहरों का मि० टाड ने गुजरात के पठार की पूर्वी दिशा में भावनगर के समीप ढूँढा था। पाँचवी शताब्दी के एक लेख में इस देश को "बलभद्र का गुर्जर राज्य" कहा गया है परन्तु स्वयं लोग इतिहास एवं जन साधारण की प्रथाओं में यह प्रदेश सामान्यतः बलभी के नाम से जाना जाता है। यही नाम ह्वेनसांग के समय में प्रचलित था जिसने इसे फा ला पी अथवा बलभी राज्य कहा है। परन्तु प्राचीन काल में गुजरात का पठार केवल सौराष्ट्र नाम से ज्ञात था और महाभारत एवं पुराणों में इसी नाम के अन्तर्गत इस प्रदेश का उल्लेख किया गया है। टालमी तथा पेरीप्लस के लेखक ने इस सुराष्ट्रेनी कहा है तथा प्लिनी ने सुआरटरटाय के भ्रष्ट नाम अथवा वरेटटोय नाम के अन्तर्गत इन्हीं लोगों की ओर संकेत किया है। इस मैं सुरटोय पढ़ने का प्रस्ताव करूँगा। इस देश के नाम में परिवर्तन का संकेत राजा कक्क के एक शिलालेख मे मिलता है जिसमें शक सम्वत् ७३४ अथवा ८१२ ई० की तिथि दी गई है। राजा कक्क के दूरवर्ती पूर्वज गोविन्द को स्वराष्ट्र राज्य का संस्थापक कहा जाता है। जिसने जर्जर अवस्था के कारण खो राज्य की विशिष्ट उपाधि खो दी थी।' कक्क के पिता को लाटेश्वर का राजा कहा जाता है जिससे उसका राज्य बलभी राज्य के अनुरूप होने का पता चलता है क्योंकि ह्वेनसांग ने लिखा है कि बलभी को पी लो लो अथवा उत्तरी लार भी कहा जाता था जो संस्कृत लाट का सामान्य उच्चारण है। चूँकि कक्क गोविन्द के वंशजों में केवल पाँचवी पीढ़ी से था अतः पुराने राज घराने के यह प्रतिनिधि द्वारा सोराठर अथवा सौराष्ट्र नाम को सातवीं शताब्दी के मध्य से पूर्व पुनर्जीवित नहीं कर सकते थे। उपर्युक्त प्राप्त आंकड़ों की तुलना करने से मेरा निष्कर्ष है कि सौराष्ट्र का प्राचीन नाम ३१९ ई० में लुप्त हो गया था जब बलभियों ने साह राज्य के उत्तराधिकारियों का स्थान ले लिया था तथा जूनागढ़ के स्थान पर बलभी ने राजधानी का स्थान ले लिया था। अबुरेहान के अनुसार ३१९ ई० मे बलभी काल का प्रारम्भ गुप्त जाति के ह्रास का संकेत करता है। जिनकी मुद्रायें

एक सख्या म गुजरात मे पाई जाती हैं। अत उपर्युक्त तिथि को कुछ निश्चित रूप वलभी परिवार का स्थापना की तिथि स्वीकार किया जा सकता है और सम्भवत उनके वलभी नगर को स्थापना की तिथि भी स्वीकार किया जा सकता है।

स्थानीय इतिहास एव प्रथाओ के अनुसार सम्वत ५८० म वलभी पर आक्रमण हुआ था एव इसका विनाश हो गया था। इस तिथि को यदि विक्रम सम्वत स्वीकार किया जाय तो यह ५२३ ई० के समान है और यदि इसे शक सम्वत स्वीकार किया जाये तो ६५८ ई० के समान है। कनल टाड ने इसे विक्रम सम्वत स्वीकार किया है परन्तु चूकि ह्वेनसांग ने ६४० ई० म वलभी की यात्रा की थी अत उपयुक्त तिथि को शक सम्वत मे सम्बन्धित स्वीकार किया जाना चाहिये। यदि यह तिथि सही है तो वलभी पर आक्रमण एव अधिकार को कच्छ मे प्राप्त ताम्रपत्रानेख के राजा गोविन्द से सम्बन्धित किया जा सकता है जिसके सम्बन्ध मे कहा गया है कि उसने पुराने परिवार के राज्य को पुनर्जीवित किया था एव सौराष्ट्र के पूर्ववर्ती राज्य के प्राचीन नाम को भी पुनर्जीवित किया था। चूँकि वह राजा कर्क के पितामह का पितामह था और चूक राजा कर्क ने ८१२ ई० म शासन कर रहा था अत उसका निजी निष्कासन सातवीं शताब्दी के तीसरे पाद अर्थात ६५० एव ६७५ ई० के मध्य हुआ होगा जो स्थानीय इतिहासकारो द्वारा वलभी के विनाश एव गुजरात के पठार म बलभियो की प्रमुखता के लुप्त होने को दी गई तिथि से मिलती है।

वलभी से निष्कासित होने के एक शताब्दी पश्चात, बलभियो के बप्पा अथवा बप्पक नामक प्रतिनिधि ने चित्तौड के स्थान पर नवीन राज्य की स्थापना की एव उसके पुत्र गुहिल अथवा गुहादित्य ने अपनी जाति को गहिलावत अथवा गुहिलोट नाम दिया था जिन नामो से वह अब भी जाने जाते हैं। लगभग उसी समय चोरा जाति के वन राजा नामक नेता ने आबू पर्वत से लगभग ८० मील दक्षिण पश्चिम म सरस्वती के तट पर एक नगर की स्थापना की जिसे अनलवार पट्टन कहा जाता था एव जो शीघ्र ही पश्चिमी भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थान बन गया। कुछ समय पूर्व, अथवा लगभग ७२० ई० म पठार के पहुचवा राजकुमार कृष्णा ने इलापुर के दुर्ग का निर्माण करवाया था और ताम्रलेख के अनुसार इसके सौन्दर्य से देवता भी चकित रह गये थे। इस दुर्ग म उसने अद्ध चन्द्र से सुसज्जित शिव की मूर्ति की स्थापना की थी। इन सूचना के आधार पर मैं इलापुर को सोमनाथ के प्रसिद्ध नगर के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ जिस पठार की राजधानी के रूप म प्राय 'पट्टन का प्राचीन नगर मुख्य भूमि के उभड भाग पर अवस्थित है' जो वेरावल की छोटी बन्दरगाह एव खाडी का दक्षिणी छोर बनाता है। इस नाम को मैं इलापुर अथवा इलावर के समान समझता हूँ जो भारत म प्रचलित सामान्य उलट फेर के कारण

इरावल बन गया होगा। इस प्रकार नर सिंह से दो ही बन गया है एवं रनोड को रनोट के साथ साथ लिखा जाता है परन्तु प्राचीन काल में आधुनिक इदूर अथवा अमोरा से परिवर्तन में हम अधिक उल्लेखनीय उदाहरण प्राप्त है। अब पट्टन सोमनाथ शिव मन्दिर के लिये प्रसिद्ध था जिसमें सोमनाथ अथवा "चन्द्रमा के देवता" के रूप में अद्भुत ढंग से गढ़ित देवता की मूर्ति सुसज्जित थी। अतः यह विशिष्ट नाम नगर के स्थान पर मन्दिर का नाम रहा होगा और मेरा निष्कर्ष है कि यह नगर आधुनिक बरावल के स्थान पर इमापुर अथवा एरावल रहा होगा।

सोमनाथ का प्राप्त सर्व प्रथम वर्णन हम महमूद गजनी के सप्त आक्रमणों के सन्निप्त विवरण में मिलता है। फरिश्ता के अनुसार सोमनाथ का दुर्ग व द नगर "एक सकीर्ण पठार पर अवस्थित था जिसके तीन ओर सागर था।" यह राजा का निवास स्थान था तथा नहरवाल (अनलवार का परिवर्तित नाम) उस समय "गुजरात का केवल सीमान्त नगर था। यह स्थानीय इतिहास में मिलता है जिनमें अनलवार क चौरा राज परिवार की अन्तिम तिथि शक सम्वत ६६८ अथवा ६४१ ई० बताई गई है जब चालुक्य राजा मूला ने प्रभु सत्ता सम्भाल ली थी और वह सोमनाथ एवं अनलवार का सर्वोच्च शासक बन गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद के समय के पश्चात सोमनाथ को इसके शासकों ने अनलवार के पक्ष में त्याग दिया था जिसे मुहम्मद गोरी एवं उसके उत्तराधिकारी ऐबेग के समय में गुजरात की राजधानी कहा गया है। ६९७ हिजरी से १२६७ ई० तक यह देश की राजधानी थी जब अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी की सेना ने इस पर आक्रमण किया था और नहरवाल अथवा अनलवार पर अधिकार कर लेने के पश्चात इस प्रांत को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया था।

इन सभी आक्रमणों के समय फरिश्ता ने पठार एवं इसके उत्तरी प्रदेश को गुजरात के आधुनिक नाम की संज्ञा दी है। अबुरिहान ने इस नाम का उल्लेख नहीं किया है यद्यपि उसने अनलवार तथा सोमनाथ दोनों का उल्लेख किया है। यह नाम सर्व प्रथम रशीदुद्दीन की मोजमल उत्त-तवारीख में मिलता है जिसने १३१० ई० में अर्थात दिल्ली के मुस्लिम सुल्तान द्वारा इस प्रदेश पर अधिकार किये जाने के १३ वर्षों परान्त लिखा था। मैं दिखला चुका हूँ कि ह्वेनसांग के समय में गुरजर नाम पश्चिमी राजपूताना तक सीमित था तथा ८ २ ई० में भी यह सौराष्ट्र से भिन्न प्रदेश था जब बक राजा ने भूमि दान का विवरण लिखवाया था। इस तिथि एवं १३१० ईसवी में पाँच शताब्दियों का अन्तर है जिस काल में हम किसी भी समकालीन पुस्तक अथवा लेख में गुजरात का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु मेरा सन्देह है कि पठार की दिशा में गुज्जर जाति की गतिविधि दिल्ली कन्नौज एवं अजमेर पर मुसलमानों की स्थायी विजय से सम्बन्धित रही होगी जिन्होंने चौहान एवं राठौर राजपूतों को उत्तरी राज-

भूताना एवं ऊपरी दोआब से निकालकर दक्षिण की ओर खदेड दिया था। हम जानते हैं कि राठौर राजपूतों ने सम्वत् १२८३ अथवा १२२६ ई० में बालमेर के पूर्व पाली पर अधिकार कर लिया था। राठौर राजपूतों के आगमन से गुज्जरों की अधिकांश संख्या दक्षिण में अनहलवार पट्टन एवं इडर की ओर जाने पर बाध्य हुई होगी। वस्तुतः गोहिलों के सम्बन्ध में यही स्थिति थी जो राठौर जाति द्वारा मारवाड़ से निकाले जाने के पश्चात् पठार के पूर्वी छोर पर बस गये थे एवं इन्हें गोहिलवाड का नाम प्रदान किया गया। अकबर के समय में गुज्जर निश्चित रूप से पठार में प्रवेश नहीं किये थे क्योंकि अबुल फजल ने सूरत सिरकार में बसी तत्कालीन जातियों में इनका उल्लेख नहीं किया। परन्तु वर्तमान समय में भी पठार में गुज्जर जाति अधिक संख्या में नहीं है अतः इतने बड़े प्रांत को उनका नाम दिये जाने के अन्य कारण ढूंढने चाहिये जिसे उन्होंने पूर्णतया अधिकृत नहीं किया था।

गुजर प्रान्त के अपने विवरण में मैं गुजर जाति के राजाओं के प्राचीन लेख का उल्लेख कर चुका हूँ। इन लेख से हमें ज्ञात होता है कि शक सम्वत् ३८० अथवा ४५८ ई० में गुजरों ने अपनी विजय पताका दक्षिण में नर्वदा तट तक फहराई थी। उस वर्ष एवं तदोपरान्त ४६३ ई० में उनके राजा श्री दत्त कुमाली ने किन्हीं ब्राह्मणों को जम्बुसार के समीप अक्रेश्वर जिले में भूमि प्रदान की थी। इस जिले को मैं भड़ौच के विपरीत नर्वदा के दक्षिणी तट पर अवस्थित अकलेश्वर समझता हूँ। परन्तु सम्वत् ३९४ अथवा ४७२ ई० से पूर्व ही गुज्जर उत्तर में कम से कम खम्बाय की दूरी तक पीछे खदेड दिये गये थे क्योंकि चालुक्य राजाओं ने इन्हीं ब्राह्मणों को जम्बुसार नगर में भूमि प्रदान की थी जो भड़ौच एवं खम्बाय के मध्य में अवस्थित है। अतः यह निश्चित है कि गुज्जरों ने ईसा काल की पांचवीं शताब्दी के समय से पठार से उत्तरी प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु दो शताब्दियों के पश्चात् वह अपना अधिकार खो चुके थे क्योंकि ह्वेनसांग ने गुजर सिंहासन पर एक क्षत्रिय राजा का उल्लेख किया है फिर भी गुजर जाति आबू पर्वत के पश्चिमी एवं दक्षिणी प्रदेश की जनसंख्या का अधिकांश भाग बनी रही होगी और चूंकि अलाउद्दीन के अधीन प्रथम मुस्लिम विजेता अलफ खाँ ने गुजर प्रदेश के मध्य नहरवार अथवा अनहलवार में अपना मुख्यालय स्थापित किया था अतः मैं मेरे विचार में यह सम्भव है कि दिल्ली सल्तनत के इस नये प्रान्त के लिये सर्व प्रथम गुजरात नाम का प्रयोग किया गया था और चूंकि सौराष्ट्र का पठार प्रान्त का एक भाग था अतः इसे भी उसी सामान्य नाम के अंतर्गत स्वीकार कर लिया गया। अन्त में मैं पठार तक गुजरात नाम के विस्तार को जाति-गत नाम के स्थान पर राजनैतिक सुविधा समझता हूँ। हैमिल्टन ने लिखा है कि मालवा एवं खानदेश के अधिकांश भाग को पहले गुजरात कहा जाता था और मार्को पोलो ने इस कथन की पुष्टि की है। उसने पठार—जिसे उसने सोमनाट (सोमनाथ) कहा है—

एवं गुजरात के राज्य को भिन्न भिन्न बतलाया है। उसने उपयुक्त राज्य को थाना के उत्तर में अर्थात भड़ौच तथा सूरत के समीप तट पर अवस्थित बताया है। पठार के आदि वासियों को वर्तमान समय में भी गुजरात का नाम ज्ञात नहीं है वह अपने प्रदेश को सूरत तथा काठियावाड़ कहते है अंतिम नाम कुछ समय पूर्व मराठा से मिला था।

ह्वेनसांग ने बलभी की राजधानी की परिधि को ३० ली अथवा ५ मील कहा है। इसके खण्डहरों की सर्वप्रथम खोज मि० टाड ने की थी। यद्यपि वह वहाँ नहीं गये थे। अब डाक्टर निकलसन वहाँ जा चुके हैं एवं उनके अनुसार यह खण्डहर भाव नगर के १८ मील पश्चिम उत्तर पश्चिम में वाले ग्राम के समीप अवस्थित है। यह खण्डहर आज भी वम्मिलपुर के नाम से ज्ञात है जो बलभी अथवा बलभीपुर का तनिक परिवर्तित स्वरूप है। यह खण्डहर काफी दूर दूर तक फैले हुए हैं परन्तु ईंटों के असमान विशाल आकार को छोड़ इनके सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। लगता है कि अकबर के समय में ये खण्डहर अधिक महत्वपूर्ण थे क्योंकि अबुलफजल को सूचना मिली थी कि सिरोज पर्वतों के अधोभाग पर एक विशाल नगर है जो यद्यपि अनुकूल स्थिति में अवस्थित है परन्तु इसका जीर्णोद्धार नहीं किया जा रहा है। मालिदचिन तथा घोगा की बन्दरगाह इस पर आश्रित है। घोगा की समीपता इस ध्वस्त नगर को बलभी के वर्तमान खण्डहरों के अनुरूप सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। बलभी के खण्डहर घोगा से केवल २० मील की दूरी पर हैं।

सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने बलभी राज्य की परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील कहा है और यदि हम इस राज्य में समीपस्थ तट पर अवस्थित भड़ौच तथा सूरत के जिले और साथ ही साथ सौराष्ट्र के सम्पूर्ण पठार को सम्मिलित कर तो उपयुक्त आंकड़े वास्तविक आंकड़ों के समीप हैं। परन्तु तीर्थ यात्री की यात्रा के विवरण का यह भाग प्रायः अशुद्ध तथा त्रुटि पूर्ण है। अतः उसकी त्रुटियों को शुद्ध करने एवं उसकी भूल को सुधारने के लिए अपनी सूक्ष्म बुद्धि पर विश्वास करना चाहिए। इस प्रकार भड़ौच के अपने विवरण में ह्वेनसांग ने हमें यह बताने में यह भूल की है कि क्या यह भिन्न एवं स्वतन्त्र राज्य था अथवा बलभी मालवा अथवा महाराष्ट्र आदि अपने शक्तिशाली पड़ोसियों में किसी का आश्रित था परन्तु सामान्य रूप से यह प्रदेश पठार से सम्बन्धित रहा है। अतः मेरा अनुमान है कि यह प्रदेश सातवीं शताब्दी में बलभियों के विशाल राज्य के अधीन था। टालमी के अनुसार बरीगाजा सारीक राज्य का भाग था जो ह्वेनसांग के समय में बलभी राज्य का दूसरा नाम था। इब्नहौकल के अनुसार दसवीं शताब्दी में यह प्रदेश बलभी राज्य के अधीन था जिसकी राजधानी अनलवारा थी। परन्तु चूंकि यह नगर ह्वेनसांग की यात्रा के एक सौ वर्ष पश्चात तक स्थापित नहीं हुआ था अतः मेरा निष्कर्ष है कि सातवीं शताब्दी में भड़ौच बलभियों के प्रसिद्ध राज्य का भाग [illegible]। इसकी सीमाओं में उपयुक्त यात्रा के

जोड दिए जाने से बलभी राज्य की सीमात परिधि, जहाँ तक सम्भव है लगभग १००० मील रही होगी।

सौराष्ट्र

ह्वेनसाग के अनुसार सु ला चा अथवा सूरत प्रात बलभी राज्य का आश्रित था। इसकी राजधानी बलभी के पश्चिम मे ५०० ली अथवा ८३ मील की दूरी पर यू चेन त अथवा उज्जन्ता पर्वत के अधोभाग पर अवस्थित थी। यह सस्कृत उज्जयन्त का पाली स्वरूप है जो गिरनार पहाडियो का केवल दूसरा नाम है। यह पहाडियाँ जूनागढ के पुराने नगर स ऊपर उठती हैं। उज्ज त का नाम गिरिनार मे प्राप्त रुद्र दाम तथा सिकन्दगुप्त के लेखो मे दिया गया है। यद्यपि अनुवादको ने इस महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख करने म भूल की थी। इस प्रसिद्ध पहाडी क उल्लेख स सौराष्ट की राजधानी की स्थिति जूनागढ अथवा यवनगढ म निश्चित होती है जो बलभी से ८७ मील पश्चिम म अथवा ह्वेनसाग द्वारा कथित स्थान क अत्यधिक समीप है। यह विवरण पास्ट न के विवरण से मिलता है। जिन्होंने १८३३ ई० में पहाडी को "सिव के वृक्षो के घने जङ्गल से' ढका हुआ देखा था। उ होंने अधोभाग पर अनेक खण्डहर देखे थे जिनमे समतल छतो वाले छोटे कमरे थे जिनकी छतो को वर्गाकार स्तम्भो का सहारा दिया गया था।"

सूरत का नाम पठार के इस भाग मे आज भी ज्ञात है। पर तु यह एक तुलनात्मक छोट प्रदेश तक सीमित है जो गुजरात क दस खण्डो मे एक है। परन्तु अकबर के समय म यह नाम पठार क दक्षिणी अथवा वह अधभाग को दिया गया था जो अबुलफजल क अनुसार घोगा बन्दरगाह से अमरराय बन्दरगाह तक तथा सिरधर स दियू बन्दरगाह तक विस्तृत था। जिसे के नाम को टेरी ने भी सुरक्षित रखा है जिन्हे उपयुक्त सूचनायें जहांगीर क दरबार मे प्राप्त हुई थी। उनक विवरण क अनुसार सोरेट क मुख्य नगर को जनगर अर्थात जवनगढ अथवा जूनागढ कहा जाता था। यह प्रात छोटा, परन्तु अधिक समृद्धशाली था तथा इसक दक्षिण म समुद्र था। उस समय भी यह प्रात गुजरात क सम्मिलित प्रतीत नही होता क्योकि टरी ने इसे गुजरात के ऊपर की ओर बताया है।

सातवी शताब्दी म ह्वेनसाग ने लिखा है कि सूरत अथवा सौराष्ट्र की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी तथा पश्चिम मे इसकी सीमा मो ही नदी थी। इस नदी को सम्भ मालवा की माही नदी के अनुरूप स्वीकार किया गया है जो खम्बात की खाडी म गिरती है (१) इस अनुरूपता का शुद्ध स्वीकार करने से ह्वेनसाग क समय म

(१) चूँकि मही नदी गुजरात के उत्तर पूर्व है अत हम या तो पूर्व पढना चाहिए अथवा यह स्वीकार करना चाहिए कि तीर्थ यात्री ने नदी के पश्चिमी तट का उल्लेख किया है।

सूरत प्रांत में वलभी नगर सहित सम्पूर्ण पठार सम्मिलित था। तीर्थ यात्री द्वारा सीमान्त सम्बन्धी आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि होती है। यह आंकड़े कच्छ के छोटे रन से खम्भात तक सीधी रेखा के दक्षिण पश्चिम में सम्पूर्ण पठार की सीमान्त दूरी से पूर्णतया सहमत हैं। वलभी की प्रसिद्धि न होते हुए भी ६४० ई० तक सम्पूर्ण पठार को सूरत के प्राचीन नाम से पुकारा जाता था।

भड़ौच अथवा बरीगाजा

सातवीं शताब्दी में पो-लू की चो पो अथवा भडकच्छ के जिले की परिधि २१०० से २४०० ली अथवा ४०० से ४१७ मील थी तथा इसका मुख्य नगर नाई ओ-यो अथवा नर्मदा नदी के तट पर एवं समुद्र के समीप था। इन आंकड़ों में राजधानी को ब्राह्मणों द्वारा लिखित संस्कृत नाम भृगु कच्छ अथवा प्राचीन लेखों के भाग कच्छ के अन्तर्गत भड़ौच के सर्व ज्ञात तटीय नगर के अनुरूप सरलता पूर्वक स्वीकार किया जा सकता है। भारु कच्छ नाम शायद अधिक प्रचलित था क्योंकि टालमी तथा पैरीप्लस के लेखक ने इसे अक्षरशः सुरक्षित रखा है। ह्वेनसांग के आंकड़ों से जिले की सीमाओं को प्रायः उत्तर में माही नदी से दक्षिण में तापती तक तथा पश्चिम में खम्भे की खाड़ी से पूर्व में साइयाद्री पर्वतों तक विस्तृत बताया जा सकता है।

ह्वेनसांग की पुस्तक के अनुसार भड़ौच अथवा वलभी दक्षिणी भारत में थे तथा सौराष्ट्र पश्चिमी भारत में एवं उज्जैन मध्य भारत में था। मैं इस कथन को ह्वेनसांग की उन अनेक त्रुटियों में सम्मिलित करता हूँ जिनके कारण पश्चिमी भारत के सम्बन्ध में उसका विवरण त्रुटि पूर्ण बन गया है अतः मैं वलभी एवं भड़ौच दोनों को पश्चिमी भारत का अङ्ग बनाऊंगा क्योंकि यह दोनों सौराष्ट्र के विशाल प्रान्त के भाग हैं। पैरीप्लस के लेखक से इस कथन की पुष्टि होती है जिसने लिखा है कि बरि-गाजा से नीचे तट दक्षिण की ओर मुड़ जाता है जहाँ इस प्रदेश को दक्खिनाबादेज कहा गया है क्योंकि स्थानीय जनता दक्षिण को दक्खनाबोस कहा करते हैं।

मध्य भारत

चीना ताथ यात्री के ग्नुसार मध्य भारत क। विशाल खण्ड सतलज मे गङ्गा के मुहान क मिर तक तथा हिमालय मे नवन्त एव मन्ानन्यिा तक विस्तृत था। इसम गङ्गा व मुहान अथवा वङ्गाल का छोट भारत क अय मभी समृद्ध एव सर्वाधिक जन पूर्ण जिले सम्मिलित य। सातवी शताब्दी म भारत के सतर विभिन्न राज्यो म कम म कम ३७ अथवा आध म कुछ अधिक राज्य मध्य भारत म थे। ह्वेनसाग ने इन सभी जिला की यात्रा की थी तथा इन विभिन्न राज्या का पश्चिम मे पूर्व निम्न क्रम म वर्णन करने म मैं उसक पद चिह्नो का अनुसरण करूगा —

(१) थानेश्वर	(२०) कुशीनगर
(२) बैराट	(२१) वराणसी
(३) स्रुघना	(२२) यौद्धापतीपुरा
(४) मण्डावर	(२३) वैशाल
(५) ब्रह्मपुर	(२४) व्रिजी
(६) गो विसाना	(२५) नेपाल
(७) अहिछत्र	(२६) मगध
(८) पिलासना	(२७) हिरण्य पर्वत
(९) सङ्किसा	(२८) चम्पा
(१०) मथुरा	(२९) काकजोल
(११) कन्नौज	(३०) पौण्ड वधन
(१२) अयूतो	(३१) जमोती
(१३) ह्यामुख	(३२) महेश्वरपुर
(१४) प्रयाग	(३३) उज्जैन
(१५) कोशाम्बी	(३४) मालवा
(१६) कुसपुरा	(३५) खेडा अथवा खेडा
(१७) वैसाख	(३६) अनन्दपुर
(१८) स्रावस्ती (श्रावस्ती)	(३७) वल्लरी अथवा इडर
(१९) कपिला	

थानेश्वर

सातवी शताब्दी म सा-ता-नी शी फा लो अथवा थानेश्वर एक भिन्न राज्य की राजधानी थी। यह राज्य परिधि मे ७००० ली अथवा ११६७ मील था। इस राज्य क किसी राजा का उल्लेख नही किया गया है परन्तु यह कन्नौज के हर्ष वधन का आश्रित राज्य था जो उस समय मध्य भारत का सर्वोच्च शासक था। ह्वेनसांग द्वारा दिये गये अधिक आकडो से मेरा अनुमान है कि यह जिला सतलज से गङ्गा तक विस्तृत रहा होगा। इसकी उत्तरी सीमा को सतलज नदी पर हरी की पट्टन से गङ्गा नदी के समीप मुजफर नगर तक खीची गई सीधी रेखा कहा जा सकता है तथा इसकी दक्षिणी सीमा सतलज पर पाक पट्टन के समीप से भटनेर एव नारनोल के मार्ग से गङ्गा नदी पर अनूपशहर तक अनियमित रेखा बताई जा सकती है। इन सीमाओ के भीतर इसकी सीमान्त रेखा लगभग ६०० मील हो जाती है जो तीर्थ यात्री द्वारा बताई सीमा से एक चौथाई कम है। परन्तु यह निश्चित है कि अधिकाश सीमा सम्बन्धी आकडे अतिशयोक्ति पूर्ण हैं क्योंकि इनकी दूरियो का केवल अनुमान लगाया जा सकता था और अधिकांश व्यक्तियो की सामान्य प्रवृत्ति अपने देश के आकार को बढा चढा कर बताने की होती है। त्रुटि का अन्य कारण ह्वेनसाग के निजी उल्लेख म अस्पष्ट सूचनायें हैं। इस विवरण म प्रत्येक ३७ जिलो को एक विशिष्ट एव भिन्न राज्य क गया है जबकि यह प्राय निश्चित है कि इनम अनेक छोटे राज्यो को बडे राज्यो की सीमओ मे सम्मिलित समझा जाना चाहिये। इस प्रकार मेरा विश्वास है कि गोविसना एव अहिछत्र के छोटे जिले मदावर राज्य के भाग रहे होंगे, गङ्गा दोआब म अयूतो, हयामुख, कोशाम्बी एव प्रयाग के जिले कन्नौज मे, कुशीनगर, कपिला म तथा वडरी तथा खेडा के जिले मालवा म सम्मिलित रहे होगे। मेरा विश्वास है कि कुछ उदाहरणो म सैकडा के स्थान पर हजार लिखा गया है। मैं गङ्गा दोआब के निचले एव छोटे जिलो का विशेष उल्लेख करता हू। प्रयाग अथवा इलाहाबाद की परिधि म ५००० ली अथवा ८३३ मील कहा गया है एव कोशाम्बी को जो इलाहाबाद से केवल ३० मील की दूरी पर है परिधि म ६००० ली अथवा १००० मील कहा गया है। इन दोनो उदाहरणों म मैं ५०० ली अथवा ८३ मील तथा ६०० ली० अथवा १०० मील पढूगा जो इन छोटे खण्डो के वास्तविक आकार म मिल जायेगा। यह पूर्णत निश्चित है कि ये जिले अधिक बडे नही हो सकते थे क्योंकि यह अन्य सर्व ज्ञात जिलों से पूर्णत घिरे हुए हैं। त्रुटि के उपयुक्त कारणो म किसी भी कारण का सुधारने से मेरा विचार है कि ह्वेनसाग के आकडे शुद्ध आकडो से अधिक भिन्न नही हैं।

थानेश्वर नगर म प्राचीन ध्वस्त दुग सम्मिलित है जो शिर पर १२०० फुट वर्गाकार है। पूर्व म एक टीले पर आधुनिक नगर है एव पश्चिम म एक अन्य टीले

पर बदरी नाम का उपनगर है। कुल मिला कर तीनो टीले पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बाई म एक मील तक एव चौडाई म औसतन २००० फुट मे फैले हुए है। इन आंकडो से इसकी परिधि १४००० फुट अथवा २⅔ मील से कुछ कम बनती है जो ह्वेनसाग द्वारा २० ली अथवा ३⅓ मील के आकडो से कुछ कम है। परन्तु ईटों के वतमान अवशेषों म और साथ ही साथ स्वय जन साधारण के कथना स इतना निश्चित है कि मुसलमानो के आगमन से पूर्व वतमान नगर एव झील जिसे अब सर्रा कहा जाता है—के मध्य का सम्पूर्ण भाग प्राचीन नगर का भाग रहा होगा। इस क्षेत्र के भीतर जहाँ तक सम्भव है मूल नगर चारों ओर एक मील का वग रहा होगा जिसमे इसकी परिधि चार मील अथवा चीनी-तीर्थ यात्री के आकडा स कुछ अधिक हो जाती है। प्रथाओ के अनुसार पाडवो स पाँच शताब्दी पूव के वशज राजा दलीप ने इस दुर्ग का निमाण करवाया था। कहा जाता है कि इसके ५२ बुज थे जिनम कुछ एक के अवशेष वतमान काल मे मिलते है। पश्चिम की ओर मिट्टी की प्राचीरें सडक स ६० फुट ऊची उठ जाती है परन्तु भीतर का अधिकाश भाग ४० फुट से अधिक नही है। सम्पूर्ण टीला विशाल ईंटों के टुकडों से ढका हुआ है परन्तु तीन कुओ को छोड अधिक प्राचीन अवशेष नही हैं।

कहा जाता है कि थानेसर अथवा स्थानेश्वर का नाम या तो ईश्वर अथवा महादेव के स्थान स लिया गया है अथवा स्थाना तथा ईश्वर के नामो के सङ्गम स अथवा थानों एव सर अर्थात् झील, से लिया गया है। यह नगर भारत के प्राचीनतम एवम सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थानो म गिना जाता है परन्तु इस नाम के अन्तगत इसका सर्व प्रथम निश्चित उल्लेख ६३४ ई० मे चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग ने किया है। यद्यपि यह अधिक सम्भव है कि टालमी ने बतन-कसर के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसे हमे सस्कृत के स्थानेश्वर के स्थान पर सम्भवत स्तानेसर पढना चाहिए। परन्तु यह स्थान महादेव के मन्दिर की अपेक्षा पाण्डवों के इतिहास म सम्बन्धित होने के कारण अधिक प्रसिद्ध था। क्योकि भारत म महादेव की पूजा महाभारत के वीरो के समय की अपेक्षा नवीन है। थानेसर के आस-पास सरस्वती तथा द्रिशदवती नदियों के बीच सम्पूर्ण प्रदेश कुरुक्षेत्र अर्थात् "कुरु की भूमि" के नाम स ज्ञात है। कहा जाता है कि कुरु ने नगर के दक्षिण म विशाल पवित्र झील के तट पर सयास लिया था। इस झील को ब्रह्मासर, रामाहृद, वायु अथवा वायु सर तथा पवन-सर आदि भिन्न भिन्न नामो से पुकारा जाता है। प्रथम नाम ब्रह्मा म सम्बन्धित है क्योकि उन्होंने इसके तट पर बलि चढाई थी। दूसरा नाम परशुराम से लिया गया है जिन्होने इस स्थान पर क्षत्रियो का रक्त बहाया था। अन्तिम दोनो नाम कुरु के महात्मा जीवन काल म इस स्थान पर आनन्दकारी वायु के कारण वायु देव मे लिये गये हैं। अधिकाश तीर्थ यात्रियो के लिये यह झील आकषण का केन्द्र है परन्तु इसके चारों ओर कई मीलो तक सम्पूर्ण प्रदेश

पवित्र माना जाता है तथा कौरवो, पाडवो एव अन्य प्राचीन वीरो से सम्बधित अनेक पवित्र स्थान निश्चित ही अधिक हैं। सब साधारण के विश्वासानुसार इनकी सख्या ३६० है परन्तु कुरुक्षेत्र महात्म्य की सूची १८० तक सीमित है जिनमे आधे अथवा ९१ स्थान पवित्र सरस्वती नदी के उत्तर की ओर हैं। परन्तु पुण्ड्र के स्थान पर नागहृद बस्थली मे वेशस्थल, बानू म पराशर तीर्थ तथा नरान के समीप सग्गा के स्थान पर विष्णु तीर्थ आदि महत्वपूर्ण स्थानो को उपयुक्त सूची म स्थान नही दिया गया है। अत मैं यह विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि जन साधारण की सख्या ३६० अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हो सकती।

कुरुक्षेत्र क चक्र अथवा जिले को धर्म क्षेत्र भी कहा जाता है जो प्रत्यक्ष रूप स ह्वेनसाग का सौभाग्य स्थान है। उसके समय मे तीर्थ का परिक्रमा २०० ली तक सीमित थी जो ४० ली बराबर ४ कोस के भारतीय योजन की उसकी निजी दर स ७० कोस के समान है। परन्तु अकबर के समय म यह परिक्रमा बढ कर ४० कोस हो गई या और मेरी यात्रा क समय इसका विस्तार ४० कोस था। यह परिक्रमा सब मान्य थी एव श्री थोरिङ्ग ने भी इसका उल्लेख किया है। ७ अथवा ८ मील बराबर एक योजन की दर से ह्वेनसाग द्वारा बताइ गइ परिधि ३५ अथवा ४० मील स अधिक नही हो सकती परन्तु १½ मील बराबर बादशाही कोस की सामान्य दर स अबुलफजल द्वारा कथित परिधि ५३ मील स कम नही हो सकती और सर एच० इलियट द्वारा अकबरी कोस को २½ मील के समान स्वीकार करने से उपयुक्त परिधि १०० मील स अधिक हो जायगी। फिर भी तीर्थ यात्री की सख्याओ को बदलकर ४०० ली अथवा १० योजन पढने से—जो ४० कोस अथवा ८० मील के बराबर है—अथवा अबुल फजल के ४० कोस को २ मील की सामान्य भारतीय दर के अनुसार इन विभिन्न कथनो को समान बनाया जा सकता है। मैं स्वय तीर्थ यात्री की सख्याओ म उपयुक्त सशोधन करने की आवश्यकता समझता हूँ क्योकि उसकी सीमित परिधि से न केवल सरस्वती पर अवस्थित पृथूदक अथवा पिहोआ, तथा कौशिकी सङ्गम अर्थात कौशिकी एव दृशद्वती नदियो क सङ्गम स्थान पर अवस्थित समान रूप से महत्वपूर्ण स्थल बाहर रह जायें बरन् दृशद्वती नदी भी वस्तुत इस परिधि म सम्मिलित नहीं होगी जबकि वामन पुराण मे इन विशेष रूप स पवित्र भूमि की सीमाओ म दिखाया गया है—

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते।

यह अपने गुणो के कारण पवित्र माना जाने वाली दृशद्वती क तट पर कुरुक्षेत्र क निमित्त म सत्र न वा मनान बना द रहे हैं। महाभारत क वायु पुराण म भी पवित्र भूमि की पूर्वी सीमा क रूप म इसका विशेष उल्लेख किया गया है।

दक्षिणेना सरस्वतया दृशदवत्युत्तरेन च,
ये वसन्ती कुरुक्षेत्रे ते वसन्ती त्रिविष्टपे।

"सरस्वती से दक्षिण में एवं दृशदवती के उत्तर कुरु क्षेत्र के निवासी स्वर्ग में निवास कर रहे हैं।" इस कथन से यह निश्चित है कि कुरु क्षेत्र की पवित्र भूमि ह्वेनसांग के समय में दृशदवती तक विस्तृत रही हो अतः इस क्षेत्र की परिधि को २०० ली अथवा २० कोस बताने में त्रुटि हुई है।

महाभारत में एक अन्य स्थान पर पवित्र भूमि की सीमाओं को अधिक स्पष्ट रूप से लिखा गया है तथा भचकनुका के मध्य प्रदेश को कुरु क्षेत्र, समन्तपञ्चक तथा पितामह (ब्रह्मा) की उत्तरी वेदी कहा जाता है। चूंकि ब्रह्मावेदी का नाम ब्रह्मावर्त के समान है अतः पवित्र भूमि को दृशदवती के तट तक विस्तृत स्वीकार करने के लिए हम मनु की निम्न साक्षी का उल्लेख कर सकते हैं।

सरस्वती दृशदवत्योरदेव नुदयोर यन्तरम,
तत देव निर्मितम देशम ब्रह्मावर्त्तम प्रचक्शत।

"अर्थात देवताओं द्वारा निर्मित प्रदेश-जो सरस्वती एवं दृशद्वती नदियों के मध्य है—ब्रह्मावर्त्त कहलाता है।"

कुरु क्षेत्र का महान सरोवर पूर्व से पश्चिम ३५४६ फुट लम्बा एवं १६०० फुट चौड़ा है। अबु रिहान जिसने वराह मिहिर की साक्षी के आधार है पर लिखा है—का कथन है कि चन्द्र ग्रहण के समय अन्य सभी सरोवरों का जल थानेसर के सरोवर में आ जाता है जिससे चन्द्र ग्रहण के समय तीर्थ यात्री एक ही समय में अन्य सभी सरोवरों में स्नान का पुण्य प्राप्त कर सके।

वराह मिहिर का उपर्युक्त विवरण हमें ५०० ई० तक पीछे ले जाता है जब थानेसर का पवित्र सरोवर पूर्णतः भरा हुआ था। परन्तु पौराणिक कथाओं में सरोवर को पाण्डवों के समय से भी प्राचीन कहा गया है। इसी के तट पर कौरवों एवं पाण्डवों के संयुक्त पूर्वज कुरु ने तपस्या की थी। इसी स्थान पर परशुराम ने क्षत्रियों का वध किया था और इसी स्थान पर ही अप्सरा उर्वशी को खो देने के पश्चात कुरु ने "कमल के फूलों से सुसज्जित सरोवर में स्वर्ग की अप्सराओं के संग क्रीड़ा करते समय" कुरु क्षेत्र के स्थान पर अपनी दिव्य पत्नी को प्राप्त किया था। परन्तु अश्व के सिर वाले ब्राह्मण अथवा दधीच की कथा पाण्डवों की कथा से अधिक प्राचीन है क्योंकि यह कथा ऋग्वेद से सम्बन्धित है। "इन्द्र ने अपनी अस्थियों द्वारा नौ वृत्रों का ६० बार वध किया था" टीकाकारों ने इसे इस कथन द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि इन्द्र का वज्र अश्व शिर से बना था जिसे अश्विनियों ने शिर विहीन दधयञ्च को दिया था जिससे वह उन्हें अपनी विद्या सिखा सके। कथा के अनुसार दधयञ्च अपने जीवन काल में असुरों के लिए भय का कारण बना हुआ था। जो उसकी मृत्यु के

पश्चात् वृद्धि करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल गये। तत् पश्चात्, "इन्द्र ने उसकी खोज करते हुए पता लगाया कि उसके अवशेष शेष हैं अथवा नहीं। उसे सूचना दी गई कि अश्व का सिर जीवित है परन्तु उसका स्थान अज्ञात है। इसकी खोज की गई और इसे कुरुक्षेत्र के बाह्य भाग में सरितावत सरोवर में प्राप्त किया गया।' मेरा अनुमान है कि यह कुरुक्षेत्र के विशाल सरोवर का केवल अन्य नाम है और परिणाम स्वरूप यह भी विश्वास है कि यह पवित्र सरोवर ऋग्वेद के समान प्राचीन है। मैं इसे सम्भावित समझता हूं कि चक्र तीर्थ अथवा वह स्थान जहां विष्णु ने भीष्म को मारने के लिए अपना चक्र उठाया था। वह स्थान रहा होगा जहाँ इन्द्र ने वृत्रों का वध किया था और यह अस्थियाँ जिन्हें बाद में पाण्डवों से सम्बन्धित किया है सम्भवतः प्राचीन कथा के वृत्रों की अस्थियाँ थी। इस प्रस्ताव के पक्ष में मैं यह उल्लेख करूंगा कि चक्र तीर्थ अस्थि पुर अथवा "अस्थियों के स्थान" के समीप है। ६३४ ई० में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग को यह अस्थियाँ दिखाई गई थी। जिसने लिखा है कि वे अत्याधिक बड़े आकार की थी। इन अस्थियों के सम्बन्ध में मेरे सभी प्रयत्न असफल रहे परन्तु अस्थि पुर स्थान को अब भी अक्रमस घाट के समीप नगर के पश्चिम में समतल भूमि में दिखाया जाता है।

पिट्टोआ अथवा पृथु दक

पिट्टोआ का प्राचीन नगर थानेसर के १४ मील पश्चिम में सरस्वती के दक्षिणी तट पर स्थित है। इस स्थान का नाम प्रसिद्ध पृथु चक्रवर्ती से मिला था जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह प्रथम व्यक्ति था जिसे राजा की उपाधि प्राप्त हुई थी। विष्णु पुराण के अनुसार उसके जन्म के समय "सभी जीव प्रसन्न हुए थे।" क्योंकि उसका जन्म सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैली तत्कालीन अराजकता को समाप्त करने के लिए हुआ था। इसी पुराण में सरस्वती में स्नान करने से राजा वेन के कोढ़ समाप्त हो ने की कथा का उल्लेख भी किया गया है। उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र पृथु ने सामान्य श्राद्ध किया तथा मृत्यु के १२ दिन तक उन्होंने सरस्वती के तट पर आगन्तुकों को जल पिलाया अतः इस स्थान को पृथूदक अथवा पृथु का सरोवर, नाम दिया गया और उसी स्थान पर पृथु द्वारा बनवाए गए नगर को उसी नाम से पुकारा गया। पृथूदक के स्मारक को कुरु क्षेत्र महात्मय में स्थान प्राप्त है और आज भी तीर्थ यात्री इस स्थान पर जाते हैं।

अमीन

थानेसर के पाँच मील दक्षिण-दक्षिण पूर्व में अमीन नाम एक विशाल एवम् उभरा टीला है जिसे ब्राह्मण अभिमन्यु खेड़ा अथवा अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के टीले का सम्मिलित स्थान समझते हैं। इस स्थान को चक्रव्यूह का नाम भी दिया गया है क्योंकि

पाण्डवों ने कौरवों से अपने अन्तिम युद्ध से पूर्व अपनी सेनाओं को इसी स्थान पर एकत्रित किया था। इस स्थान पर अभिमन्यु जयद्रथ द्वारा मारा गया था जो स्वयं दूसरे दिन अर्जुन द्वारा मारा गया था। कहा जाता है कि इसी स्थान पर अदिति ने पुत्र प्राप्ति हेतु सन्यासी रूप में तपस्या की थी और तदनुसार इसी स्थान पर उसने सूर्य को जन्म दिया था। यह टीला उत्तर से पश्चिम लम्बाई में २००० फुट तथा चौड़ाई में ८०० फुट है और इसकी ऊँचाई २५ से ३० फुट है। शिखर पर अमीन नामक एक छोटा गाँव है जिसमें गौड़ ब्राह्मणों का निवास है। यहाँ पर अदिति का एक मन्दिर है तथा पूर्व में सूर्य कुण्ड एवं पश्चिम में सूर्य का मन्दिर है। कहा जाता है कि सूर्य कुंड वही स्थान है जहाँ सूर्य का जन्म हुआ था और तदानुसार पुत्र की इच्छुक समस्त स्त्रियाँ रविवार के दिन अदिति के मन्दिर में पूजा करती हैं और तत्पश्चात सूर्य कुंड में स्नान करती हैं।

वैराट

ह्वेनसांग के अनुसार पो-ली-ये-ता-लो राज्य जिसे एम० रनाड ने पारयात्र अथवा वैराट के अनुसार स्वीकार किया है, की राजधानी मथुरा के पश्चिम में ५०० ली अथवा ८३⅓ मील की दूरी पर एवं शो-तो-तु-लो अर्थात सतद्रु अथवा सतलज राज्य के दक्षिण पश्चिम में ८०० ली अथवा १३३⅓ मील की दूरी पर अवस्थित था। मथुरा से दिशाएं एवं दूरी ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित नगर के रूप में मत्स्य की राजधानी वैराट की ओर असन्दिग्ध रूप से संकेत करते हैं। यद्यपि तीर्थ-यात्री द्वारा दूरी की अपेक्षा यह स्थान कुरु के दक्षिण में १०० मील से अधिक दूरी पर है। परन्तु उत्तरी भारत में सतद्रु की मध्यवर्ती स्थिति के अपने विवरण में उपर्युक्त त्रुटि का उल्लेख कर चुका हूँ।

महमूद के समकालीन अबुरिहान ने करजात की राजधानी नरान को मथुरा के पश्चिम में २८ परसाग की दूरी पर दिखाया है। (१) जिसमें परसांग को ३½ मील के समान स्वीकार करने पर ९८ मील अथवा ह्वेनसांग के आकड़ों से १४ मील अधिक हो जाएगी। परन्तु चूंकि विभिन्न मुस्लिम इतिहासकारों के विवरणों में करजात की राजधानी नरान एवं वैराट की राजधानी नरायन के अनुरूप होने में कोई सन्देह नहीं रहा अतः मथुरा से कथित दूरियों में भिन्नता का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अबुरिहान के अनुसार मुसलमान नरान अथवा बजान को नारायन कहा करते थे और यह नाम इस समय भी स्वयं वैराट के १० मील उत्तर पूर्व में अवस्थित नगर नारायन पुर में सुरक्षित है। अबुरिहान ने मथुरा से नरान तक दो विभिन्न मार्गों का उल्लेख किया है। प्रथम सीधा मार्ग मथुरा से होते हुए ५६ परसाग अथवा १६६ मील है जबकि

(१) रिनाड की पुस्तक के अनुवादक ने इसे बजान लिखा है परन्तु सर एच० एम० इलियट ने इसके शुद्ध स्वरूप नरान का उल्लेख किया है।

जमुना से दक्षिण में दूसरा मार्ग ८८ परसांग अथवा ३०८ मील है। अन्तिम मार्ग के मध्यवर्ती पड़ाव इस प्रकार है। प्रथम ८०, १८ परसांग अथवा ६३ मील, द्वितीय, सनीना, परसांग, अथवा ५६½ मील, तृतीय, जन्दर, १८ परसांग, अथवा ६३ मील, चतुर्थ, रजौरी १५ अथवा १७ परसांग ५४ अथवा ५६½ मील, तथा पञ्चम बजान अथवा नरान, २० परसांग अथवा ७० मील। चूंकि प्रथम पड़ाव की दिशा विशेष रूप से कन्नौज से दक्षिण पश्चिम में दिखाई गई है इसे इटावा के ६ मील दक्षिण में तथा कन्नौज से लगभग ६३ मील दक्षिण पश्चिम में यमुना के तट पर असाई घाट के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। द्वितीय पड़ाव का नाम सहिना लिखा गया है जिसे साधारण अन्ला बदली से मैं सुनिया पढ़ने का प्रस्ताव करता हूं जो ग्वालियर के ५४ मील उत्तर में अवस्थित एक अत्यधिक विशाल एवं प्रसिद्ध ध्वस्त नगर का नाम है। असाई घाट से इसकी दूरी लगभग ५६ मील है। तृतीय पड़ाव जिसे एम० रेनाड ने जन्दर कहा है एवं सर हेनरी इलियट ने चन्द्र कहा है—को मैं हिंडन समझता हूं। चम्बल नदी पर खेरा घाट के मार्ग से सोहानिया से इसकी दूरी लगभग ८० मील है रजौरी नामक चतुर्थ पड़ाव इसी नाम के अन्तर्गत मछेरी के १२ मील दक्षिण पश्चिम में अथवा हिंडन से लगभग ५० मील उत्तर पश्चिम में है। तत्पश्चात नारायनपुर तथा वैराट तक यह मार्ग अलवर अथवा मछेरी की पहाड़ियों से गुजरता है। जिसके कारण इसकी दूरी का ठीक निश्चय करना कठिन हो जाता है। पत्थर पर छपे मानचित्र की प्रतिलिपि में ८ मील बराबर एक इंच की दर से आकलन कर मैं इसकी दूरी को ७० मील समझता हूं जो अबुरिहान के विवरण के २० परसांग अथवा ७० मील से पर्याप्त रूप से समीप है।

अबुरिहान की अन्य यात्राओं के विवरण के अनुसार नरान मेवाड़ में चित्तौड़ से २५ साम उत्तर में था, मुल्तान के पूर्व में ५० परसांग एवं अनहलवार के उत्तर पूर्व में ६० परसांग की दूरी पर था। वैराट से इन स्थानों के दिकांश पर्याप्त रूप से शुद्ध है परन्तु इनकी दूरी ½ भाग से कुछ अधिक कम है। चित्तौड़ तक २५ परसांग की प्रथम दूरी के लिए मैं ६५ परसांग अथवा २२७ मील पढ़ने का प्रस्ताव करूंगा जबकि सैनिक अधिकारियों द्वारा अङ्कित वास्तविक मार्ग दूरी २१०½ मील है। चूंकि रशीदुद्दीन द्वारा दिए गए अबुरहान के विवरण में चित्तौड़ की दूरी नहीं दी गई है। अतः यह सम्भव है कि तारीख ए हिन्द की मूल प्रतिलिपि में कोई त्रुटि अथवा भूल रही होगी। मुल्तान तक ५० परसांग की त्रुटि पूर्ण दूरी को इस आधार पर क्षमा किया जा सकता है कि एक सेना के लिए मरुस्थल के सीधे मार्ग से जाना प्रायः असम्भव था अतः इस दूरी का केवल अनुमान लगाया गया था। मेरा विचार है कि अनहलवार की कथित ६० परसांग की दूरी चित्तौड़ से सम्बन्धित होनी चाहिए। जो वैराट तथा अनहलवार के मध्य में है। इन सभी विभिन्न यात्राओं की सूचियों की तुलना करने पर मुझे कर-

जाल अथवा गुजरात की राजधानी बजान अथवा बरान को वैराट अथवा वेराट की राजधानी नारायनपुर से अनुरूप स्वीकार करने म सकोच नहीं है। फरिश्ता ने वैराट का, हौ के अनुसार विबरात अथवा ब्रिग्स के अनुसार कैरात लिखा है यह दोनो नाम वैराट अथवा विराट के अशुद्ध स्वरूप हैं। मुसलमानो ने वैराट अथवा विराट को इसी प्रकार लिखा होगा।

मत्स्य को राजधानी विराट दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ मे १२ वष के वनवास के समय पञ्च पाडवो के निवास स्थान के रूप म हिन्दू प्रथाओ म प्रसिद्ध है। यह प्रदेश जनता क शौर्य क लिए भी प्रसिद्ध था क्योकि मनु का निर्देश है कि सेना का अग्रिम भाग "इन्द्रप्रस्थ क समीप कुरु क्षेत्र, मत्स्य अथवा विराट, पाचाल अथवा कान्य कुब्ज तथा मथुरा जिले सूरसेन नामक स्थ न पर ज म लेने वाले व्यक्तियो मे बना होना चाहिए। नगर के उत्तर में लगभग एक मील की दूरी पर एक लम्बी निचली पहाडी क शिखर पर भीम क निवास को दिखाया जाता है। यह पहाडी निचला श्रेणी के फकराले बिल्लौरी पत्थरो के विशाल समूह म बनी हुई हैं जो समय एव ऋतु क कारण घिस गय हैं एव बाह्य ओर स गोलाकार बन गये हैं। इनम कुछेक पत्थर अन्दर की ओर कट गय हैं और मिट्टी म पुती छोटा पत्थर की दीवारो क मध्य स इन कटे पत्थरो का निवास स्थान क रूप म बना दिया गया है। भीम गुफा इसी प्रकार एक लटकती बडी चट्टान क साथ पत्थरो की दीवार जोड कर बनाई गई है। इस चट्टान का व्यास ६० फुट है इसी की ऊचाई ५ फुट है। कहा जाता है कि इसी प्रकार के परन्तु छोटे कमरे भीम के भ्राताओ के निवास स्थान थे। कुछ ब्राह्मणो ने इस स्थान पर अधिकार कर रखा है जो तीर्थ यात्रियों द्वारा दी गई दानपुण्य की आमदनी से बसर करने का दावा करते हैं परन्तु उनकी समृद्ध स्थिति को देखते हुए उनका उपयुक्त कथन असत्य प्रतीत होता है। भीम गुफा से कुछ नीचे गडढे म वर्षा ऋतु का जल एकत्रित करने के लिये एक कुआँ बनाया गया है और एक दरार से पत्थर निकाल कर १५ फुट लम्बा, ५ फुट चौडा एव १० फुट गहरा सरोवर बनाया गया है परन्तु १० नवम्बर को मेरी यात्रा के दिन यह तालाब पूर्णतय सूखा हुआ था।

वैराट नगर निचली नङ्गी लाल पहाडियो स घिरी एक गोलाकार घाटी म बसा हुआ है। ये पहाडियाँ काफी समय से ताँबे की अपनी खानो क लिए प्रसिद्ध हैं। उपयुक्त नगर दिल्ली से १०५ मील दक्षिण पश्चिम मे एव जयपुर से ४१ मील उत्तर म है। घाटी का मुख्य प्रवेश भाग उत्तर पश्चिम मे एक छोटी नदी के साथ साथ है जो बान गङ्गा की मुख्य सहायक नदियो म गिनी जाती है। इस घाटी का व्यास २½ मील है एव इसकी परिधि ७½ मील से ८ मील है। यहाँ की मिट्टी प्राय अच्छी है तथा वृक्ष और विशेषतय: झाडियाँ उत्तम एव प्रचुर है। वैराट खण्डहरो के टीले पर अवस्थिति है जो एक मील लम्बा एव आधा मील चौडा है। इसकी परिधि १½ मील से

कुछ अधिक है परन्तु वर्तमान नगर इस टील के केवल ½ भाग पर बसा हुआ है। आस पास के खेत बर्तनों के टुकड़ों एवं प्राचीन ताम्र मलव से ढंका हुआ है और पानी का सामान्य रंग तांबे के समान लाल है। कहा जाता है कि ३०० वर्ष पूर्व अकबर के दीर्घ कालीन एवं समृद्धशाली शासन काल में बसने से पूर्व वैराट नगर नाम का प्राचीन नगर अनेक शताब्दियों तक जनविहीन था। अकबर के समय यह नगर निश्चित रूप से बसा हुआ था क्योंकि अबुल फज़ल ने आईन ए अकबरी में तांबे की लाभकारी खानों से युक्त नगर के रूप में इसका उल्लेख किया है। कहा जाता है कि नगर से पूर्व में आधे मील की दूरी पर एवम पहाड़ी से नीचे विशाल टील प्राचीन नगर का भाग था। परन्तु उसकी स्थिति एवम आकृति से मैं इसे किसी विशाल धार्मिक संस्था के अवशेष समझने का इच्छुक हूं। वर्तमान खण्डहरों में केवल पत्थरों की बनी नींवें दिखाई देती हैं क्योंकि सभी चकोर पत्थर आधुनिक नगर के भवनों के निर्माण में लगा दिए गये हैं।

वैराट के भवनों की संख्या १४०० बताई जाती है जिनमें ६०० गुड़ गौड़ ब्राह्मणों के हैं, ४०० अग्रवाल बनियों के, २०० मीनों के, एवं शेष २०० अन्य विभिन्न जातियों से सम्बन्धित हैं। प्रत्येक मकान में ५ व्यक्तियों की सामान्य दर से वैराट की जन संख्या ७००० रही होगी।

वैराट का ऐतिहासिक उल्लेख ६३४ ई० में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने किया है। उसके अनुसार राजधानी की परिधि १४, १५ ली अथवा प्रायः २½ मील थी जो प्राचीन टीले के आकार से ठीक ठीक मिलती है जिस पर वर्तमान नगर बसा हुआ है। यहां की जनता वीर एवम निडर थी और उनका राजा जो फी शी, वैश्य अथवा वैस राजपूत था—युद्ध में साहस एवम कौशल के लिए प्रसिद्ध था। इस स्थान पर इस समय भी आठ बौद्ध मठ थे परन्तु वह सभी जर्जर अवस्था में थे एवं भिक्षुओं की संख्या कम थी। विभिन्न जातियों के ब्राह्मण जिनकी संख्या १००० थी—१२ मन्दिरों के स्वामी थे परन्तु उनके शिष्य की संख्या अधिक थी क्योंकि अधिकांश जन संख्या धर्म विरोधी थी। ह्वेनसांग द्वारा नगर के बताये गये विस्तार को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि नगर की जनसंख्या वर्तमान जनसंख्या से कम से कम चार गुणा अधिक अथवा ३० ००० रही होगी जिसका एक चौथाई भाग बुद्ध का अनुयायी रहा होगा। मैंने उपर्युक्त संख्या को इस तथ्य से प्राप्त किया है कि बौद्ध मठों में प्रायः १०० भिक्षु रहा करते थे जबकि वैराट के मठ जर्जर बताये जाने से अतः प्रत्येक मठ में भिक्षुओं की संख्या ५० से ४०० अथवा कुल अधिक नहीं हो सकती थी। परन्तु प्रत्येक बौद्ध भिक्षु भिक्षा से अपना निर्वाह करता था अतः प्रत्येक भिक्षु की सहायतार्थ तीन परिवारों का दर से बौद्ध परिवारों की संख्या १२०० से कम नहीं रही होगी। इस प्रकार ४०० भिक्षुओं के अतिरिक्त बौद्ध धर्मावलम्बियों की संख्या ६००० रही होगी।

वैराट का दूसरा ऐतिहासिक उल्लेख महमूद गजनी के समय मे मिलता है जिसने ४०८ हिजरी अथवा १००६ ईसवी मे देश पर आक्रमण किया था जब राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली थी। परन्तु उसके अधीनता स्वीकार कर लेने का कोई महत्व नहा रहा क्योंकि हिजरी ४०४ अथवा १०१४ ईसवी की बसन्त ऋतु मे उसके देश पर पुन आक्रमण हुआ एव एक भयानक युद्ध के पश्चात हिंदू पराजित हुए थे। अबु रिहान के अनुसार नगर को ध्वस्त कर दिया गया एव जनसाधारण देश के भीतरी भागों म चले गये। फरिश्ता के अनुसार यह आक्रमण ४१३ हिजरी अथवा १०९२ ईसवी म हुआ था। जब राजा ने यह सूचना मिलने पर कि वैराट तथा नारायन के दो पर्वतीय प्रदेशों के निवासी मूर्ति पूजक का अनुसरण कर रहे हैं उन्ह मुस्लिम धर्म स्वीकार करने पर बाध्य करने का निश्चय किया। अमीर अली ने इस स्थान पर अधिकार कर खूब लूटा था और कहा जाता है कि नारायन के स्थान पर उसे एक शिला लेख प्राप्त हुआ था जिसमे लिखा था कि नारायण का मंदिर ४०,००० वर्ष पूर्व बनवाया गया था। चूंकि समकालीन इतिहासकार उतबी ने भी इस शिला लेख का उल्लेख किया है अतः हम शिला लेख की खोज के तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं जिसे तत्कालीन ब्राह्मण पढ़ने म असमर्थ थे। मेरे विचार म यह अत्यधिक सम्भव है कि उपर्युक्त शिला लेख अशोक का प्रसिद्ध शिला लेख था जिसे बाद म मेजर बर्ट ने वैराट की एक पहाडी के शिखर पर प्राप्त किया था और जो अब कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी के अजायब घर की शोभा बढ़ा रहा है।

सातवीं शताब्दी मे वैराट राज्य की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी। यह राज्य भेड़ एव बैलों के लिए प्रख्यात था परन्तु फलो एव फूलो की उपज कम थी। आज भी वैराट के दक्षिण जयपुर की यही स्थिति है जो दिल्ली एव आगरा के महान मुस्लिम नगरो एव उनकी अङ्ग्रेजी सेनाओं के लिए अधिकांश भेडे प्रदान करता है। अतः जयपुर राज्य की वर्तमान सीमायें वैराट राज्य की सीमा म सम्मिलित रही होगी। इसकी सीमाओ को ठीक ठीक निर्धारित नहीं किया जा सकता। परन्तु उन्ह उचित रूप से उत्तर मे झुन्झुनू से कोट कासिम तक ७० मील पश्चिम म झुन्झुनू से अजमेर तक, १२० मील, दक्षिण म अजमेर से बनास तथा चम्बल के सङ्गम तक, १५० मील, तथा पूर्व म सङ्गम स्थान कोट कासिम तक १५० माल, अथवा कुल मिला कर ४६० माल निश्चित किया जा सकता है।

स्रुघना

थानेसर छोडने के पश्चात ह्वेनसाग सर्व प्रथम १०० ली अथवा १६⅔ मील पूर्व-दक्षिण थ्रू हाईन चा अथवा गोकन्तन मठ तक गया था। अभी तक इस मठ की पहचान नहीं की जा सकी परन्तु सम्भवत यह बैयम्बली एव निमङ्ग के मध्य अवस्थित

मुनान मठ है जो थानेसर से १७ मील दक्षिण दक्षिण पश्चिम म है। मैं इस मठ का उल्लेख करने के लिये बाध्य हूँ क्योंकि यह है ह्वेनसाग ने सु लुकिन-ना अथवा स्रुघ्न तक ४०० ली अथवा ६६⅔ मील की दूसरी यात्रा इसी स्थान से प्रारम्भ की थी। इस प्रकार थानेसर तथा स्रुघना के मध्य की दूरी ५० मील बनती है। अब सुघ, वह स्थान जिसे मैं स्रुघना का राजधानी के अनुरूप स्वीकार करने का प्रस्ताव रखना चाहता हूँ। थानेसर से केवल ३८ अथवा ४० मील की दूरी पर है परन्तु चूकि यह नाम म मुख्यत: एव अ य बातों मे समायत मिलता है अत मुझे विश्वास है कि ह्वेनसाग के आकडे अशुद्ध हैं यद्यपि उन आकडो के लिये सम्भावित शुद्धि प्रस्तुत करने म असमर्थ हू। गाव व मठ से वास्तविक दूरी लगभग ५० मील है।

इस का सस्कृत नाम स्रुघ्न है जो बालचाल की भाषा म सुघन तथा सुघ बन जाता है। वतमान समय म इने इसी नाम स पुकारा जाता है। मेरी खोज के सभी स्थानो म सुग गाव सर्वाधिकम वपूर्ण स्थान रखता है। यह ऊँची भूमि क उभडे त्रिभुजाकार भाग पर बना हुआ है और तीन ओर स यमुना के पुराने पाट से घिरा हुआ है। इस पाट को अब पश्चिमी यमुना नहर कहा जाता है। उत्तर एव पश्चिमी की ओर स यह दो गहरी खाइयो क कारण सुरक्षित है जिससे सम्पूर्ण स्थान सुदृढ रक्षा पक्ति का काम दे सके जो पश्चिम को छोड अ य सभी ओर से प्राकृतिक रूप स सुरक्षित है। आकार म यह प्राय त्रिभुजाकार है जिसके प्रत्येक कोण पर एक सुदृढ दुग बना हुआ है। उत्तरी दुर्ग के स्थान पर अब दयालगढ नामक गाव एव दुग बना हुआ है। दक्षिण पूर्वी दुग के स्थान पर मण्डलपुर गाव बसा हुआ है और दक्षिण पश्चिमी कोण निजन है। प्रत्येक दुग १५०० फुट लम्बा एव १००० फुट चोडा है और इन्हे एक साथ मिलाने वाला कोण का प्रत्येक किनारा आधे मील स कुछ अधिक लम्बा है। पूर्वी किनारा ४००० फुट एव दक्षिण पश्चिमी किनारे ०० फुट लम्बा है। इस स्थान की सम्पूर्ण परिधि २२००० फुट अथवा ४ मील से कुछ अधिक है और इस प्रकार यह परिधि ह्वेनसाग द्वारा दी गई ३⅓ की परिधि से काफी बडी है। परन्तु चूकि उत्तरी दुग राहर नाला नामक एक गहरी रेतीली खाई क कारण मुख्य स्थान से अलग है यह सम्भव है कि तीर्थ यात्री की यात्रा क समय यह दुग निजन रहा हो। इस प्रकार इस स्थान की परिधि कम हो कर १६००० फुट अथवा ३⅓ मील से अधिक रह जायगी और तीर्थयात्रा के आकडा क समान हो जायगी। इसका पश्चिमी किनारे पर सुघ का छोटा गाव है तथा स्थान गढ क ठीक उत्तर म बुरिया का छोटा नगर बसा हुआ है। मेरी यात्रा के समय बन हुए घर इस प्रकार थे—माण्डलपुर १०० सुघ १२५ दयाल गढ १५० तथा बुरिया ३५०० अथवा कुल मिलाकर ३८७५ घर लगभग २०,००० प्राणी रहा करते थे।

सुघ के सम्बन्ध में जन साधारण में कोई विशेष प्रथा प्रचलित नहीं है परन्तु माडर अथवा माडलपुर के सम्बन्ध में उनका कथन है कि पूर्ववर्ती समय में यह नगर १२ कोस में फैला हुआ था तथा पश्चिम में जगाधरी एवं चनेटी तथा उत्तर में बूरिया अथवा दयालगढ़ इसमें सम्मिलित थे। चूँकि जगाधरी पश्चिम की ओर तीन मील की दूरी पर अवस्थित है, यह सम्भव नहीं है कि नगर इतनी दूरी तक विस्तृत रहा हो परन्तु हम उचित रूप से स्वीकार कर सकते हैं कि समृद्ध निवासियों के उद्यान एवं ग्रीष्म कालीन निवास स्थान किसी समय सम्भवतः उस दूरी तक विस्तृत रहे हों। उत्तर पश्चिम में दो मील की दूरी पर अवस्थित चनेटी में प्राचीन मुद्रायें अधिक संख्या में मिलती हैं। परन्तु अब यह मध्यवर्ती लम्बे खुले प्रदेश के कारण बूरिया तथा दयालगढ़ से पूर्णतः अलग है। सुघ माडलपुर तथा बूरिया में एक ही प्रकार की मुद्रायें प्राप्त हैं। ये मुद्रायें चौहानों की छोटी दिलिवाल से लेकर दिल्ली के तोमर राजाओं की चाँदी एवं ताँबे की वर्गाकार मुद्राओं तक सभी युगों की मुद्रायें सम्मिलित हैं। अन्तिम मुद्रा निश्चित रूप से ५०० ईसवी पूर्व में बौद्ध धर्म के उत्थान के समय जितनी प्राचीन हैं और सम्भवतः यह मुद्रा १००० ईसवी पूर्व में उत्तरी भारत की सामान्य मुद्रा थी। इस स्थान की प्राचीनता के पक्ष में उपर्युक्त असंदिग्ध प्रमाण के कारण मुझे सुघ को प्राचीन स्रुघन के अनुरूप स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है। स्थान का महत्व इस तथ्य से दिखाया जा सकता है कि यह स्थान गङ्गा के दुआब से मिराट, सहारनपुर तथा अम्बाला से होते हुए ऊपर पञ्जाब की ओर जाने वाले राष्ट्रीय मार्ग पर अवस्थित है एवं यमुना के मार्ग पर नियन्त्रण रखता है। महमूद गजनी कन्नौज के आक्रमण के पश्चात् इसी मार्ग से वापिस गया था। तैमूर हरिद्वार में लूट-पाट के अपने अभियान के पश्चात् इसी मार्ग से वापिस गया था तथा बाबर ने दिल्ली विजय के समय इसी मार्ग का अनुसरण किया था।

ह्वेनसांग के अनुसार स्रुघना राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। पूर्व में गङ्गा तक तथा उत्तर में उन्नत पर्वत श्रेणियों तक इसका विस्तार था जब कि यमुना इस राज्य के मध्य से प्रवाहित थी। इन तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि स्रुघना राज्य में गिरि एवं गङ्गा नदियों के मध्य सिरमोर तथा गढ़वाल के पर्वतीय राज्य तथा मैदानों में अम्बाला एवं सहारनपुर के जिलों के कुछ भाग सम्मिलित थे। परन्तु इस प्रदेश की परिधि ५०० मील से अधिक नहीं बनती जो ह्वेनसांग के आँकड़ों से केवल आधी है। इस त्रुटि को मैं मानचित्र पर सीधे मार्ग एवम् पर्वतीय प्रदेश के वास्तविक मार्ग दूरी में भिन्नता के कारण समझता हूँ। इससे सीमान्त रेखा लगभग ½ भाग बढ़ जायगी तथा सम्पूर्ण परिधि ७५० मील हो जायेगी जो तीर्थ यात्री के अनुमान से अभी भी काफी कम है। परन्तु यमुना तथा गङ्गा के मध्य की दूरी में उसका कथन निश्चित रूप से त्रुटि पूर्ण है। तीर्थ यात्री के अनुसार यह दूरी पहाड़ियों के अधोभाग में

लेकर दिल्ली तक दोनो नदियो के बीच समान्तर वास्तविक दूरी अर्थात् ३०० ली अथवा ५० मील के स्थान पर ८०० ली अथवा १३३ मील थी। चूंकि यह सम्भव है कि यही त्रुटि उत्तरी सीमा की दूरियों म भी समान अनिश्चयोक्ति के कारण दुगुनो हो गई थी। अत इसकी शुद्धि महत्वपूर्ण है क्योंकि दुगुनी त्रुटि १६७ मील हो जाती है। इस त्रुटि को शुद्ध करने पर स्रुघन की परिधि ह्वेनसांग के अनुमान के अनुसार केवल ८३३ मील होगी जो सम्भावित आकडो से ८३ मील भिन्न है।

मडावर

स्रुघन से तीथ यात्री मो ती पु लो अथवा मदीपुर गया था जिसे एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने पश्चिमी रुहेल खण्ड में बिजनौर के समीप मण्डावर नामक एक विशाल नगर के अनुरूप स्वीकार किया है। मैं पहले समान अनुरूपता का वर्णन कर चुका हूँ और अब मैं इस स्थान के व्यक्तिगत निरीक्षण के पश्चात उपयुक्त अनुरूपता की पुष्टि करने म समर्थ हूँ। नगर का नाम मानचित्र के मुण्डोर के स्थान पर मडावर लिखा गया है। इस स्थान के चौधरी एव कानूनगो जोहरीलाल के अनुसार मडावर सम्वत् ११७१ अथवा १११४ ई० म निजन स्थान था। जब उसके पूवज द्वारकादास जो अग्रवाल बनिया थे करतारमल के साथ मेरठ जिले के मोरारी स्थान से यहाँ आए थे एवम् प्राचीन टीले पर बस गये थे। मडावर के आधुनिक नगर मे ७००० निवासी हैं तथा यह नगर है मील से अधिक लम्बा एवम आधा मील चौड़ा है। परन्तु प्राचीन टीला जो प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है, आधे मील के वर्ग से अधिक नही है। इसकी सामान्य ऊचाई शेष नगर के स्तर से १० फुट ऊची है और विशाल ईंटें यहाँ प्रचुर मात्रा म प्राप्त हैं जो प्राचीनता का निश्चित चिह्न है। टीले के मध्य म ३०० फुट वर्गाकार एक ध्वस्त दुर्ग था, जिसकी ऊचाई शेष नगर के स्तर से ६ स ७ फुट थी। उत्तर पूर्व म दुर्ग से लगभग एक मील की दूरी तक एक अन्य टीले पर मढिया नामक गाँव है तथा दोनो के बीच कुण्डताल नामक एक विशाल सरोवर है जो छोटे छोटे अनेक टीलो से घिरा हुआ है। इन टीलो को भवनो के अवशेष कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल रूप से यह दानो स्थान लगभग १½ मील लम्बे, १ मील चौडे अथवा परिधि म ३½ मील बडे एक विशाल नगर के भाग थे। यह आकडे ह्वेनसांग द्वारा दिए गये २० ली अथवा ३⅓ मील क माप से मिलते हैं।

यह सम्भव प्रतीत होता है कि मडावर की जनता-जैसा कि एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने बताया है मैगस्थनीज क मथाए लोग हो सकते हैं जो इरोनीसिस के तट पर निवास करते थे। यदि ऐसा है तो वह नदी मालनी रही होगी। यह सत्य है कि यह केवल एक छोटी नदी है परन्तु मालनी के तट पर ही एक पवित्र गुफा में शकुन्तला का पालन पोषण हुआ था और इसी नदी के साथ-साथ वह हस्तिनापुर में

दुष्म (दुष्यन्त) से दरबार में गई थी। जब तक जल म कमल के फूल उतरेंगे तथा जब जब चकवा नदी के तट पर अपनी प्रियतमा को पुकारेगा, छोटी मालनी कालीदास के का य म जीवित रहेगी।

ह्वेनसाग के अनुसार मडोपुर राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। परन्तु जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ इस अनुमान म पडोस के गोविसना तथा अहिछत्र राज्य सम्मिलित रहे होगे क्योकि यह दोनो भी रोहल खण्ड म हैं तथा इतना कम दूरी पर हैं कि गङ्गा तथा रामगङ्गा के मध्यवर्ती क्षेत्र तक सीमित रहने स अकेला मडोपुर एक अति छोटा जिला रहा होगा क्योकि इस क्षेत्र की परिधि २५० मील से अधिक नही थी। परन्तु अभी प्रस्तावित विस्तृत सीमाओ जिनम हरिद्वार से कनोज तक गङ्गा के पूर्व एव खैरागढ के समीप घाघरा के तट तक सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित है—के अनुसार भी इस स्थान की परिधि ६८० म ७०० माल से अधिक नही हो सकती। अब भी यह परिधि अधिक छोटी है परन्तु उत्तर में पर्वतीय सीमा म मानचित्र क सीधे माप एव वास्तविक माग दूरी म भिन्नता को ध्यान म रखते हुए मेरा विचार है कि वास्तविक परिधि ८५० मील से कम नही हो सकती। मडावर का राजा एक स्यू तो-लो अथवा शूद्र था जो देवो की पूजा करता था तथा बौद्ध धर्म के प्रति उसकी रुचि नही थी चूकि गोविसना तथा अहिछत्र शासक विहीन थे। अत मेरा अनुमान है कि वह मडावर के आश्रित थे तथा ह्वेनसाग द्वारा लिखित सीमाओ की परिधि सम्पूर्ण राज्य की राजनैतिक सीमायें थी न कि जिला विशेष की।

मायापुर तथा हरिद्वार

ह्वेनसाग न मो यू-लो अथवा मयूर नगर को मडावर की उत्तर पश्चिमी सीमा पर एव गङ्गा के पूर्वी तट पर अवस्थित बताया है। नगर से कुछ दूरी पर गङ्गा द्वार नामक एक महान मन्दिर था जिसके भीतर एक सरोवर था जिसकी जलपूर्ति पवित्र नदी स एक नहर द्वारा होती थी। गङ्गा द्वार जो हरिद्वार का प्राचीन नाम था—की समीपता से प्रतीत है कि मयूर, गङ्गा नहर के सिरे पर मायापुर का तत्कालीन ध्वस्त स्थान रहा होगा। परन्तु अब यह दोनो स्थान ह्वेनसाग द्वारा कथित पूर्वी तट के स्थान पर पश्चिमी तट पर अवस्थित हैं। उसका यह उल्लेख है कि यह स्थान मडावर की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अवस्थित थे, उपयुक्त स्थिति की ओर सकेत करता प्रतीत होता है क्योकि यदि वह गङ्गा के पश्चिमी तट पर रहे होते तो उचित रूप से उन्हें स्रुघन की उत्तर पूर्वी सीमा पर दिखाया जाता है। मैंने सावधानी के साथ इस क्षेत्र का निरीक्षण किया था और मैं समझता हूँ कि किसी पूववर्ती समय म गङ्गा मायापुर तथा कखल से ज्वालापुर तक पश्चिम दिशा मे प्रवाहित रही होगी। फिर भी गङ्गा द्वार मन्दिर एव पहाडियो के मध्यवर्ती क्षेत्र म नदी के पुराने माग का कोई चिह्न नही मिलता परन्तु चूकि इस स्थान पर अब हरिद्वार नगर के भवन बन गये हैं अत यह

प्राय सम्भव है कि किसी समय यहाँ नदी रही हो जिसे धीरे धीरे भर दिया गया हो एवम् जहाँ भवन बना लिये गये हों। अब कोई ऐसा भौतिक बाधा नहीं थी जो नदी को पश्चिमी दिशा में प्रवाहित होने से रोक सकती थी अब हम या तो ह्वेनसांग के कथन को स्वीकार कर लेना चाहिये अथवा इस विकल्प को स्वीकार कर लेना चाहिये कि ह्वेनसांग ने मयूर तथा गङ्गाद्वार को गङ्गा के पूर्व दिखाने में त्रुटि की थी।

शिव एवम् विष्णु के पुजारियों में इस बात पर मत भेद है कि कौन से देवता से गङ्गा की उत्पत्ति हुई थी। विष्णु पुराण में कहा गया है कि गङ्गा की उत्पत्ति "विष्णु के बाम पद की एडी के बड नाखून से हुई थी तथा वैष्णव अपने विश्वास की सत्यता के प्रमाणस्वरूप साक्षी के रूप में गर्व पूर्वक हरि की चरण अथवा हीरा की पैरी अर्थात् हरि की पैड़ी की ओर संकेत करते हैं। दूसरी ओर शिव के अनुयाइयों का कथन है कि इस स्थान का वास्तविक नाम हर द्वार है हरि द्वार नहीं। विष्णु पुराण में यह स्वीकार किया गया है कि अलक नन्दा (अथवा गङ्गा की पूर्वी शाखा) शिव के जटा से निकली थी। परन्तु उपर्युक्त विचार धारा के होते हुए भी मैं विश्वास करने को उत्सुक हूँ कि हरि द्वार अथवा हर द्वार आधुनिक नाम है तथा गङ्गा द्वार मन्दिर के समीप पुराने नगर का नाम मायापुर था। ह्वेनसांग ने इस वस्तुतः मो यु लो अथवा मयूर कहा है परन्तु हरिद्वार तथा कनखल के मध्य प्राचीन ध्वस्त नगर को अब भी मायापुर कहा जाता है तथा जन साधारण नाम की मूलोत्पत्ति के कारण स्वरूप माया देवी के पुराने मन्दिर का ओर संकेत करते हैं। फिर भी यह प्राय सम्भव है कि नगर को मयूरपुर भी कहा जाता हो क्योंकि आस पास के बनों में सहस्रों मयूर हैं जिनका कर्कश शब्द ध्वनि मैं प्रातः एवम सायङ्काल दोनों समय सुना करता हूँ।

ह्वेनसांग ने नगर को परिधि में २० ली अथवा ३½ मील एवम् अधिक जन पूर्ण कहा है। यह विवरण कुछ लोगों द्वारा मुझे दिखाए गए मायापुर के प्राचीन नगर के विस्तार से प्राय समीपता रखता है। प्राचीन नगर के चिह्न एक छोटी नदी से लेकर—जो सवनाथ के आधुनिक मन्दिर के समीप गङ्गा से मिलती है—नहर के किनारे राजा वेन के प्राचीन दुर्ग तक ७५०० फुट की दूरी में विस्तृत है। इसकी चौड़ाई असमान है परन्तु दक्षिणी छोर पर इसकी चौड़ाई ३००० फुट से अधिक नहीं हो सकती तथा उत्तरी छोर पर जहाँ शिवालिक पहाड़ियाँ नदी के समीप आ जाती है यह चौड़ाई सङ्कुचित होकर १००० फुट रह जाती है। इन आंकड़ों में इसकी परिधि १९६०० फुट अथवा ३½ मील से अधिक हो जाती है। इन सीमाओं के भीतर राजा दुर्ग से सम्बन्धित ७५० फुट वर्गाकार एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहर एवम टूटी हुई ईंटों से ढके हुए अनेक उन्नत टीले हैं जिनमें भवन बड़ा एवम् सर्वाधिक उत्कृष्ट टीला नहर पर बने पुल के समीप है। यहाँ नारायण शिला माया देवी एवम भैरव के तीन प्राचीन मन्दिर भी हैं। सवनाथ मन्दिर के ३००० फुट उत्तर पूर्व में होने के कारण पैरी (पौड़ी) नामक

प्रसिद्ध घाट उपयुक्त सीमाओं से बाहर है। इस स्थान की प्राचीनता विशाल ईंटों का विस्तृत नाव जो प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है एवम् मन्दिर के समीप प्राचीन वास्तु-कला के टुकड़ों के कारण असंदिग्ध है वरन् सूत्र के समान प्राचीन मुद्राओं की विभिन्नता के कारण भी इस स्थान की प्राचीनता में संदेह नहीं किया जा सकता। मह मुद्रायें य ! प्रति वर्ष प्राप्त होती हैं।

हरि द्वार अथवा विष्णु द्वार'' का नाम प्राय आधुनिक प्रतीत होता है क्योंकि अबु रिहान एवम् रशीदुउद्दीन दोनों ने केवल गङ्गा द्वार का उल्लेख किया है। कालीदास ने मेघदूत में हरिद्वार का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उसने कनखल का उल्लेख किया है परन्तु चूंकि उसके समकालीन लेखक अमरसिंह ने गङ्गा के पर्यायवाची नाम के रूप में विष्णु पदी का उल्लेख किया है। अत यह निश्चित है कि विष्णु के पाँव से निकलने की कथा पाँचवीं शताब्दी पुरानी है। फिर भी मेरा अनुमान है कि अबु रिहान के समय तक विष्णुपद के किसी मन्दिर का निर्माण नहीं हुआ था। इसका प्रथम उल्लेख जिसका मुझे ज्ञान है— तैमूर के इतिहासकार शरीफ उद्दीन ने किया था जिसका कथन है कि गङ्गा नदी कोपीली दर्रे से होकर पहाड़ियों से निकलती है। मेरा विचार है कि यह कोह पैरी अथवा विष्णु के पाँव की पहाड़ी है क्योंकि गङ्गा द्वार मन्दिर के स्थान पर स्नान करने के घाट को पैरी घाट कहा जाता है एवं समीपस्थ पहाड़ी को पैरी पहाड़ कहा जाता है। अकबर के समय में हरिद्वार का नाम सर्व ज्ञात था क्योंकि अबुल फजल ने ''गङ्गा नदी पर माया हरिद्वार' का १८ कोस की लम्बाई तक पवित्र स्थान के रूप में है, उल्लेख किया है। अगले शासन काल में टाम कोरियट ने इस स्थान की यात्रा की थी जिसने वेपलन टेरी को सूचित किया था कि ''शिव की राजधानी हरिद्वार में गङ्गा नदी विशाल चट्टानों से होकर बहती है एवं इसकी धारा तीव्र है।' १७९६ ई० में हार्ड विकी इस स्थान पर गया था जिसने इसे पहाड़ियों के अधोभाग पर अवस्थित एक छोटा स्थान कहा है। १८०८ ई० में रैपर ने एक अत्यधिक अमहत्वपूर्ण स्थान के रूप में इसका उल्लेख किया है जिसमें लगभग १५ फुट चौड़ी एवं १½ फर्लाङ्ग लम्बी केवल एक गली है। अब यह काफी बड़ी है और लम्बाई में ¾ मील है परन्तु अभी भी केवल एक गली है।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि नदी को म ापूई भी कहा जाता था। जिसे एम० जुलीन ने महा भद्रा के अनुरूप स्वीकार किया है जो गङ्गा के अनेक सर्व ज्ञात नामों में एक है। उसने इस बात का उल्लेख भी किया है कि इसके जल में स्नान करने से सभी पाप धुल जाते हैं एवम् यदि मृतकों को नदी में प्रवाह किया जाए तो मृतात्मा अपने पाप कर्मों के कारण निम्न योनि में पुनर्जन्म के कष्ट से बच जाती है। मैं इसे सुभद्रा पढ़ना चाहूँगा जिसका अर्थ महा भद्रा के समान है क्योंकि टेसियस ने महान भारतीय

नदी का इसी रूप में उल्लेख किया है। प्लिनी ने टॉलियस को उद्धृत करते हुए नदी को हाईपोबारस कहा है। दमिश्क के निकोलस ने लगभग इसी प्रकार के श ॰ का उल्लेख किया है। अतः मेरा अनुमान है कि टेसियस द्वारा प्राप्त मूल नाम सम्भवतः सुभद्रा था।

ब्रह्मपुर

मडावर छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसांग ३०० ली अथवा ५० मील की यात्रापरान्त पो लो कि मो पू लो गया था जिसे एम० जुलीन ने उचित रूप से ब्रह्मपुर कहा है। अन्य स्थान पर पो लो ही मो लो लिखा गया है जिस में सम्भवतः भूल के कारण 'पू' छूट गया है। उत्तरी दिशांश निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि इस दिकांश से तीर्थ यात्री गङ्गा पार जाकर पुनः स्रुघन में वापस पहुँच जाता। अतः हम इसके स्थान पर उत्तर-पूर्व पढ़ना चाहिये क्योंकि गढ़वाल एवं कुमायूँ के जिले इसी दिशा में हैं जो किसी समय कट्यूरी राज घराने के प्रसिद्ध राज्य के भाग थे। तीर्थ यात्री इसी प्रदेश का उल्लेख करना चाहता था। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि यहाँ ताँबा पाया जाता था जिससे गढ़वाल जिले की धनपुर एवम् पोखरी की सर्व प्रसिद्ध ताँबे के खानों का संकेत मिलता है जहाँ प्राचीन समय से ताँबा निकाला जाता है। अब, कट्यूरी राजाओं की राजधानी, मडावर से लगभग ८० मील सीधे राम गङ्गा नदी पर लखनपुर वैराट पट्टन में थी। यदि उपरोक्त माप को मडावर की उत्तर पूर्वी सीमा पर पहाड़ियों के अधोभाग में अवस्थित कोट द्वार से लिया जावे तो यह दूरी ह्वेनसांग द्वारा कथित ५० मील की दूरी से मिल जावेगी। फिर भी कथित दिकांश एवं दूरी में त्रुटि का सम्भावित उत्तर के रूप में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उपयुक्त दूरी गोविसना से सम्बंधित थी जहाँ ह्वेनसांग ब्रह्मपुर की यात्रा के पश्चात् गया था एवम् जो वैराट के उत्तर में ठीक ५० मील की दूरी पर अवस्थित है।

देश के इतिहासानुसार प्राचीन राजधानी थी वैराट पट्टन अथवा लखनपुर थी। क्योंकि कुमायूँ का सामवंशी परिवार एवम् गढ़वाल का सूर्य-वंशी परिवार का राज्य सम्वत् ४२ तथा ७४८ में आरम्भ हुआ था और विक्रम सम्वत् स्वीकार कर लिये जाने की दशा में भी उपरोक्त तिथियाँ ह्वेनसांग के पश्चात्वर्ती समय से सम्बन्ध रखती हैं। अतः मेरा अनुमान है कि ब्रह्मपुर, केवल वैराट का दूसरा नाम रहा होगा क्योंकि इस प्रान्त की अन्य सभी राजधानियाँ अपेक्षाकृत नवीन हैं। अलकनन्दा नदी पर श्री नगर की स्थापना १४१५ सम्वत् अथवा १३५८ ई० में गढ़वाल के राजा अजयपाल ने करवाई थी। साथ ही साथ यह नगर मडावर एवम् वैराट पट्टन से लगभग समान दूरी पर है जब कि गढ़वाल की अधिक पुरानी राजधानी अधिक दूर है एवम् १२१६ सम्वत् अथवा ११५९ ई० में इसे राजधानी बनाया गया था। यहाँ की जलवायु कुछ

ठण्डी बनाई जाती है और यह वैराट की स्थिति से मिलती है जो समुद्र स्तर से केवल ३३३६ फुट ऊंची है।

ह्वेनसांग ने ब्रह्मपुर राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील बताई है। अतः इसमें अलकनन्दा एवम् करनाली नदियों का मध्यवर्ती सम्पूर्ण पर्वती प्रदेश जो अब ब्रिटिश गढ़वाल एवम् कुमायूं के नाम से प्रसिद्ध है—सम्मिलित रहा होगा क्योंकि गोरखों की विजय से पूर्व अन्तिम जिला करनाली नदी तक विस्तृत था। मानचित्र पर इस प्रान्त की सीमा ५०० से ६०० मील अथवा चीनी तीर्थ यात्री के अनुमान के अधिक समीप है।

गोविस्ना, अथवा काशीपुर

ह्वेनसांग ने मडावर के दक्षिण-पूर्व में, ४०० ली अथवा ६७ मील की दूरी पर क्यू-पी शवांगना राज्य का उल्लेख किया है जिसे एम० जुलीन ने गोविस्ना कहा है। राजधानी की परिधि १५ ली अथवा २½ मील थी। यह उन्नत स्थान दुर्गम चढ़ाई पर था और तालाबों एवम् सरोवरों से घिरा हुआ था। मडावर से कथित दिकाश एवम् दूरी के अनुसार हमें गोविस्ना को मुरादाबाद के उत्तर में किसी स्थान पर देखना चाहिए। इस दिशा में प्राचीनकाल से सम्बन्धित एक मात्र स्थान उज्जैन गाँव के समीप एक पुराना दुर्ग है जो काशीपुर के पूर्व में केवल एक मील की दूरी पर है। मैंने जिस मार्ग का अनुसरण किया था उसके अनुसार कुल दूरी ४४ कोस अथवा ६० मील है। कोस एवम् मील की अपेक्षाकृत दर मैंने बरेली एवम् मुरादाबाद के डाकघरों के मध्य ५६ मील की कथित दूरी से प्राप्त की है जिसे स्थानीय जनता सदा ४० कोस कहा करती है। काशीपुर का वास्तविक दिकाश दक्षिण पूर्व के स्थान पर पूर्व दक्षिण पूर्व है परन्तु भिन्नता अधिक नहीं है और चूंकि अहिछत्र के अगामी मार्ग से काशीपुर की स्थिति का स्पष्ट संकेत मिलता है अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि उज्जैन गाँव के समीप प्राचीन दुर्ग गोविस्ना के प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ ह्वेनसांग गया था।

विशप हेबर ने काशीपुर को 'हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान कहा है जिसकी स्थापना ५००० वर्ष पूर्व काशी नामक देवता ने करवाई थी।' परन्तु विशप को सूचना देने वालों ने पूर्ण भ्रम में रखा था क्योंकि यह सब ज्ञात है कि यह नगर आधुनिक है। जिसकी स्थापना १७१८ ईस्वी में कुमायूं के चन्द्रवंश के राजा देवी चन्द के एक अनुयायी काशीनाथ ने करवाई थी। प्राचीन दुर्ग को अब उज्जैन कहा जाता है। परन्तु चूंकि यह समीपस्थ गाँव का नाम है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि वास्तविक नाम लुप्त हो चुका है। यह स्थान काशीपुर के बसने से पूर्व अनेक शताब्दियों तक निर्जन रहा है। परन्तु चूंकि तीर्थ यात्री निरन्तर द्रोण सागर के पवित्र सरोवर पर जाते रहे हैं अतः मेरा अनुमान है कि सरोवर के नाम ने धीरे-धीरे दुर्ग के नाम का स्थान ले

लिया था। आधुनिक समय में भी द्रोण सागर का नाम उतना ही प्रचलित है जितना कि काशीपुर का।

उज्जैन का प्राचीन दुर्ग अपने आकार में विशेष विशेषता रखता है जिसकी तुलना गटार से की जा सकती है। पूर्व से पश्चिम इसकी लम्बाई ३००० फुट एवम् इसकी चौडाई १५०० फुट है। इसकी कुल परिधि ६००० फुट अथवा २ मील से कुछ कम है। ह्वेनसांग ने गोविम्ना की परिधि को १२००० फुट अथवा लगभग २½ मील बताया है। परन्तु अपने आकडों में उसने दक्षिण दिशा में खण्डहरों के लम्बे टीले को सम्मिलित कर लिया होगा जो प्रत्यक्ष रूप से प्राचीन उपनगर के अवशेष हैं। इस टीले को प्राचीन नगर का असम्भिन्न भाग स्वीकार कर लेने से खण्डहरों की परिधि ११००० फुट अथवा ह्वेनसांग द्वारा बताई गई परिधि के समीप हो जाती है। अनेक कुञ्ज सरोवर एवम् मछलिया व तालाब इस स्थान को घेरे हुए है। यहाँ के कूप जल के ऊँचे स्तर के कारण विशेष रूप से अच्छे हैं क्योंकि यहाँ जल केवल पाच अथवा छ फुट की गहराई पर निकल आता है। इसी कारण से यहाँ अनेक सरोवर हैं जो सदा जल पूर्ण रहते हैं। इसमें सबसे बडा सरोवर द्रोण सागर है। कहा जाता है कि दुर्ग एवम् सरोवर की स्थापना पाँच पाण्डवों ने अपने गुरु द्रोण के लिए करवाई थी। यह सरोवर केवल ६०० फुट चौडा है परन्तु इसे अत्यधिक पवित्र समझा जाता है और गङ्गा के उद्गम स्थान की ओर जाते हुए तीर्थयात्री प्राय इस स्थान पर आते हैं। इसके ऊँचे तट अपेक्षाकृत आधुनिक समय के सती स्मारकों से ढके हुए हैं। दुर्ग की दीवारें बड़ी-बडी ईंटों से बनाई गई हैं जो १५ × ई इञ्च है। एवम् जो प्राचीनता का निश्चित चिह्न है। खेतों से ऊपर दीवारों की सामान्य ऊंचाई ३० फुट है परन्तु सम्पूर्ण स्थान पूर्णत: जर्जर अवस्था में है एवम् घने जङ्गलों से ढका हुआ है। पूर्व को छोड अन्य सभी ओर छिछली खाईयाँ हैं। इसका भीतरी भाग असमान है परन्तु अधिकांश स्थान आस पास के प्रदेश से २० फुट ऊँचे हैं। मिट्टी की प्राचीरों में दो निचले भाग हैं एक उत्तर पश्चिम की ओर दूसरा पश्चिम की ओर। जो अब जङ्गल के प्रवेश द्वार का काम करते हैं। जन साधारण के अनुसार यह दुर्ग के पुराने प्रवेश द्वार थे।

गोविम्ना के जिले की परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी। किसी राजा का उल्लेख नहीं किया है और जैसा कि मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ कि यह प्रदेश सम्भवत मडावर के राजा के अधीन था। यह स्थान उत्तर में ब्रह्मपुर, पश्चिम में मडावर तथा दक्षिण एवम् पूर्व में अहिच्छत्र की सीमाओं से घिरा हुआ था। अत: यह काशीपुर रामपुर एवम् पीलीभीत के आधुनिक जिलों के समान रहा होगा जो पश्चिम में राम गङ्गा से लेकर, पूर्व में शारदा अथवा घाघरा तक एवम् दक्षिण में बरेली की दिशा में फैले हुए हैं। इन सीमाओं के भीतर जिले की परिधि सीधे माप के अनुसार लगभग २०० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ३०० मील से अधिक रही होगी।

अहिच्छत्र

गोविस्ना स ह्वेनसाग ४०० ला अथवा ८६ मोल दक्षिण पूर्व मे अहि थी ता-लो अथवा अहिच्छत्र तक गया था। किसी समय का यह प्रसिद्ध स्थान आज भी अपने प्राचीन नाम को अहिच्छत्र के रूप में सुरक्षित रखे हुए है। यद्यपि यह अनेक शताब्दियो से निजन रहा है। इसका इतिहास १४३० ई० पू० वर्ष पुराना है जिस समय यह उत्तरी पाचाल की राजधानी थी। इसका नाम आहीक्षेत्र एवम् अहिनेत्र लिखा गया है परन्तु सोते समय अदी राजा के सिर पर नाग द्वारा छत्र बनाये जाने की स्थानीय कथा म पता चलता है कि अतिम नाम शुद्ध है। कहा जाता है कि इस प्राचीन दुग की स्थापना एक अहीर राजा अदी ने करवाई थी। द्रोण ने नाग द्वारा रूप म फन फैला कर साये हुए अदी की रक्षा करते देख, उससे राजा होने की भविष्य वाणी की थी। टालमी ने लगभग इसी नाम क अन्तगत इसका उल्लेख किया है जिससे सिद्ध होता है कि अदी क नाम से सम्बन्धित कथा कम से कम ईसा काल क प्रारम्भ से सम्बन्ध रखती है। दुग को अदीकोट भी कहा जाता है परन्तु अधिक प्रचलित नाम अहिच्छत्र है।

महाभारत के अनुसार पाचाल का विशाल राज्य हिमालय पवतो से चम्बल नदी तक विस्तृत था। उत्तरी पाचाल अथवा रोहेलखण्ड की राजधानी अहीछत्र थी तथा दक्षिण पाचाल अथवा मध्य गङ्गा दोआब की राजधानी, बदायू एवम् फरूखाबाद के मध्य पुरानी गङ्गा पर अवस्थित काम्पिल्या, अब कम्पिल, थी। महाभारत के युद्ध से कुछ समय पूव अथवा लगभग १४३० ई० पू० म पाचाल के द्रुपद नामक राजा पर पाण्डवों क गुरु द्रोण ने विजय प्राप्त की थी। द्रोण ने उत्तरी पाचाल पर स्वय अधिकार कर लिया परन्तु राज्य का दक्षिणी भाग द्रुपद को वापस कर दिया। उपर्युक्त कथानुसार अहिच्छत्र का नाम एवम् अदि राजा एवम् सप की कथा बौद्ध धम के उत्थान स कई शताब्दी पुरानी है।

फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि अपने महान् नेता के सम्मान हेतु बौद्ध धर्मावलम्बियो ने उपर्युक्त कथा को ग्रहण कर लिया एवम् उसम परिवर्तन किया क्योंकि ह्वेनसाग ने लिखा है कि नगर के बाहर 'नाग ह्रद' अथवा "प सरोवर" था जिसके समीप बुद्ध ने सात दिवस तक नाग राज के पक्ष म प्रचार किया था एवम् इस स्थान पर सम्राट अशोक ने स्तूप बनवाया था। मेरा अनुमान है कि बौद्ध कथा म नाग राज को फन फैला कर बुद्ध पर साया करते दिखाया गया है। मेरा यह विचार भी है कि उपर्युक्त घटना के स्थान पर बनाये गये स्तूप का नाम अहिच्छत्र "सप छत्र" रखा गया होगा। बौद्ध गया मे नाग राजा मुचलिन्द के सम्बन्ध म इसी प्रकार की कथा का उल्लेख किया जाता है। जिसने अपने फैले हुए फन से मार नाम के कुटिल राक्षस से बुद्ध की रक्षा की थी।

ह्वेनसांग द्वारा अहिच्छत्र का विवरण दुर्भाग्यवश अपर्याप्त है अन्यथा अनेक वर्तमान खण्डहरों को प्रारम्भिक बौद्ध स्थानों के अनुरूप बताया जा सकता था। राजधानी की परिधि १७ अथवा १८ ली अथवा ३ मील से कुछ अधिक थी एवम् प्राकृतिक बाधाओं के कारण सुरक्षित थी। यहाँ १००० भिक्षुओं सहित १२ मठ थे एवम् ब्राह्मणों के ६ मन्दिर थे जहाँ ईश्वर देव (शिव) के उपासकों की संख्या ३०० थी। सभी उपासक शरीर पर भभूत लगाये रहते थे। नगर के बाहर सर्प सरोवर के समीप स्तूप का उल्लेख किया जा चुका है। इसके समीप ही उन स्थानों पर चार अन्य स्तूप हैं जहाँ पिछले चार बुद्ध बैठे थे अथवा चले थे। अहिच्छत्र के ध्वस्त दुर्ग आकार एवम् स्थिति दोनों में ह्वेनसांग द्वारा प्राचीन अहिच्छत्र के वर्णन से इतनी समानता रखता है कि दोनों की अनुरूपता में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता। वर्तमान खड़ी दीवारों की परिधि १६ ४०० फुट अथवा ३½ मील से अधिक है। इसके आकार को अनुमान त्रिभुज कहा जा सकता है जिसका पश्चिमी किनारा ५६०० लम्बा, उत्तरी किनारा ६४०० लम्बा एवम् सबसे बड़ा दक्षिण पूर्वी किनारा ७४०० फुट लम्बा है। यह दुर्ग रामगङ्गा एवम् गानघन नदियों के मध्य बना हुआ है जिन्हें पार करना कठिन है। प्रथम नदी चौड़े रेतीले पाट के कारण एवम् अन्तिम नदी विस्तृत खाइयों के कारण दुर्गम है। यह स्थान उत्तर एवम् पूर्व दोनों ओर से पीरिया नाला के कारण दुर्ग है। टूटे फूटे अति ढलवा तटों एवम् अनेक गहरे गड्ढों के कारण गाड़ियों के लिए नदी पार करना प्रायः असम्भव है। इसी कारण बरेली तक बैल गाड़ियों का मार्ग २३ मील से कम नहीं है। जबकि पूर्व दिशा में सीधी रेखा से यह दूरी केवल १८ मील है। वस्तुतः नदी पार करने का एक मात्र मार्ग उत्तर पश्चिम में, कटेहरिया राजपूतों की प्राचीन राजधानी लखनोर की ओर से है। अतः "प्राकृतिक बाधाओं द्वारा सुरक्षित स्थान के रूप में ह्वेनसांग का वर्णन यथार्थ है। अहिच्छत्र, एओनला के उत्तर में केवल सात मील की दूरी पर है परन्तु मार्ग का अन्तिम अर्द्ध भाग गानघन नदी की खाइयों के कारण कठिन बन गया है। एओनला के उत्तर जङ्गलों में इस स्थान पर कटेहरिया राजपूतों ने फिरोज तुगलक के नेतृत्व में मुसलमानों का सामना किया था।

अहिच्छत्र का सर्वप्रथम यात्री सर्वेक्षक कैप्टन होडसन था जिसने "अनेक मीलों के घेरे में एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहरों के रूप में इस स्थान का उल्लेख किया है। "जिसमें सम्भवतः ३४ प्राचीरें थी एवम् आस पास के क्षेत्र में 'पाडव दुर्ग' के नाम से ज्ञात है।' मेरे सर्वेक्षणानुसार इस दुर्ग की केवल ३२ प्राचीरें हैं। परन्तु यह प्रायः सम्भव है कि एक अथवा दो प्राचीरों की ओर मेरा ध्यान न गया हो क्योंकि मैंने ऐसे अनेक स्थान देखे थे जिनमें कंटीले जङ्गलों के कारण प्रवेश करना असम्भव था। यह प्राचीरें प्रायः २८ से ३० फुट ऊँची हैं। केवल पश्चिमी प्राचीरें ३५ फुट ऊँची हैं। दक्षिण पश्चिमी कोण के समीप एक प्राचीर बाह्य भाग से ४७ फुट ऊँची है। भीतरी

समूह की सामान्य ऊंचाई १५ से २० फुट है। वर्तमान प्राचीरों में अधिकांश प्राचीन नहीं है क्योंकि लगभग २०० वर्ष पूर्व अली मुहम्मद खाँ ने दिल्ली के सुल्तान द्वारा पीछे ढकेले जाने की सम्भावना से अपनी सुरक्षा हेतु इस दुर्ग को जीवित करने का प्रयत्न किया था। कहा जाता है कि नवीन दीवारें १½ गज मोटी थी जो दक्षिण पूर्वी दीवार के मेरे माप से मिलती है क्योंकि यह दीवारें ऊपर की ओर २ फुट ६ इञ्च से लेकर ३ फुट ३ इञ्च मोटी है। जन साधारण के अनुसार अली मुहम्मद ने अपने प्रयत्न में १ करोड़ रुपये व्यय किया था परन्तु अधिक व्यय के कारण अन्त में उसे अपना प्रयत्न त्याग देने पर बाध्य होना पड़ा। मेरा अनुमान है कि उसने मिट्टी की दीवारों एवम् बाह्य दीवारों की मरम्मत एवम् पुनर्निर्माण पर लगभग १ लाख रुपय व्यय किया होगा। दक्षिण पूर्व में एक मेहराबदार द्वार है जो मुसलमानों द्वारा बनवाया गया था परन्तु चूंकि उन्होंने नई ईंटों का निर्माण नहीं कराया था अतः निर्माण कार्य पर व्यय केवल श्रमिक के वेतन तक सीमित रहा होगा। मिट्टी की दीवारें कुछ स्थानों पर १८ फुट मोटी हैं जबकि अन्य स्थानों पर १४ से १५ फुट मोटी हैं।

अहिछत्र जिले की परिधि लगभग ३००० ली अथवा ५०० मील थी। इन विस्तृत आंकड़ों के कारण मेरा विश्वास है कि इसमें रोहेलखण्ड का उत्तरी अर्द्ध भाग अर्थात् पश्चिम में पीलीभीत से लेकर पूर्व में घाघर के समीप खैराबाद तक, उत्तरी पहाड़ियों एवम् गङ्गा का मध्यवर्ती क्षेत्र सम्मिलित था। सीधे माप से इस क्षेत्र की सीमा ४५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ५० मील है।

पिलोशाना

अहिछत्र से ह्वेनसांग दक्षिण दिशा में २६० से २७० ली अथवा ४३ से ४५ मील दूर गङ्गा तक गया था। उसने नदी को पार किया एवम् दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़कर पीलो शान-ना राज्य में पहुँच गया। दक्षिण दिशा की यात्रा उसे एओनला एवम् बुदायूं से होकर बूढ़ी गङ्गा तक ले जाती है जो सहावर के समीप एवम् सोरों से कुछ मील नीचे है। दोनों स्थान ४०० वर्ष पूर्व तक गङ्गा नदी पर अवस्थित थे। चूंकि उसका पश्चातवर्ती मार्ग दक्षिण पश्चिम की ओर बताया जाता है अतः मेरा विश्वास है कि उसने सहावर के समीप गङ्गा नदी को पार किया होगा जो सीधी रेखा पर अहिछत्र से ४७ मील दूर है। अपनी प्रारम्भिक खोज के आधार पर मैं विश्वास करने लगा था कि इस क्षेत्र में सोरों ही एक मात्र प्राचीन स्थान था और चूंकि ह्वेनसांग ने दक्षिण पश्चिम की दूरी का उल्लेख नहीं किया है अतः मेरा निष्कर्ष था कि सोरों ही वह स्थान था जिसे ह्वेनसांग ने पी लो शान-ना का नाम दिया था। तदनुसार मैं सोरों गया जो निश्चित रूप से अति प्राचीन स्थान है परन्तु मेरा विचार है कि यह तीर्थ यात्रा की यात्रा का स्थान नहीं हो सकता। फिर भी अतरञ्जी खेड़ा के विशाल ध्वस्त

टीले को चीनी तीर्थ यात्री के पी-लो सान-ना के अनुरूप स्वीकार किये जाने के उचित दावे पर विचार करने से पूर्व मैं सोरों का उल्लेख करूँगा ।

सोरों बरेली तथा मथुरा के मध्य मुख्य मार्ग पर गङ्गा नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर अवस्थित है । पूर्व काल में इस स्थान को उकल क्षेत्र कहा जाता था परन्तु विष्णु के वराह अवतार द्वारा हिरण्यकश्यप राक्षस के वध के पश्चात् इस नाम को बदल कर सूकर क्षेत्र अर्थात् "अच्छे कार्य का क्षेत्र" कर दिया गया । किला अथवा दुर्ग नामक एक ऊँचा टीला प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है जो उत्तर से दक्षिण एक चौथाई मील लम्बा एवम् इससे कुछ कम चौड़ा है । यह टीला पुरानी गङ्गा के ऊँचे तट पर अवस्थित है जो २०० वर्ष पूर्व तक इसके ठीक नीचे प्रवाहित थी । आधुनिक नगर टीले के दक्षिणी एवम् पश्चिमी भाग पर अवस्थित है और सम्भवतः यहाँ लगभग ५००० निवासी हैं । प्राचीन टीले पर कोई निवास स्थान नहीं है । यहाँ केवल सीता राम जी का मन्दिर एवम् शेख जमाल का मकबरा है । परन्तु यह टीला विशाल आकार की ईंटों के टुकड़ों से ढँका हुआ है एवम् सभी ओर दीवारों की नींवों के चिह्न देखे जा सकते हैं । कहा जाता है कि यह खण्डहर कई शताब्दियों पूर्व सोरों के राजा सोम दत्त द्वारा निर्मित दुर्ग के खण्डहर हैं । परन्तु इस स्थान पर लोग काफी समय पूर्व बस गये थे और इस स्थान को काल्पनिक राजा वेना चक्रवर्ती से सम्बन्धित बताया जाता है जिसे उत्तरी बिहार, अवध एवम् रोहेलखण्ड की सभी कथाओं में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त है ।

अत्रजीखेड़ा का विशाल ध्वस्त टीला करसाना के चार मील दक्षिण में एव जरनैली सड़क पर एटा के आठ मील उत्तर मे काली नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर अवस्थित है । यह सोरों के १५ मील दक्षिण म एवम सनकिसा के उत्तर पश्चिम मे सीधी रेखा पर ४३ मील है परन्तु मार्ग दूरी ४८ अथवा ५० मील से कम नहीं है । आईन ए-अकबरी म अत्रजी का उल्लेख, सिकन्दरपुर अत्रेजी नाम के अन्तगत कन्नौज के एक परगने के रूप म किया गया है । सिकन्दरपुर—जिसे अब सिकन्द्राबाद कहा जाता है—अत्रजी के विपरीत काली नदी के बायें तट पर बसा हुआ है । इससे पता चलता है कि अत्रजी, अकबर के समय मे बसा हुआ था । परगना को बाद मे करसाना कहा जाने लगा था परन्तु वतमान समय मे यह सहावर करसाना अथवा केवल सहावर के नाम से ज्ञात है । चीनी तीथ यात्री द्वारा दिया गया नाम पी-लो सान-ना है जिसे एम० जुलीन ने विरसना पढने का प्रस्ताव किया है । १८४८ म मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि पील एव कार दोनो हाथी के सस्कृत नाम हैं अतः यह सम्भव था कि पिलोसना एव करसाना समरूप हो । यह एक विशाल गाँव है जिसे मैं अत्रजीखेड़ा के ४ मील उत्तर मे लिखा चुका हूँ । इस अनुरूपता को स्वीकार करने मे मुख्य आपत्ति यह है कि करसाना प्रत्यक्ष रूप स अधिक प्राचीन स्थान नहीं है यद्यपि

इसे यत्न कण दयोरा करसाना कहा जाता है जहाँ किसी पूर्ववर्ती समय में महत्वपूर्ण मन्दिर था। फिर भी यह सम्भव है कि करसाना का नाम अत्रजी में उसी प्रकार मिला होगा जैसे हम आईन-ए-अकबरी में निकदरपुर अतेर्जी का नाम देखते हैं। चूंकि करसाना एवं पिलोसना की अनुरूपता केवल अनुमानित है अत इस विषय पर अधिक अनुमान कर विपत्ति में फँसना व्यर्थ है। ह्वेनसांग द्वारा सनकिसा से दिये गये दिशा एवं दूरी सिरपुर के आस-पास के क्षेत्र की ओर संकेत करते हैं जिसके समीप सिलकनी अथवा सिलोकूनी नामक गाँव है जो हमारे मानचित्र का सिलोखूनी है। परन्तु यह अति छोटा स्थान है और यद्यपि यहाँ खेडा अथवा खण्डहरा का टीला है परन्तु मेरे विचार में किसी भी समय इसकी परिधि ह्वेनसांग द्वारा पिलोषना की बताई गई २ मील की परिधि से एक चौथाई से अधिक न रही थी। परन्तु इसके पक्ष में दो ठोस तथ्य है—प्रथम इसकी स्थिति जो दिशा एवं दूरी दोनों में ह्वेनसांग के विवरण से मिलती है तथा द्वितीय इसका नाम जो प्राचीन नाम के प्राय समरूप है क्योंकि श को सामान्यत ख पढ़ा जाता है अत ह्वेनसांग के पिलोसना को पिलोखना पढ़ा जा सकता है।

अत्रजी खेडा को प्राचीन पिलोसना के स्थान के रूप में प्रस्तावित करने में मैं इस तथ्य से प्रभावित हुआ हूँ कि देश के इस भाग में सोरों को छोड यही एक मात्र विशाल प्राचीन स्थान है। सत्य है कि सनकिसा से इसकी दूरी ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरी से कुछ अधिक है अर्थात ३३ मील के स्थान पर ४५ मील है परन्तु दिशा ठीक ठीक है और यह प्राय मेरा विचार है कि प्राचीन पीलोसना से अनुरूप स्वीकार किये जाने के लिए अन्य सभी स्थानों की अपेक्षा अत्रजीखेडा का दावा अधिक ठोस है।

अत्रजी को पीलोसना के अनुरूप स्वीकार किये जाने में केवल एक आपत्ति है अर्थात ह्वेनसांग द्वारा कथित २०० ली अथवा ३३ मील की दूरी एवं सीधी रेखा से ४३ मील अथवा सड़क से ४८ अथवा ५० मील की दूरियों में भिन्नता है। मैं ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरियों में किसी प्रकार की त्रुटि की सम्भावना का उल्लेख कर चुका हूँ परन्तु समान रूप से सम्भावित उत्तर योजन की लम्बाई में भिन्नता में भी देखा जा सकता है। ह्वेनसांग का कथन है कि उसने ४ कोसों को एक योजन के समान स्वीकार किया है परन्तु यदि रोहेलखण्ड का प्राचीन योजन मध्यवर्ती दोआब के योजन से उसी प्रकार भिन्न रहा हो जैसे इनके वर्तमान कोस में भिन्नता है तो उस दशा में उसकी दूरी प्रत्येक कोस के पीछे आधा मील एवं प्रत्येक योजन के पीछे २ मील कम होगी क्योंकि रोहेलखण्ड का कोस १½ मील के समान है जबकि मध्यवर्ती दोआब का कोस २ मील के समान है और इस प्रकार अन्तिम कोस लगभग एक तिहाई बड़ा है। अब, यदि हम ह्वेनसांग की २०० ली अथवा ३३ मील की दूरी में उपर्युक्त भिन्नता जोड़ दें तो इसकी दूरी ४४ मील हो जायेगी जो मानचित्र पर सीधे माप से मिलती है। फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरियों में त्रुटि की सम्भावना

इसका आकार निर्मित है। पूर्व, उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व की तीन दिशाओं में दीवारों में कटाव अथवा द्वार हैं जिन्हें प्रथानुसार नगर के तीन द्वारों का स्थान बताया जाता है। इस प्रथा के परिणाम स्वरूप जन साधारण पोरसाड़िया गाँव की ओर संकेत करते हैं जो दीवार के दक्षिण पूर्वी कटाव के ठीक बाहर है। परन्तु उपर्युक्त नाम को पोर के स्थान पर पौर कहा जाता है अतः यह नाम द्वार के स्थान पर सीढ़ियों (पोढ़ी) का संकेत करता है। काली अथवा कालिन्दी नदी दीवार के दक्षिण पश्चिमी कोण से राजघाट से लेकर ककरघाट तक बहती है। राजघाट दीवार से आधा मील दूर है जबकि ककरघाट दीवार की रेखा के दक्षिण में एक मील से अधिक दूरी पर है।

उत्तर-पूर्व में तीन चौथाई मील की दूरी पर अगहट नामक एक विशाल टीला है जो ४० फुट ऊँचा एवम् अधोभाग के व्यास में आधे मील से अधिक है। प्राचीन नगर का नाम अगहट बताया जाता है परन्तु अब एक आधुनिक सराय के नाम पर इसे अगहट सराय कहा जाता है। यह सराय १०८० हिजरी अथवा १६७० ई० में वर्तमान पठान जमींदार के पूर्वज द्वारा टीले के उत्तर पूर्वी कोण पर बनवाई गई थी। जनसाधारण का कथन है कि इसके पूर्व यह स्थान अनेक शताब्दियों तक निर्जन था परन्तु चूँकि मैं दिल्ली एवं जौनपुर के मुसलमान शासकों के ताम्र मुद्राओं की लगभग निरंतर श्रृंखला प्राप्त करने में सफल हुआ था अतः मेरा अनुमान है कि यह स्थान अधिक समय तक निर्जन नहीं था। यह टीला बड़े आकार की टूटी हुई ईंटों से ढका हुआ है जो अकेले इसकी प्राचीनता का प्रमाण दे सकते हैं और चूँकि इसकी ऊँचाई एवं संकिसा की ऊँचाई समान है अतः जनसाधारण का यह कथन सम्भवतः सत्य है कि दोनों स्थान एक ही काल में बनवाये गये थे। दोनों टीलों पर समान ताम्र मुद्रायें प्राप्त होती हैं जिन पर किसी प्रकार का लेख अङ्कित नहीं है। इनमें अधिक पुरानी मुद्रायें वर्गाकार रजत मुद्रायें हैं जिन पर विभिन्न चिह्न अङ्कित किये गये हैं तथा अन्य मुद्रायें ताँबे की वर्गाकार मुद्रायें हैं चिह्न साँचे में ढाला गया है और मेरे विचार से यह सभी मुद्रायें सिकन्दर महान के आक्रमण से पूर्ववर्ती समय की हैं।

संकिसा को रामायण के सगस्या एवम् चीनियों के सेन्ग, किया षी के अनुरूप स्वीकार करने में हमें न केवल नामों की पूर्ण समरूपता से समर्थ प्राप्त होता वरन् इसी प्रकार मथुरा, कन्नौज तथा अहिछत्र के तीन सर्व प्रसिद्ध स्थानों से इसकी अपेक्षा कृत स्थिति से भी समर्थन प्राप्त होता है। आकार में भी यह ह्वेनसांग द्वारा दिए गये आकड़ों से अधिक समीपता रखता है। चीनी तीर्थ यात्री द्वारा इसकी बताई गई २० ली अथवा ३⅓ मील की परिधि मेरे आकड़ों के १८६०० फुट अथवा ३½ मील से कुछ कम है अतः इस बात में सन्देह नहीं हो सकता कि दोनों स्थान वस्तुतः समान हैं। संकिसा के अपने विवरण में ह्वेनसांग ने एक विचित्र तथ्य का उल्लेख किया है कि विशाल मठ के समीप निवास करने वाले ब्राह्मणों की संख्या कई हजार थी। इस

कथन के उदाहरण स्वरूप मैं यह उल्लेख कर सकता हूँ कि जनसाधारण की एक प्रथा है जिसके अनुसार सङ्किसा १८०० से १६०० वर्ष पूर्व निर्जन हो गया था तथा १३०० वर्ष पूर्व अथवा लगभग ५६० ई० में इस स्थान के स्वामी कायथ ने यह स्थान ब्राह्मणों को दे दिया था। उनका यह भी कथन है कि अपेक्षाकृत आधुनिक समय तक पौर खेड़िया गाँव की अधिकांश जनसंख्या पूर्णत ब्राह्मण थी।

कहा जाता है कि सङ्किसा की परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी परन्तु आस पास के अन्य जिलों को देखते हुए यह परिधि बहुत अधिक है। उत्तर एवं दक्षिण में गङ्गा तथा यमुना द्वारा वास्तविक एवं पश्चिम तथा पूर्व में अन्तरञ्जी एवं कन्नौज के जिलों द्वारा निर्धारित इसकी वास्तविक सीमायें २२० मील से अधिक नहीं हो सकती।

मथुरा

सातवीं शताब्दी में मथुरा की प्रसिद्ध नगरी एक विशाल राज्य की राजधानी थी जिसकी परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील बताई गई है। यदि यह अनुमान सही है तो इस प्रान्त में न केवल बैराट तथा अन्तरञ्जी जिलों का सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा वरन् दक्षिण में आगरा से आगे नरवर तथा शिवपुरी तक एवं पूर्व में सिन्ध नदी तक बहुत बड़ा क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा। इन सीमाओं के भीतर प्रान्त की परिधि सीधे माप के अनुसार ६५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ८५० मील से अधिक होगी। इसमें भरतपुर करौली तथा धौलपुर के छोटे राज्यों एवं ग्वालियर राज्य के उत्तरी अर्धभाग सहित मथुरा का वर्तमान जिला सम्मिलित था। पूर्व में यह राज्य पूर्व में जिझौटी राज्य से एवं दक्षिण में मालवा से घिरा हुआ था। ह्वेन सांग ने इन दोनों को भिन्न भिन्न राज्य बताया है।

सातवीं शताब्दी में नगर की परिधि २० ली अथवा ३⅓ मील थी जो इसके वर्तमान आकार से मिलती है। परन्तु दोनों की स्थिति एक समान नहीं है क्योंकि पूर्व में यमुना के कटाव के कारण नगर का बसाव उत्तर तथा पश्चिम की ओर हुआ है। कहा जाता है कि प्राचीन नगर उत्तर में नबी मस्जिद तथा राजा कंस के दुर्ग से लेकर दक्षिण में कटरा टीला तथा टीला सत्त निख तक विस्तृत था परन्तु इसका दक्षिणी अर्धभाग अब निर्जन है और नबी मस्जिद के उत्तर एवं पश्चिम में प्राचीन नगर के बाहर लगभग समान क्षेत्र बस गया है। यह नगर अनेक ऊँचे-ऊँचे टीलों से घिरा हुआ है जिनमें अधिकांश टीलें ईंटों के पुराने भट्ठे हैं। परन्तु उनमें अनेक टीले विशाल भवनों के खण्डहर हैं। इन टीलों को खोद-खोद कर ईंटें निकाली गई हैं और अब केवल ईंटों की मिट्टी एवं टुकड़ों के ढेर शेष हैं। मैं विशेष रूप से नगर के तीन मील दक्षिण में जेल के समीप बड़े टीले का उल्लेख करूँगा जो बाह्य रूप से ईंटों एवं खपरैलों के भट्ठे का खण्डहर प्रतीत होता था। परन्तु बाह्य रूप से साधारण दिखाई देने वाले टीले में

अब अनेक मूर्तियाँ एवं शिलालेख प्राप्त किए जा चुके हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि यह टीला कम से कम दो बौद्ध मठों का खण्डहर है जो ईसवी काल के प्रारम्भ से सम्बन्धित है।

मथुरा की पवित्र नगरी भारत के प्राचीनतम स्थानों में गिनी जाती है। यह कृष्ण के इतिहास में उसके शत्रु राजा कंस के गढ़ के रूप में प्रसिद्ध है तथा मेगस्थनीज के आधार पर एरियन ने शूरसेनों की राजधानी के रूप में इसका उल्लेख किया है। सूरसेन कृष्ण के पितामह थे तथा कृष्ण एवं उनके वंशज जिन्होंने कंस की मृत्यु के पश्चात् मथुरा पर अधिकार कर लिया था। अपने पितामह के नाम से शूरसेन कहलाते थे। एरियन के अनुसार सूरसेनियों के दो महान् नगर थे, मैथोरस तथा क्लिसो बोरस, तथा नौकाओं के योग्य जोबारेज नदी इन सीमाओं से होकर बहती थी। प्लिनी ने नदी को जोमनोज अर्थात् जमुना कहा है तथा उसका कथन है कि यह नदी मथोरा तथा क्लिसोबोरा के नगरों के बीच बहती थी। टालमी ने मोदुरा नाम के अन्तर्गत एक "देवताओं के नगर" अथवा पवित्र नगर के रूप में केवल मथुरा का उल्लेख किया है।

वृन्दावन

क्लिसाबोरस नगर की पहचान नहीं हो सकी है परन्तु मेरा विश्वास है कि यह मथुरा के छः मील उत्तर में वृन्दावन रहा होगा। वृन्दावन का अर्थ है "तुलसी के वृक्षों का कुंज" जो सम्पूर्ण भारत में कृष्ण एवं गोपियों की लीलाओं के स्थान के रूप में प्रसिद्ध है परन्तु इस स्थान का पूर्ववर्ती नाम कालावर्त था क्योंकि कथा में बताया गया है कि काली नाग ने यमुना पर लटकते हुए कदम्ब वृक्ष पर अपना स्थान बनाया था। इसी स्थान पर कृष्ण ने उस पर आक्रमण करके मार डाला। क्लिसाबोरा के लेटिन नाम को भिन्न भिन्न पुस्तकों में करिसोबोरा तथा कैरिसो बोरका भी लिखा गया है। अतः मेरा अनुमान है कि इसका मूल नाम कालीसो बोरका अथवा दो अक्षरों के साधारण परिवर्तन से कालीकोवोर्ता अथवा कालिकावर्त था। प्रेम सागर में लिखा है कि कृष्ण जब यमुना में तैर रहे थे तो काली नाग ने उनके विरुद्ध अपना विष उगल दिया था और यमुना में उपयुक्त भवर उसी विष के कारण बना था। अनुमान लगाया जाता है कि दूध पिलाने से साँप का विष बढ़ जाता है और यह पूर्ववर्ती समय में सर्प पूजा की ओर संकेत करता है। आज भी यदा कदा सर्प को दूध पिलाया जाता है परन्तु अब यह कार्य केवल सर्प की दैवी शक्ति की परीक्षा लेने के लिये किया जाता है। कहा जाता है कि सर्प दूध पीने की आश्चर्यजनक शक्ति रखता है। बताया जाता है कि अंतिम शताब्दी में बनारस के राजा चेतसिंह ने मथुरा एवं वृन्दावन के दोनों नगरों का सम्पूर्ण दूध कदम्ब वृक्ष में डाल दिया था और चूंकि जमुना के जल में परिवर्तन नहीं हुआ अतः काली सर्प की दूध पीने की चमत्कारी शक्ति की पुष्टि हो गई।

कन्नौज

सङ्किसा से ह्वेनसांग २०० ली अथवा ३३ मील उत्तर पश्चिम में कन्नौज तक गया था। चूँकि दोनों स्थानों की स्थिति सर्व ज्ञात है अतः उपर्युक्त दिकाश एवं दूरी के स्थान पर हमें दक्षिण पूर्व एवं ३०० ली अथवा ५० मील पढ़ना चाहिये। दूरी में परिवर्तन के लिए हमें फाह्यान का समर्थन प्राप्त है जिसने इसे ७ योजन अथवा ४९ मील बताया है। कहा जाता है कि सातवीं शताब्दी में राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी। जैसा कि मैं बता चुका हूँ इस अनुमानित परिधि में गङ्गा नदी के उत्तर में छोटे छोटे जिले एवं निचला गङ्गा दोआब सम्मिलित रहा होगा अथवा कन्नौज की सीमायें २०० मील से अधिक नहीं हो सकती थीं। ६६७ मील के ह्वेनसांग के आंकड़ों को सही कर लेने पर कन्नौज की सम्भावित सीमाओं में घाघरा नदी पर खैराबाद एवं टांडा तथा यमुना नदी पर इटावा एवं इलाहाबाद का सम्पूर्ण मध्यवर्ती प्रदेश सम्मिलित रहा होगा। जिससे इसकी परिधि लगभग ६०० मील हो जाएगी।

कन्नौज की महान नगरी जो अनेक सहस्र वर्षों तक उत्तरी भारत की हिन्दू राजधानी थी, के वर्तमान खण्डहर कम एवम् अमहत्वपूर्ण है। १०१६ ईसवी में जब महमूद गजनी कन्नौज पहुँचा उसके इतिहासकारों ने लिखा है कि "वहां पर उसने एक नगर को देखा जो आसमान तक सिर उठा रहा था तथा शक्ति एवम् आकार में उचित रूप से अद्वितीय होने का दावा कर सकता था।" एक शताब्दी पूर्व अथवा ९१५ ईसवी में मसोदी ने भारत के एक राजा की राजधानी के रूप में कन्नौज का उल्लेख किया था तथा लगभग ९०० ईसवी में इब्न वहाब ने साक्षी के आधार पर 'कदूजे का योजर राज्य का एक विशाल नगर" बताया है। इससे अधिक पूर्व काल में अथवा ६३४ ई० में हमें चीनी तीर्थ यात्री का विवरण प्राप्त होता है जिसने कन्नौज को २० ली अथवा ३½ मील लम्बा एवं ४ अथवा ५ ली अथवा ¾ मील चौड़ा बताया है। यह नगर सुदृढ़ दीवारों एवं गहरी खाईयों से घिरा हुआ था तथा इसके पूर्वी किनारे पर गङ्गा नदी बहती थी। अंतिम तथ्य को फाह्यान का समर्थन प्राप्त है जिसका कथन है कि नगर हैंग अथवा गङ्गा नदी को छू रहा था जब ४०० ईसवी में उसने इस स्थान की यात्रा की थी। टालमी ने १४० ईसवी में कन्नौज का उल्लेख किया है परन्तु इस स्थान का प्राचीनतम उल्लेख असन्दिग्ध रूप से पुराणों की प्राचीन प्रचलित कथाओं में मिलता है जिसमें कान्य कुब्ज के संस्कृत नाम को कुशनाभ की एक सहस्र पुत्रियों का वायु मुनि द्वारा श्राप दिए जाने की कथा से सम्बन्धित किया गया है।

ह्वेनसांग की यात्रा के समय कन्नौज उत्तरी भारत के सर्वाधिक शक्तिमान शासक राजा हर्ष वर्धन की राजधानी थी। चीनी तीर्थ यात्री ने उसे फी शी अथवा वैश्य कहा है। परन्तु यह सम्भव प्रतीत होता है कि उसने वैस अथवा वैस राजपूतों के स्थान

पर वैश्य अथवा वैस लिखने की त्रुटि की है जो कि दुआ का व्यापारिक वर्ग है अथवा मालवा एवं वलभी के राजघरानों में हर्ष वर्धन के विवाहिक सम्बन्ध पूर्णत असम्भव हो जाते। वैस राजपूतों का देश वैसवाड़ा समनऊ के समीप से लेकर कड़ा माणिकपुर तक विस्तृत है और इस प्रकार सम्पूर्ण दक्षिणी अवध उनके प्रदेश में सम्मिलित था। वैस राजपूत प्रसिद्ध सालिवाहन के वंशज होने का दावा करते हैं। जिसकी राजधानी गङ्गा नदी के उत्तरी तट पर दौंडियाखेड़ा बताई जाती है। कन्नौज से समीपता के कारण देहली से इलाहाबाद तक गङ्गा के सम्पूर्ण दोआब तक उनके पूर्वजों के अधिकार का दावा स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु उनकी वंशानुक्रम सूचियाँ अधिक त्रुटि पूर्ण हैं तथा सम्भवत अधिक अशुद्ध हैं जिनके कारण उनके पूर्वजों का हर्ष वर्धन के परिवार के राजकुमारों के अनुरूप स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं।

हर्ष वर्धन के शासन काल को ६०७ तथा ६५० ई० के मध्य निश्चित करने में मुझे निम्न साक्षियों से निर्देशन प्राप्त हुआ है। प्रथम, ह्वेनसांग के स्पष्ट कथन से उस की मृत्यु ६५० ई० में निश्चित होती है। (१) द्वितीय, हर्ष के जीवन के सम्बन्ध में लिखते समय तीर्थ यात्री ने लिखा है कि अपने सिंहासनारोहण के समय से निरन्तर साढ़े पाँच वर्षों तक हर्ष युद्धरत रहा था तथा तत्पश्चात् लगभग ३० वर्षों तक उस ने शान्ति पूर्वक शासन किया। ह्वेनसांग ने चीन वापिस जाने पर सम्राट की साक्षी के आधार पर उपर्युक्त कथन को दोहराया है। सम्राट ने उसे सूचित किया था कि उस समय तक वह तीस वर्षों से अधिक शासन कर चुका था तथा तत्कालीन पञ्चवर्षीय सभा ऐसी छठी सभा थी जिसे वह अपने शासन काल में आयोजित कर चुका था। इन विभिन्न कथनों से यह निश्चित है कि ६४० ई० में ह्वेनसांग की चीन वापिसी के समय हर्षवर्धन ३० वर्षों से अधिक तथा ३५ वर्षों से कुछ कम समय तक शासन कर चुका था। अतः उसके सिंहासनारोहण की तिथि को ६०५ तथा ६१० ई० के मध्यवर्ती काल में बताया जा सकता है। तृतीय, अब, इसी काल के मध्य ६०७ ई० में जैसा कि हमें अबुरहान से सूचना मिलती हैं, श्री हर्ष काल का आरम्भ हुआ था जो ग्यारवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मथुरा एवं कनौज में सुरक्षित था। नाम एवं तिथियों की पूर्ण समानता पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि ६०७ ई० में कन्नौज में एक साम्राज्य का संस्थापक हर्ष वर्धन था जिसने सातवीं शताब्दी के प्रथम अर्धभाग में कन्नौज पर शासन किया था।

---

(१) ह्वेनसांग की ऐतिहासिक क्रमानुसार सूची के अन्त के परिशिष्ट में मैंने इस बात में विश्वास करने के अनेक ठोस प्रमाण प्रस्तुत किए हैं कि हर्षवर्धन की मृत्यु की वास्तविक तिथि ६४८ ई० थी यह तिथि मा त्वान् लिन ने चीनी दूत के आधार पर दी थी जो सम्राट की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् भारत में आया था।

प्राचीन कन्नौज के सम्बन्ध में ह्वेनसांग द्वारा दिए गये उल्लेख की नगर के वर्तमान अवशेषों से तुलना करने से मुझे दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि मैं किसी भी स्थान को निश्चित रूप से पहचानने में असमर्थ रहा हूँ क्योंकि मुसलमानों ने हिन्दू अधिकार के प्रत्येक चिह्न को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया है। जन साधारण की प्रथाओं के अनुसार प्राचीन नगर उत्तर में राजघाट के समीप हाजी हरमायन की समाधि से लेकर दक्षिण में तीन मील की दूरी पर मीरन की सराय तक विस्तृत था। कहा जाता है कि पश्चिम में यह नगर हाजी हरमायन से लगभग तीन मील की दूरी पर अन्तर्स्थित कपत्या तथा मकरन्द नगर के दो ग्रामों तक विस्तृत था। पूर्व की ओर इसकी सीमा पुरानी गङ्गा नदी तक थी जिसे जन साधारण छोटी गङ्गा कहा करते हैं। यद्यपि हमारे मानचित्रों में इसे काली नदी लिखा गया है। उनका कथन है कि काली अथवा कालिन्दी नदी पूर्व काल में सङ्गरामपुर अथवा सम्रामपुर के समीप गङ्गा नदी में मिलती थी परन्तु अनेक सहस्र वर्षों पूर्व यह विशाल नदी इस बिन्दु से उत्तर की ओर मुड़ गई जबकि काली नदी इसी मार्ग से निरन्तर बहती रही। चाक सम्रामपुर तथा काली नदी के मध्य एक सूखा मार्ग बना हुआ है। अतः मुझे विश्वास है कि प्रचलित विवरण शुद्ध है तथा कन्नौज से नीचे सम्रामपुर से महन्दीघाट तक नदी मार्ग यद्यपि मुख्य रूप से अब काली नदी के जल से भरा रहता है परन्तु मूल रूप से यहाँ गङ्गा की मुख्य धारा थी। अतः फाहियान तथा ह्वेनसांग जिन्होंने कन्नौज को गङ्गा नदी के तट पर बताया है के विवरण की न केवल जन साधारण की प्रथाओं द्वारा पुष्टि होती है वरन् इस तथ्य से भी इसकी पुष्टि होती है कि प्राचीन मार्ग छोटी गङ्गा के नाम से यता हुआ है। कन्नौज का आधुनिक नगर सम्पूर्ण कस्बा अथवा दुर्ग सहित प्राचीन नगर के स्थान के केवल उत्तरी छोर पर बसा हुआ है। इसकी सीमाएँ उत्तर में हाजी हरमयान की समाधि से दक्षिण पश्चिम में ताज बाज के मकबरे से तथा दक्षिण पूर्व में मखदूम जहानियाँ के मकबरे से सुनिश्चित हैं। नगर में विशेषतया दुर्ग के भीतरी भवन अधिक फैले हुए हैं और इस प्रकार यद्यपि नगर एक वर्ग मील में फैला हुआ है तथापि इसकी जनसंख्या १६,००० से अधिक नहीं है। दुर्ग जो ऊँचे टीले पर पूर्णतया फैला हुआ है आकार में त्रिभुजाकार है। इसका उत्तरी बिन्दु हाजी हरमयान की समाधि है दक्षिण पश्चिमी कोण अजयपाल का मन्दिर एवं दक्षिण पूर्वी कोण क्षेम कली बुर्ज नाम विशाल बुर्ज है। प्रत्येक किनारा ४००० फुट लम्बा है। उत्तर पश्चिमी किनारा बिना नाम के सूखे नाले से सुरक्षित है उत्तर पूर्वी किनारा छोटी गङ्गा से जबकि दक्षिणी किनारा खाई से घिरा होगा जो अब नगर की एक मुख्य सड़क है। यह सड़क टीले के अधोभाग के साथ साथ अजयपाल के मन्दिर से नीचे पुल से लेकर क्षेम कली बुर्ज तक जाती है। उत्तर पूर्वी किनारे पर यह टीला नदी तट

के निचले भू भाग से ६० तथा ७० फुट ऊंचा उठ जाता है ज्बकि उत्तर पश्चिम में नगर की ओर इसकी ऊंचाई ४० से ५० फुट तक है। दक्षिणी किनारे पर यह अजय पाल के मन्दिर के ठीक नीचे ३० फुट से अधिक नही है परन्तु बाला पीर के मकबरे के नीचे ४० फुट ऊंचा उठ जाता है। इसकी स्थिति सुदृढ है और तोप के प्रयोग से पूर्व अपनी ऊंचाई के कारण ही कन्नौज एक सुदृढ एवं महत्वपूर्ण स्थान बन गया होगा। जन साधारण नगर के दो द्वारो की ओर संकेत करते है, एक उत्तर की ओर हाजी हरमयान की समाधि से समीप, दूसरा दक्षिण पूर्व मे क्षेम काली बुर्ज के समीप। चूंकि यह दोनो द्वार नदी की ओर खुलते हैं अत तीसरा द्वार दक्षिण पश्चिम मे स्थल भाग की ओर रहा होगा और इसका सर्वाधिक सम्भावित स्थान रङ्ग महल की दीवारो के नीचे एव अजय पाल के मन्दिर के समीप प्रतीत होता है।

प्रथाओ के अनुसार प्राचीन नगर मे ८४ महल थे जिनमे २५ महल वर्तमान नगर की सीमाओ मे अब भी खडे हैं। यदि हम २५ महलो के स्थान को एक वर्ग मील का तीन चौथाई भाग स्वीकार कर लें तो प्राचीन नगर के ८४ महल २½ वर्ग मील मे विस्तृत रहे होंगे। यह आकार ह्वेनसाग द्वारा नगर के बताये गये आकार से मिलता है जिसके अनुसार इसकी लम्बाई २० ली अथवा ३⅓ मील तथा चौडाई ४ अथवा ५ ली अथवा एक वर्ग मील की तीन चौथाई भाग थी। दोनो को मिला कर नगर का क्षेत्र २½ वर्ग मील था। वर्तमान खण्डहरो के स्थान से लगभग यही सीमायें निर्धारित होती हैं। यह खण्डहर कन्नौज मे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त प्राचीन मुद्राओ को प्राप्त करने के मुख्य स्थान हैं। व्यापारियो के अनुसार प्राचीन मुद्रायें दुर्ग के भीतर बालापीर तथा रङ्ग महल मे, दुर्ग के दक्षिण पूर्व मे मखदूम जहानियाँ अथवा मुख्य मार्ग पर मकरन्द नगर मे तथा सिंह भवानी एवं कुटलुपुर के छोटे ग्रामो मे प्राप्त होती हैं। अन्य एक मात्र उत्पादक स्थान कन्नौज से तीन मील दक्षिण पूर्व मे छोटी गङ्गा के तट पर ईंटों से ढका एक प्राचीन टीला बताया जाता है जिसे राजगीर कहा जाता है। इन सभी प्रमाणो पर विचार करने से मुझे यह प्राय निश्चित प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग के समय का प्राचीन नगर गङ्गा (अब छोटी गङ्गा) नदी के तट पर क्षेम, काली बुर्ज तथा हाजी हरमयान से लेकर दक्षिण पश्चिम दिशा मे जरनैली सडक पर तीन मील दूर मकरन्द नगर तक विस्तृत था जिसकी सामान्य चौडाई लगभग एक मील अथवा कुछ कम थी। इन सीमाओ के भीतर वह सभी खण्डहर मिलते हैं जो किसी समय के प्रसिद्ध नगर कन्नौज के स्थान की ओर संकेत करते हैं।

अयूतो

कन्नौज से आगे दोनों तीर्थ यात्रियो ने भिन्न मार्गों का अनुसरण किया था। फा हियान सीधे शा ची (घाघरा के तट पर फैजाबाद के समान आधुनिक अयोध्या) गया था जबकि ह्वेनसांग गङ्गा के मार्ग का अनुसरण करता हुआ प्रयाग अथवा

इलाहाबाद तक चला गया था। फिर भी दोनों तीर्थ-यात्रियों का प्रथम पड़ाव एक समान प्रतीत होता है। फाहियान का कथन है कि गङ्गा नदी को पार करने के पश्चात् वह तीन योजन अथवा २१ मील दक्षिण की ओर होलीवन तक गया था जहाँ उन स्थानों पर अनेक स्तूप बनवाए गये थे जिन स्थानों से बुद्ध "गये थे, चले थे अथवा बैठे थे।" ह्वेनसांग ने लिखा है कि उसने नवदेव कुल के नगर तक जो गङ्गा नदी के पूर्वी तट पर था—१०० ली अथवा लगभग १७ मील की यात्रा की थी तथा ५ ली अथवा लगभग १ मील की दूरी तक नगर के दक्षिण पूर्व मे अशोक का एक स्तूप था जो १०० फुट ऊंचा था। इसके अतिरिक्त यहाँ पिछले चार बुद्धों की स्मृति में बनवाए गये कुछ अन्य स्मारक थे। मेरे विचार मे यह दोनो स्थान सम्भवत एक समान है तथा यह स्थान इसान नदी के सगम स्थान से ठीक ऊपर तथा नानामऊ घाट के विपरीत नोबतगंज के समीप किसी स्थान पर था। परन्तु चूँकि वतमान समय में इस क्षेत्र में आस पास खण्डहर नही हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह खण्डहर नदी की बाढ मे बह गये हैं। इसान के सगम से नीचे गङ्गा नदी के निरीक्षण से उपयुक्त अनुमान प्राय निश्चित हो जाता है। प्रारम्भ मे नदी नानामऊ से अनेक मीलों तक ठीक दक्षिण की ओर बहती थी। परन्तु कुछ शताब्दी पूर्व इसने अपना मार्ग बदल दिया। प्रथम ४ अथवा ५ मील तक दक्षिण पूर्व की ओर और तदुपरान्त समान दूरी तक दक्षिण पश्चिम की ओर, जहा यह पुराने मार्ग में मिल जाती थी। इस प्रकार दोनो धाराओं के मध्य लगभग ६ मील लम्बा एव चार मील लम्बा द्वीप बन गया था। चूंकि ह्वेनसाग के विवरण में नवदेव कुल को इस द्वीप के इसी स्थान पर दिखाया गया है। अतः मेरा अनुमान है कि नगर एव बौद्ध मठ, सभी नदी मार्ग के परिवर्तन के कारण बह गये थे।

सभी छोटी दूरियों में त्रुटि का सम्भावित कारण कोस के स्थान पर योजन मे लिखा जाता था। जिससे यह दूरियां चार गुणा अधिक हो गई। यदि नवदेवकुल के सम्बन्ध में यही त्रुटि की गई थी तो वास्तविक दूरी १७ मील के स्थान पर २५ ली अथवा ४ मील से कुछ अधिक होती। अब कन्नौज के चार मील दक्षिण पूर्व में इसी स्थिति मे छोटा गङ्गा के तट पर दयोकली नामक प्रसिद्ध स्थान है जो प्रथम दो अक्षरों नव के छोड़ देने से तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये नाम के समान है।

नव देव कुल छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसाग ६०० ली अथवा १०० मील दक्षिण-पूर्व की ओर गया तथा गङ्गा नदी को पुन पार करने से आ यू तो नामक राजधानी मे पहुँचा था जिसकी परिधि २० ली अथवा ३ मील से अधिक थी।। एम० जुलीन तथा ए० वी० सन मार्टेन, दोनो ने इस स्थान को राम की प्रसिद्ध राजधानी अयोध्या के अनुरूप प्रसिद्ध स्वीकार किया है। मैं अयूध के रूप मे नाम के सम्भावित पाठ का स्वीकार करता हूँ। परन्तु मैं घाघरा नदी के साथ साथ राजधानी को ढूंढने में उनसे पूर्णतयः असहमत हूँ क्योंकि यह कन्नौज के ठीक पूर्व में है जबकि ह्वेनसाग ने लिखा है

कि उसका मार्ग दक्षिण पूर्व की ओर था। फिर भी यह प्रायः असम्भव है कि तीर्थ यात्री किसी भी बड़ी नदी, उदाहरणार्थ कम्पिल के निकट गङ्गा के उत्तरी भाग को उतारने में नाव का प्रयोग किया होगा। परन्तु प्रस्तुत स्थिति में उसी दक्षिण पूर्व का कथित स्थान गङ्गा नदी के मार्ग में मिलता है। इस विषय में यह प्रायः निश्चित है कि गङ्गा नदी का मार्ग यात्री द्वारा अनुसरित नहीं थी। परन्तु गङ्गा के मार्ग को अपनाने में हमें कन्नौज तथा प्रयाग के दो प्रसिद्ध स्थानों के बीच की दूरी के आंकड़ों के रूप में एक भिन्न प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता है। ह्वेनसांग के मार्ग के अनुसार वह सब प्रथम १०० ली की दूरी पर नव-देव कुल गया था। तत्पश्चात् ६०० ली की दूरी पर आयुधों, ३०० ली उस मार्ग से हयमुख तथा अन्त में ७०० ली की दूरी पर प्रयाग पहुँच गया था। इन सभी दूरियों को मिला कर कुल दूरी १७०० ली अथवा २८३ मील हो जाता है जो वास्तविक दूरी से प्रायः १०० मील अथवा ६०० ली अधिक है। परन्तु यदि यात्रा का एक भाग अर्थात् ३०० ली अथवा ५० मील जल मार्ग द्वारा पूरा किया गया था। अतः वास्तविक भिन्नता लगभग ८६ मील अथवा ९० मील से अधिक नहीं रही होगी। यद्यपि यह सन्देहपूर्ण है कि ३०० ली की दूरी नदी मार्ग न होकर स्थल मार्ग की दूरी न रही हो। हमारे उद्देश्य के लिए इतनी जानकारी पर्याप्त है कि ह्वेनसांग के कथित आंकड़े वास्तविक आंकड़ों से लगभग १०० मील अधिक है। इस त्रुटि का एक मात्र उत्तर यह हो सकता है कि किसी एक संख्या में परिवर्तन हो गया हो जैसे ६०० ली के स्थान पर ६० ली अथवा ७० मील के स्थान पर ७०० ली। प्रथम संख्या की त्रुटि को स्वीकार करने से कुल दूरी ५४० ली अथवा ९० मील घट जायगी जबकि दूसरी संख्या की त्रुटि को स्वीकार करने से इस दूरी में ६३० ली अथवा १०८ मील की कमी हो जायेगी। इस प्रकार की त्रुटि से तीर्थ यात्री द्वारा दी गई दूरी कन्नौज तथा प्रयाग के बीच १८० मील की वास्तविक दूरी से मिल जायगी।

प्रथम अनुमान को स्वीकार करने से नव-देव कुल से आयुधा की राजधानी तक ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरी केवल ६० ली अथवा १० मील होगी जो उसे स्योराजपुर के प्रायः एक मील उत्तर में तथा कानपुर के २० मील उत्तर पश्चिम में काकूपुर नामक प्राचीन नगर के स्थान पर ले जाये गी। पश्चात्वर्ती मार्ग काकूपुर से नाव द्वारा दौण्डिया खेड़ा तक ठीक ५० मील अथवा ३०० ली रहा होगा। तथा वहाँ से प्रयाग तक १०० मील से अधिक दूरी रही होगी जो तीर्थ यात्री की ७०० ली अथवा १०० मील की दूरी से मिलती है। द्वितीय अनुमान से पश्चात्वर्ती मार्ग कड़ा से पापामऊ (फाफामऊ) तक जल मार्ग द्वारा लगभग ५० मील रहा होगा तथा वहाँ से प्रयाग तक स्थल दूरी लगभग ८ मील रही होगी जो प्रस्तावित शुद्धि की ७० ली से मिलती है। अन्तिम अनुमान के पक्ष में यह तथ्य प्रस्तुत किया जा सकता है कि कड़ा से फाफामऊ

तक दक्षिण पूर्वी दिकाश काकूपुर से दौण्डियाखेडा के दक्षिण पूर्वी दिकाश की अपेक्षा ह्वेनसांग की कथित पूर्वी दिशा से अधिक मिलता है। फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं प्रथम शुद्धि को अपनाने का अधिक इच्छुक हूँ जिससे अयूतो का मुख्य नगर काकूपुर के स्थान गौण्डियाखेडा पर तथा हयामुख का नगर दौण्डियाखेडा के स्थान पर निश्चित होता है क्योंकि हम जानते है कि अंतिम नगरी अधिक समय तक वैस राजपूतों की राजधानी थी। मैं आंशिक रूप से इस विचार को एक सन्देह के कारण स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि काकूपुर का नाम तिब्बती ग्रन्थों के बागूद अथवा बागूद नागूद नाम से सम्बन्धित हो सकता है। इनके अनुसार शामशक नामक एक शाक्य कपिला से निर्वासित होने पर बागूद चला गया था तथा अपने साथ बुद्ध के कुल वंश तथा कटे हुए नाखून ले गया था जिन पर उसने एक चैत्य का निर्माण करवाया था। उसे बागूद का राजा बना लिया गया तथा इस स्मारक को उसका नाम दिया गया (शम्नक स्तूप)। बागूद की स्थिति का संकेत नहीं दिया गया है परन्तु चूँकि मुझे इससे मिलते-जुलते अन्य किसी नाम की जानकारी नहीं है अतः मैं यह अनुमान लगाने का इच्छुक हूँ कि यह स्थान सम्भवतः ह्वेनसांग के अयूतो अथवा अयूत्त के समान है। दोनों नामों में उल्लेख नीय समानता है और चूंकि दोनों स्थानों पर बुद्ध के केश एवम् नाखून के अंशों सहित एक एक स्तूप है अतः मेरा विचार है कि दोनों की अनुरूपता को स्वीकार करने के कुछ ठोस प्रमाण प्राप्त हैं।

काकूपुर, कन्नौज की जनता में प्रसिद्ध है जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि यह नगर किसी समय निजी राजा के अधीन विशाल नगर था। यह बिठूर के ठीक १० मील अथवा ५ कोस उत्तर पश्चिम में है और दोनों स्थानों के मध्यवर्ती क्षेत्र को 'पञ्च कोसी भीतर उत्पलारण्य कहा जाता है। कहा जाता है कि काकूपुर का ध्वस्त टीला छत्रपुर नामक दुर्ग का अवशेष है जिसे ६०० वर्ष पूर्व राजा छत्र पाल चन्देल ने बनवाया था। काकूपुर में बाणेश्वर महादेव तथा द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा के मंदिर हैं जिनके समीप प्रति वर्ष समारोह होता है। इन बातों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि यह स्थान पूर्ववर्ती समय में महत्वपूर्ण रहा होगा जबकि अश्वत्थामा का नाम इसे महाभारत काल से सम्बन्धित करता है।

ह्वेनसांग के अनुसार आयूतो की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी जो सभी सम्भावनाओं से अधिक है और मैं निस्संकोच इसे अस्वीकार करता हूँ। सम्भवतः हमें ५०० ली अथवा ८३ मील पढ़ना चाहिये जिससे इसकी सीमायें काकूपुर तथा कान-पुर के मध्यवर्ती क्षेत्र तक सीमित हो जायेगी तथा हयामुख के आगामी जिले के लिये स्थान बन जायेगा।

हयामुख

आयूतो से तीर्थ यात्री गङ्गा नदी के मार्ग से नाव द्वारा ३०० ली अथवा ५०

मील दूर ओ यी यू खी तक गया था जो नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित था। एम० जुलीन ने इस नाम को हयामुख पढ़ा है परन्तु इसे सम्भवत अयोमुख अथवा "लोह मुख" पढ़ा जा सकता है जो प्राचीन दानवों का एक नाम था। इनमें कोई भी नाम पुराने नगर के स्थान की ओर संकेत नहीं करता है परन्तु यदि अयूनो को दौण्डिया-खेडा के अनुरूप स्वीकार करने का मेरा प्रस्ताव उचित है तो यह निश्चित है कि हया-मुख गङ्गा नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित दौण्डिया खेडा था। ह्वेनसाग के अनुसार नगर की परिधि २० ली अथवा ३ मील थी परन्तु आकार से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि दौण्डियाखेडा किसी भी समय इतना विस्तृत रहा हो। अब भी यहाँ १ ५ फुट वर्गाकार ध्वस्त दुर्ग एवम दो भवनों की दीवारों को देखा जा सकता है जिन्हे राजा एव रानी का महल बताया जाता है। परन्तु चूकि यह स्वीकार किया जाता है कि दौण्डियाखेडा बैस राजपूतो की राजधानी थी जिन्होने अवध मे बैसवाड जिले को अपना नाम दिया था, यह निश्चित है कि यह स्थान किसी समय अधिक विस्तृत रहा हो। दौण्डिया अथवा डौण्डिया का अर्थ है 'ढोल बजाने वाला' और सभवत किसी सयासी के लिये प्रयोग मे लाया गया होगा जिसने खेडा अथवा 'टीला' पर अपना निवास स्थान बनाया था और चूंकि टोन के ध्वस्त हो जाने तक यह नाम नही लिया गया था अत नामो की भिन्नता से दौण्डियाखेडा को हयामुख के अनुरूप स्वीकार करने मे कोई बाधा खडी नही होती।

ह्वेनसाग के अनुसार हयमुख की परिधि २५०० ली अथवा ४१७ मील थी जो सम्भवत बहुत अधिक है। परन्तु चूकि दौण्डिया खेडा बैस राजपूतो की राजधानी थी अत मेरा निष्कर्ष है कि जिले मे वतमान बैसवाड का सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित रहा होगा जो कानपुर से सलोन तक सई तथा गङ्गा नदियो का मध्यवर्ती क्षेत्र है। परन्तु चूकि इन सीमाओ के भीतर इसकी परिधि केवल २०० मील है यह प्राय निश्चित प्रतीत होता है कि ह्वेनसाग के समय मे यह जिला गङ्गा नदी के दक्षिण की ओर विस्तृत था। अत इसकी सम्भावित सीमायें उत्तर म गङ्गा एव दक्षिण म यमुना थी और इस सम्भावना को टाड का समर्थन प्राप्त है। जिन्होने बैसवाड का गङ्गा एव यमुना के मध्यवर्ती दोआब का एक विस्तृत जिला कहा है।

प्रयाग

हयामुख स तीर्थ यात्री ६०० ली अथवा ११६ मील दक्षिण पूर्व म प्रयाग तक गया था जो गङ्गा एव यमुना के सङ्गम पर एक तीर्थ स्थान था, एव जहाँ कुछ शताब्दियों के बाद अकबर ने इलाहाबाद का दुर्ग बनवाया था जिसे शाहजहाँ ने अलाहाबाद का नाम दिया था। ह्वेनसाग द्वारा बताई गई दूरी एव दिशा दौण्डिया खेडा से प्रयाग की दूरी एव दिशा से ठीक-ठीक मिलता है। गङ्गा के

दक्षिण में निकटतम भाग से इसकी दूरी १०४ मील है। परन्तु चूँकि तीर्थ यात्री ने उत्तरी भाग का अनुसरण किया था, इसकी दूरी बढ कर ११५ अथवा १२० मील रही होगी। उसके अनुसार नगर दो नदियों के सङ्गम स्थान पर एव एक विशाल रेतीले समतल के पश्चिम म अवस्थित था। नगर के मध्य मे ब्राह्मणो का एक मन्दिर था। जहाँ एक मुद्रा के दान से उतना ही पुण्य प्राप्त होता था जितना अन्य स्थानों पर १००० मुद्राओ क दान से हो सकता है। मन्दिर के मुख्य कक्ष के सम्मुख दूर दूर तक फैली हुई शाखाओ सहित एक विशाल वृक्ष था जिसे एक नर भक्षी राक्षस का निवासस्थान बताया जाता था। यह वृक्ष उन तीर्थ यात्रियो के अवशेष स्वरूप हड्डियो से घिरा हुआ था जो मन्दिर के सम्मुख अपना जीवन बलिदान करते थे। यह प्रथा आदि काल से चली आ रही थी।

मेरे विचार से इसम सन्देह नही कि तीर्थ यात्री द्वारा बताया गया प्रसिद्ध वृक्ष सर्व ज्ञात अक्षय वट है जो आज भी इलाहाबाद के स्थान पर पूजा की वस्तु है। यह वृक्ष अब भूमि के नीचे एक छाये हुए आँगन मे है जो पूर्ववर्ती समय में खुला था एव जो मेरे विश्वासानुसार ह्वेनसाग द्वारा बताए गये मन्दिर का अवशेष है। यह मन्दिर इलाहाबाद दुर्ग के अन्दर एलनवरो बैरको क पूर्व मे तथा अशोक एव समुद्र गुप्त के स्तूप के ठीक उत्तर मे अवस्थित है। अत सातवीं शताब्दी का नगर इसी स्थान पर रहा होगा और यह वृक्ष की वर्तमान स्थिति के अनुरूप है क्योकि मूल रूप से वृक्ष एवम् मन्दिर दानो ही प्राकृतिक भूमि स्तर पर रहे होंगे परन्तु मलवे के निरन्तर एकत्रित होने के कारण यह दोनो मिट्टी के नीचे दब गये और अन्त म मन्दिर का सम्पूर्ण निचला भाग भूमिगत हो गया। ऊपरी भाग काफी समय पूर्व से हटा दिया गया है तथा अब अक्षय वट देखने के लिये सीढ़ियो से होकर जाना पडता है जो छाये हुए एक चकोर आँगन की ओर जाती है। यह आँगन प्रत्यक्ष रूप से पूर्व काल म खुला हुआ था परन्तु पवित्र गूलर वृक्ष के अधेरे म रखने एव रहस्य पूर्ण बनाने के लिय पूरी तरह ढक दिया गया है।

तदुपरान्त अक्षय वट का उल्लेख रशीदुद्दीन ने जमाउत-तवारीख में किया है, जिसम उसने लिखा है कि प्रयाग का वृक्ष यमुना एव गङ्गा के सङ्गम पर अवस्थित है। चूँकि उसने अधिकाश सूचनायें अलबरुहान से ली थीं। अत इस उल्लेख की तिथि को सम्भवत महमूद गजनी के समय से सम्बन्धित किया जा सकता है। सातवी शताब्दी म नगर एव नदियो के सङ्गम स्थान क मध्य एक रेतीला मैदान था जिसकी परिधि १० मील थी और चूँकि अक्षय वट नगर के मध्य में था, अत यह सङ्गम स्थान से कम से कम एक मील दूर रहा होगा। परन्तु नौ शताब्दियों पश्चात अकबर के शासन काल के प्रारम्भ म अब्दुल कादिर ने लिखा है कि "गङ्गायमुना सङ्गम के सही

म छलाङ्ग लगाया करते थे।' इस कथन से मेरा अनुमान है कि ह्वेनसाग एवम् अकबर के मध्यवर्ती दीघ काल म दोनो नदियो ने धीरे-धीरे सम्पूर्ण विशाल रेतील मैदान को काट दिया तथा नगर की सीमा तक आ गई जिसमे पवित्र वृक्ष जल के किनारे आ गया। इसमे स देह नहीं कि इससे काफी समय पूर्व यह नगर निजन हो चुका था क्योकि हम जानते हैं कि अकबर के शासन काल के २१ वें वर्ष अर्थात् ६८२ हिजरी अथवा १५७२ इसवी मे इलाहाबाद का दुर्ग इसी स्थान पर बनवाया गया था। वस्तुत प्रयाग नगर के स्थान पर वृक्ष के सम्बन्ध म अबुरेहान के कथन स मुझे ऐसा यह विश्वास होता है कि नगर उसके समय स काफी समय पूर्व निजन हो चुका था। जहाँ तक मुझे ज्ञात है कि अकबर द्वारा पुनर्निर्माण के समय तक किसी भी मुस्लिम इतिहास म इसका एक बार भी नही उल्लेख किया गया।

जन साधारण की सामान्य प्रथा के अनुसार प्रयाग का नाम एक ब्राह्मण से लिया गया था जो अकबर के शासन काल मे वहाँ रहता था। यह कथा इस प्रकार है कि जब सम्राट दुर्ग का निर्माण करवा रहे थे तो कलाकारो द्वारा सावधानी बरतने के बावजूद नदी की ओर की दीवारें बारम्बार गिर जाती थी। बुद्धिमान व्यक्तियो से विचार विमर्श करने पर अकबर को सूचना दी गई कि दीवारो की नींव को केवल मानव रक्त स सुरक्षित किया जा सकता है। तदोनुपरान्त घोषणा किये जाने पर प्रयाग नामक एक ब्राह्मण ने स्वेच्छा पूवक अपना जीवन इस शत पर अर्पित किया था कि दुर्ग को उसका नाम दिया जाए। इस निरथक कथा से, जिसे अक्षय वट को देखने के लिए आए तीर्थ यात्रियो को बडे परिश्रम से बताया जाता है कम स कम एक उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करता है कि इन स्थानीय प्रथाओ म अधिक विश्वास नही करना चाहिए। सातवीं शताब्दी मे ह्वेनसाग ने प्रयाग के नाम का उल्लेख किया है और सम्भवत यह नाम अशोक के शासन काल का जितना पुराना है जिसने लगभग २३५ ई० पूव मे शिला स्तम्भ का निर्माण करवाया था जबकि सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक दुर्ग का निर्माण नहीं हुआ था। ह्वेनसांग के अनुसार प्रयाग जिले की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। परन्तु चूँकि यह जिला चारो ओर से अन्य जिलों से घिरा हुआ था। अत मैं इस बात स सन्तुष्ट हूँ कि हमे इसके स्थान पर ५०० ली अथवा ८३ मील पढ़ना चाहिए एवम् जिन को गङ्गा तथा यमुना के सगम स्थान से ऊपर दोआब के छोटे प्रदेश तक सीमित समझना चाहिए।

कोशाम्बी

कोशाम्बी नगर प्राचीन भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थानो म गिना जाता था एवम इसका नाम ब्राह्मणों एवम बौद्ध धर्मावलम्बियों म प्रसिद्ध था। कहा जाता है

कि इसकी स्थापना पुरूरवो के दसवें वंशज कुसम्भ ने करवाई थी। परन्तु इसकी ख्याति अर्जुन पाडु के आठवें वंशज चक्र के शासन काल में प्रारम्भ हुई थी जिसने गङ्गा द्वारा हस्तिनापुर को ध्वस्त किए जाने के पश्चात् कोशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था।

हिन्दुओं के प्राचीनतम महाकाव्य रामायण में कोशाम्बी का उल्लेख किया गया है जिसके सम्बन्ध में सामान्य धारणा के अनुसार इस काव्य की रचना ईसवी काल से पूर्व की गई थी। कवि कालिदास ने मेघदूत में कोशाम्बी के राजा उदयन की कथा का उल्लेख किया है जहाँ उसने लिखा है कि—

कालिदास ५०० ईसवी के कुछ समय पश्चात् हुआ था। सोमदेव की बृहत् कथा में उदयन की कथा को पूर्ण विस्तार में दिया गया है परन्तु लेखक ने दो सतानिकों के मध्य वंशानुक्रम में त्रुटि की है। अन्त में कोशाम्बी राज्य अथवा कोसाम्ब मण्डल का उल्लेख कड़ा के दुर्ग के प्रवेश द्वार में एक शिलालेख में किया गया है जिसकी तिथि १०६२ सम्वत् अथवा १०३५ ईसवी है और ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय यह राज्य कन्नौज से स्वतन्त्र था। वत्स राज की राजधानी कोशाम्बी रत्नावली नामक एक रुचिपूर्ण नाटक का स्थान है जो राजा हर्षदेव के शासनकाल में लिखा गया था जो सम्भवतः कन्नौज का हर्षवर्धन है क्योंकि भूमिका में एकत्रित स्तुतियों में 'उसके चरणों में झुके अनेक राजाओं का उल्लेख किया गया है। ह्वेनसांग के आधार पर हमें यह ज्ञात है कि उपर्युक्त बात कन्नौज के शासन के सम्बन्ध में सत्य थी परन्तु जिस काश्मीर के हर्षदेव के सम्बन्ध में कोई एक ब्राह्मण भी ऐसा नहीं कह सकता है। अतः इस उल्लेख की तिथि ६०७ तथा ६५० ईसवी के मध्य रही होगी।

परन्तु कोशाम्बी के राजा उदयन का नाम सम्भवतः बौद्ध धर्मावलम्बियों में बहुत प्रसिद्ध था। महावंश में जिसकी रचना पाँचवीं शताब्दी में की गयी थी बताया गया है कि बौद्ध धर्मावलम्बियों की द्वितीय धार्मिक सभा में कुछ समय पूर्व पवित्र यश वैशाली से भाग कर कोशाम्बी में चले गये थे। ललित विस्तार में जिसका चीनी अनुवाद ७० तथा ७६ ईसवी के मध्य किया गया था अतः जिसकी रचना ईसा काल के प्रारम्भिक समय में की गई थी। कोशाम्बी के राजा सतानिक के पुत्र उदयन वत्स को बुद्ध के जन्म दिवस पर उत्पन्न हुआ बताया गया है। लङ्का की अन्य पुस्तकों में कोशाम्बी को प्राचीन भारत की उन्नीस राजधानियों में एक राजधानी के रूप में दिखाया गया है। तिब्बतियों में उदयन वत्स कोशाम्बी के राजा के रूप में ज्ञात है। रत्नावली में उसे वत्स राज कहा गया है तथा उसकी राजधानी को वत्स पट्टन कहा गया है। अतः यह कोशाम्बी का केवल अन्य नाम है। कहा जाता है कि बुद्ध ने अपने बौद्ध धर्म का छठाँ एवम् नवाँ वर्ष इस प्रसिद्ध नगर में व्यतीत किया था। अन्त में, ह्वेनसांग ने लिखा है कि बुद्ध की लाल चन्दन की काष्ठ प्रतिमा जिस राजा उदयन ने

बुद्ध के जीवन काल में बनवाया था, राजाओं के प्राचीन महल में एक गुम्बद के नीचे खड़ी थी।

इस महान नगर, पश्चातवर्ती पाण्डु राजकुमारों की राजधानी एवम् बुद्ध की सर्वाधिक पवित्र प्रतिमा के स्थान की स्थिति की असफल खोज की गई है। ब्राह्मणों का सामान्य दावा है कि यह स्थान गङ्गा नदी अथवा इसके समीप था और कड़ा दुर्ग के प्रवेश द्वार पर कोशाम्बी मण्डल अथवा कोशाम्बी राज्य के नाम की खोज से इस सामान्य विश्वास की पुष्टि होती है यद्यपि प्रयाग अथवा इलाहाबाद से ह्वेनसांग द्वारा कथित दिशा के अनुसार यमुना पर इस की स्थिति का संकेत मिलता है। जनवरी १८६१ में श्री बेल ने मुझे सूचित किया था कि उन्हें विश्वास है कि प्राचीन कोशाम्बी को इलाहाबाद से लगभग ३० मील ऊपर यमुना नदी पर कोसम नाम के पुराने गाँव में ढूंढा जा सकता है। अगले मास मैं शिक्षा विभाग के बाबू शिव प्रसाद से मिला था जो पुरातत्व विषय में अधिक रुचि रखते थे और उनसे मुझे यह सूचना प्राप्त हुई कि कोसम्ब अब भी कोशाम्बी नगर के रूप में ज्ञात है एवम् इस समय भी जैनियों का एक महान तीर्थ स्थान है। तथा केवल एक शताब्दी पूर्व एक विशाल एवम् समृद्ध नगर था। इस सूचना के आधार पर मुझे पूर्ण सन्तोष है कि कोसम्ब ही किसी समय की प्रसिद्ध नगरी कोशाम्बी का स्थान था। फिर भी ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नहीं थे जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता था कि यह नगर यमुना नदी पर अवस्थित था परन्तु प्रमाणों की शृङ्खला में इस त्रुटि को मैं कुछ ही समय पश्चात् बकुला की विचित्र कथा में प्राप्त कर सका जिसका हार्डी ने विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है। शिशु बकुला ने कोशाम्बी में जन्म लिया था और जिस समय उसकी माता यमुना में स्नान कर रही थी वह, दुर्घटना वश नदी में गिर गया एवम् एक मछली ने उसे निगल लिया और उसे बनारस ले गई। वहाँ पर यह मछली पकड़ कर एक स्त्री को बेच दी गई। मछली को काटते समय उसके पेट से जीवित शिशु निकला और स्त्री ने इस शिशु को पुत्र रूप में ग्रहण कर लिया। अपने शिशु की इस विचित्र रक्षा को सुन कर उसकी वास्तविक माता बनारस गई और शिशु को लौटा लिए जाने की माँग की। यह माँग ठुकरा दी गई तत्पश्चात् इस विषय की राजा को सूचना दी गई जिसने यह निर्णय किया कि दोनों स्त्रियां बच्चे की माताएं हैं। एक जन्म देने के कारण, दूसरी उसकी रक्षा और लालन पालन करने के कारण। तदनुसार शिशु का नाम बकुला अर्थात् 'दो कुलों' का रखा गया। वह बिना अस्वस्थ्य हुए ९० वर्ष की आयु तक पहुँच गया, जब बुद्ध की शिक्षाओं से उसने धर्म परिवर्तन स्वीकार किया। बुद्ध ने उसे "अपने शिष्यों व उस वर्ग का नेता नियुक्त किया जो रोग मुक्त था। कहा जाता है कि तत्पश्चात अरहट अथवा बौद्ध भिक्षु बनने के बाद ६० वर्षों तक जीवित रहा।

चूंकि बकुला की यह कथा इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि

कोशाम्बी यमुना तट पर अवस्थित थी, अब केवल यह देखना है कि इलाहाबाद से कोसम की दूरी ह्वेनसाग द्वारा प्रयाग एवं कोशाम्बी की बताई गई दूरी से मिलती है। दुर्भाग्यवश चीनी तीर्थ यात्री की यात्राओं के वर्णन एवं जीवनी में यह दूरी भिन्न-भिन्न दी गई है। जीवनी में दी यह दूरी ५० ली है जबकि यात्राओं के विवरण में इसे ५०० ली लिखा गया है। चीन वासी के समय तीर्थ यात्री ने लिखा है कि प्रयाग एवं कोशाम्बी के मध्य उसने विशाल वनों एवं नंगे मैदानों से होकर सात दिवसीय यात्रा की थी। अब, चूंकि कोसम ग्राम इलाहाबाद के दुर्ग से केवल ३१ मील की दूरी पर है अतः अन्तिम कथन से कोसम एवं कोशाम्बी की अनुरूपता की सभी सम्भावनायें लुप्त हो जायगी। परन्तु आश्चर्य है कि इसी कथन में इनकी अनुरूपता का सर्वाधिक सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त होता है क्योंकि बताया जाता है कि मद्धिमा तक तीर्थ यात्री का पश्चात्वर्ती भाग एक माह में पूरा किया जा सका था और चूंकि प्रयाग से मद्धिमा की कुल दूरी केवल २०० मील है अतः तीर्थ यात्री की प्रतिदिन की औसत यात्रा ५½ मील से अधिक नहीं थी। इस धीमी प्रगति का सर्वाधिक सन्तोषजनक उत्तर इस तथ्य से प्राप्त किया जा सकता है कि प्रयाग से मद्धिमा की यात्रा धार्मिक यात्रा थी जिसका नेतृत्व स्वयं कन्नौज के सम्राट हर्ष वर्धन कर रहे थे और उनके साथ भारतीयों के अपार समूह एवं सहस्रों बौद्ध भिक्षुओं के अतिरिक्त कम से कम १८ अधीन राजा थे। इस गणना के अनुसार प्रयाग से कोशाम्बी की दूरी ३८ मील रही होगी जो वास्तविक मार्ग दूरी से ठीक ठीक मिलती है। मैंने कोसम जाते हुए इसकी दूरी ३७ मील आंकी थी जबकि अन्य मार्ग से वापसी पर यह दूरी ३५ मील आंकी गई थी। ह्वेनसाग की ५० ली एवं ५०० ली की भिन्न भिन्न दूरियों का एक मात्र सम्भावित उत्तर मेरे विचारानुसार इस तथ्य में ढूंढा जा सकता है कि चूंकि उसने भारतीय योजन को ४० ली प्रति योजन अथवा १० ली प्रति कोस की दर से चीनी ली में परिवर्तन किया था अतः उसने १५ कोस के स्थान पर १५० ली लिखा होगा जो कोसम की जनता के सामान्य विश्वासानुसार इलाहाबाद एवं कोसम के मध्य वास्तविक दूरी है परन्तु चाहे यह उत्तर शुद्ध है अथवा नहीं यह पूर्णतया निश्चित है कि कोसम प्राचीन कोशाम्बी के वास्तविक स्थान पर अवस्थित है क्योंकि न केवल जनसाधारण स्वयं यह दावा करते है वरन् अकबर के समय के एक शिलालेख में इसका विशेष उल्लेख किया गया है। खण्डहरों के मध्य खड़े विशाल स्तूप पर लिखा हुआ है कि यह कोशाम्बीपुर है।

कोशाम्बी के वर्तमान खण्डहरों में मिट्टी की दीवारें एवं दुर्ग की रक्षा हेतु बनाये बुर्ज सम्मिलित हैं जिनकी परिधि २३,१०० फुट अथवा ठीक चार मील तीन फर्लांग है। दीवारों की सामान्य ऊंचाई सामान्य स्तर से ३० से ३५ फुट है परन्तु बुर्ज अधिक ऊंचे हैं। उत्तरी बुर्ज ५० फुट ऊंचे हैं जबकि दक्षिणी पश्चिमी एवं [illegible]

ये ढूह ६० फुट से अधिक ऊँचे हैं। पूर्व काल में दुर्ग के चारों ओर खाइयाँ थीं परन्तु वर्तमान समय में सिर्फ दीवार के नीचे कुछ खोखली खाइयाँ हैं। उसकी दीवार की लम्बाई ४५०० फुट है, दक्षिणी दीवार ६००० फुट, पूर्वी दीवार ७५०० फुट तथा पश्चिमी दीवार ५१०० फुट लम्बी है अथवा कुल मिलाकर इसकी माप २३,१०० फुट है। उत्तरी एवं दक्षिणी दीवारों की लम्बाई में भिन्नता इस कारण था कि दुर्ग का विस्तार ... परन्तु मेरा विश्वास है कि पश्चिमी एवं पूर्वी दीवारों की लम्बाई में भिन्नता मूलतया यमुना के कटाव के कारण है जिसने दीवारों का दक्षिण पश्चिमी कोना बहा ले जाने के कारण छोटा हो गया था। अब दक्षिण दिशा में पश्चिमी दीवार का अन्त भाग का कोना गिर गया है और गड्ढा मात्र ही ... के ऊपर मरघटी पहाड़ के किनारे पर बना हुआ है। दुर्ग के दक्षिण पश्चिमी कोने पर का ... पुन ... चार मील की दूरी तक नदी की पहुँच ३०° उत्तर पूर्व है जबकि ह्वेनसांग के समय में कोशाम्बी के दक्षिण पश्चिम में १½ मील की दूरी पर एक पुराना ... स्तूप थे। इन सभी समान परिस्थितियों के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि दुर्ग का पश्चिम दीवार मूल रूप से लगभग उतना ही लम्बा था जितना पूर्वी दीवार। इस प्रकार पश्चिमी दीवार की लम्बाई में २४०० फुट अथवा लगभग आधे मील की वृद्धि हो जायेगी तथा दीवारों की सम्पूर्ण परिधि बढ़ कर ४ मील ७ फर्लांग हो जायेगी जो ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरी अर्थात् ३० ली अथवा ५ मील के माप से केवल एक फर्लांग कम है। अतः नाम आकार एवं स्थिति, इन तीनों बातों में वर्तमान कोसम, सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग द्वारा वर्णित प्राचीन कोशाम्बी से ठीक ठीक मिलता है।

ह्वेनसांग के अनुसार कोशाम्बी की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी जो मूलतया असम्भव है क्योंकि यह नगर चारों ओर मगोर ... अन्य जिलों से घिरा हुआ था। अतः मैं सहस्र के स्थान पर सौ पढूँगा एवं इस जिले की परिधि को ६०० ली अथवा १०० मील निर्धारित करूँगा।

कुशपुरा

कोशाम्बी से चीनी तीर्थ यात्री ने उत्तर पूर्व दिशा में एक विस्तृत वन से होकर गङ्गा नदी तक यात्रा की और नदी को पार करने के पश्चात् वह उत्तर की ओर मुड़ गया और ७०० ली अथवा ११७ मील की दूरी पर किया शी पु-लो नगर में पहुँचा जिसे एम० जुलीन ने उचित रूप से कसपुरा पढ़ा है। (१) इस नगर की स्थिति को

(१) एम० जुलीन की 'ह्वेनसांग' नामक पुस्तक के अनुसार तीर्थ यात्री की 'जीवनी' में कुशपुरा का कोई उल्लेख नहीं किया गया है एवं कोशाम्बी से विशाखा की दूरी ५०० ली पूर्व बताई गई है।

निर्धारित करने म तीर्थ यात्री का विमाखा तक १७० लो से १८० ली अथवा २८ स ३० मील का पश्चानवर्नी माग काशाम्बी से िकाश एवम दूरी के समान म.त्वपूण है क्योंकि ह्वेनसाग का विमाखा, जैसा कि मैं अभी बताऊगा, फाह्यान क साची तथा हिदुओ द सारेत अथवा अयोध्या क समान है और इस प्रकार अपनी खोज म हमे अपने निर्देशन हेतु कोशाम्बी एवम अयोध्या क दो सुनिश्चित बिन्दु प्राप्त हो जात हैं। मानचित्र पर देखने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोमती (अथवा गुमती) नदी पर अवस्थित सुल्तानपुर का पुराना नगर इङ्गित स्थान पर अवस्थित है। अब इस नगर का हिदु नाम कुशभवनपुर अथवा साधारण कुशपुरा या जो ह्वेनसाग द्वारा दिये गये नाम के प्राय समान है। श्री बेने द्वारा राजा मानसिंह से उधृत सूचना का ध्यान म रखते हुए कि 'सुल्तानपुर क समीप एक स्तूप था।' मैंने तत्कालिक निजन नगर क एक ओर अपना पडाव डाला एवम् सम्पूर्ण स्थान की सावधानी पूर्वक खोज की परन्तु मेरी खोज व्यर्थ गई। न तो मैं किसी स्तूप के चिह्न प्राप्त कर सका न ही मैं किसी प्रकार क प्राचीन खण्डहरो के सम्बध में सूचना प्राप्त कर सका। परन्तु सुल्तानपुर से प्रस्थान के दूसरे दिन मुझे सूचना मिली कि ५ मील उत्तर पश्चिम म महमूदपुर नामक गाँव एक प्राचीन टील पर अवस्थित है जो सुल्तानपुर के टीले की अपेक्षा अधिक बड़ा है और फैजाबाद पहुँचने पर मुझे रायल इञ्जीनियस के लेफ्टीनेन्ट स्वटेहम से सूचना मिली कि सुल्तानपुर के उत्तर पश्चिम म एक स्तूप विद्यमान है जो इस गाँव से अधिक दूर नहीं है। अत मेरा निष्कर्ष है कि सुल्तानपुर अथात् प्राचीन कुशपुरा ही ह्वेनसाग के कसपुर का स्थान है और उल्लिखित दूरियों पर ध्यान देने से यह अनुरूपता अधिक निश्चित हो जायेगी।

कोशाम्बी छोड़ने पर तीर्थ यात्री सर्व प्रथम गङ्गा नदी तक उत्तर-पूर्व दिशा म गया और नदी को पार करने के पश्चात् कुसपुरा तक उत्तर दिशा म गया। उसकी यात्रा की कुल दूरी ११७ मील थी। अब कोसम, के उत्तर पूर्व म गङ्गा नदी के दो विशाल घाट माऊ सराय एवम् फाफामऊ में थे। प्रथम घाट ४० माल दूर था जबकि दूसरा घाट ४३ मील की दूरी पर था। परन्तु चूंकि यह दोनों घाट एक दूसर के समीप है एवम् इलाहाबाद के ठीक उत्तर म है अत किसी भी घाट से गङ्गा नदी को पार करने से कुसपुरा तक कुल दूरी समान रहेगी। फाफामऊ से सुल्तानपुर उत्तर दिशा में एवम् ६६ मील की दूरी पर है और कोसम स सुल्तानपुर की कुल दूरी १०६ मील है जो ह्वेनसांग द्वारा कथित ७०० ली अथवा ११६$\frac{2}{3}$ मील से कुल आठ मील कम है। जबकि दोना दिशाएं उसके कथन से ठीक समानता रखती है। कुसपुरा से विशाखा तक तीर्थ यात्री ने उत्तर दिशा का अनुसरण किया था और कुल दूरी १७० ली स १८० ली अथवा २८ मील से ३० मील थी। अब, वतमान अयोध्या प्राचीन अयोध्या अथवा सारत सुल्तानपुर क ठीक उत्तर म है और निकटतम बिन्दु तक इसकी दूरी ३०

मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी से केवल ६ मील अधिक है। चूँकि प्रथम दूरी ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी से कम है और अंतिम दूरी इससे अधिक है अतः मैं एक सम्भावित के रूप में इस बात का प्रस्ताव करता कि हमारे आँकड़े गजूनपुर ग्राम से लिये जाने चाहिए जिससे नोमस से कुशपुरा के बौद्ध मठ की दूरी ११४ मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी ० से चार मील के भीतर आ जायेगा और अयोध्या का पश्चातवर्ती भाग भी ३६ मील से घट कर ३१ मील रह जायेगा जो चीनी तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी से एक मील कम है। चूँकि सभी स्थिति ठीक ठीक भिन्न है और चूँकि दोनों स्थानों के नाम प्रायः समान हैं अतः मेरा विचार है कि सुल्तानपुर अथवा कुशपुरा को ह्वेनसांग के कसपुरा के अनुरूप स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिये।

बताया जाता है कि कुशपुर अथवा कुश भवन पुर का नाम राम के पुत्र कुश के नाम पर रखा गया था। मुस्लिम आक्रमण के कुछ ही समय पश्चात् यह नगर भार राजा नन्द कुँवर के अधीन था जिसे सुल्तान अलाउद्दीन गोरी (खिल्जी) ने ध्वस्त कर दिया था। विजेता ने नगर की सुरक्षा पंक्ति को सुदृढ़ बनाया, एक मस्जिद का निर्माण करवाया एवं इस स्थान के नाम को परिवर्तित कर सुल्तानपुर कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि कुशपुर के संस्थापक ने तीन ओर से गोमती अथवा गुमती नदी से घिरे होने के परिणाम स्वरूप सैनिक दृष्टिकोण से अनुकूल स्थान होने के कारण इस स्थान का निर्वाचन किया था। वर्तमान समय में यह स्थान पूर्णतया निर्जन है। यहाँ के सभी निवासी नदी के दूसरे अथवा दक्षिणी तट पर नवीन नगर में चले गये हैं। सुल्तानपुर में ध्वस्त दुर्ग के स्थान पर अब ८५० फुट वर्गाकार टीला है जिसके चारों किनारों पर ईंटों के बने बुर्ज हैं। चारों ओर से यह टीला ध्वस्त नगर के टूटे हुए भवनों से घिरा हुआ है। कुल मिलाकर दोनों का क्षेत्र आधा वर्ग मील है अथवा इसकी परिधि २ मील है। सुल्तानपुर के आकार का यह अनुमान कुशपुर के सम्बन्ध में ह्वेनसांग द्वारा दिये गये अनुमान से समीपता रखता है। ह्वेनसांग के अनुसार इसकी परिधि १० ली अथवा १⅔ मील थी।

सुल्तानपुर के अथवा कुशपुर के १८ मील दक्षिण पूर्व में हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध स्थान है जिसे धोपापापुर कहा जाता है। यह गोमती नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर तथा गढ़ा अथवा शेर की गढ़ी की दीवारों के नीचे बसा हुआ है। धोपाप का स्थान अधिक प्राचीन है क्योंकि चारों ओर आधे मील तक सभी खेत ईंटों एवं बर्तनों के टुकड़ों से ढके हुए हैं।

विसाखा, साकेत, अथवा अयुध्या

फाहियान के "शाची के विशाल राज्य अथवा ह्वेनसांग के विसाखा की

स्थिति के सम्बन्ध में अधिक कठिनाई का अनुभव किया गया है परन्तु मैं सन्तोषजनक ढङ्ग से यह दिखाने की आशा करता हूँ कि दोनों स्थान ब्राह्मणों के साकेत अथवा अयुध्या के समान हैं। यह कठिनाई का मुख्य कारण यह है कि फाहियान ने शो वी अथवा सरावस्ती को शाची के दक्षिण में दिखाया है जबकि ह्वेनसाग ने इसे उत्तर-पूर्व में दिखाया है। इसी प्रकार इस कठिनाई का आंशिक कारण सकिसा के सव-प्रसिद्ध नगर से ३० योजन की दूरी के स्थान पर ७+३+१० = २० योजन की कथित दूरी है। लंका की बौद्ध पुस्तकों में वर्णित एक हिंदू तीर्थ-यात्रा की गोदावरी तट से सेवेत अथवा सरावस्ती की यात्रा के मार्ग से दिकाश में त्रुटि का ज्ञान होता है। यह तीर्थ यात्री महिस्सती तथा उज्जैनी अथवा महेश्मती तथा उज्जैन के पार करने के बाद कौशाम्बी पहुँचा था और तत्पश्चात साकेत से होकर सवेत तक उसी मार्ग से गया था जिसका ह्वेनसाग ने अनुसरण किया था। अतः सवेत को साकेत के उत्तर में स्वीकार करने के पक्ष में हमारे पास दो प्रमाण हैं। जहाँ तक दूरी का सम्बन्ध है मैं पुनः लंका की बौद्ध पुस्तकों का उल्लेख करूँगा जिनमें लिखा गया है कि सकासपुर (अथवा सगकस्यपुर, वर्तमान सकिसा) से सेवेत की दूरी ३० योजन थी। अब फाहियान ने सकिसा से कन्नौज की दूरी ७ योजन, तत्पश्चात गङ्गा नदी पर होली तक ३ योजन एवं वहाँ से शाची तक १० योजन अथवा कुल मिला कर २० योजन अथवा लंका की पुस्तकों से १० योजन कम बताई है। फाहियान के कथन का त्रुटि पूर्ण होना इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उसकी दूरी शाची को लखनऊ के आस पास दिखायेगी जबकि अन्य दूरी इसे अयोध्या अथवा फैजाबाद के समीप, अथवा ह्वेनसाग की मार्ग सूचक पुस्तक में इङ्गित स्थान पर दिखायेगी। यहाँ भी 'लम्बी दूरी के समर्थन में" हमें दो विद्वानों का समर्थन प्राप्त है। अतः इस बात की घोषणा करने में मुझे कोई सङ्कोच नहीं है कि फाहियान द्वारा शो वी से शाची का कथित दिकाश त्रुटिपूर्ण है तथा "दक्षिण' के स्थान पर 'उत्तर' पढ़ा जाना चाहिये।

अब मुझे यह दिखाना है कि फाहियान की शाची ही ह्वेनसाग की विशाखा नगरी थी तथा दोनों ही साकेत अथवा अयोध्या के अनुरूप थी। शाची के सम्बन्ध में फाहियान ने लिखा है कि "नगर को दक्षिणी द्वार से छोड़ने पर आपको सड़क के पूर्व में वह स्थान दिखाई देगा जहाँ बुद्ध ने विच्छु के वृक्ष की एक शाखा काट कर भूमि में लगा दी थी जहाँ सात फुट ऊंचा होने के पश्चात् इसके आकार में न वृद्धि हुई न कमी।' अब विशाखा के सम्बन्ध में ह्वेनसाग ने ठीक इसी कथा का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि 'राजधानी के दक्षिण में तथा सड़क की बाईं ओर (अर्थात् पूर्व की ओर, जैसा कि फाहियान ने लिखा है) अन्य धार्मिक वस्तुओं के ६ अथवा ७ फुट ऊंचा एक विचित्र वृक्ष था जो सदैव एक समान रहता था, न इसमें वृद्धि होती थी न कमी। यह महात्मा बुद्ध का प्रख्यात दातुन वृक्ष है जिसके सम्बन्ध में मैं आगे चल

कर ,लगा परन्तु यह मुझे उत्पत्ति, ऊंचाई एवम स्थिति क सम्ब ध म इस भूग के दोनो विवरणो म अत्यधिक समानता का उल्लेख करने की आवश्यकता है। मेरे विचार मे उपयुक्त विवरणों की समानता के कारण इस बात म सन्देह नही रह जाता कि फाहियान की शाची ह्वेनसाग की विसाखा नगरी थी।

जहा तक विसाखा एव हिन्दुओ के साकेत नगर की अनुरूपता का प्रश्न है मैं अपने प्रमाणों को मुख्य रूप स निम्न बातो पर आधारित करता हूँ। प्रथम यह कि विसाखा जो बौद्ध इतिहास की सभी स्त्रियो म सर्वाधिक प्रसिद्ध थी—वह श्रावस्ती के धनाढय व्यापारी मृगर के पुत्र पूधन से अपने विवाह से पूर्व साकेत की निवासिनी थी, द्वितीय—ह्वेनसाग के अनुसार बुद्ध ने विसूखा म ६ वर्ष व्यतीत किये थे जबकि टनर मैं पाली इतिहास म कहा गया है कि बुद्ध ने १६ वर्ष साकेत म व्यतीत किये थे। (१)

लका की पुस्तकों मे कुलीन कुमारी विसाखा की कथा को विस्तारपूवक लिया गया है। हार्डी के अनुसार (२) उसने श्रावस्ती म पूर्वाराम का निर्माण करवाया था जिसका उल्लेख ह्वेनसाग ने भी किया है। अब, साकेत म भी एक पूर्व आराम है और इसमे सन्देह नही किया जा सकता कि इस मठ का निर्माण भी उसने करवाया था। वह एक धनाढय व्यापारी धनजा की पुत्री थी जो राजगृह से आकर साकेत में बस गया था। अब प्राचीनतम अङ्कित मुद्राओ म जो केवल अयोध्या मे प्राप्त की गई हैं। हम धनदेव एव विशाखा दत्ता क नाम की कुछ मुद्रायें मिलती हैं। इस बात का का उल्लेख मैंने इस कारण किया है कि मेरे विचार मे इससे इस बात की सम्भावना का पता चलता है कि अयोध्या अथवा साकेत म धनन तथा विशाखा का परिवार अत्यधिक प्रसिद्ध था। अत उनके नाम की पुनरावृत्ति से एक स्त्री की महान प्रसिद्धि से मेरा अनुमान है कि नगर को सम्भवत उसके नाम पर विसाखा कहा गया था।

अन्य प्रमाण जिसे मैंने बुद्ध निवास के वर्षों स प्राप्त किया है प्रत्यक्ष एव ठोस है। लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार निर्वाण के समय बुद्ध ३५ वर्ष की आयु के थे। तत्पश्चात उन्होने २० वर्षों तक उत्तरी भारत के विभिन्न स्थानों पर धर्म प्रचार किया और २५ वर्ष की अपनी शेष आयु म उन्होंने श्रावस्ती के जेतवन मठ म एव १६ वर्ष साकेतपुर के पुब्बारामो मठ म व्यतीत किये थे। बर्मा की ऐतिहासिक पुस्तकों म इन सख्याओ को १६ एव ६ वर्ष बताया गया है और अन्तिम सख्या ह्वेनसाग द्वारा दी गई सख्या स ठीक ठीक मिलती है। इससे अधिक ठोस प्रमाण और

---

(१) मैं तार्य यात्री क ६ वर्षों को १६ वर्षों क स्थान पर त्रुटि समझता हूँ क्योंकि बुद्ध क सम्पूर्ण प्रचार काल का लङ्का की पुस्तकों में सावधानी पूर्वक वर्णन किया गया है।

(२) लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तकों म भी पुब्बारामा का उल्लेख मिलता है।

गया हो सकता है। केवल दो ही ऐसे स्थान थे जहाँ बुद्ध कुछ समय तक ठहरे थे। अर्थात् श्रावस्ती एवं साकेत। विसाखा एवं साकेत एक ही स्थान के नाम थे।

मेरा विश्वास है कि साकेत एवं विसाखा की अनुरूपता को सदा स्वीकार किया गया है परन्तु इस बात का मुझे ज्ञान नहीं है कि इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये कोई प्रमाण प्रस्तुत किया गया हो। डी० कोरोस ने इस स्थान का उल्लेख करते हुए केवल इतना कहा है "साकेतना अथवा अयोध्या" तथा एच० एच० विल्सन ने अपने संस्कृत शब्द कोष में साकेत को "अयोध्या नगरी" कहा है। परन्तु इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर रामायण एवं रघुवंश के अनेक विवरणों से प्राप्त किया जा सकता है जिनमें साकेत नगर को सामान्यतः राजा दशरथ एवं उनके पुत्रों की राजधानी कहा गया है। परन्तु रामायण की निम्न पंक्ति जिसे लखनऊ के एक ब्राह्मण ने मुझे बताया था उपयुक्त अनुरूपता को सिद्ध करने हेतु पर्याप्त हैं।

साकेताम नगरम राजा मामना दशरथोबली
तास्मयी देया मया कन्या कैकेयी नाम सो अना।

कैकेयी के पिता अश्वजीत ने साकेत नगर के राजा दशरथ को अपनी पुत्री देने का प्रस्ताव किया।

रामायण में अयोध्या अथवा साकेत के प्राचीन नगर को सरयू अथवा सरजू नदी के तट पर अवस्थित बताया गया है। कहा जाता है कि इसका व्यास १२ योजन अथवा १०० मील था परन्तु हमें इसके स्थान पर १२ कोस अथवा २४ मील पढ़ना चाहिये क्योंकि अपने सभी उद्यानों सहित यह नगर इतने क्षेत्र तक विस्तृत रहा होगा। पश्चिम में गुप्तार घाट से पूर्व में रामघाट तक सीधी रेखा से कुल दूरी प्रायः ६ मील है और यदि हम यह अनुमान लगायें कि उपनगरों एवं उद्यानों सहित यह नगर दो मील की गहराई तक सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र में विस्तृत रहा होगा तो इसका व्यास १२ कोस के छोटे आंकड़ा से ठीक ठीक मिल जायेगा। वर्तमान समय में जनसाधारण राम घाट एवं गुप्तार घाट की ओर प्राचीन नगर की पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाओं के रूप में संकेत करते हैं और इनके अनुसार दक्षिणी सीमा ६ मील की दूरी पर भदरसा के समीप भरत कुण्ड तक विस्तृत थी। परन्तु चूंकि इन सीमाओं में तीर्थ-यात्रा के सभी स्थल आ जाते हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जन साधारण इन्हें भी प्राचीन नगर की सीमाओं में सम्मिलित समझते हैं परन्तु निश्चय ही ऐसा नहीं था। आइन ए-अकबरी में प्राचीन नगर की लम्बाई में १४८ मील एवं चौड़ाई में ३६ कोस बताया गया है। अन्य शब्दों में इसमें घाघरा नदी के दक्षिण अवध का सम्पूर्ण प्रान्त सम्मिलित

था। बड़ी सख्याओ की उत्पत्ति स्पष्ट है। रामायण के १२ योजन जो ४८ कोस के समान हैं राम की नगरी के लिये अत्यधिक कम समझे गये अतः ब्राह्मणो ने अपने अतिशयोक्ति पूर्ण विचारो के अनुकूल बनाने के लिये इसम १०० कोस की वृद्धि कर दी। अयोध्या का वतमान नगर जो प्राचीन नगर के स्थान के उत्तर पूर्वी कोण तक सीमित है—केवल २ मील लम्बा एव तीन चौथाई मील चौडा है परन्तु इसका आधा क्षेत्र भी बसा हुआ नहीं है और सम्पूर्ण क्षेत्र जजर अवस्था का सकेत करता है। यहाँ अय प्राचीन नगरो के स्थानों के प्रतिकूल खण्डित मूर्तियो एव कला पूण स्तम्भो से ढँके उन्नत टीले नहीं हैं परन्तु यहाँ केवल कूडे के निचले असमान ढेर दिखाई देते हैं जिनसे सभी ईंटे पड़ोसी फैजाबाद नगर के भवनों के लिये ले जाई गई हैं। यह मुस्लिम नगर जो २½ मील लम्बा एव एक मील चौडा है मुख्य रूप से अयोध्या के खण्डहरो मे निकाली गई सामग्री से बना हुआ है। दोनों नगर कुल मिलाकर प्रायः ६ वग मील अथवा राम की प्राचीन राजधानी के सम्भावित आकार के लगभग आधे भाग में विस्तृत हैं। फैजाबाद में किसी महत्व का एकमात्र भवन वृद्ध भाओ बेगम का मकबरा है जिसकी कथा को वारेन हेस्टिंग्स के प्रसिद्ध मुकदमे के समय प्रचलित किया गया था। फैजाबाद, अवध के प्रथम नवाब की राजधानी थी परन्तु १७७५ ई० मे आसफुद्दौला ने इसे त्याग दिया था।

सातवी शताब्दी मे विसाखा नगरी का घेरा केवल १६ ली अथवा २⅔ मील अथवा इसके वतमान आकार के आधे से अधिक नही था परन्तु सम्भवत इसकी जन-सख्या अधिक थी क्योकि आधुनिक नगर का एक तिहाई भाग भी बसा हुआ नही है। ह्वेनसाग ने जिले की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील बताया है जो अत्यधिक अतिशयोक्ति पूण है। परन्तु जैसा कि मैं उल्लेख कर चुका हूँ—इस प्रदेश मे तीर्थ यात्री क भाग मे आने वाले कुछ जिलो के अनुमानित आंकडे इतने अतिशयोक्तिपूर्ण है कि यह प्रायः असम्भव है कि सभी आंकडे शुद्ध हो। अत मैं वतमान उदाहरण म ४०० ली अथवा ६७ ली पढूँगा एव विसाखा की सीमाओ को अयोध्या के आस पास, घाघरा एव गोमती नदियो के मध्यवर्ती छोटे क्षेत्र तक सीमित करूगा।

श्रावस्ती

अयोध्या अथवा अवध की प्राचीन सीमा सरजू अथवा घाघरा नदी द्वारा दो *विशाल प्रान्तो मे विभाजित थी। उत्तरी प्रदेश उत्तर कोशल कहलाता था तथा नदी का* दक्षिणी प्रदेश बनोधा कहाता था। प्रत्येक भाग दो जिलो मे विभाजित था। बनोधा प्रान्त मे इन जिलो को पश्चिम रात तथा पूरब रात अथवा पश्चिमी एव पूर्वी जिले कहा जाता था क्योकि उत्तर कोशल मे राप्ती के दक्षिण म गोंडा (आधुनिक गोण्डा) तथा राप्ति अथवा रावती—जैसा कि अवध म इसे सामान्य रूप से पुकारा जाता है—के

उत्तर में कोशल जिला था। इनमें कुछ एक नाम पुराणों में मिलते हैं। इस प्रकार वायु पुराण में कहा गया है कि राम के पुत्र लव ने उत्तर कोशल में शासन किया था, परन्तु मत्स्य लिङ्ग एवं कूर्म पुराण में श्रावस्ती को गोंडा की राजधानी कहा गया है। जब हम इस बात का पता चलता है कि गोंडा उत्तर कोशल का एक उप खण्ड मात्र था एवं श्रावस्ती के खण्डहर वस्तुत गोंडा—जिले (मान चित्र में गोण्डा) में प्राप्त हुए हैं तो उपर्युक्त प्रत्यक्ष त्रुटि को सन्तोष जनक ढङ्ग से सुलझाया जा सकता है। गोंडा का विस्तार राप्ती नदी पर बलरामपुर के प्राचीन नाम से सिद्ध होता है जो पूर्व वर्ती समय में राम गढ़ गोंडा था। अत मेरा अनुमान है कि गौड ब्राह्मण एवम् गौड मूल रूप से इस जिले के निवासी रहे होंगे न कि बङ्गाल में मध्य कालीन गौडा नगर के। घाघरा नदी के दाहिने तट पर अयोध्या एवम् जहाँगीराबाद में, गोंडा, पखपुर तथा वाम तट पर गोंडा अथवा गोंडा जिले के जैसनो में एवम् गोरखपुर के पड़ोसी जिले के अनेक भागों में इस (गौड) नाम के ब्राह्मण अधिक संख्या में मिलते हैं। अतः घाघरा के दक्षिण में अवध अथवा अनोधा की राजधानी अयोध्या थी जबकि श्रावस्ती घाघरा के उत्तर में अवध अथवा उत्तर कोशल की राजधानी थी।

बौद्ध-धर्म के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थानों में एक स्थान के रूप में श्रावस्ती के प्रसिद्ध नगर की स्थिति ने अधिक समय तक हमारे विद्वानों को भ्रम में रखा है। इसका आंशिक कारण स्वयं चीनी तीर्थ यात्रियों के परस्पर विरोधी कथन थे तथा आंशिक रूप से अवध प्रान्त के अच्छे मानचित्र का अभाव भी इस भ्रम का कारण था। विशाखा अथवा अयोध्या के अपने विवरण में मैंने फाहियान एवम् ह्वेनसांग द्वारा कथित दिकांश एवं दूरियों की लंका की बौद्ध पुस्तकों में दी गई दूरियों एवं दिकांश से तुलना की है और मैंने निश्चय पूर्वक सिद्ध किया है कि संङ्किसा से दूरी एवं शाची अथवा साकेत से दिकांश में उसने त्रुटि की है। ह्वेनसांग एवं लंका की बौद्ध पुस्तकों से हम जानते हैं कि श्रावस्ती साकेत अथवा अयोध्या के उत्तर में था अथवा अन्य शब्दों में यह गोंडा जिले अथवा उत्तर कोशल में था। ब्राह्मणों के कम से कम चार पुराणों में इस कथन की पुष्टि होती है और चूंकि फहियान ने भी लिखा है कि शी वी अथवा सेवेत कोशल में था अत इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता कि श्रावस्ती को साकेत अथवा अयोध्या के उत्तर में कुछ दिनों की यात्रा पर ढूँढा जा सकता है। फाहियान के अनुसार इसकी दूरी ८ योजन अथवा ५६ मील थी जिसे ह्वेनसांग ने बढ़ा कर ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है। परन्तु चूंकि अन्तिम तीर्थ यात्री ने भारतीय योजन को ४० ली प्रति योजन की दर से चीनी माप में लिखा है अत दूसरे माप के अनुकूल करने के लिये हम इसे शुद्ध कर ३५० ली अथवा ५८ मील लिख सकते हैं। अब, चूंकि अयोध्या से राप्ति नदी

के दक्षिणी तट पर अवस्थित गिरियेक पहाड़ी तक की वास्तविक दूरी नहीं है पर ह्वेनसांग की दूरी को ५०० ली न मानकर १५० ली मानने में मुझे संकोच नहीं है। यहाँ यह जिसका वर्णन होता कि गिरियेक पहाड़ी में ही बुद्ध की एक विशाल मूर्ति की थी जिस पर के वर्षा के साथ शक्ति एक लाल रंग हुआ था।

नवीन राजगृह का प्राचीन नगर गिरियेक एवं बख्तियारपुर के मध्य क्रमशः ५ मील एवं १२ मील की दूरी पर तथा बड़गाँव तथा पटना से लगभग समान दूरी पर अवस्थित है। आकार में यह उस अनियमित पंचभुज के समान है जिसका १½ मील लम्बा स्थान भीतर की ओर मुड़ा हुआ है तथा शांति नदी के पुराने तट के साथ साथ उत्तर पूर्वोन्मुख है। पश्चिमी भाग जो तीन चौथाई मील तक उत्तर से दक्षिण की ओर जाता है इस घेरे का एक मात्र सीधा भाग है। प्राचीरों की ऊँचाई भिन्न भिन्न है। पश्चिम की ओर प्राचीरें ३५ से ४० फुट ऊँची हैं जबकि दक्षिण एवं पूर्व में इनकी ऊँचाई २५ अथवा ३० फुट से अधिक नहीं है। इनका अपवाद किन्तु उत्तर पश्चिमी विशाल प्राचीर है जो गेटों से ५० फुट ऊँची है। उत्तर पूर्वी भाग अथवा अर्धचन्द्र का छोटा भाग सरिता से सुरक्षित था जो आज भी वार्षिक बाढ़ के समय अपने पुराने मार्ग से प्रवाहित होता है। अर्धचन्द्र के सम्मुख घुमाव की प्राचीरें किसी समय एक खाई से सुरक्षित रही होंगी जिसके अवशेष दक्षिण पश्चिमी कोण में लगभग आधा मील लम्बी दलदल के रूप में दिखाई देते हैं। प्रत्येक स्थान पर यह प्राचीरें प्राचीन नगरों से विशाल एवं सुव्यवस्थित बड़े आकार की ईंटों के टुकड़ों से ढँकी हुई हैं और यद्यपि मैं एक स्थान को छोड़ अन्य किसी भी स्थान पर दीवारों के चिह्न ढूँढने में असफल रहा था तथापि ईंटों की उपस्थिति ही यह दर्शाने के लिये पर्याप्त है कि मिट्टी की प्राचीरों पर किसी समय ईंटों की मोर्चाबन्दी रही होगी। नदी की ओर मध्य भाग में खड़ी दीवार का एक भाग १० फुट मोटा था। मेरे सर्वेक्षण के अनुसार मिट्टी की पुरानी दीवारों का कुल घेरा १७,३०० फुट अथवा ३¼ मील से अधिक था। अब, यह २० ली अथवा ३⅓ मील का ठीक वही विस्तार है जिसे ह्वेनसांग ने केवल राजभवन के लिये निश्चित किया। परन्तु चूँकि यह नगर उस समय निर्जन एवं ध्वस्त अवस्था में था अतः उसने राजभवन को ही नगर समझने की त्रुटि की होगी। कम से कम इतना निश्चित है कि दीवारों के अन्दर के नगर अति सीमित रहे होंगे क्योंकि यह स्थान प्रायः पूर्ण रूप से विशाल धार्मिक भवनों के खण्डहरों से घिरा हुआ है जिनके कारण व्यक्तिगत भवनों के लिये स्थान नहीं रहा होगा। अतः मुझे पूर्ण सन्तोष है कि राजभवन को ही नगर समझने की त्रुटि की गई है और यह त्रुटि इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग की यात्रा के समय भी यह नगर अत्यधिक जर्जर एवं निर्जन अवस्था में था। चूँकि ४०० ई० में फाहियान ने यहाँ की

जन संख्या को नगण्य बताया है जबकि लंका की पुस्तका में २७५ तथा ३०३ ई० के मध्य सवाठीपुर के राजा खीरा धार का उल्लेख मिलता है अत श्रावस्ती का पतन चौथी शताब्दी में हुआ होगा और ३१६ ई० मे गुप्त वंश के पतन से सम्बन्धित करने में हम सम्भवतः त्रुटि करेंगे।

कहा जाता है कि श्रावस्ती की स्थापना सूर्य वंशी युवनाश्व के पुत्र एवम् सूर्य के दसवें वंशज राजा श्रावस्त ने करवाई थी। अत इसकी स्थापना राम से अधिक समय पूर्व भारतीय इतिहास के काल्पनिक समय मे हुई थी। इस प्राचीन समय मे सम्भवत यह अयोध्या राज्य का भाग था क्योंकि वायु पुराण में इसे राम के पुत्र लव से सम्बन्धित बताया गया है। बुद्ध के समय मे जब श्रावस्ती का इतिहास में पुनः उल्लेख आता है तो उस समय यह महा कोशल के पुत्र राजा प्रसेनाजित की राजधानी थी। राजा ने नवीन धर्म को ग्रहण कर लिया और अपने शेष जीवन काल मे वह बुद्ध का परम हितैषी एवम् रक्षक था। परन्तु उसका पुत्र विरुधक शाक्य जाति से घृणा करता था एवम उनके देश पर उनके आक्रमण एवम तत्पश्चात ५०० शाक्य कुमारियों—जिन्हें उसके रनिवास के चुना गया था—की हत्या के कारण बुद्ध की सब प्रसिद्ध भविष्यवाणी हुई कि सात दिनों के भीतर राजा अग्नि में भस्म हो जायेगा। जैसा कि बौद्ध धर्मावलम्बियों ने कथा को सुरक्षित रखा है बुद्ध की भविष्य वाणी सत्य हुई एवम ग्यारह शताब्दी पश्चात भी ह्वेनसांग को वह सरोवर दिखाया गया था जहाँ अग्नि से बचने के लिये राजा ने शरण ली थी।

श्रावस्ती के सम्बन्ध म हम कनिष्क के एक शताब्दी पश्चात् अथवा बुद्ध के पाँच शताब्दी पश्चात् तक कोई सूचना नहीं मिलती। अब ह्वेनसांग के अनुसार श्रावस्ती का राजा विक्रमादित्य बौद्ध धर्मावलम्बियों का कट्टर शत्रु था एवं विभाषा शास्त्र के प्रसिद्ध लेखक मनोरहित ने शास्त्रार्थ म ब्राह्मणों से पराजित हो जाने पर आत्म हत्या कर ली थी। विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी—जिसका नाम नहीं दिया गया है—के समय मनोरहित के प्रख्यात शिष्य वासुबन्धु ने ब्राह्मणों पर विजय प्राप्त की थी। इन दो राजाओं की सम्भावित तिथियों को ७० ई० स १२० ई० तक निश्चित किया जा सकता है। अगली दो शताब्दियों तक श्रावस्ती स्वतन्त्र राजा के अधीन रही प्रतीत होता है क्योंकि २७५ ई० से ३१६ तक हम यहाँ के राजा के रूप मे खीराधार एवं उसके भतीजे के नाम मिलते हैं परन्तु उसम सन्देह नहीं कि इस सम्पूर्ण काल मे श्रावस्ती मगध के गुप्त वंश की आश्रित थी क्योंकि कहा जाता है कि साकेत का शक्तिशाली पड़ोसी नगर उनके अधीन था। वायु पुराण म लिखा है कि "गुप्त जाति के राजकुमार गङ्गा तट से प्रयाग, साकेत तथा मगध तक सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार करेंगे। इस समय से श्रावस्ती का शनै शनै ह्रास हुआ। ४०० ई० मे यहाँ केवल २०० परिवार थे, ६३२ ई० म यह पूर्णतय निर्जन था एवं वर्तमान

समय में द्वार के समीप कुछ क्षेत्र को छोड़ शेष नगर प्रायः अभेद्य वन का समूह है।

नगर के नाम के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है। फाहियान ने इसे शी वी कहा है जबकि ह्वेनसांग ने चीनी भाषा में यथा सम्भव शुद्ध रूप में इसे शी लो फा शी ती अथवा श्रावस्ती कहा है। परन्तु यह भिन्नता वास्तविक से अधिक दिखावटी है क्योंकि इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि शी वी सभी को अधिकांश पुस्तकों में लिये गये नाम सावडढी के स्थान पर सवेत के सन्निहित पाली स्वरूप का केवल परिवर्तित स्वरूप है। इसी प्रकार साहेत या आधुनिक नाम प्रत्यक्ष रूप से पाली के सावेत का केवल भिन्न स्वरूप है। अन्य नाम माहेत की व्याख्या करने में मैं असमर्थ हूँ परन्तु यह केवल तुकबद्ध शब्द है जिसमें हिन्दुओं की विशेष रुचि है जैसा कि उल्टा पुलटा, और अनेक व्यक्तियों का कथन है कि सम्पूर्ण स्थान की जर्जर अवस्था के अनुकूल साहेत माहेत का यही वास्तविक अर्थ है। परन्तु कुछ व्यक्तियों का कथन है कि इसका मूल नाम सट-मेट था और चूँकि यह सेवेत का भ्रष्ट स्वरूप प्रतीत होता है अतः यह सम्भव है कि सहेत महेत सेठ मत का दोष उच्चारण मात्र है। केवल एक मुसलमान ने जो ध्वस्त नगर के समीप पीर बरान के मकबरे की देख भाल करता था इस बात पर जोर दिया है कि इसका वास्तविक नाम सावित्री था जो पाली के शुद्ध सावाठी स्वरूप के अत्यधिक समीप है और इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि इस नाम में इस स्थान का वास्तविक नाम सुरक्षित है।

ह्वेनसांग के अनुसार श्रावस्ती राज्य का कुछ क्षेत्र ४००० ली अथवा ६६७ मील था जो घाघरा एवं पर्वतों के अधोभाग के मध्यवर्ती क्षेत्र के वास्तविक विस्तार से दुगना है। परन्तु चूँकि उसने नेपाल की सीमाओं के सम्बन्ध में भी इन्हीं आकड़ों को दोहराया है अतः यह सम्भव है कि उसके समय में उत्तर की पहाड़ियों में मलभूम एवं खाची के दो पश्चिमी जिले श्रावस्ती के अधीन रहे हों। इस प्रकार श्रावस्ती की सीमाओं में हिमालय पर्वतों से घाघरा नदी तक, पश्चिम में करनाली नदी से लेकर पूर्व में धोलगिरि पर्वतों एवं फैजाबाद तक सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित था। इस क्षेत्र का घेरा ६०० मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा अनुमानित आकड़ों के अति समीप है।

कपिला

श्रावस्ती से दोनों चीनी तीर्थ यात्री सीधे कपिला की ओर गये जो सम्पूर्ण भारत में बुद्ध के जन्म स्थान के रूप में प्रसिद्ध था। ह्वेनसांग ने इसे दक्षिण पूर्व में ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है परन्तु पूर्ववर्ती तीर्थ यात्री फाहियान के अनुसार इसकी दूरी इसी दिशा में १३ योजन अथवा ९१ मील थी। ऐसा प्रतीत होता है कि एक योजन अथवा ७ मील का अन्तर कपिला एवं क्राकुचन्दा के जन्म स्थान की अपेक्षाकृत स्थिति के कारण हुआ है जो एक दूसरे से एक योजन की दूरी पर थे।

फाहियान कपिला जाने से पूर्व क्रकुचन्दा के जन्म स्थान पर गया था जबकि ह्वेनसांग सर्व प्रथम कपिला गया था तत्पश्चात क्रकुचन्दा के जन्म स्थान पर। चूंकि इस स्थान को सम्भावित रूप से नगर के पश्चिम में ८ मील की दूरी पर अवस्थित मकुआ नामक स्थान के अनुरूप समझा जा सकता है और मैं नगर को कपिला नगर के अनुरूप समझने का प्रस्ताव करना चाहता हूँ अतः मैं फाहियान के विवरण को ग्रहण करने का इच्छुक हूँ। अब साहेत तथा नगर की मध्यवर्ती दूरी ८१½ मील से अधिक है क्योंकि मैंने साहेत से अशोकपुर तक सड़क की दूरी को ४२½ आंका था एवं भारतीय एटलस के विशाल मानचित्र पर सीधे माप से अशोकपुर से नगर की दूरी ३६ मील है। अतः देश के इस भाग की घुमावदार सड़कों से इनकी वास्तविक दूरी ८५ मील से कम नहीं हो सकती और जैसा कि फाहियान ने लिखा है। सम्भवतः यह प्रायः ९० मील है।

ह्वेनसांग ने जिले के घेरे को ४००० ली अथवा ६६८ मील आंका है जो फैजाबाद से घाघरा एवम् गण्डक के सङ्गम तक दोनों नदियों के वास्तविक क्षेत्र के समान है। सीधे माप के अनुसार यह क्षेत्र ५५० मील है जो मार्ग दूरी के अनुसार ६०० मील से अधिक हो जायेगा।

कपिला के नाम के सम्बन्ध मे अभी तक कोई संकेत प्राप्त नहीं किया जा सका परन्तु मेरा विश्वास है कि अनेक समान तथ्यों के आधार पर संकुचित सीमाओं के भीतर नगर की स्थिति को निश्चित किया जा सकता है। तिब्बत की बौद्ध पुस्तकों के अनुसार सूर्य वंशी वीर गौतम के किसी वंशज ने कोशल में रोहिणी नदी के समीप एक झील के तट पर कपिलवस्तु अथवा कपिला नगर की स्थापना की थी। अब नगर अथवा नगर खास राप्ती की कोहान नामक एक सहायक नदी के समीप चन्दो ताल के पूर्वी तट पर एवम् घाघरा नदी के पार अवध के उत्तरी खण्ड में अर्थात् कोशल में अवस्थित है। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि श्रावस्ती से इसकी दूरी एवं दिकाश चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये आकड़ो से मिलते हैं। पश्चिम की ओर सिद्ध नामक एक छोटी नदी झील में गिरती है। यह नाम जिसका अर्थ "पवित्र व्यक्ति है—सदैव प्राचीन मुनियों के लिए प्रयोग मे लाया गया है और वर्तमान उदाहरण में मेरा विचार है कि मैं इसे कपिल मुनि के लिये प्रयोग कर सकता हूँ जिसका आश्रम नगर के विपरीत झील के तट पर था। गौतम वंशी सर्व प्रथम कपिल मुनि के आश्रम के पास बस गये थे परन्तु चूंकि उनकी गायों के रम्भाने से मुनि की समाधि में विघ्न पड़ता था उन्होंने कुछ दूरी पर अर्थात् झील के दूसरे अथवा पूर्वी छोर पर नवीन कपिला नगर की स्थापना कर ली।

चीनी तीर्थ यात्रियों एवम् लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तकों में रोहिणी नदी की स्थिति को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। फाहियान के अनुसार सुनभिक्ष अथवा

लुम्बिनी नामक राजकीय उद्यान-जहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था—कपिला से पूर्व में ५० ली अथवा १६ मील की दूरी पर अवस्थित था। ह्वेनसांग ने इस का पानी कहा है एवम् इस दक्षिण पूर्व दिशा में प्रवाहित एक छोटी नदी के तट पर अवस्थित बताया है जिसे जन साधारण "तेल की नदी" कहा करते थे। लङ्का की पुस्तकों के अनुसार रोहिणी नदी कपिला एवम् कोली नगरों के मध्य में प्रवाहित थी। कोली नगर बुद्ध की माता माया देवी का जन्म स्थान था। इसे व्याघपुर भी कहा जाता था। जब माया देवी प्रसूतावस्था में थी तो वह कोली में अपने माता पिता से मिलने हेतु गई। "दोनों नगरों के मध्य साल वृक्षों का लुम्बिनी नामक एक उद्यान था जहाँ दोनों नगरों के निवासी मनोरञ्जनार्थ आया करते थे।" वहाँ उसने विश्राम किया एवम् शिशु बुद्ध को जन्म दिया। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि सूखा काल में कपिला एवं कोली के निवासियों में रोहिणी के जल को अपने धान के खेतों हेतु प्राप्त करने के प्रश्न पर झगड़ा हुआ था। इन सभी बातों के आधार पर मेरा अनुमान है कि रोहिणी सम्भवतः वर्तमान समय की कोहान नदी थी जो नगर के पूर्व में लगभग ९ मील पर दक्षिण पूर्वी दिशा में बहती है। यह मानचित्रों की कुआना अथवा कुआना नदी है एवं बुचनान की कोयाने नदी है जिसने इसे "एक सुन्दर छोटी नदी कहा है जो अपनी अनेक शाखाओं द्वारा जिले के सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी क्षेत्र को सींचती है।" इस प्रकार सभी आवश्यक बातों में यह बौद्ध ऐतिहासिक पुस्तकों की रोहिणी नदी से मिलती है।

कोली की स्थिति सन्देहपूर्ण है परन्तु इसे सम्भवतः अब कोहिल ग्राम से सम्बन्धित किया जा सकता है जो नगर के ११ मील पूर्व में और कोहाना नदी के निकटतम बिन्दु से ३ मील से कम दूरी पर है। नगर से कोहिल जाने वाली सड़क मोकसोन नाम के एक छोटे कस्बे के विपरीत कोहाना नदी को पार करती है जो सम्भवतः किसी समय के प्रसिद्ध लुम्बिनी उद्यान का स्थान रहा हो क्योंकि इसे परादिमोक्षा अथवा 'मोक्षस्थान' भी कहा जाता था। तत्पश्चात यह विशिष्ट नाम छोटा होते होते मोक्षा अथवा मोक्षान हो गया होगा जिससे मैं ह्वेनसांग की 'तेल का नदी' को सम्बन्धित करूंगा क्योंकि संस्कृत में माक्षान तेल का एक नाम है। अबुल फजल ने बुद्ध के जन्म स्थान को मोता कहा है जो सम्भवत मोक्ष का त्रुटि पूर्ण उच्चारण है।

नगर को प्राचीन कपिला के अनुरूप स्वीकार करने में एक अन्य ठोस बिन्दु इस तथ्य से प्राप्त होता है कि नगर का वर्तमान मुखिया गौतम राजपूत है और नगर एवं अमोरहा के जिले गौतम राजपूतों एवं गौतमिया राजपूतों के मुख्य स्थान हैं। गौतमिया राजपूत गौतमों की एक निम्न श्रेणी है। अब कपिला वस्तु के शाक्य भी गौतम राजपूत थे एवं स्वयं शाक्य मुनि को बर्मा निवासियों में गौतम बुद्ध अथवा गौतम माना जाता है। वशलता में गौतमों को अरका बन्धु का वंशज बताया गया है

जो (अरकाबध) प्रसिद्ध अमर सिन्हा के अमर कोष मे दिये गये बुद्ध के अनेक नामा में एक नाम है। अमर सिंहा स्वय बौद्ध धर्मावलम्बी थे।

मैंने स्वय नगर की यात्रा नहीं की है परन्तु मुझे सूचित किया गया है कि यहाँ एक खेडा अर्थात ईंटो के खण्डहरा का एक टीला है एव इसके आस पास ईंटा के बने भवनों के अनेक खण्डहर हैं। चूंकि फाहियान ने पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ म कपिला को "अक्षरशः विशाल निर्जन स्थान बताया है जहाँ न तो राजा है न जनता, परन्तु केवल कुछ एक भिक्षु एव दस बीस गृह हैं अतः इस बात की सम्भावना नहीं है कि नगर के स्पष्ट चिह्न प्राप्त किये जा सके जो १२ शताब्दियो से अधिक समय से निर्जन पड़ा हुआ है। सातवीं शताब्दी के मध्य मे ह्वेनसांग ने इस स्थान को इतना ध्वस्त देखा था कि उसके लिये यहाँ विस्तार जानना असम्भव था अतः मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि वर्तमान समय मे विस्तृत खण्डहरा का अभाव नगर के उस ठोस दावे को ठुकरा नहीं सकता जो इसे कपिला के अनुरूप स्वीकार किये जाने के लिये प्राप्त है। इस क्षेत्र के अनेक स्थाना के नामो से इस अनुरूपता की पुष्टि होती है। यह नाम अधिक पवित्र स्थानों का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं जो बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक इतिहास में प्रसिद्ध थे। मैं पिछले दो बुद्धों, क्राकुचन्दा एव कनक मुनि के जन्म स्थानों एव सर कूप का विशेष उल्लेख करता हूँ जो बुद्ध के तीर की चोट से बहने लगा था।

फाहियान ने क्रकुचन्दा के जन्म स्थान को ना पी किया नाम दिया है परन्तु बौद्ध पुस्तको में इसे क्षमावती अथवा खेमावती कहा गया है। परन्तु लका की बौद्ध पुस्तको मे क्रकुचन्दा को खेमवल के राजा क्षेत्र का पुरोहित कहा गया है फाहियान के अनुसार यह नगर कपिला से एक योजन अथवा ७ मील पश्चिम म था परन्तु ह्वेनसांग के अनुसार यह कपिला से ५० ली अथवा ८½ मील दक्षिण में था। अन्य आकड़ो के अभाव म यह कहना कठिन होगा कि कौन सा कथन शुद्ध है परन्तु चूंकि मुझे नगर के ठीक आठ मील पश्चिम म ककुआ नामक कस्बा मिलता है अतः मैं फाहियान के विवरण का अनुसरण करने का इच्छुक हूँ। क्योंकि ककुआ, क्राकू का पाली स्वरूप है। ह्वेनसांग द्वारा दिये गये दिकाश के अनुसार इस नगर को कलवारी ग्राम के आस-पास देखना चाहिये जो नगर के ७ मील दक्षिण म है।

कनक मुनि के जन्म स्थान की स्थिति के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार की त्रुटि मिलती है। फाहियान के अनुसार यह स्थान क्रकुचन्दा के जन्म स्थान के दक्षिण मे था जबकि ह्वेनसांग के अनुसार उत्तर में था। दूरी के सम्बन्धों म दो ही एक मत है। पूर्ववर्ती यात्री ने इसे एक योजन से कम अथवा ८ अथवा ६ मील बताया है और अन्तिम यात्री ने ३० ली अथवा ५ मील कहा है। लङ्का की बौद्ध पुस्तको म नगर को शोभावती नगर कहा गया है जिसे सम्भवत ककुआ के ६½ मील दक्षिण पश्चिम में

एवम् नगर के दक्षिण पश्चिम में इतनी ही दूरी पर शुमय पुरसा गाँव समझा जा सकता है।

सर स्तूप की स्थिति के सम्बन्ध में भी विवरण की समान भिन्नता का पता चलता है। फाहियान ने इसे कपिला के ३० ली अथवा ५ मील दक्षिण पश्चिम में बताया है जबकि ह्वेनसाग ने इसे समान दूरी पर दक्षिण पूर्व में दिखाया है। वर्तमान उदाहरण में भी मेरा अनुमान है कि फाहियान का कथन सही है क्योंकि ह्वेनसाग ने सार स्तूप से लुम्बिनी उद्यान को ८० से ९० ली अथवा १३ से १५ मील बताया है जो—जैसा कि मैं पहले बयान कर चुका हूँ—कपिला के पूर्व में रोहिणी अथवा कोहान नदी के तट पर था। अब, यदि सर स्तूप यदि राजधानी के दक्षिण पूर्व मे था तो लुम्बिनी उद्यान से इसकी दूरी ६ अथवा ७ मील से अधिक नही हो सकती थी और यदि यह दक्षिण पश्चिम मे था—जैसा कि फाहियान ने लिखा है—तो इसकी दूरी १२ अथवा १३ मील रही होगी। अतः सर स्तूप की सम्भावित स्थिति को सखनपुर ग्राम के समीप निश्चित किया जा सकता है जो नगर के दक्षिण पश्चिम मे ठीक ५½ मील की दूरी पर है।

इन स्थानो की अनुरूपता का प्रस्ताव करते समय मैंने यह अनुमान कर लिया है कि नगर की प्राचीन कपिला का स्थान था परन्तु चूंकि मैंने देश के इस भाग का स्वयं निरीक्षण नही किया है और वह सभी सूचना जो मैं प्राप्त कर सका हूँ आवश्यक रूप से स्पष्ट है अतः मेरा विचार है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न का अन्तिम निर्णय नगर एवम् आस पास के स्थानो के वास्तविक निरीक्षण के पश्चात हो सकेगा। इस बीच में मैं अपनी वर्तमान खोज के परिणामो को उस समय तक सामयिक समझता हूँ जब तक वास्तविक निरीक्षण से वास्तविक स्थिति का पता नही चलता।

रामाग्राम

कपिला से दोनो तीर्थ यात्री लनमो की ओर गये जिसे भारत के बौद्ध ग्रन्थो के रामाग्राम के अनुरूप स्वीकार किया गया है। फाहियान के अनुसार यह स्थान ५ योजन अथवा ३५ मील पूर्व में था तथा ह्वेनसाग के अनुसार यह इसी दिशा में २०० ली अथवा ३३⅓ मील की दूरी पर था। परन्तु उनके एक मत होने पर भी मेरा विश्वास है कि यह दूरी अधिक है। अनामा नदी तक उनकी पश्चातवर्ती यात्रा को फाहियान ने ३ योजन अथवा २१ मील बताया है जबकि ह्वेनसाग ने इसे १०० ली १६⅔ मील कहा है और इस प्रकार कपिला से अनोमा नदी तक प्रथम यात्री के अनुसार कुल दूरी ८ योजन अथवा ५६ मील थी जबकि अन्तिम यात्री के अनुसार यह २०० ली अथवा ५० मील थी। परन्तु भारतीय बौद्ध ग्रन्थों में इस दूरी को केवल ६ योजन अथवा ४२ मील बताया गया है जिसे मैं सही शुद्ध समझता हूँ क्योंकि

वर्तमान ओमी नदी जो सम्भवतः बौद्ध पुस्तकों की अनोमा नदी है—नगर से पूर्व दिशा मे प्राय: ४० मील दूर है। अनोमा की अनुरूपता पर अभी विचार किया जायेगा।

तीर्थ यात्री के कथनानुसार रामाग्राम की स्थिति को नगर एवम् अनोमा नदी के बीच लगभग दो तिहाई दूरी अर्थात ४ योजन अथवा २८ मील पर देखा जाना चाहिये। इस स्थान पर मुझे खण्डहरा के एक टीले सहित दियोकली नामक गाव दखा था जिसे त्रिकोणमिति सम्बन्धी सर्वेक्षण हेतु चुना गया था। महावशों में लिखा हुआ है कि रामागामा का स्तूप जो गङ्गा नदी पर खडा था—नदी की बाढ मे नष्ट हो गया था। श्री लेडले ने इस बात पर जोर दिया है कि यह नदी गङ्गा नदी नहीं हो सकती परन्तु घाघरा अथवा उत्तर की अन्य कोई नदी हो सकती है। परन्तु मैं इस बात में विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि लका की पुस्तको म गङ्गा की कल्पना मात्र की गइ है। सभी बौद्ध ग्रन्थ इस बात म सहमत हैं कि बुद्ध के अवशेषो को आठ भागों में विभाजित किया गया था जिसमे एक भाग रामाग्राम के कोशलो को प्राप्त हुआ था और उन्होंने इस भाग पर एक स्तूप का निर्माण करवाया था। कुछ वर्ष पश्चात अवशेषो के सात भागो का मगध क अजात शत्रु ने एकत्रित किया था और अपने इहे राज गृही के एक ही स्तूप मे रखा था परन्तु आठवाँ भाग उस समय भी रामाग्राम म रहा। लङ्का की बौद्ध पुस्तको के अनुसार रामाग्राम का स्तूप नदी की बाढ़ में बह गया था एव अवशेष पात्र नदी मार्ग से सागर तक चला गया था जहाँ नागाओ ने इसे प्राप्त कर लिया था और उन्होंने इसे अपने राजा को भट मे दे दिया था। जिसने इसके स्वागतार्थ एक स्तूप का निर्माण करवाया था। १६१ से १३७ ई० पूर्व लङ्का के दुथागामिनी के शासन काल मे पवित्र भिक्षु सोनुतारो ने आश्चर्यजनक रूप से इस पात्र को नाग राजा स प्राप्त कर लिया और लङ्का के महा थूपो अथवा "महा-स्तूप" मे सुशोभित किया।

अब, यह कथा चीनी तीर्थ यात्रियो के कथना स पूर्णतय भिन्न है। जिन्होंने दुथागामिनी से कई शताब्दियों पश्चात रामाग्राम की यात्रा की थी एवम उन्होंने स्तूप को अच्छी अवस्था म देखा था परन्तु नदी को नही देखा था। पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ म फाहियान ने स्तूप के समीप एक सरोवर देखा था जहा एक नाग रहा करता था जो निरतर स्तूप पर दृष्टि रखता था। सातवी शताब्दी के मध्य म ह्वेनसाग ने इसी स्तूप एवम् नागों से भरे सरोवर को देखा था जो प्रतिदिन मानव शरीर धारण कर स्तूप पर पूजा किया करते थे। दोनो तीर्थ यात्रियों न सम्राट अशोक द्वारा इस पात्र को हटाकर अपनी राजधानी म ले जाने के प्रयत्नो का उल्लेख किया है परन्तु नाग राज के प्रतिवाद के कारण उसे सफलता नहीं मिली। "नाग राज ने कहा, यदि आप अपनी बली द्वारा इस स्तूप की शोभा नहीं बढा सकते तो आप इसे नष्ट कर सकते हैं

और मैं आपके मार्ग म बाधा नहीं डालूगा।" अब, लङ्का की बौद्ध पुस्तकों क अनुसार नाग राज ने भिन्नु सोनुत्तारा को अवशेष पात्र लङ्का ले जाने के प्रयत्न मे विरक्त करने के लिये इसी तक का आश्रय लिया था। अत मेरा अनुमान है कि लङ्का के लेखको ने रामाग्राम के सरोवर को चतुराई से नदी म परिवर्तित कर दिया गया था जिससे अवशेष जा सरोवर के नागो के पास थे सागर म नाग राजा के पास ले जाये जा सके एवम वहाँ स उन्हे लङ्का अथवा अन्य किसी भी स्थान पर सरलता पूर्वक ले जाया जा सके। इस प्रकार लङ्का की कथा म नदी की आवश्यकता थी जिसमे अवशेषो को सागर तक ले जाया जा सके। परन्तु दो तीर्थ यात्रियो जिन्होने कई शताब्दियो पश्चात स्तूप को सुरक्षित देखा था परन्तु नदी को नही देखा था—की संयुक्त साक्षी के सम्मुख कथा की साक्षी कोई महत्व नही रखती। अत मैं गङ्गा को लङ्का के लेखको की कल्पना समझ कर छोड देता हूँ और इसके स्थान पर चीनी तीर्थ यात्रियो के नाग सरोवर को मान्य स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार नदी से छुटकारा प्राप्त करने के पश्चात मैं देवकली को बौद्ध इतिहास के रामाग्राम के अनुरूप स्वीकार किये जाने म कोई आपत्ति का कारण नहीं देख सकता। पाचवीं शताब्दी मे फाहियान की यात्रा के समय यह नगर पूर्णतया निर्जन था। फाहियान न वहाँ केवल एक छोटी धार्मिक संस्था के होने का वर्णन किया है। सातवी शताब्दी के मध्य म भी यह संस्था थी परन्तु यह अति जर्जर अवस्था म रही होगी क्योंकि वहाँ मठ की देख भाल करन के लिए केवल एक सामनेरा अथवा भिक्षु था।

अनोमा नदी

बौद्ध धर्म के इतिहास म अनोमा नदी राजकुमार सिद्धार्थ द्वारा स यासी के वस्त्र ग्रहण करने के स्थान क रूप म प्रसिद्ध थी जहाँ उन्होने अपने केश काटे थे एवम अपने दास एवम् घोडे को त्याग दिया था। बर्मा एवम लंका की बौद्ध पुस्तको क अनुसार कपिला से इस स्थान की दूरी ३० योजन अथवा २१० मील थी। यह कथन त्रुटिपूर्ण विचार था कि यह स्थान कपिला एवम राजगृही के मध्य था जबकि दोनो स्थानो की मध्य वर्ती दूरी ६० योजन बताई जाती है। ललित विस्तार के तिब्बती अनुवाद म इस दूरी को ६ योजन अथवा ४२ मील बताया गया है। यह दूरी फाहियान तथा ह्वेनसाग के आकडों से कुछ कम है परन्तु चूकि प्रथम तीर्थ-यात्री ने दूरियो को पूर्ण योजन म बताया है और अन्तिम यात्री ने दोनो दूरियो को सौ सौ की संख्या म ली म बताया है अत उन्हे केवल अनुमानित स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार फाहियान का १ योजन जमा ३ योजन केवल ४½ तथा २½ योजन हो सकता है तथा ह्वेनसाग के २०० ली जमा १०० ली वस्तुत केवल १८० ली जमा ८० ली ही हो सकते हैं। इस प्रकार प्रथम दूरी को घटा कर ७ योजन अथवा ४९ मील

किया जा सकता है एवन् अंतिम दूरी को घटा कर २६० ली अथवा ४३ मील बताया जा सकता है। अन मैं ललित विस्तार को ६ योजन अथवा ४२ मील की दूरी को वास्तविक दूरी की समीपस्थ दूरी स्वीकार करता हूँ जिसे पूर्ण योजन मे बताया जा सकता है।

सन्यासी जीवन को ग्रहण करने के लिये जब राजकुमार सिद्धार्थ ने कपिला छोड़ा तो उन्होंने वैशाली से होते हुए राजगृही का मार्ग अपनाया। अत इस मार्ग की सामान्य दिशा न्योरली के आगे सग्रामपुर से नीचे ओमी नदी के तट तक एवम उस स्थान तक जहाँ यह नदी ओमियार भील मे गिरती है पूर्व दक्षिण पूर्व थी। (१) चूंकि ओमी नदी उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर बहती है अत नगर से इसकी दूरी ४० से ४५ मील तक है। यह मार्ग सग्रामपुर के ऊपर नदी को पार नहीं कर सकता था क्योंकि इसमे इसकी दूरी ४० मील से कम हो जाती है। न ही यह बिन्दु ओमियार भील से नीचे है जो एक सकीर्ण मार्ग से राप्ति मे मिलती है। यदि स्वीकृत तथ्य सही हैं तो नदी पार करने का बिन्दु ओमियार भील के सिर से थोड़ा ऊपर रहा होगा।

अब, ओमी अथवा सस्कृत अवमी का अर्थ है "हीन" और नदी के नाम के रूप मे यह पड़ोस की अन्य नदियों की तुलना में इस नदी के छोटे आकार का प्रतिनिधित्व करता होगा। मानचित्र पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ओमी राप्ती नदी का पुराना मार्ग है जिसने वर्तमान मार्ग को दुमरिया गञ्ज के समीप त्याग दिया था। बूढ़ी नाला नामक ओमी की मुख्य शाखा जो बाँसी के समीप निकलती है अब भी वार्षिक बाढ़ के समय दलदल नामक एक शाखा द्वारा राप्ती नदी से जल प्राप्त करती है। अकेला यह तथ्य ही इस बात का निर्णायक प्रमाण है कि बनेद्वर के समीप बूढ़ी नाला से सङ्गम के नीचे ओमी का निचला भाग राप्ती का पुराना मार्ग है। अत पुराने मार्ग को राप्ती के विशाल अथवा मुख्य मार्ग से भिन्न दिखाने के लिये ओमी अथवा अवमी नदी अर्थात् "हीन अथवा छोटी नदी" की उपाधि उचित रूप से दी गई थी।

ललित विस्तार के अनुसार वह स्थान जहाँ बुद्ध ने नदी को पार किया था। अनुवैया जिले मे मनया नामक नगर के समीप था। नगर का नाम अज्ञात है परन्तु जिले का नाम अनौला प्रतीत होता है जो ओमी नदी के निचले भाग के पश्चिमी तट के खण्ड का नाम है एवम् जिसमें सग्रामपुर एवम् ओमियार भील दोनों ही सम्मिलित

(१) पूर्वी भारत ३१४ मे बुकनान ने इस नगर भील कहा है परन्तु भारतीय एटलस मे एवम राजकीय मानचित्रों में इसे अमियार ताल तथा नदी को अमी नदी कहा गया है।

थी। अनुवैया का अर्थ है वैन्य नदी अथवा वैन्य नदी की निचली शाखा का तटीय प्रदेश। यह नाम सम्भवतः वेणु अथवा बांस शब्द से लिया गया है और यदि ऐसा है तो इसका अर्थ 'बांस की नदी' होगा और इस प्रकार यह वंशी के समान नाम होगा जो तट पर बांस के होने के कारण अथवा बांसी नगर से होकर बहने के कारण इस नदी को दिया जा सकता है।

बर्मा एवम् लङ्का की बौद्ध कथायें इस कथन म सम्मत हैं कि नदी तट पर पहुँचने पर—जहाँ राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने दास एवम् घोड़े को त्याग दिया था—नदी का नाम पूछा और यह बताये जाने पर कि इसका नाम अनोमा है नदी के नाम से सम्बन्धित टिप्पणी की जिसे अनुवादकों ने भिन्न-भिन्न रूप म लिखा है। बर्मी कथा के अनुसार नदी का नाम अनोमा था जिसे सुनने पर राजकुमार ने टिप्पणी की 'मैं स्वय को उस सम्मान के अयोग्य सिद्ध नहीं करूगा जिसकी मैं कामना करता हूँ।" "तत्पश्चात घोडे को एड लगाने ही वह भयानक पशु तुरन्त नदी के दूसरे तट पर कूद गया।' श्री हार्डी ने इस घटना को अधिक संक्षिप्त रूप में लिखा है।' नदी तट पर पहुँच कर उन्होंने सामन्त से इसका नाम पूछा और जब उन्हें बताया गया कि इसका नाम अनोमा, 'प्रख्यात अथवा सम्माननीय' है तो उन्होंने इसे अपने पक्ष में एक अन्य शुभ शकुन के रूप मे ग्रहण कर लिया। टरनौर ने लङ्का की बुद्धावर्ग्गो की अट्ठकथा के आधार पर इस कथा को विस्तार म बताया है। राजकुमार सिद्धार्थ ने छन्दा से पूछा, 'इस नदी का क्या नाम है ?" 'स्वामी इसका नाम अनोमा है।' उत्तर मे उन्होंने कहा, 'मेरे विधान मे किसी प्रकार का अनाम (हीणता) नहीं होगी। यह कहते हुए उन्होंने एडी दबाई और अपने अश्व को छलाङ्ग लगाने का संकेत दिया।" टरनौर का कथन है कि "इस टिप्पणी म श्लेष है' परन्तु श्लेष' बौद्ध साहित्य म लघुता की वस्तु नहीं है। टरनौर ने किसी त्रुटि के कारण अनोमा का 'हीणता' से सम्बन्धित कर लिया है जबकि इसका अर्थ ठीक इसके विपरीत है एवम् श्री हार्डी एव पादरी बिगां-डेट ने इसे शुद्ध रूप मे लिखा है। बर्मी एव लङ्का की बौद्ध पुस्तकों के अनुसार ऐसा प्रतीत होगा कि नदी का नाम अनोमा 'हीण नदी वरन् श्रेष्ठ' था और राजकुमार की *टिप्पणी भी इसी प्रकार रही होगी कि उसका विधान भी अनोमा (श्रेष्ठ) होगा।* परन्तु चूंकि वर्तमान समय म नदी का नाम ओमी अथवा 'हीण' है और चूंकि टरनौर के अनुवाद से पता चलता है कि उसकी प्रतिलिपि म इसका नाम ओमा अथवा ओमा था मैं इस सन्देह का निवारण नहीं कर सकता कि इसका वास्तविक पाठ यही है एवं जब राजकुमार को यह सूचना दी गई थी कि नदी का नाम ओमा अथवा 'हीण' है तो उन्होंने टिप्पणी की कि "मेरा विधान अनोमा अथवा 'श्रेष्ठ' होगा।' यदि नदी का ८० नाम अनोमा था तो यह बात समझ मे नहीं आती कि यह नाम किस प्रकार ओमी

बन गया। जिसका अर्थ मूल नाम क अर्थ के विपरीत है। परन्तु यदि यह ओमी अर्थात् रासी की छोटी शाखा की थी और बौद्ध धर्मावलम्बियों ने इसे अपनी इच्छानुसार बदल कर अनोमा कर दिया था तो मूल नाम का पुन प्रयोग बौद्ध धर्म के ह्रास का स्वाभाविक परिणाम प्रतीत होगा।

परतु नदी क पूर्वी तट पर उस बिन्दु से थोडी दूरी पर जिसे मैंने बुद्ध के नदी पार करने का स्थान स्वीकार किया है, तीन मह व पूर्ण नामो की उपस्थिति से बौद्ध अनोमा एव आधुनिक ओमी की अनुरूपता की पुष्टि होती है। दूसरे तट पर पहुँचने पर राजकुमार घोडे से नीचे उतर गया और उन्होंने अपने दास च दक को कपिला वापस लौट जाने का आदेश दिया। इस स्थान पर च दक निवतन अथवा 'चन्दक की वापसी' नामक एक स्तूप खडा है जिसे बोल चाल की भाषा म सम्भवतः चन्दवत बना दिया गया होगा। मेरे विचार मे इस स्थान को ओमी नदी के पूर्वी तट पर, ओमियार झील के सिरे के समीप अवस्थित चन्दौली ग्राम के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो गोरखपुर के १० मील दक्षिण मे है। तत्पश्चात राजकुमार ने अपनी खडग के साथ अपने केशों का जूडा काट डाला जिसे ऊपर की ओर फेंके जाने पर देवताओं ने ग्रहण कर लिया जिन्होंने उस स्थान पर चूडा पट्टी गढ नामक स्तूप का निर्माण कराया। बोलचाल की भाषा मे इस नाम को छोटा कर चूडा गृह बना दिया गया होगा जिसे मेरे विचार म चन्दौली के तीन मील उत्तर म चौरिया नामक गाँव के अनुरूप माना जा सकता है। तत्पश्चात राजकुमार ने काशाय नामक अपने वस्त्र उतार दिये क्योंकि यह काशी अथवा बनारस म महीन सूत के बने हुए थे। इन वस्त्रों के स्थान पर उन्होंने स यासियों के योग्य सादे वस्त्र पहन लिये। इस घटना के स्थान पर जन साधारण ने काशाय गृह नामक स्तूप का निर्माण करवाया। इस स्थान को मैं चन्दौली के ३½ मील दक्षिण पूर्व म अवस्थित कसेयार नामक गाव के अनुरूप स्वीकार करूगा। इन अनुरूपताओ के पक्ष मे मैं इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि ह्वेनसाग ने त्यागे गये वस्त्रो के स्तूप को च दक वापसी के स्तूप क पूर्व म दिखाया है परन्तु त्यागे गये वस्त्रा के स्तूप के समीप ही चूडा पट्टी गढ स्तूप को दिखाने में उसने उस स्थान के विपरीत दिशा में सकेत किया है जिसे मैं कसेयर के उत्तर में ६ मील की दूरी पर चौरया म दिखा चुका हूँ। अत यह सम्भव प्रतीत होता है कि मेरी प्रस्तावित अनुरूपताओ मे एक अनुरूपता त्रुटि पूर्ण होगी परन्तु चूँकि अन्य दोनों ह्वेनसाग द्वारा बताई गई स्थितियों से सहमत हैं प्रतीत होती हैं अत मेरा अनुमान है कि वह सभी सम्भवत सही हैं।

पीपलवन

अनोमा से दोनो चीनी यात्री बुद्ध की चिता की राख पर निर्मित स्तूप की

माला पर रखे को चिताभस्म के स्थान पर बना हुआ था। इस नगर के मौर्यों ने जिन्हें विलम्ब के कारण बुद्ध के अवशेष नहीं मिल सके थे राख ही स्वीकार कर लिया। फाहियान ने स्तूप को अनोमा के पूर्व में ४ योजन अथवा २८ मील की दूरी पर बताया है परन्तु ह्वेनसांग के अनुसार इस की दूरी १८० से १९० ली अथवा ३० से ३२ मील थी जब कि इसकी दिशा [illegible] थी। फाहियान ने नगर के नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु वहाँ के लोगों को मोरिय पुकारा है इस लिये [illegible] अथवा 'पीपल वन' कहा गया है तथा तिब्बती दुल्व में इसे न्यग्रोध अथवा वट वन कहा गया है। ह्वेनसांग ने भी न्यग्रोध वन का नाम के स्तूप का स्थान कहा है और चूँकि उसने न तो उस स्थान का नाम ही बताया [illegible] की स्थिति के स्थान पर उसकी दूरी को आधार बनाना चाहिए। अब इस नाम का कोई स्थान नहीं है परन्तु ह्वेनसांग द्वारा दर्शित दक्षिण पूर्वी दिशा में एक विशाल वन है जिसने सहनकट नामक प्राचीन नगर के खण्डहरों को पूरी तरह ढक रखा है। बुकानन ने इस स्थान का विस्तृत विवरण दिया है जिसने खण्डहरों से बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त की थीं। अतः बौद्ध धर्म के समृद्ध काल में निश्चित ही इस नाम का स्थान था। मानचित्र पर सीधे माप में यह अनोमी नदी पर के रेगी घाट से २० मील की दूरी पर है परन्तु सड़क की दूरी से मार्ग में अनेक छोटी नदियों के आ जाने के कारण यह दूरी २५ मील से कम नहीं है। अतः यह स्थिति ह्वेनसांग के कोयल के स्तूप की स्थिति से यथा सम्भव मिलती है परन्तु मैं इसकी पुष्टि के प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकता जब तक कि यो नगर कोलुआ नामक गाँव को 'कोयल' अथवा कोयला से सम्बन्धित न किया जाये। परन्तु इसकी सम्भावना अधिक नहीं है। फिर भी मैं यह जोड़ देना चाहता हूँ कि सहनकट से कसिया का निर्देश ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित कोयले के स्तूप से कुशी नगर का उत्तर पूर्वी दिशा से मिलता है।

कुशीनगर

फाहियान ने कुशी नगर को कोयले के स्तूप से १२ योजन अथवा ८४ मील पूर्व बताया है परन्तु वैशाली एवं बनारस से इसकी कथित दूरियों से तुलना करने पर यह दूरी पूर्णतया असम्भव प्रतीत होती है। दुर्भाग्यवश ह्वेनसांग ने अपनी सामान्य आदत के विपरीत दूरी का उल्लेख नहीं किया है और उसने केवल इतना लिखा है कि उसने जङ्गली बैल जङ्गली हाथियों एवं लुटेरों से पूर्ण एक विस्तृत वन से होकर लम्बे समय तक उत्तर पूर्व दिशा मे यात्रा की थी। सहनकट के उत्तर एवं पूर्व मे इस वन का एक भाग अब भी विद्यमान है और गोरखपुर के उत्तर मे तराई के वनों में जङ्गली हाथी अभी भी अधिक संख्या मे पाये जाते हैं। सर्व प्रथम मि० विलसन ने कसिया को कुशी नगर के स्थान के रूप मे प्रस्ताव किया था और यह प्रस्ताव सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया है। यह गाँव गोरखपुर के पूर्व ठीक ३५ मील की दूरी पर

दो मुख्य मार्गों के चौराहे पर अवस्थित है। मानचित्र पर सीधे माप से यह गाँव सहनकट से २८ मील उत्तर पूर्व मे है। अथवा सडक की दूरी से ३५ मील दूर है। अतः इसकी दूरी फाहियान द्वारा वर्णित १२ योजन की दूरी के स्थान पर केवल ५ योजन है। बनारस से इसकी दूरी में वृद्धि किये बिना तथा वैशाली से इसकी दूरी को घटाये बिना इस अधिक दूर उत्तर पूर्व मे नही दिखाया जा सकता। अब, प्रथम दूरी को ह्वेनसाग ने ७०० ली अथवा ११७ मील सीमित किया है तथा अन्तिम दूरी को फाहियान ने स्वय २५ योजन अथवा १७५ मील निश्चित किया है और चूकि दोनों अनुमान कसिया की वास्तविक स्थिति के अधिक समीप हैं अत मुझे विश्वास है कि फाहियान द्वारा इसे १२ योजन बताया जाना एक त्रुटि थी। कसिया के समीप अनुरुद्धवा मानचित्र पर सीधे माप से बनारस से ठीक १११ मील उत्तर उत्तर पूर्व म है और सडक की दूरी क अनुसार यह दूरी १२० से कम नही होगी। मैंने जिस माग का अनुसरण किया था उसके अनुसार कसिया एव वैशाली की मध्यवर्ती दूरी १४० मील है परन्तु यह माग उन नवीन सीधी रेखाओं के साथ-साथ था जिन्ह अङ्ग्रेजी सरकार ने निश्चित किया था। स्थानीय घुमावदार पुराने मार्गों से यह दूरी कहीं अधिक अथवा १६० मील से कम नहीं रही होगी।

ह्वेनसाग की यात्रा के समय कुशीनगर की दीवारें जर्जर अवस्था में थी तब यह स्थान प्राय निजन था परन्तु प्राचीन राजधानी की ईटो की नीव १२ ली अथवा २ मील के घेरे म विस्तृत थी। अरुद्धवा तथा कशिया के मध्य वतमान खण्डहर अधिक बडे क्षेत्र म फैले हुए हैं परन्तु इनमे कुछ एक निश्चित ही नगर से बाहर थे और अब इसकी वास्तविक सीमाओं का निश्चय करना प्रायः असम्भव है। सम्भवतः यह नगर अरुद्धवा गाँव के उत्तर पूर्व मे खण्डहरा के टीले के स्थान पर बसा हुआ था। अतः बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति का स्थान स्तूप की स्थिति स, एव माथा कुआर का कोट अथवा 'मृतक राजकुमार का दुग नामक खण्डहर एव वह स्थान जहाँ बुद्ध क शव को जलाया गया था, वतमान देविस्थान नामक विशाल स्तूप के स्थान के अनुरूप होंगे। प्रथम स्थान अरुद्धवा के उत्तर पश्चिम मे तथा छोटा गण्डक अथवा हिरण्यवती नदी के पुराने माग—जो यदा कदा वर्षा ऋतु में जल स भर जाता है—के पश्चिम म है। अतिम स्थान अरुद्धवा के उत्तर पूव म तथा हिरण्यवती अथवा छोटा गडक के पुराने माग क पूव म अवस्थित है।

कशिया के समीप खण्डहरा से वतमान समय में सम्बन्धित एक मात्र नाम माथा कुआर अथवा 'मृतक राजकुमार' का नाम है। श्री लिस्टन ने म्य मादा कहा है परन्तु पडोसी बिशनपुर गाँव के एक ब्राह्मण ने मेरे लिए माथुन नाम को ठीक उसी प्रकार लिखा था जैसा मैंने ऊपर लिखा है। मरे विचार में मृतक मथा अथवा मृदा

स लिया गया है अतः माथा कुआ को मैंने "मृतक राजकुमार" स्वीकार किया है जिसे मैं बुद्ध की मृत्यु अथवा जनसाधारण की भाषा में निर्वाण के पश्चात स्वयं बुद्ध से सम्बन्धित करता हूँ। कश्यप द्वारा सन्यासी के वस्त्र ग्रहण करने की घटना का वर्णन करते हुए ह्वेनसांग ने उसे कुमार राजा अथवा 'राजकीय राजकुमार' कहा है परन्तु मेरा विश्वास है कि यद्यपि विद्वानों ने सन्यासी बुद्ध के लिये इस उपाधि का प्रयोग नहीं किया था फिर भी यह असम्भव नहीं है कि जनसाधारण में यह नाम प्रचलित रहा हो। ह्वेनसांग से हमें पता चलता है कि जहाँ बुद्ध की मृत्यु हुई थी उस स्थान पर ईंटों का विहार अथवा मंदिर मठ बनवाया गया था जिसमें मृत्यु शैया पर लेटे हुए बुद्ध की प्रतिमा थी जिसका सिर उत्तर की ओर था। स्वाभाविक है कि यह प्रतिमा कुशीनगर के स्थान पर पूजा की विशेष वस्तु रही होगी और यद्यपि विद्वानों में यह "निर्वाण प्रतिमा" के नाम से प्रचलित रही हो फिर भी मैं यह विश्वास कर सकता हूँ कि जन-साधारण के सभी वर्गों में "मृतक राजकुमार की प्रतिमा" का नाम अधिक प्रचलित रहा हो। अतः मेरा विचार है कि माथा कुआर का नाम जिसे आज भी कसिया के खण्डहरों से सम्बन्धित किया जाता है बुद्ध की मृत्यु से सीधा सम्पर्क रखता है। उनके अनुयायियों के अनुसार बुद्ध की मृत्यु ५४३ ई० पूर्व में वैशाख पूर्णिमा के अवसर पर कुशीनगर में हुई। वर्तमान समय तक इस नाम का जीवित रहना कसिया को बुद्ध की मृत्यु के स्थान के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में एक ठोस प्रमाण है।

खुखुन्दो-कहौन

कुशी नगर के बाद ह्वेनसांग बनारस की ओर गया और २०० ली अथवा ३३ मील दक्षिण पश्चिम की यात्रोपरान्त वह एक विशाल नगर में पहुँचा जहाँ एक ब्राह्मण रहा करता था जो बौद्ध धर्म का अनुयायी था। यदि हम कठोरता पूर्वक दक्षिण पश्चिम दिशा का अनुसरण करें तो हमें इस विशाल नगर को रुद्रपुर के समीप सहनकट के अनुरूप स्वीकार करना चाहिये। परन्तु इस स्थान को हम इसके पूर्व पिप्पलवन के अनुरूप स्वीकार कर चुके हैं और यह स्थान बनारस की ओर जाने वाले मुख्य मार्ग पर नहीं है। चूँकि ह्वेनसांग ने ब्राह्मण द्वारा आने जाने वाले सभी यात्रियों की सेवा का विशेष उल्लेख किया है अतः यह निश्चित है कि यह विशाल कस्बा कुशी नगर तथा बनारस के मध्य मुख्य मार्ग पर रहा होगा। अब, यह मुख्य मार्ग रुद्रपुर से होकर नहीं जा सकता था क्योंकि ऐसा करने से इसे घाघरा नदी के अतिरिक्त राप्ती नदी को भी पार करना पड़ता जबकि स्वयं रुद्रपुर बनारस के सीधे मार्ग में नहीं पड़ता। यह प्रायः स्पष्ट है कि यह मुख्य मार्ग घाघरा एवं राप्ती के संगम स्थान से नीचे किसी स्थान पर घाघरा को पार करता होगा। जनसाधारण के अनुसार घाघरा को पार करने का घाट कहौन के ४ मील दक्षिण में तथा दोनों नदियों

के सगम स्थान से ७ मील नीचे महिली मे था। कशिया से महिली घाट तक यह माग धुधुन्दो एव कहौन के दो प्राचीन नगरो से होकर गया होगा। आज भी इन दोनो स्थानो पर प्राचीनता के चिह्न पाये जाते हैं परन्तु प्रथम नगर कशिया से कवल २८ मील दूर है जबकि द्वितीय नगर की दूरी ३५ मील है। दोनो ही असदिग्ध रूप से ब्राह्मण वादी थे परन्तु धुधुन्दो म प्राप्त सभी खण्डहर मध्य युग मे सम्बन्धित है जबकि कहौन मे प्राप्त अवशेष स्कन्द गुप्त के समय के हैं जिसने ह्वेनसाग के समय स कई शताब्दी पूव शासन किया था। अत मैं ह्वेनसाग क प्राचीन नगर के प्रतिनिधि के रूप म कहौन क दावे को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। आंशिक रूप स इसकी असन्दिग्ध प्राचीनता के कारण एव आंशिक रूप से इस कारण कि कशिया स धुधुन्दो के अपेक्षाकृत बडे नगर की दूरी की उपेक्षा इस स्थान की दूरी तीर्थ यात्री के अनुमान से अच्छी तरह मिलती है।

पावा, अथवा पडरौना

लका की पुस्तकों म कुशी नगर पहुँचने से पूव बुद्ध क अतिम विश्राम स्थान क रूप मे पावा का उल्लख किया गया है। कुशी नगर म उनकी मृत्यु क पश्चात बुद्ध क शव के दाह सस्कार मे भाग लने के लिये कुशी नगर तक काश्यप का यात्रा मे इसका पुन उल्लेख मिलता है। पावा, बुद्ध के अवशेष प्राप्त करने वाल आठ नगरों म एक नगर के रूप मे भी प्रसिद्ध था। लका की पुस्तकों म इसे कुशीनगर से गडक नदी की ओर कवल १२ मील की दूरी पर दिखाया गया है। अब कशिया स १२ मील उत्तर उत्तर पूव म पडरौना अथवा पदर वन नाम एक बडा गाँव है जहाँ टूटी हुई ईंटा से ढका एक विशाल टीला है जिसम बुद्ध की अनेक प्रतिमाये प्राप्त की गई हैं। पदरवन अथवा पदरवन क नाम को सरलता पूवक छोटा कर परवन, पवन अथवा पावा बनाया जा सकता है। तिब्बती कहग्यूर म इस दिग पचन कहा गया है परन्तु चूकि इसका अथ नहीं दिया गया है अत यह कहना असम्भव है कि यह मूल भारतीय नाम है अथवा तिब्बती अनुवाद। पावा एवम् कुशीनगर क मध्य कुकुत्था अथवा कुकुत्था नामक एक नदी थी जहाँ बुद्ध ने स्नान किया था एवम जल ग्रहण किया था। यह नदी वतमान समय की बाधी, बरही अथवा बाधी नाला रही होगी जो ३६ मील बहने के बाद कशिया से ८ मील नीचे छोटा गडक अथवा हिरय नदी के बाय तट पर मिलती है।

वाराणसी, अथवा बनारस

सातवी शताब्दी म पो लो-नी सी अथवा वाराणसी राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी तथा राजधानी जो गङ्गा नदी के पश्चिमी तट पर थी १८ स १९ ली अथवा ३ माल लम्बी एवम् ५ स ६ ली अथवा १ मील चौडी थी। पडोसी

राज्यों की सीमाओं को देखते हुए इसकी सम्भावित सीमायें उत्तर में गोमती नदी, से इलाहाबाद तक एवम् टोंस नदी से बिन्हारी तक सीधी रेखा, दक्षिण में बिनहारी से सोनहाट तक सीधी रेखा एवम् पूर्व में रेहन्द कर्मनासा तथा गङ्गा नदियां थीं। इन सीमाओं के भीतर इसकी परिधि मानचित्र पर सीधे माप से ५६५ मील एवम् वास्तविक माप दूरी से ६५० मील है।

बनारस नगर उत्तर पूर्व में वरना नदी एवम् दक्षिण पश्चिम में असी नाला के मध्य गङ्गा नदी के बायें तट पर अवस्थित है। वरना अथवा वरणा एक महत्वपूर्ण छोटी नदी है जो इलाहाबाद के उत्तर में निकलती है तथा लगभग १०० मील तक बहती है। असी बहुत ही छोटी नदी है और अपने गौण आकार के कारण यह हमारे सर्वाधिक विस्तृत मानचित्र में भी दिखाई नहीं देती। भारतीय एटलस प्रति नवम्बर ८८ में जो एक इंच बराबर चार मील की दर से बनाई गई है अथवा बनारस जिले के परगर्न के छाप के बड़े मानचित्र में जिसे एक इंच बराबर २ मील की दर से बनाया गया है इस नदी को स्थान नहीं दिया गया है। इस भूल के कारण फ्रांसीसी विद्वान एम० विवीन डी सेंट मार्टिन को गङ्गा की सहायक नदी के रूप में असी नदी के अस्तित्व में सन्देह है एवम् उनका अनुमान है कि यह केवल वरना नदी की एक शाखा हो सकती है एवम् दोनों की संयुक्त धारा जिसे वाराणसी कहा जाता था—से नगर का नाम वाराणसी पड़ गया था। जैसा कि मैंने बताया है असी नाला को हुलमन्डेन द्वारा प्रकाशित जेम्स प्रिंसेप के बनारस के मानचित्र में एवम् उस छोटे मानचित्र में देखा जा सकता है जिसे मैंने बनारस के खण्डहरों की व्याख्या करने के लिये बनाया है। श्री एच० एच० विलसन ने अपने संस्कृत शब्द कोष में वाराणसी के अन्तर्गत असी की स्थिति को ठीक ठीक समझाया है। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि बनारस से रायनगर की ओर जाने वाली सड़क नगर के ठीक बाहर एवम् नदी में संगम स्थान से कुछ नीचे असी नाला को पार करती है। दोनों छोटी नदियों एवम् गङ्गा के संगम स्थान को विशेष रूप से पवित्र माना जाता है और तदनुसार नगर से नीचे वरना संगम एवम् नगर से ऊपर असी संगम पर मन्दिरों का निर्माण करवाया गया है। नगर को उत्तर एवम् दक्षिण से घेरने वाली दोनों नदियों के संयुक्त नाम से ब्राह्मणों ने वाराणसी अथवा वाराणसी नाम प्राप्त किया जिसे बनारस नाम का संस्कृत स्वरूप समझा जाता है। परन्तु जनसाधारण में प्रचलित रूप में इसे राजा बनारस के नाम से सम्बन्धित किया जाता है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने लगभग ८०० वर्ष पूर्व इस नगर की स्थापना की थी।

अबुल फजल ने इन दोनों छोटी नदियों का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि, "वाराणसी जिसे सामान्यतः बनारस कहा जाता है वरना एवम् असी नदियों के मध्य अवस्थित एक विशाल नगर है।" पादरी हेबर ने भी इस बात का उल्लेख किया

है कि राजा बनारस ने उसे सूचित किया था कि "गङ्गा नदी मे गिरने वाली बारा एवम् नासा नाम की दो नदियो के नाम पर इस नगर का प्राचीन नाम बनारस था।' विद्वान पादरी ने अनुमान लगा लिया है कि यह दोनो नादियाँ भूमिगत होकर गङ्गा मे मिलती हैं क्योकि इन्हे मानचित्र पर नही दिखाया गया है परन्तु दो पृष्ठों के बाद उसने लिखा है कि उसकी नौका "एक छोटी नदी के मुहाने पर पहुँची जो सेकरोल" अर्थात बनारस छावनी, "की ओर जाती थी। यहा यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि यह केवल उनके दास की सूचना पर लिखा गया है एवम् उन्होंने वस्तुत नदी को नही देखा, परन्तु चूकि पादरी बरना के उत्तर में श्री बोक के साथ रहते थे अतः हिन्दुओं के पवित्र नगर म अपने निवास के दिनो मे वह पत्थर क विशाल पुल स कम से कम दो बार प्रति दिन आया जाया करते होंगे।

बौद्ध धर्मावलम्बियों म बनारस उस स्थान के रूप म प्रसिद्ध हैं जहाँ महान गुरु ने अपने सिद्धान्तो का सर्व प्रथम प्रचार किया था अथवा जैसा कि वह इसे लाक्षणिक रूप में व्यक्त करते है 'जहाँ उन्होंने धर्म चक्र चलाया था।' यह बुद्ध के जीवन की चार महान घटनाओ म एक घटना थी और उस स्थान पर बनाये गये स्तूप को बौद्ध धर्म के चार महान स्तूपो म गिना जाता है। यह स्तूप जिसे अब धमक कहा जाता है—नगर के उत्तर में लगभग ३ मील की दूरी पर खण्डहरों के विशाल समूह में खड़ा है जो चारों ओर विशाल कृत्रिम झीलो स घिरे हुए हैं। धमक नाम सम्भवतः संस्कृत क धर्मोपदेशक का संक्षिप्त स्वरूप है। किसी भी धार्मिक गुरु के लिये यह एक सामान्य नाम है परन्तु इस बात को ध्यान म रखने पर कि बुद्ध ने सर्व प्रथम इसी स्थान पर धर्म चक्र चलाया था, यह नाम स्तूप के लिये उपयुक्त प्रतीत होता है। सरल भाषा मे इसे धर्मदेशक भी कहा जाता है जिसे बोल चाल की भाषा मे स्वभाविक रूप से छोटा कर धम्मदक अथवा धमेक बना दिया गया होगा।

नगर का प्राचीनतम नाम काशी था जो अगले अथवा अन्तिम नाम के साथ काशी बनारस क रूप म आज भी प्रचलित है। यह सम्भवत टालमी का कस्सीदा अथवा कस्सीदिया था। यह नाम काशी राज से सम्बन्धित किया जाता है जो चन्द्र-वंशियों क प्रारम्भिक पुरुखों मे था। उसके बाद उसके २० वंशजों ने काशी मे राज्य किया। प्रसिद्ध काशी राज दिवोदास इन्हीं वंशजों में थे।

गरजापटीपुर

बनारस से ह्वेनसांग पूर्व दिशा म ३०० ली अथवा ५० मील की यात्रो परान्त चेन चू राज्य में गया था जो मूल नाम का चीनी अनुवाद है जिसका अर्थ 'युद्ध क्षेत्र का स्वामी' था। श्री एम० जुलीन ने योद्धा पटी अथवा योद्धाराजपुर नाम का प्रस्ताव किया है परन्तु चूंकि केवल अनुवाद ही दिया गया है अत हम विग्रहपती, युद्ध

नाथ, रण स्वामी आदि अनेक नामों का प्रस्ताव कर सका है। गङ्गा नदी पर अवस्थित राजधानी की परिधि १० ली अथवा १$\frac{2}{3}$ मील थी। इस प्रकार वर्णित स्थान निश्चित ही गाजीपुर है जो बनारस से प्रायः ५० मील पूर्व गङ्गा नदी पर अवस्थित है। वर्तमान नाम मुसलमानों द्वारा रखा गया था और कहा जाता है कि यह नाम मूल हिन्दू नाम गर्जपुर का केवल परिवर्तित स्वरूप है। इस बात की अधिक सम्भावना है कि ह्वेनसांग ने गर्जन के रूप में इसी नाम का उल्लेख किया है जिसके साधारण अर्थ में 'युद्ध' का संकेत भी मिलता है और गर्जन पति 'युद्ध के देवता' की उपाधि है। गाजीपुर अब एक बड़ा नगर है जिसकी लम्बाई २ मील एवम् परिधि ५ अथवा ६ मील है। ह्वेनसांग ने जिले की परिधि का अनुमान २००० ली अथवा ३३३ मील लगाया था जो प्रायः उत्तर में घाघरा तथा दक्षिण में गोमती, पश्चिम में टाण्डा से गङ्गा एवम् घाघरा के संगम स्थान के मध्यवर्ती क्षेत्र के आकार के समान है।

राजधानी से २०० ली अथवा ३३ मील पूर्व में ह्वेनसांग अविद्धकर्ण मठ में गया था जो अति सुन्दर कला मूर्तियों से सुसज्जित था। दिशा एवम् दूरी को देखते हुए इस स्थान को गङ्गा नदी के तट पर बलिया के आस पास देखा जाना चाहिये। अविद्धकर्ण का अर्थ है छिद्रित कर्ण और मेरे विचार में यह सम्भव है कि यह नाम बलिया के एक मील पूर्व में अवस्थित बीकापुर नाम में सुरक्षित है क्योंकि अविद्धकर्ण पुर को सरलता पूर्वक विद्धकर्णपुर तथा बीकनपुर बनाया जा सकता है। यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि फाह्यान द्वारा 'वृहद आरण्य' नाम के अन्तर्गत उल्लिखित स्थान यही हो। यह स्थान पटना एवम् बनारस के मध्य, प्रथम स्थान से १० योजन अथवा ७० मील तथा अन्तिम स्थान से १२ योजन अथवा ८४ मील की दूरी पर है। इसका भारतीय नाम नहीं दिया गया है परन्तु चूँकि इसका [illegible] अर्थ वृहद आरण्य अथवा विशाल वन होगा इस नाम को अज्ञानता अथवा इच्छा से सरलता पूर्वक विद्धकर्ण पढ़ा जा सकता है। पटना एवम् बनारस से दी गई दूरी बलिया की दूरी से ठीक-ठीक मिलती है जो प्रथम नगर से ७२ मील तथा अन्तिम नगर से ८६ मील है।

यहाँ से ह्वेनसांग १०० ली अथवा १६ मील [illegible] पूर्व में गङ्गा नदी तक गया। नदी को पार कर वह कुछ अपरिमित दूरी तक दक्षिण की ओर गया तब वो मो-सो अथवा महासार नामक नगर में पहुँचा। इस स्थान पर ब्राह्मणों का निवास था जो बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं रखते थे। [illegible] विवान [illegible] ने इस स्थान (मसार? [illegible]) को ६ मील पश्चिम में [illegible] स्वीकार किया है जिसका [illegible] ब्राह्मणों की [illegible] अथवा [illegible] इसकी [illegible] किया है। परन्तु [illegible]

मार्ग को देखने पर मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि उसने खेलगंज के समीप गङ्गा नदी को पार किया होगा जो ममार के ठीक उत्तर में ठीक १६ मील अथवा १०० ली की दूरी पर है। गङ्गा एवं घाघरा नदियों के समीप यह स्थान विशेष रूप से पवित्र माना जाता है और खेल गंज के थोडा ऊपर संयुक्त नदियों के तट पर अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया गया है। अत मैं इसी स्थान को ह्वेनसाग द्वारा कथित नारायण अथवा विष्णु के मन्दिर का स्थान बनाऊँगा जिसे उसने दो मंजला एवं पत्थर की सर्वाधिक सुन्दर कला मूर्तियों से सुसज्जित बताया है।

मन्दिर से पूर्व ३० ली अथवा ५ मील की दूरी पर एक प्रसिद्ध स्तूप था जिसे अशोक ने उस स्थान पर बनवाया था जहाँ बुद्ध ने किन्हीं राक्षसों पर विजय प्राप्त की थी एवं उन्हें बुद्ध धर्म का अनुयायी बनाया था। कहा जाता है कि यह राक्षस मानव भक्षी थे। इन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया अथवा प्राचीन बौद्ध धर्मावलम्बियों के मतानुसार बौद्ध धर्म की महान त्रिमूर्ती अर्थात् बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण ली। शरण संस्कृत शब्द है और चूँकि सारन ही उस जिले का वास्तविक नाम है जहाँ राक्षसों ने बुद्ध की शरण ली थी अत मेरा निश्चय है कि उस स्थान पर बनाये गये स्मारक को शरण स्तूप कहा गया होगा। यह स्तूप अधिक प्रसिद्ध रहा होगा क्योंकि इस बात में सन्देह नहीं कि इसी स्तूप के नाम पर जिले का वर्तमान नाम पड़ा होगा। अब, खेल गंज के पाँच मील पूर्व जाने से हम सारन जिले की वर्तमान राजधानी में पहुँचते हैं। दुर्भाग्यवश छपरा के सम्बन्ध में मैं कोई सूचना प्राप्त नहीं कर सका परन्तु इतना निश्चित है कि यह अधिक महत्व का स्थान रहा होगा अन्यथा जिले की अङ्गरेजी राजधानी के रूप में इसका निर्वाचन न किया जाता।

शरण स्तूप से तीर्थ यात्री १०० ली अथवा १६⅔ मील दक्षिण पूर्व में एक अन्य स्तूप पर गया जो द्रोण ब्राह्मण ने उस पात्र पर बनवाया गया था जिससे उसने बुद्ध के अवशेषों को माप किया था। लंका की पुस्तकों के अनुसार दोणों (अथवा द्रोण) ब्राह्मण ने कुम्भान पर स्तूप का निर्माण करवाया था और इसी कारण इसे कुम्भान स्तूप भी कहा जाता था। हार्डी ने ब्राह्मण को द्रोण एवं पात्र को 'स्वर्ण माप' कहा है। बर्मा की पुस्तकों में पात्र को यही नाम दिया गया है परन्तु ब्राह्मण को दौना कहा गया है। तिब्बती विवरण में द्रोण नाम को अवशेषों के 'माप' से सम्बधित बताया गया है जो निश्चित ही असत्य है क्योंकि ब्राह्मण को अवशेषों का कोई भाग नहीं मिला परन्तु उसे वह पात्र मिला था जिसमें उसने अवशेषों का माप किया था। सम्भवत यह पात्र माप में द्रोण के तुल्य था क्योंकि कहा जाता है कि अवशेषों का प्रत्येक भाग एक द्रोण था। अत स्तूप को द्रोण स्तूप कहा गया होगा क्योंकि यहाँ वह पात्र रखा गया था जिससे प्रति द्रोण का माप किया था। परन्तु द्रोण स्तूप ही स्मारक का एक मात्र नाम न था। लंका के बौद्ध ग्रन्थों में इसे कुम्भा स्तूप

कहा गया है। अब कुम्भ एक बड़े आकार का जल भरने का पात्र है जिसे बड़े मुख वाले फूलों से पूर्ण पात्र के रूप में अनेक भारतीय स्तूपों पर खुदा हुआ देखा जा सकता है। मैं छपरा के दक्षिण पूर्व में १८ मील की दूरी पर ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थान पर कुम्भ अथवा द्रोण समान किसी नाम को नहीं ढूंढ सका हूँ। परन्तु इसी स्थिति में देगवार नामक एक गाँव है जो, चूंकि देग कुम्भ के आकार का एक बड़ा धातु के बने पात्र का हिन्दी नाम है सम्भवतः मूल नाम का परिवर्तित नाम हो सकता है। परन्तु देग समान आकार के पात्र का फारसी नाम भी है अतः मैं सरल स्मृति के लिये देगवार का उल्लेख करूंगा क्योंकि इसका समान अर्थ है और इसकी स्थिति भी बौद्ध इतिहास के प्रसिद्ध कुम्भ स्तूप के समान है।

वैशाली

कुम्भ स्तूप से ह्वेनसांग उत्तर पूर्व की ओर १४० अथवा १५० ली अथवा २३ से २५ मील की दूरी पर अवस्थित वैशाली नगर में गया। उसने मार्ग में गङ्गा नदी पार करने का उल्लेख किया है परन्तु चूंकि वह इस यात्रा से पूर्व ही नदी के उत्तर में था अतः उसका उल्लेख गंडक नदी से सम्बन्धित रहा होगा जो देगवारा के १२ मील के भीतर बहती है। अतः हमें वैशाली को गंडक के पूर्व में देखना चाहिये। तदनुसार यहाँ हमें एक प्राचीन ध्वस्त दुर्ग सहित बेसाढ़ नामक गाँव मिलता है जिसे आज भी राजा बिसाल का गढ अथवा राजा वैसाल का दुर्ग कहा जाता है जो प्राचीन वैशाली का प्रसिद्ध संस्थापक था। ह्वेनसांग का कथन है कि राजमहल की परिधि ४ से ५ ली अथवा ३५०० से ४४०० फुट थी जो प्राचीन दुर्ग के मेरे आंकड़ों से मिलती है। मेरे आंकड़ों के अनुसार ध्वस्त दीवारों की रेखाओं के साथ-साथ दुर्ग का आकार १५०० फुट गुणा ७५० फुट अथवा कुल मिलाकर ४६०० फुट था। अबुल फजल ने बेसाढ़ नाम के अन्तर्गत इस स्थान का उल्लेख किया है। वर्तमान समय में भी यह ईंटों के खण्डहरों से घिरा एक विस्तृत गाँव है। यह देगवारा से ठीक २३ मील की दूरी पर है परन्तु इसकी दिशा उत्तर पूर्व के स्थान पर उत्तर उत्तर पूर्व है। यह स्थिति पाटलीपुत्र अथवा पटना के विपरीत गङ्गा नदी के तट तक ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित दूरी एवं दिशा से ठीक ठीक मिलती है। यह स्थान देगवारा से १२० ली अथवा २० मील दक्षिण में है और गङ्गा के उत्तरी तट पर हाजीपुर का स्थान भी ठीक २० मील दक्षिण में है। इस प्रकार बसाढ़ का ध्वस्त दुर्ग एवं वैशाली के प्राचीन नगर में नाम, स्थिति एवं आकार की इतनी अधिक समानता है कि इनकी अनुरूपता में किसी प्रकार का उचित सन्देह शेष नहीं रह जाता।

ह्वेनसांग के आंकड़ों के अनुसार वैशाली राज्य की परिधि ५,००० ली अथवा ८३३ मील थी जो निश्चय ही अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि इस परिधि को स्वीकार करने

से वैशाली राज्य में व्रिजी के पड़ोसी राज्य को सम्मिलित करना होगा जिसकी परिधि ह्वेनसांग के कथनानुसार ४००० ली अथवा ६६७ मील थी। अब, व्रिजी की राजधानी को वैशाली के उत्तर पूर्व में ५०० ली अथवा ८३ मील की दूरी पर बताया गया है और चूंकि दोनों जिले पर्वतों एवम् गङ्गा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्र में थे अतः यह प्रायः निश्चित है कि इनमें किसी एक के अनुमानित आंकड़ों में कुछ त्रुटि है। आस पास के अन्य राज्यों को देखते हुए, पर्वतों से दक्षिण में गङ्गा नदी तक एवं पश्चिम में गंडक नदी से पूर्व में महा नदी तक दोनों जिलों की संयुक्त सीमायें ७५० अथवा ८०० मील से अधिक नहीं हो सकती। अतः मेरा निष्कर्ष है कि या तो एक अथवा दोनों जिलों के अनुमानित आंकड़ों में कुछ त्रुटि अथवा अतिशयोक्ति है अथवा दोनों जिले भिन्न नामों के अन्तर्गत एक ही राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। अब मैं यह दिखाने का प्रयास करूंगा कि अन्तिम अनुमान सत्य है।

मि० बर्नाफ द्वारा उद्धृत एक बौद्ध कथा में बुद्ध आनन्द सहित चापाल स्तूप तक जाते हैं तथा एक वृक्ष के नीचे बैठ कर अपने शिष्य से इस प्रकार वार्तालाप करते हैं "आनन्द, देखो व्रिजियों की भूमि वैशाली नगरी कितनी सुन्दर है।' इत्यादि। बुद्ध के समय एवं उनके पश्चात अनेक शताब्दियों तक वैशाली निवासियों को लिच्छवी कहा जाता था तथा त्रिकन्दसेहा में लिच्छवी, वैदेही एवम् तिरभुक्ति को पर्यायवाची नाम बताया गया है। रामायण के पाठक जानते हैं कि वैदेही राजा जनक के राज्य मिथिला का एक सामान्य नाम था जिसकी कन्या सीता को वैदेही भी कहा जाता है। तिरभुक्ति वर्तमान तिरहुती अथवा तिरहुत है। अब मिथारी जिले में जनकपुर के आधुनिक नगर को देश की जनता की सर्व सम्मति में मिथिला की राजधानी, प्राचीन जनकपुरी का स्थान स्वीकार किया जाता है। यह ह्वेनसांग द्वारा कथित व्रिजी की राजधानी चेन शू-ना की स्थिति से मिलती है। एम० विवीन डी सेंट मार्टिन ने चीनी नाम को चौ शू ना पढ़ा है परन्तु श्री एम० जुलीन ने इसे छा सू-ना कहा है तथा उनका इस बात का संकेत किया है कि द्वितीय स्वरूप को शूक में ढूंढा जा सकता है और मेरे विचार में इसे शूद्र में भी देखा जा सकता है। नाम का शुद्धीकरण सन्दिग्ध है परन्तु—यदि चीनी तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी एवम् दिशा ठीक हैं तो यह प्रायः निश्चित है कि सातवीं शताब्दी में व्रिजियों की राजधानी जनकपुर थी।

ह्वेनसांग ने फो ली शी अथवा व्रिजी नाम के अन्तर्गत देश के संस्कृत नाम का वर्णन किया है परन्तु यह भी कहा है कि उत्तरी प्रदेश की जनता देश को सान फा शी अथवा समवजी कहा करते थे जो समव्रिजियों अथवा संयुक्त व्रिजियों का पाली स्वरूप है। इस नाम से मेरा अनुमान है कि व्रिजी एक बहुत बड़ी जाति का नाम था जो वैशाली के लिच्छवी मिथिला के वैदेही एवम् तिरहुत के तिरभुक्ति आदि अनेक शाखाओं में विभाजित थी। अतः इनमें किसी भी खण्ड को व्रिजी समव्रिजी अथवा

“संयुक्त जिम्म” कहा जा सकता है। हमारे पास गणपत के कार्यों अथवा सम आगदिया का सबाहू जाति का समानान्तर उदाहरण है जो तीन विभिन्न शाखाओं म बटी हुई थी। अत मेरा निष्कर्ष है कि वैशाली संयुक्त विज्जयों अथवा वज्जियों की सीमा म एक ही जिला था अत वैशाली के विस्तार सम्बन्ध में ह्वेनसांग का अनुमान एक साधारण त्रुटि थी। सम्भवत पूर्व ५००० ली अथवा ८३३ मील के स्थान पर हम १५०० ली अथवा २५० मील पढ़ना चाहिये। इस दिशा में वैशाली जिला पोगे गण्डक नदी के पश्चिम की ओर विज्जियों के देश के दक्षिण पश्चिमी भाग तक सीमित होगा।

वैशाली से उत्तर पश्चिम म २०० ली अथवा ३३ मील से कुछ कम दूरी पर ह्वेनसांग ने एक प्राचीन नगर के खण्डहरों का उल्लेख किया है जो अनेक वर्ष पूर्व नष्ट हो गया था। कहा जाता है कि बुद्ध ने यहां के नागरिक एक चक्रवर्ती राजा के रूप में अपने पिछले जन्म में यहां राज्य किया था और इस तथ्य के समर्थन में यहां एक स्तूप है। इस स्थान का नाम नहीं दिया गया है परन्तु दिशा एव दूरी वैशाली से प्राय ३० मील उत्तर पश्चिम में एक प्राचीन ध्वस्त नगर केसरिया की ओर संकेत करते हैं। इस स्थान पर खण्डहरों का एक टीला है जिस पर एक उन्नत स्तूप खड़ा है। जन साधारण के अनुसार यह स्तूप राजा बेन चक्रवर्ती ने बनवाया था। पुराणों में भी राजा वेन को चक्रवर्ती राजा कहा गया है और मैंने उसके नाम को उत्तरी भारत में उतना ही प्रचलित पाया है जितना राम अथवा पाण्डवों का नाम प्रचलित है। यह स्मारक जिले के दो विशाल मार्गों अर्थात पटना से उत्तर की ओर बेतिया एवं छपरा से गण्डक पार नेपाल की ओर आने वाले मार्गों के चौराहे पर अवस्थित है। ब्रह्मा की बौद्ध पुस्तकों में इस तथ्य का एक विचित्र उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार स्वयं बुद्ध ने आनन्द को सूचित किया था कि “उन्होंने एक चक्रवर्ती राजा के लिये चार मुख्य मार्गों के चौराहे पर एक स्तूप का निर्माण करवाया था। अत मुझे इस बात में संदेह नहीं है कि यह स्थान ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थान के अनुरूप है।

व्रिजी

वैशाली से ह्वेनसांग उत्तर पूर्व की ओर ५०० ली अथवा ८३ मील की दूरी पर अवस्थित फो लो शी अथवा व्रिजी गया था जिसे हम वज्जियों अथवा व्रिज्जियों की शक्तिशाली जाति की सीमा के अनुरूप स्वीकार कर चुके हैं। बुद्ध के समय म व्रिजी लिच्छिवी, विदेह तिरभुक्ति एवं अन्य अनेक शाखाओं में विभाजित थे जिनके नाम अज्ञात हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन शाखाओं की संख्या आठ थी क्योंकि अपराधियों को अष्ट कुलक अथवा आठ वंशों के संयुक्त न्यायालय मे प्रस्तुत किया जाता था जिसमें प्रत्येक वंश से एक एक सदस्य को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता था। ह्वेनसांग ने लिखा है

कि उत्तरी प्रदेश के लोग उन्हें सान फा-शो अथवा समवज्जी अर्थात "संयुक्त वज्जी" कहा करते थे तथा मि० टर्नोर ने लङ्का की पाली पुस्तिका के आधार पर वज्जी की जनता के सम्बन्ध में अपने विस्तृत एवं रुचि पूर्ण विवरण में इसी नाम का उल्लेख किया है। मगध के महान सम्राट अजात शत्रु ने वज्जियों की विशाल एवं शक्तिशाली जाति को अपने अधीन बनाने की इच्छा से इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सर्वाधिक अनुकूल उपाय जानने के लिये अपने दूत को बुद्ध के पास भेजा था। सम्राट को सूचित किया गया था कि जब तक वज्जी की जनता संयुक्त रहेगी वह अपराजित रहेगी। सम्राट ने अपने मन्त्री की सहायता से तीन वर्षों में उनके शासकों की एकता को इतना छिन्न भिन्न कर दिया कि वह परस्पर सन्देह के कारण एकता का मार्ग भूल गये और तदनुसार बिना प्रतिरोध उन्हें पराधीन बना लिया गया। टर्नोर के अनुसार 'वज्जियान राज्यों के समूह में शासकों का गणतन्त्र था।' अतः समव्रिजी अथवा "संयुक्त व्रिजी" आठ वंशों के सम्पूर्ण राज्य का नाम था जो—जैसा कि बुद्ध ने टिप्पणी की थी—समय समय पर परस्पर परामर्श द्वारा संयुक्त कार्य करने एवम् प्राचीन वज्जियान संस्थाओं को जीवित रखने का अपना प्रण दोहराया करते थे। किसी राजा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु कहा जाता है कि जन साधारण वृद्ध जनों की आज्ञाओं का पालन करते थे।

ह्वेनसांग के अनुसार व्रिजियों का प्रदेश पूर्व से पश्चिम लम्बा एवम् उत्तर से दक्षिण संकीर्ण था। यह विवरण गण्डक एवं महानदी के मध्यवर्ती क्षेत्र से ठीक ठीक मिलता है जो ३०० मील लम्बा एवं १०० मील चौड़ा है। इन सीमाओं के भीतर अनेक प्राचीन नगर हैं जिनमें कुछेक प्राचीन आठ व्रिजी वंशों की राजधानी रहे होंगे। वैशाली, केसरिया एवं जनकपुर का हम देख चुके हैं अन्य स्थान हैं नवन्दगढ़ सिमरून, दरभङ्गा पूर्णिया तथा मोतिहारी। अन्तिम तीनों नगर अब भी बसे हुए हैं एवं सर्व ज्ञात है परन्तु सिमरून पिछले ५५० वर्षों से निर्जन है जबकि नवन्दगढ़ सम्भवतः १५ शताब्दियों से निर्जन पड़ा है। श्री होग्सन ने सिमरून का उल्लेख किया है परन्तु इसकी सम्भावित प्राचीनता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विचार प्रगट करने से पूर्व इसके खण्डहरों का सर्वेक्षण आवश्यक है। मैं स्वयं १८६२ ई० में नवन्दगढ़ गया था और मेरे विचार में यह उत्तरी भारत का प्राचीनतम एवं सर्वाधिक रुचि पूर्ण स्थान है।

नवन्दगढ़ अथवा नौनदगढ़ एक ध्वस्त दुर्ग है जो शिखर पर २५० फुट से ३०० फुट वर्गाकार एवं ८० फुट ऊंचा है। यह बेतिया से १५ मील उत्तर उत्तर पश्चिम में एवं गण्डक नदी के निकटतम बिन्दु से १० मील दूर लौरिया के विशाल गाँव के समीप अवस्थित है। प्राचीन खण्डहरों में एक उत्कृष्ट शिला स्तम्भ है जिसके ऊपर शेर बना हुआ है एवं इस पर अशोक का लेख खुदा हुआ है। इसी पर मिट्टी की

तीन पक्तियाँ भी हैं जिनमे दो पक्तियाँ उत्तर से दक्षिण को ओर जाती है तथा तीसरी पक्ति पूव से प श्चम को ओर। हम सामान्यत जो स्तूप दिखाई देते हैं वह पत्थर अथवा ई टों के बने होते हैं परन्तु प्राचीनतम स्तूप केवल मिट्टी के टीले हुआ करते थे और मैंने ऐसे जितने भी स्तूप देखे हैं उनमे यह स्तूप सर्वाधिक महत्वपूण उदाहरण है मेरा विश्वास है कि यह बौद्ध धम के उत्थान से पूर्व कालीन राजाओ के स्मारक हैं और इह ६०० से १५०० ई० पू० के समय का स्वीकार किया जा सकता है। इनमे प्रत्येक को केवल भिसा अथवा 'टीला' कहा जाता है परन्तु सम्पूण स्थान को राजा उत्तान पाद के मन्त्रियो का कोट अथवा मोर्चाबन्द निवास स्थान माना जाता है जबकि नवन्द गढ का दुग राजा का निजी निवासस्थान था। स्तूप शब्द का मूल अर्थ केवल "मिट्टी का टीला' है और मि० कोलब्रुक ने 'अमर कोष' के अपने अनुवाद म इस का यही अथ दिया है। मेरा विश्वास है कि मिट्टी के यह स्तूप अथवा नवन्द गढ़ के चैत्यास उन स्तूपा म सम्मिलित रहे होंगे जिनकी ओर व्रिजी के सम्बन्ध में आनन्द से पूछे गये प्रश्न म बुद्ध ने सकेत किया था।" आनन्द तुमने सुना होगा कि वज्जियान, चाहे उनम सम्बन्धित वज्जियान चैत्यानी की सख्या कितनी ही क्यो न हो, चाहे वह नगर के भीतर अवस्थित हो अथवा बाहर, उनका सम्मान, प्रतिष्ठा बनाये रखत हैं तथा वहाँ भेट चढ़ाते हैं और वह प्राचीन भेंट, प्राचीन प्रतिष्ठा एवम् प्राचीन त्याग को बनाये रखत हैं। अब यह चैत्यानी बौद्ध स्तूप नही हो सकते हैं क्योंकि बुद्ध ने अपने जीवन काल मे यह प्रश्न किया था। तदनुसार लङ्का की अट्ठकथा के लेखक ने लिखा है कि वह यखयानीनी अर्थात यक्ष अथवा राक्षस पूजा स सम्बन्धित हैं। यक्ख अथवा सस्कृत यक्ष तथा जक्ष कुबेर के दास तथा कोष रक्षक थे और उनके मुख्य निवास स्थान को अलकपुर कहा जाता था। अब, गण्डक के आस पास किसी स्थान पर अलकप्पो नामक नगर है जहाँ बलया अथवा बुलुका नामक जाति का निवास है जिन्हे बुद्ध के अवशेषा का अधिकाश भाग प्राप्त हुआ था। अत यह सम्भव है कि अलकप्पो का यह नगर यक्ष पूजा स सम्बन्धित रहा हो तथा नवन्दगढ के पूर्व बुद्ध कालीन स्तूप व्रिजियो के चैत्य थे और बुद्ध ने इन्हीं की ओर सकेत किया था। यदि ऐसा है तो अलकप्पा के बलया अथवा बुलुका व्रिजियों के आठ वशो म रहे होंगे और अलकप्पा के गण्डक नदी के समीप होने के कारण उपयुक्त निष्कर्ष अधिकसम्भवित प्रतीत होता है।

नेपाल

व्रिजी से चीनी तीर्थ यात्री ह्वी यो सो अथवा नेपाल गया था जिसे उसने १४०० अथवा १५०० ली यानी २३३ से २५० मील उत्तर पश्चिम में बताया है। जनकपुर से नेपाल और दो मार्ग जाते हैं एक कमला नदी के मार्ग स दूसरा भागमती

अथवा भगवती नदी के भाग से परन्तु किसी भी भाग में यह दूरी १५० मील से अधिक नहीं है। देश की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील बताई गई है जो अत्यधिक कम है। इस परिधि में यदि सप्त कौशिकी अथवा कोसी नदी की सात शाखाओं पर बसे नेपाल जिले को लिया जाये तो तीर्थ यात्री के आकड़ शुद्ध हो सकते हैं परन्तु इस परिस्थिति में गण्डक नदी का तटीय पर्वतीय प्रदेश अलग राज्य रहा होगा जो अत्यधिक असम्भावित है। अतः मैं दोनों नदियों की घाटी को नेपाल में सम्मिलित एवं ह्वेनसाग के आकड़ों को परिवर्तत कर ६००० ली अथवा १००० मील स्वीकार करूंगा जो दोनों नदियों के वास्तविक आकार के समान है।

नेपाल का राजा लिच्छवी जाति का क्षत्रिय था जिसका नाम अंशु वर्मा था जो सम्भवत स्थानीय इतिहास का अंशु वर्मा था क्योंकि वह विजेताओं के नेवारित अथवा नेवार परिवार का सदस्य था। लिच्छवी होने के नाते अंशु वर्मा एक विदेशी अर्थात वैशाली का एक निवासी रहा होगा। इसी प्रकार तिथियों में भी समानता है क्योंकि अंशु वर्मा राघव देव ने ८८० ई० में नेवार वंश की स्थापना की थी। प्रत्येक शासक के लिये १६ वर्षों का राज्य काल निर्धारित करने से अंशु वर्मा के राज्यारोहण को ६२५ ई० में निश्चित किया जा सकता है और ६३७ ई० में ह्वेनसाग की यात्रा उसके शासन काल के अन्तिम वर्षों में हुई होगी।

यह बात उल्लेखनीय है कि तिब्बत एवं लद्दाख के शासक भी लिच्छवियों के वंशज होने का दावा करते हैं परन्तु यदि उनका दावा उचित है तो वह निश्चित ही परिवार की नेपाली शाखा के सदस्य रहे होंगे। अब कहा जाता है कि नेपाल की विजय नेवारित ने की थी जो अंशु वर्मा से ३७ वां पूर्ववर्ती शासक था और १७ वर्ष की दर से ६२६ वर्ष पूर्व अर्थात ४ ईसवी पूर्व में उसका राज्यारोहण हुआ होगा। तिब्बती इतिहास न्यात्री त्सान्पो के राज्यारोहण से प्रारम्भ होता है जिसका समय लहा थोथोरी (४०७ ई०) से ५०० वर्ष पूर्व अर्थात ९३ ई० पूर्व निर्धारित की गई है। परन्तु चूंकि ल्हा थोथोरी के पाँचवें उत्तराधिकारी का जन्म ६२७ ईसवी में हुआ था अतः उपर्युक्त (४०७ ईसवी की) तिथि में प्रायः १५० वर्षों की त्रुटि हुई है। इस प्रकार प्रथम शासक की तिथि को निर्धारित करने से लिच्छवियों की विजय को ५० ईसवी अर्थात नेपाल विजय से दो पीढ़ी उपरान्त ही निर्धारित किया जा सकता है।

मगध

नेपाल से ह्वेनसाग वैशाली वापस गया और तत्पश्चात दक्षिण दिशा में यात्रा करते हुए गङ्गा नदी को पार कर वह मगध की राजधानी में प्रविष्ट हुआ। उसने लिखा है कि नगर का मूल नाम कुसुमपुर था, यह दीर्घ काल से निर्जन था। एवं उस समय जर्जर अवस्था में था। पाटली पुत्र पुर के नवीन नगर को छोड़ इसकी परिधि

७० ली अथवा ११⅔ मील थी। इस नाम को यूनानियों ने मेगस्थनीज के आधार पर आंशिक रूप से परिवर्तन कर पालीबोथ्रा बना दिया था। मेगस्थनीज के विवरण को एरियन ने सुरक्षित रखा है।' भारत का मुख्य नगर दो महान नदियों अर्थात एरन्नोबोअस एवं गङ्गा नदी के सङ्गम स्थान के समीप प्रासी की सीमाओं में अवस्थित पालीबोथ्रा है। एरन्नोबोअस सम्पूर्ण भारत की तीसरी बड़ी नदी समझी जाती है और इसकी गणना सिंधु एवं गङ्गा के बाद, की जाती है। अन्त में यह अंतिम नाम की नदी में मिल जाती है। मेगस्थनीज ने हमें आश्वासन दिया है कि इस नगर की लम्बाई ८० स्टेडिया एवं चौड़ाई १५ स्टेडिया थी। यह चारों ओर एक खाई से घिरा हुआ था जिसका कुल क्षेत्र ६ एकड़ था एवं गहराई ३० क्यूबिट फुट थी। इसकी दीवारें ५७० प्राचीरों एवं ६४ द्वारों से सुसज्जित थी।' इस विवरण के अनुसार सिल्यूकस निकेटर के समय मगध की राजधानी की परिधि २२० स्टेडिया अथवा २५⅓ मील थी। यह पटना के आधुनिक नगर के विस्तार से प्रायः मिलता है जो बुचनन के सर्वेक्षणानुसार ६ मील लम्बा तथा २⅓ मील चौड़ा था अथवा जिसकी परिधि २१⅓ मील थी। अतः हम सरलता पूर्वक यह स्वीकार कर सकते हैं कि सातवीं शताब्दी में कुसुमपुर का प्राचीन नगर आकार में उपयुक्त आकार का आधा अर्थात ह्वेनसाग के कथनानुसार ११ मील रहा होगा।

दिओडोरस ने नगर की स्थापना का श्रेय हेराक्लीज को दिया है। सम्भवतः उसका सकेत कृष्ण के भ्राता बलराम की ओर था परन्तु नगर की इस प्राचीन स्थापना का स्थानीय पुस्तकों में समर्थन प्राप्त नहीं हुआ है। वायु पुराण के अनुसार कुसुमपुर अथवा पाटलीपुत्र नगर की स्थापना बुद्ध के समकालीन अजात शत्रु के पौत्र राजा उदयाश्व ने करवाई थी। परन्तु महावंशों में उदय को अजात शत्रु का पुत्र बताया गया है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार राजगृह से वैशाली तक अपनी अंतिम यात्रा में जब बुद्ध ने गङ्गा नदी को पार किया तो मगध के राजा अजात शत्रु के मन्त्री वज्जिमाना अथवा व्रिजी निवासियों को रोकने के उद्देश्य से पाटली गाँव के स्थान पर एक दुर्ग के निर्माण कार्य में व्यस्त थे। बुद्ध ने उस समय भविष्यवाणी की थी कि यह एक प्रसिद्ध नगर बन जायेगा। इन सभी समान विवरणों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पाटलीपुत्र नगर की स्थापना का कार्यारम्भ वस्तुतः अजातशत्रु के समय में हुआ था परन्तु यह कार्य उसके पुत्र अथवा पौत्र उदय के शासन काल तक अर्थात ४५० ई० पू० तक पूरा नहीं हुआ था।

गङ्गा एवम एरानोबोअस नदियों के सङ्गम स्थान पर नगर की स्थिति का सर्व प्रथम स्पष्ट करना हिरण्यवती का सङ्गम स्थान समझा जाता था। यह नदी पटना के विपरीत गङ्गा नदी में गिरती है। परन्तु मैंने स्वतन्त्र रूप से स्पष्ट निर्णय लिया है कि यह नदी पूर्व समय में पटना नगर से कुछ ऊपर गङ्गा नदी में गिरती थी। चूंकि

सोन 'अथवा सोना' नदी को इसकी सुनैहरी बालू के कारण हिरण्य बाह भी कहा जाता था अत नाम एवम् स्थिति दोनों म इनकी अनुरूपता पूर्ण हो जाती है।

स्ट्रैबो एवम प्लिनी पाली बोथरा के निवासियो को प्रासी नाम स पुकारने म एरियन स सहमत हैं। आधुनिक लेखक एकमत स प्राची को सम्कृत प्राच्य अथवा "पूर्वी" शब्द मे सम्बन्धित करते हैं। परन्तु मुझे एसा प्रतीत होता है कि प्रासी पलासिया अथवा परासिया अर्थात "पलास अथवा परास के निवासी का केवल यूनानी स्वरूप है। पलास अथवा परास मगध का एक वास्तविक एवम सब प्रसिद्ध नाम है जिसकी राजधानी पालीबोथरा थी। यह नाम पलास से लिया गया था जो इस प्रान्त में वतमान समय मे भी उतनी ही प्रचुर मात्रा म उगता है जितना ह्वेनसाग के समय म उगता था। नाम का सामान्य स्वरूप परास है परन्तु शीघ्रता म उच्चारण करते समय प्रास बन जाता है जस मैं यूनानी प्रासी का मूल स्वरूप समझता हूँ। कर्टियस द्वारा दिये गये हिज्जा स उपयुक्त अनुमान की पुष्टि होती है। कर्टियस ने यहा के निवासियों को परसी कहा है जो भारतीय नाम परासिया का प्राय ठीक अनुवाद है।

ह्वेनसाग के अनुमानानुसार मगध प्रान्त की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। उत्तर में यह गङ्गा नदी, पश्चिम म बनारस जिले पूर्व में हिरण्य पवत अथवा मुगर तथा दक्षिण म किरन सुवर्ण अथवा सिंह भूमि से घिरा हुआ था। अतः इसकी सीमायें पश्चिम मे कर्मनाशा नदी एवम दक्षिण म दामूद नदी के उद्गम स्थान तक विस्तृत रही होगी इन सीमाओं की परिधि मानचित्र पर सीधे माप स ७०० मील अथवा माग दूरी स प्राय ८०० मील होगी।

चूंकि मगध, एक धार्मिक सुधारक के रूप में बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन से सम्बन्धित स्थान था अत भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यहाँ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित पवित्र स्थानों की सख्या अधिक है। मुख्य स्थान बुद्ध गया, कुक्कुटपाद राजगृह, कुसागपुर, नालन्दा, इन्द्रशिला गुहा, तथा कपोतिक मठ हैं। इन सभी स्थानों का भिन्न भिन्न उल्लेख किया जायगा जबकि अपेक्षाकृत साधारण स्थानो का उल्लेख ह्वेनसाग के मुख्य स्थानों की माग यात्रा के विवरण के साथ किया जायेगा।

बुद्ध गया

पाटलीपुत्र छोड़ने पर ह्वेनसाग ने नगर के दक्षिण पश्चिमी कोण स यात्रा प्रारम्भ की और १०० ली अथवा १६⅔ मील दक्षिण पश्चिम म ती-ला शी किया अथवा ती ला डमी किया मठ तक गया जहाँ स उसने उसी दिशा म ९० ली अथवा ५ मील दूर एक उन्नत पवत तक अपनी यात्रा जारी रखी। इसी पवत के शिखर स बुद्ध ने मगध राज्य का अनुमान लगाया था। तत्पश्चात वह ३० ली अथवा ५ मील सुदूर उत्तर पश्चिम की ओर एक पहाड़ी के अधोभाग पर अवस्थित एक अत्याधिक

विशाल मठ तक गया जहाँ गुणमति ने एक संन्यासी को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। तत्पश्चात दक्षिण-पश्चिम दिशा में २० ली अथवा ३½ मील तक अपनी यात्रा जारी रखते हुए वह एक एकांत पहाड़ी एवम् शिल भद्रा मठ पर पहुँचा और उसी दिशा में पुनः ४० अथवा ५० ली, ७ अथवा ८ मील की दूरी पर नी-ल्येन शेन अथवा नैरंजन नदी को पार कर किया-यी अथवा गया नगर में प्रवेश किया।

इस भाग में उल्लिखित स्थानों में किसी की पहचान करने से पूर्व मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि इस भाग में दिशाओं एवम् दूरी में अनेक त्रुटियाँ हैं जिन्हें सुधारना आवश्यक है। चूंकि गया पटना से ठीक दक्षिण में है अतः दक्षिण पश्चिम दिशा को केवल दक्षिण पढ़ना चाहिये। सभी स्थानों की कुल दूरी केवल २३० ली अथवा ३८ मील बनती है जबकि पटना एवम् गया की वास्तविक दूरी मुख्य मार्ग से ६० मील है जबकि ह्वेनसांग ने जिस मार्ग का अनुसरण किया उसके अनुसार यह दूरी प्रायः ७० मील है। अतः इसकी यात्रा की कुल दूरी उसकी वास्तविक यात्रा से २०० ली अथवा ३३ मील कम है। इस संख्या को मैं दो समान भागों में विभाजित करूंगा और उनका प्रत्येक भाग ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित प्रथम दो दूरियों में जोड़ दूंगा।

दिशा एवम् दूरी की उपर्युक्त शुद्धि को स्वीकार करते हुए ती लो त्सा किया अथवा तिलाश मठ के स्थान को पटना नगर के दक्षिण-पश्चिमी कोण से दक्षिण में २०० ली अथवा ३३ मील पर अथवा फल्गू नदी के पूर्वी तट पर तिल्लार नगर के स्थान पर निश्चित किया जा सकता है। तिलाढक की वास्तविक स्थिति यही थी इस तथ्य को हमें यात्री ने अपने पश्चातवर्ती कथन में स्वीकार किया है। चान बारसी के समय नालन्दा मठ को छोड़ते समय वह सीधे तिलाढक गया जिसे उसने नालन्दा के ३ योजन अथवा २१ मील पश्चिम में बताया है। अब मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि नालन्दा की स्थिति राजगीर के ६ मील उत्तर में बरागांव के स्थान पर थी तथा बरागांव से तिल्लार तक की दूरी सीधी रेखा से १७ मील एवं मार्ग दूरी से प्रायः २० मील है।

तत्पश्चात ह्वेनसांग उस उन्नत पर्वत पर गया था जहाँ से बुद्ध ने मगध देश का अनुमान लगाया था। मेरी प्रस्तावित शुद्धि से इस पर्वत को तिलाढक अथवा तिल्लार से १६० ली अथवा ३२ मील दक्षिण में एवम् गया से ७० मील उत्तर पूर्व में देखा जाता चाहिए। उपर्युक्त दिशा एवम् दूरी से पर्वत को कजीर गञ्ज से ३ मील उत्तर पश्चिम में किसी स्थान पर तथा अमेठी से लगभग इतनी ही दूरी पर गिरयक एवम् गया की मध्यवर्ती उन्नत पहाड़ियों में निश्चित किया जा सकता है। अच्छा हुआ कि इन पहाड़ियों का उल्लेख आ गया। इसमें मार्ग के प्रथम भाग की दूरी की शुद्ध करने की आवश्यकता का पता चलता है क्योंकि पटना से निकटतम पहाड़ी ४० मील से अधिक दूरी पर है।

बुद्ध के पर्वत स तीर्थ यात्री ३० ली अथवा ५ मील उत्तर पश्चिम मे गुणमति के विशाल मठ तक गया जो पर्वतो के एक दर्रे म एक ढलवान पर अवस्थित था। दिकांश एवम दूरी निदावर के समीप पेवर नदी के पूर्वी तट पर पहाड़ियो की निचली श्रेणी की ओर सकेत करते हैं। गुनमति मठ से ह्वेनसाग २० ली अथवा ३⅓ मील दक्षिण पश्चिम में सीलभद्र मठ तक गया जो एक एकान्त पहाडी पर अवस्थित था। मेरे विचार मे इस स्थिति को बियावा नाम की एक एकान्त पहाडी म अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो निदावत के ३ मील दक्षिण पश्चिम मे पेवर नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है। बिया नाम जिसका अथ कृतिम टीला है—सम्भवतः सीलभद्र के ध्वस्त मठ की ओर सकेत करता है।

इस स्थान से तीर्थ यात्री ४० अथवा ५० ली, ७ अथवा ८ मील दक्षिण पश्चिम की ओर गया तथा निर जन नदी को पार करते हुए उसने गया नगर म प्रवेश किया। इस नदी को अब फल्गू कहा जाता है और निलाजन अथवा निलज्जन नाम पश्चिमी शाखा तक सीमित है जो गया से ५ मील ऊपर मोहिनी नदी मे गिरती है। नगर की जनसख्या अधिक नहीं थी परन्तु यहाँ ब्राह्मणों के १००० परिवार थे। नगर को बुद्ध गया स भिन्न दिखाने के लिये इसे आज भी ब्रह्म गया कहा जाता है।

नगर से ५ अथवा ६ ली अथवा १ मील दक्षिण पश्चिम मे गया पर्वत है जो भारतीय जनता मे दैवी पर्वत क रूप म मान्य है। इस पहाडी को अब ब्रह्मजून अथवा ब्रह्मयोनि कहा जाता है और अशोक के स्तूप के स्थान पर अब एक छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। पहाडी के दक्षिण पूर्व म तीन कश्यपो के स्तूप हैं इनम पूव की ओर एक विशाल नदी (फल्गु) के पार पो ला की पू तो नामक एक पवत था जिसके शिखर पर बुद्ध एकात वास करने के लिये गये थे। इसस पूव उन्होने ६ वर्षो तक मौनव्रत रखा परतु तदोपरान्त मौनव्रत तोडने पर उन्होने चावल एवम् दूध ग्रहण किया तथा उत्तर पूर्व की ओर जात हुए उन्होने इस पवत का देखा पर तु पवत देवता के विघ्न के कारण वह दक्षिण पश्चिम को ओर से नीचे चल गय जहाँ से वह १५ ली अथवा २½ मील दक्षिण पश्चिम मे बोद्ध गया के स्थान पर पीपल के प्रसिद्ध वृक्ष तक पहुँचे थे। अन्तिम दूरी एवम् दिकाश से पता चलता है कि प्राग बोधी पवत वतमान समय का मोरत पहाड है क्योंकि दक्षिणी पश्चिमी कोण बोद्ध गया स ठीक २½ मील की दूरी पर है। नीचे जाते हुए लगभग आधे माग पर एक कन्दरा थी जहाँ बुद्ध ने विश्राम किया था एवम वह पद्मासन म बैठे थे। फाहियान ने इस कन्दरा का उल्लेख किया है और इसे बोधी वृक्ष स आधा योजन अथवा ३½ मील उत्तर पूर्व की ओर बताया है। अत पर्वत के दक्षिणी छोर से इसकी दूरी प्रायः एक मील थी। मुझे सूचना मिली थी कि पश्चिमी भाग म अब भी एक कन्दरा है।

ह्वेनसाग ने गया अथवा बुद्ध वृक्ष से पूर्वी पर्वत की दूरी का उल्लेख नहीं किया है जो प्रायः ४ मील अथवा २४ ली है। पूर्ववर्ती तीर्थ यात्री फाहियान का उल्लेख यहाँ महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि उसने किया थी अथवा गया से बोधी वृक्ष के पड़ोस तक की दूरी को केवल २० ली अथवा ३½ मील कहा है जबकि वास्तविक दूरी ५ मील अथवा ३० ली से अधिक है।

बोद्ध गया पवित्र पीपल वृक्ष के कारण प्रसिद्ध था जिसके नीचे शाक्य सिन्हा पाँच वर्षों तक तपस्या करते रहे और अन्त में उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। यह प्रसिद्ध बोधी द्रुम अथवा 'बोधी वृक्ष' आज भी खड़ा है यद्यपि यह अत्यधिक जर्जर अवस्था में है। वृक्ष के समीप ही पूर्व दिशा में ईंटों का बना एक मंदिर है जिसका निचला भाग ८० वर्ग फुट है एवम जो १६० फुट ऊंचा है। निस्सन्देह यह वही बिहार है जिसे ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में देखा था क्योंकि उसने इसे बोधी वृक्ष के पूर्व में बताया था और इसका वर्णन करते हुए उसने इसे निचले भाग पर २० पद वर्गाकार एवम १६० से १७० फुट ऊँचा बताया है।

कुक्कुतपद

बोधी द्रुम से ह्वेनसाग ने निरंजन नदी को पार किया तथा गन्ध हस्ती नामक स्तूप पर गया जिसके समीप एक सरोवर एवम शिला स्तम्भ था। बोद्ध गया से प्रायः १ मील दक्षिण पूर्व मे लिलाजन नदी के पूर्वी तट पर बकरौर नामक स्थान पर उपर्युक्त स्तूप के अवशेष एवम स्तम्भ का निचला भाग आज भी देखे जा सकते हैं।

पूर्व दिशा में यात्रा करते हुए तीर्थ यात्री ने मो-हो अथवा मोहना नदी को पार किया एवम् एक विशाल वन में प्रवेश किया जहाँ उसने एक अन्य शिला स्तम्भ देखा था। तत्पश्चात १०० ली अथवा लगभग १७ मील उत्तर-पूर्व वह क्यू-क्यू-चा-पा-धो अथवा कुक्कुतपद पर्वत पर पहुँचा जो अपनी तीन चोटियों के कारण महत्वपूर्ण है। फाहियान के विवरण के अनुसार कुक्कुतपद पहाड़ी का अधोभाग बोद्ध गया के पवित्र वृक्ष के दक्षिण में ३ ली अथवा आध मील की दूरी पर था। तीन ली के स्थान पर हम ३ योजन अथवा २१ मील पढ़ना चाहिये जो ह्वेनसाग द्वारा कथित १७ मील की दूरी एवम् दोनों नदियों को पार करने की २ मील की दूरी सहित कुल मिलाकर १६ मील की दूरी से मिलती है।

मैं इस स्थान का वर्तमान कुर्कीहार के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ जो यद्यपि मानचित्र में नहीं दिखाया गया है फिर भी गया एवम बिहार के नगरों के मध्यवर्ती क्षेत्र में सम्भवतः सबसे बड़ा स्थान है। यह वजीरगंज के ३ मील उत्तर पूर्व में, गया से १६ मील उत्तर उत्तर पूर्व एवम् बोद्ध गया से २० मील उत्तर पूर्व में है। कुर्कीहार का वास्तविक नाम कुक बिहार बताया जाता है जो मेरे विश्वासानुसार

कुक्कुतपद विहार का केवल सन्नित स्वरूप है क्योकि संस्कृत कुक्कुत्त एवम हिन्दी का कुक्कुर अथवा कुरक समान शब्द हैं। अतः वतमान कुर्कीहार नाम एव स्थिति में बौध धर्मावलम्बियों के कुक्कुत्तपद पहाडी से मिलता है। परन्तु इस भू भाग म तीन शिखरों वाली कोइ पहाडी नही है परन्तु गाँव से लगभग आधा मील उत्तर की ओर तीन ऊची नीची पहाडियाँ दिखाई देती हैं और चूंकि परस्पर समीप होने के कारण इनके अधोभाग मिलते हुए प्रतीत होते हैं अत इन्हे ह्वेनसाग की तीन चोटिया वाली पहाडी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। यह अनुरूपता उन अनेक ध्वस्त टीलो की उपस्थिति से प्रमाणित होती है जिनसे अनेकानेक बौद्ध मूर्तियाँ एवम प्रतिनित स्तूप प्राप्त हुए हैं।

कुसागरापुर

कुक्कुत्तपद पहाडी स तीर्थ यात्री १००० ली अथवा १७ मील दूर फो-यो फा-ना अथवा बुद्धवन गया था। दिकाश एवम् दूरी उस उन्नत पहाडी की ओर सकत करते हैं जिसे बुद्धियान कहा जाता है और जिसे इसकी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण त्रिकोणमति सम्बन्धी सर्वेक्षण का एक केन्द्र बनाया गया था। सीधी रखा पर इसकी दूरी १० मील से अधिक नही है परन्तु चूकि सम्पूर्ण माग पवतीय एवम घुमावदार है अत वास्तविक दूरी १५ अथवा १६ मील से कम नही हो सकती। यहाँ स १० ली अथवा ५ मील पूव मे उसने प्रसिद्ध यष्तीवन की यात्रा की थी। यह नाम जखतीबन के रूप मे आज भी सब ज्ञात है जो सस्कृत शब्द का केवल हिन्दी रूपान्तर है। यह स्थान बुद्धियान पहाडी के पूव मे कुसागरापुर में प्राचीन ध्वस्त नगर की ओर जाने वाले माग पर अवस्थित है और आज भी ठहरने के उद्देश्य स यहाँ अनेक व्यक्ति आया करते हैं। यहाँ से तीर्थ यात्री १० ली अथवा २ मील दक्षिण पश्चिम की ओर एवम् एक उन्नत पवत के दक्षिण मे अवस्थित दो गरम सरोवरों तक गया जहाँ जनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध ने स्नान किया था। यह सरोवर वतमान समय मे भी जखतीबन से दो मील दक्षिण में तपोबन नामक स्थान पर हैं। यह नाम तप्त पानी अथवा 'गरम जल का सक्षिप्त स्वरूप है। बम्बु बन के दक्षिण पूव म ६ अथवा ७ ली अथवा एक मील से कुछ अधिक दूरी पर एक उन्नत पवत था जहाँ सम्राट बिम्बसार द्वारा निर्मित पत्थरों का एक बाध था। यह पवत हंडिया की उन्नत पहाडा के अनुरूप है जो १४६३ फुट ऊची है एवम् जो महान त्रिकोणमति सर्वेक्षण का एक केन्द्र थी। यहाँ से ३ अथवा ४ ली अथवा आधा मील उत्तर की ओर एक एकान्त पहाडी थी। आज भी उस मकान क अवशेष देखने का मिलते हैं जहाँ पूववर्ती समय में महर्षि व्यास रहा करते थे। उत्तर पूर्व म ४ अथवा ५ ली अथवा ¾ माल की दूरी पर एक छोटी पहाडी थी जहाँ पत्थरों को काट-काट कर गृह बनाये गये थे। साथ ही यहाँ एक पत्थर था जहाँ

भगवान इन्द्र एवम ब्रह्मा ने बुद्ध के शरीर पर लगाने के उद्देश्य से गोसीरस नामक चन्दन की लकडी एकत्रित की थी। दोनों स्थानों की पहचान नहीं की जा सकी है परन्तु सावधानी पूर्वक निरीक्षण करने से चन्दन की लकडी के पत्थर का पता लगाया जा सकता है क्योंकि इसके समीप ही एक अति विशाल कन्दरा थी जिसे जनसाधारण "असुरों का राजमहल" कहा करते थे। इस स्थान से ६० ली अथवा १० मील की दूरी पर तीर्थ यात्री वियू शी की ली पू-लो अथवा कुशागार पुर अर्थात 'कुश घास के नगर" पहुँचा था।

कुसागरापुर मगध की प्राचीन राजधानी थी जिसे राजगृह अथवा 'राजकीय निवास स्थान कहा जाता था। इसे गिरिव्राज अथवा 'पहाडियों से घिरा हुआ" भी कहा जाता था जो 'पर्वतों से घिरे हुए स्थान' के रूप में ह्वेनसाग के वर्णन से सहमत है। रामायण एवम् महाभारत दोनों में ही गिरिव्रज नाम मगध के राजा जरासंध की प्राचीन राजधानी को दिया गया है जो १४२६ ई० पू० के महान युद्ध का एक मुख्य नायक था। चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने नगर को पाँच पहाडियों की मध्यवर्ती घाटी में राज गृह के नवीन नगर से ४ ली अथवा ⅔ मील दक्षिण में अवस्थित बताया है। ह्वेनसांग ने समान दूरी एवम् समान स्थिति का उल्लेख किया है एवं दो गरम सरोवरों का उल्लेख किया है जिन्हें आज भी देखा जा सकता है। फाहियान ने आगे लिखा है कि "पाँचों पहाडियाँ नगर के चारों ओर दीवार के समान कमरबन्द बनाती थीं" यह प्राचीन राज गृह अथवा जन साधारण में प्रचलित पुराना राजगीर का सही वर्णन है। टर्नौर ने लङ्का की पाली पुस्तकों से इसी वर्णन को लिया है। इन पुस्तकों में पाँच पहाडियों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं गिजमकूटो, इसगिलो, वेभारो, वेपुलो तथा पाण्डवों। महाभारत में पाँच पहाडियों को वैहर वराह, वृषभ ऋषिगिरि एवं चैत्यक कहा गया है परन्तु वर्तमान समय में उन्हें बैभर गिरि, विपुलगिरि रत्नागिरि, उदय गिरि तथा सोनगिरि कहा जाता है।

बैभार पर्वत के जैन मन्दिरों के लेखों में इस नाम को वैभार अथवा किसी स्थान पर व्यवहार लिखा गया है। निःसन्देह यह पाली ग्रन्थों का वेभार पर्वत है जिसके किनारे पर सर्व प्रसिद्ध सत्तपन्नी कन्दरा थी जिसमें लगभग ५४३ ई० पू० में प्रथम बौद्ध सम्मेलन हुआ था। मेरा विश्वास है कि यह कन्दरा आज भी सोन भण्डार के नाम से पर्वत के दक्षिणी भाग में देखी जा सकती है परन्तु ह्वेनसाग के विवरणानुसार इसे पर्वत के उत्तरी छोर पर देखा जाना चाहिये। तिब्बती दुल्वा में इसे 'न्याग्रोध की कन्दरा' कहा गया है।

रत्नागिरि सोन भण्डार कन्दरा से ठीक पूर्व एक मील की दूरी पर है। यह स्थिति फा ह्यान द्वारा वर्णित 'पीपल वृक्ष की कन्दरा' की स्थिति से मिलती है जिसमें बुद्ध भोजनोपरान्त मनन किया करते थे। यह प्रथम सम्मेलन की कन्दरा से ५ अथवा

६ ली (लगभग एक मील) पूर्व में थी। अतः रत्नगिरि की पहाडी पाली ग्रंथो के पाण्डो पर्वत के अनुरूप है जहाँ बुद्ध रहा करते थे और जिसे ललित विस्तार में सदैव "पर्वतों का राजा" कहा गया है। प्राचीन राजगृह से एक घुमावदार एवं काट-काट कर बनाया गया मार्ग रत्नगिरि के शिखर पर एक छोटे जैन मंदिर तक जाता है जहाँ जैन धर्मावलम्बी निरंतर आया करते हैं। मैं इस महाभारत के ऋषिगिरि के अनुरूप समझता हूँ।

विपुल पर्वत स्पष्ट रूप से पाली ग्रंथों के वेपुलो के अनुरूप है और चूँकि अब इसके शिखर पर उन्नत स्तूप अथवा चैत्य के खण्डहर फैले हुए है जिनका ह्वेनसाग ने उल्लेख किया है अतः मैं इस महाभारत के चैत्यक पर्वत के अनुरूप स्वीकार करता हूँ। अन्य दोनो पर्वतों के सम्बन्ध में मैं तत्काल कोई विवरण नही दे सकता परन्तु मैं यह उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि इनके शिखरो पर भी छोटे छोटे जैन मंदिर बने हुए हैं।

फाहियान के अनुसार पहाडियो का मध्यवर्ती प्राचीन नगर पूर्व से पश्चिम ५ अथवा ६ ली तथा उत्तर से दक्षिण ७ अथवा ८ ली था अर्थात इसकी परिधि २४ से २८ ली अथवा ४½ मील थी। ह्वेनसाग के अनुसार इसकी परिधि ३० ली अथवा ५ माल थी जबकि इसकी अधिकाश लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर थी। मैंने प्राचीन दीवारों का सर्वेक्षण किया था जिसके अनुसार इसकी परिधि २४,५०० फुट अथवा ४⅔ मील बनती है जो दोनो तीर्थ यात्रियो के अनुमान के मध्य है। अधिकाश लम्बाई उत्तर पश्चिम में दक्षिण पूर्व है अतः जहाँ तक नगर की लम्बाई का प्रश्न है दोनो यात्रियो के कथनो में कोई विशेष अंतर नही है। सम्भवतः दोनो ने पूर्व में नेकपाई बाँध से उत्तर पश्चिम के किसी स्थान तक लम्बाई का अनुमान लगाया होगा (मजर किट्टोई ने इसका वर्णन किया है) यदि इसे दीवार के पश्चिम पाण्डव कोण तक लिया जाय तो इसकी दिशा पश्चिम उत्तर पश्चिम हो जायेगी और लम्बाई ८००० फुट परन्तु यदि इस तरह देवी के मंदिर तक लिया जाये तो इसकी दिशा उत्तर उत्तर पश्चिम एवम् लम्बाई ६००० फुट से अधिक होगी।

मैं फाहियान के इस कथन को उद्धृत कर चुका हूँ कि 'पाच पहाडिया एक नगर की दीवारो के समान कमरबन्द बनाती है।" यह कथन ह्वेनसाग द्वारा दिये गए विवरण से मिलती है जिसका कथन है कि यह चारो ओर से उन्नत पर्वतों से घिरा हुआ है जो इसकी बाह्य दीवार का काम करते हैं एवम् इस बाह्य दीवार की परिधि १५० ली अथवा २५ मील है।"[5] इस सख्या के स्थान पर मैं इसे ५० ली ८⅓ मील पढने का प्रस्ताव करता हूँ। क्योंकि अपने सर्वेक्षानुसार परिधि के समान करने के लिये यह शुद्धि आवश्यक है। पहाडियो के मध्य सीधी दूरी निम्न प्रकार से है —

(१) वैभार से विपुल तक		१२,००० फुट
(२) विपुल स रत्न तक		४,५०० फुट
(३) रत्न म उदय तक		८,५०० फुट
(४) उदय से सोन तक		७,००० फुट
(५) सोन स वैभार		६ ००० फुट
	कुल	४१,००० फुट

इस प्रकार कुल दूरी ८ मील से कम है परन्तु यदि उत्तर चढ़ाव को सम्मिलित किया जाये तो यह ह्वेनसांग द्वारा वर्णित दूरी (शुद्ध दूरी ३० ली) के प्राय समान हो जाती है। प्राचीरों की बाह्य पंक्ति बनाने वाली प्राचीन दीवारों को अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है। मैंने इन्हें विपुल गिरि से रत्नगिरि होते हुए नेकपाई बांध तक एवम् तत्पश्चात उदयगिरि के ऊपर एव घाटी के दक्षिणी मुहान स सोनगिरि तक देखा था इस मुहाने से बाहर की दीवारें जो आज भी अच्छी दशा म है १३ फुट मोटी है। ह्वेनसांग द्वारा कथित २५ मील की परिधि को प्राप्त करने क लिये इन प्राचीरों को पूर्व म गिरियेक तक ले जाना आवश्यक होगा। चूंकि गिरियेक पहाड़ी पर भी इसी प्रकार की प्राचीरें हैं अत यह सम्भव है कि ह्वेनसांग इन्हें भी बाह्य दीवारों की परिधि में सम्मिलित करना चाहता था परन्तु यह विशाल परिधि उसके इस कथन से सहमत नहीं है कि "उन्नत पर्वत नगर को चारों ओर से घेरे हुए थे' क्योंकि गिरियेक की दूरस्थ पहाड़ी को किसी भी प्रकार से प्राचीन राजगृह का एक किनारा नहीं हो सकती थी।

राजगृह के गरम सरोवर सरस्वती नदी के दोनो तटों पर देखे जा सकते हैं। इनमे आधे सरोवर वैभार पवत के पूर्वी अधोभाग पर एव अन्य अद्ध भाग विपुल पवत के पश्चिमी अधोभाग पर है। ५ प्रथम अद्ध भाग के सरोवरो के न म इस प्रकार है—(१) गङ्गा यमुना, (२)अनन्त ऋषि (३) सत ऋषि, (४)ब्रह्मकुण्ड (५) कश्यप ऋषि, (६) व्यास कुण्ड, तथा मारकण्ड कुण्ड। इनमे सर्वाधिक गरम सत ऋषि है। विपुल पवत क गरम सरोवरो के नाम इस प्रकार हैं—(१) सीता कुण्ड, (२) सूरज कुण्ड, (३) गणेश कुण्ड, (४) चन्द्रमा कुण्ड, (५) रामकुण्ड, तथा श्रृङ्ग ऋषि कुण्ड। अन्तिम सरोवर पर मुसलमानो ने अधिपत्य स्थापित कर लिया है जो इस एक प्रसिद्ध फकीर लिल्ला शाह क नाम पर मखदूम कुण्ड कहा करते है। इस फकीर की समाधि सरोवर के समीप ही है। कहा जाता है कि मूल रूप म लिल्ला का विलवा कहा जाता था एव वह एक अहीर था। अत वह अवश्य ही एक हिंदू रहा होगा जिसने धर्म परिवर्तित कर लिया था।

ह्वेनसाग ने प्राचीन नगर से १५ ली अथवा २½ मील उत्तर-पूव की ओर गृद्ध

कूट की प्रसिद्ध पहाड़ी का उल्लेख किया है। फाहियान के अनुसार यह पहाड़ी नवीन नगर के दक्षिण पूर्व मे १५ ली अथवा २½ मील की दूरी पर थी। अत हमारे दोनों यात्री गिद्ध शिखर को शिला पवत नाम की उन्नत पहाड़ी पर निश्चित करने मे सहमत हैं। परन्तु मैं इस पहाड़ी की किसी भी कन्दरा के सम्बन्ध मे सूचना प्राप्त नही कर सका। फाहियान ने इसे "गिद्ध की कन्दरा वाली पहाड़ी" कहा है तथा उसने लिखा है कि यहाँ अरहतो की अनेक सहस्र कन्दरायें थी जहाँ यह लोग तपस्या किया करते थे। मेरा अनुमान है कि यह चट्टान के साथ साथ बनाये गये छोटे कमरे थे तथा दीवारो के गिर जाने के कारण इनके नाम भुला दिये हैं। दोनो यात्रियों की सयुक्त साक्षी इतनी ठोस है कि उसमें सन्देह नहीं किया जा सकता और भावी खोज मे सम्भवतः किसी समय की इन पवित्र कन्दराओ के अवशेष प्राप्त किये जा सकें।

राजगृह

फाहियान ने राज गृह के नवीन नगर को प्राचीन नगर से ४ ली अथवा ⅔ मील उत्तर की ओर दिखाया है। यह स्थिति राजगीर नामक ध्वस्त दुर्ग की स्थिति से मिलती है।

कहा जाता है कि राजगृह के नवीन नगर का निर्माण बुद्ध के समकालीन, अजातशत्रु के पिता राजा श्रेनिक ने करवाया था जिसे बिम्बसार भी कहा जाता था। अत बौद्ध इतिहास के अनुसार इसकी स्थापना की तिथि को ५६० ई० पू० से पुराना नही कहा जा सकता। ह्वेनसाग के समय (६२९—६४२ ई०) में बाह्य दीवारें ध्वस्त हो चुकी थीं परन्तु भीतरी दीवारें खड़ी हुई थी एव इनका विस्तार २० ली (३⅓ मील) था। यह कथन मेरे सर्वेक्षण के आकड़ो से समीपता रखता है जिसके अनुसार दीवारो की परिधि ३ मील से कुछ कम थी। बुचनान ने राजगृह को असमान पच भुजाकार कहा है जिसका व्यास १,२००० गज है। स्पष्ट है कि १२०० गज के स्थान पर त्रुटि पूर्वक १२००० गज लिखा गया है और इसे १२०० गज स्वीकार कर लेने से इसकी परिधि ११,३००० फुट अथवा २⅙ मील होगी। सम्भवत्र यह भीतरी दीवारो की परिधि थी जो मेरे सर्वेक्षणानुसार १३,००० फुट थी। मेरा विचार है कि नवीन राजगृह एक असमान पञ्चकोण है जिसका एक किनारा लम्बा एव अन्य चार किनारे प्राय समानाकार हैं जबकि खाईयों से बाहर कुल परिधि १४,२५० फुट अथवा ३ मील से कुछ कम है।

पहाड़ी की ओर दक्षिणी भाग मे २००० फुट लम्बा एवम् १५०० चौड़ा भीतरी दीवार के एक भाग को अलग कर एक दुर्ग बना लिया गया है। इस दुर्ग की कच्ची प्राचीरों को पत्थर की जिन दीवारों से रोका गया है उन्हें अनेक स्थानो पर अच्छी हालत में देखा जा सकता है। जैसा कि बुचनान ने प्रस्ताव किया है यह सम्भव

है कि ये दीवारें बाद मे बनवाई गई हो परन्तु मेरे विचार में यह दीवारें नवीन नगर के दुर्ग की दीवारें थी और यह दीवारें नगर की प्राचीन दीवारों की अपेक्षा अधिक सावधानी एवम् अधिक ठोस बनाये जाने के कारण एवम् सैनिक आवश्यकता के रूप म निरंतर सुधार एवम् मरम्मत के कारण समय की ठोकरों को सहन करती रही हैं जब कि नगर की दीवारो को अनावश्यक अथवा अधिक खर्चीली समझ कर उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है।

नालन्दा

राजगृह (राजगीर) से ठीक उत्तर म ७ मील की दूरी पर बरगांव नामक एक गांव है जो प्राचीन सरोवरो एवम् भग्न टीलो से प्राय घिरा हुआ है और मैंने जिन स्थानो की यात्रा की है उन सभी की अपेक्षा यहां अधिक कला पूर्ण एवं अधिक संख्या म मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। बरगांव के अवशेषो की अधिकता को देखकर डा० बुचनान का विश्वास हो गया था कि यह किसी राजा का निवास स्थान रहा होगा और बिहार के एक जैन भिक्षु ने उसे सूचित किया था कि यह राजा श्रेणिक एवं उनके उत्तराधिकारियो का निवास स्थान था। ब्राह्मणो का विश्वास है कि यह अवशेष कुंडलपुर नगर के अवशेष हैं जो श्री कृष्ण की एक पत्नी रुक्मणि का प्रसिद्ध जन्म स्थान था। परन्तु चूंकि रुक्मणी विदर्भ अथवा बरार के राजा भीष्म की पुत्री थी अत यह सम्भव प्रतीत होता है कि ब्राह्मणो ने उस बरार के स्थान पर बिहार समझने की भूल की हो जो बरगांव से केवल ७ मील की दूरी पर है। अत मुझे ब्राह्मणो के कथन की सत्यता मे सन्देह है विशेषकर जब मैं यह सिद्ध कर सकता हूं कि बरगांव के अवशेष भारत म बौद्ध शिक्षा के सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थान नालन्दा के अवशेष हैं।

फाहियान ने हाला की कुटिया को एकान्त चट्टान या पहाडो अर्थात गिरियक से १ योजन अथवा ७ मील तथा नवीन राजगृह से भी समान दूरी पर बताया है। यह विवरण गिरियेक तथा राजगीर की स्थिति की तुलना मे बरगांव की स्थिति स मिलता है। लड्डा के पाली ग्रन्थो म भी नालन्दा को राजगृह से १ योजन की दूरी पर बताया गया है। पुन ह्वेनसांग ने नालन्द को बोद्ध गया के पवित्र पीपल वृक्ष से ७ योजन अथवा ४६ मील दूर बताया है जो मार्ग दूरी के अनुसार सही है जबकि मानचित्र पर सीधा रेखा पर यह दूरी केवल ४० मील है। उसमे यह भी लिखा है कि यह नवीन राजगृह स लगभग ३० ली अथवा ५ मील उत्तर की ओर और यदि दोनों स्थानो की दूरी को प्राचीन प्राचीरो के दूरस्थ उत्तरी बिन्दु से आंका जाय तो दूरी एवं दिकाश दोनो ही बरगांव की स्थिति की ओर संकेत करते हैं। अत म उस स्थान पर मैंने दो शिलालेख प्राप्त किये उन दोनो मे इस स्थान को नालन्दा कहा गया है।

फाहियान ने नालन्दा को सारिपुत्र का जन्म स्थान कहा है जो बुद्ध का शिष्य

अनुयायी था परन्तु यह कथन पूर्णतय सत्य नहीं है क्योंकि ह्वेनसाग के विस्तृत वर्णन से हमे पता चलता है कि सारिपुत्र का जन्म नालन्दा एव इन्द्र शिला गुहा के मध्य अथवा प्रथम स्थान से लगभग ४ मील दक्षिण पूर्व मे कलपिका नामक स्थान पर हुआ था। नालन्दा को महा मोगलान का जन्म स्थान भी कहा गया है जो बुद्ध का दूसरा मुख्य शिष्य था परन्तु यह कथन पूर्णतय सत्य नहीं है क्योंकि ह्वेनसाग के अनुसार महान मोगलान का जन्म नालन्दा से ८ अथवा ९ ली (१½ मील से कम) दक्षिण पश्चिम मे कुलिका नामक स्थान पर हुआ था। इस स्थान को मैं बरगाँव के खण्डहरो के दक्षिण पश्चिम मे १½ मील की दूरी पर जगदीशपुर के समीप एक ध्वस्त टीले के अनुरूप सिद्ध करने मे सफल हुआ हूँ।

बरगाँव के खण्डहरों मे ध्वस्त ईंटो के अनेक समूह हैं जिनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण उन्नत नुकीले टीलो की पंक्ति है जो उत्तर तथा दक्षिण दिशा मे फैली हुई है। यह उन्नत टीले नालन्दा के प्रसिद्ध मठ से सम्बन्धित विशाल मन्दिरों के अवशेष है। नालन्दा के विशाल मठ का १६०० फुट लम्बे एवं ४०० फुट चौड़े ईंटो के खण्डहरो के विशाल समूह मे चतुर्भुजाकार सीमा से देखा जा सकता है। यह क्षेत्र छः छोटे मठो के आगनो का सकेत देते हैं। ह्वेनसाग के अनुसार यह छः छोटे मठ विशाल मठ के भीतर बने हुए थे जिनमे आठ आगन थे। इनमे पाँच मठ एक ही परिवार के पाँच शासकों द्वारा बनवाये गये थे एवं छठा मठ उनके उत्तराधिकारी द्वारा बनवाया गया था जिसे मध्य भारत का राजा कहा गया है।

मठ के दक्षिण मे एक सरोवर था जिसमे नालन्दा नामक एक नाग रहा करता था और तदनुसार इस स्थान को उसी के नाम पर नालन्दा कहा जाने लगा। आज भी ध्वस्त मठ के दक्षिण मे करगिदया पोखर नामक एक छोटा सरोवर है जो नालन्दा सरोवर की स्थिति से ठीक ठीक मिलता है अतः यह सम्भवतः नाग सरोवर के अनुकूल है।

नालन्दा के खण्डहरो के चारो ओर के स्वच्छ सरोवरों का उल्लेख किये बिना मैं प्राचीन नालन्दा के समाप्त नहीं कर सकता। उत्तर पूर्व मे गिधी पोखर तथा पनसोकर पोखर हैं जो एक एक मील लम्बे हैं जबकि दक्षिण मे इन्द्र पोखर है जो कम से कम ½ मील लम्बा है। अन्य सरोवर आकार मे छोटे हैं और उनके विस्तृत उल्लेख की आवश्यकता नहीं है।

इन्द्र शिला गुहा

गया के पहाड़ियों की दो समानान्तर श्रेणियाँ उत्तर पूर्व मे लगभग ३६ मील तक गिरियेक गाँव के विपरीत पचान नदी तक चली गई हैं। दक्षिणी श्रेणी का पूर्वी छोर अधिक झुका हुआ है परन्तु उत्तर छोर निरन्तर ऊँचा उठा हुआ है और अन्त मे यह दो उन्नत शिखरों पर समाप्त हो जाता है जो पचान नदी पर झुके हुए हैं। पूर्व

की ओर निचली चोटी पर ईंटों का बना एक ठोस बुज है जो जरासंध की-बैठक अथवा जरासंध के सिंहासन के नाम से प्रसिद्ध है जबकि पश्चिम की ओर उन्नत चोटी पर जिससे गिरियक नाम को विशेष रूप से सम्बन्धित किया जाता है—अनेक भवनों के अवशेषों से ढका आयताकार चबूतरा बना हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य खण्डहर एक विहार अथवा मन्दिर था जो सबसे ऊंची चोटी पर बना हुआ है। यहाँ पहुँचने के लिये स्तम्भों वाले कमरों से गुजरने वाली कठिन सीढ़ियों को पार करना पड़ता है।

दोनों चोटियाँ अति ढलुआ मार्ग द्वारा सम्बन्धित हैं जो पूर्ववर्ती समय में गिरियक गाँव के विपरीत पहाड़ी के अधोभाग तक चला गया था। इस मार्ग के सभी मुख्य स्थानों पर एवम् घुमाव पर ईंटों से बने स्तूप देखे जा सकते हैं जिनका व्यास ५ तथा ६ फुट से लेकर २५ फुट तक है। ऊपरी ढलवान के अधोभाग पर तथा जरासंध के बुज से ५६ के भीतर १०० फुट वर्गाकार सरोवर बनाया गया है। यह सरोवर आंशिक रूप से खोद कर एवम् आंशिक रूप से निर्माण कार्य द्वारा पूरा किया गया है। उत्तर की ओर कुछ दूरी पर एक अन्य सरोवर है जो भवन निर्माण हेतु पत्थर निकाले जाने से बन गया था। यह दोनों सरोवर अब भरे हुए हैं।

गिरियेक गाँव से २ मील दक्षिण पश्चिम में तथा जरासंध के बुज से १ मील की दूरी पर पर्वत के दक्षिणी भाग में एक प्राकृतिक कन्दरा है जो बान गङ्गा नदी के स्तर से प्रायः २५० फुट ऊपर है। यह कन्दरा जिसे गिद्ध द्वार कहा जाता है सामान्य विश्वासानुसार जरासंध के बुज से सम्बन्धित बताई जाती है परन्तु ध्यान से सोंगनी से निरीक्षण करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि यह कन्दरा बुज की ओर जाता हुई एक प्राकृतिक दरार है परन्तु यह केवल ९८ फुट लम्बी है कन्दरा का प्रवेश द्वार १० फुट चौड़ा एवम् १४ फुट ऊँचा है परन्तु अन्तिम छोर तक पहुँचते इसकी ऊँचाई अत्यधिक कम हो जाती है। यह कन्दरा चमगादड़ों से भरी हुई है एवम् इसके वातावरण में अति कष्टकर उमस एवम् दुर्गन्ध है। यह तथ्य ही इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि इस कन्दरा का निकास द्वार नहीं है अन्यथा इसके भीतर वायु का प्रवेश अवश्य मिलता। मैंने भूरे पत्थरों को उनके टुकड़ों के समान समस्त सिद्ध दिखाई देता है और कन्दरा के प्रवेश द्वार पर मैंने उनके बड़े एकत्रित किये थे।

इन विहार एवं गिरियक के खण्डहर—जिनका उल्लेख मैंने अभी किया है—फाहियान द्वारा एकान्त पहाड़ का पाषाण के वर्णन से मिलते हैं जहाँ इन्द्र ने बुद्ध से ४२ प्रश्न पूछे थे। यह विवरण ह्वेनसांग की इन्द्र शिला गुहा के वर्णन से भी मिलता है जिसके समान कथा का उल्लेख किया गया है।

दिशा एवम् दूरी दोनों से गिरियेक एवम् इन्द्र शिला गुहा की पहाड़ी से समीप

अधिक समानता है कि मुझे उनकी अनुरूपता पर पूर्ण सन्तोष है परन्तु मुझे यह असम्भावित प्रतीत नहीं होता कि यह गिरियेक अर्थात "एक पहाडी" से अधिक नहीं है जिसका फाहियान ने उल्लेख किया है।

दोनों तीर्थ यात्रियों ने कन्दरा को पर्वत के दक्षिणी भाग मे बताया है और यह स्थिति गिद्ध द्वार क उपयुक्त विवरण से ठीक ठीक मिलती है। गिद्ध द्वार अथवा सस्कृत भाषा के गृद्ध द्वार का अर्थ है गिद्ध के आने जाने का मार्ग। ह्वेनसांग ने इसे उस पत्थर के नाम पर इन्द्र शिला गुहा कहा है जिस पर इन्द्र द्वारा बुद्ध स पूछे गये ४२ प्रश्न लिखे हुए हैं। फाहियान ने लिखा है कि यह चिह्न इन्द्र ने स्वय अपनी उगली से बनाये थे।

फाहियान के अनुसार 'एकान्त चट्टान' की पहाडी मगध की राजधानी पाटली पुत्र स ८ योजन अथवा ५६ मील दक्षिण पश्चिम म तथा नालन्दा से एक योजन अथवा ७ मील पूर्व मे थी। ह्वेनसांग ने नालन्दा जाते समय अनेक स्थानो की यात्रा की थी परन्तु विभिन्न दिशाएं एवम् दूरियां के कारण उसने इन्द्र शिला गुहा का नालन्दा से ४७ ली अथवा ७⅚ मील पूर्व दक्षिण पूर्व में बताया है। बरगाँव एवम् गिरियेक की वास्तविक मध्यवर्ती दूरी लगभग ६ मील है एवम् इसकी दिशा दक्षिण पश्चिम दिशा के पश्चिम की ओर बताई जा सकती है। यदि हम उसको दक्षिण पूर्व तथा पूर्व दिशाओं को दक्षिण दक्षिण पूर्व तथा पूर्व दक्षिण पूर्व पढे तो सामान्य दिशा दक्षिण पूर्व हो जायेगी एवम् इसकी दूरी ८ मील बढ़ जायेगी जो सत्य क समीप है।

बिहार

गिरिएक के एकान्त पर्वत से तीर्थ यात्री उत्तर पूर्व दिशा म १५० से १६० ली अथवा २५ से २७ मील दूर कपोतिक मठ तक गया। इसके आधा मील दक्षिण मे एक उन्नत एकान्त पहाडी थी जहाँ अनेक कला पूर्ण भवनो स घिरा हुआ अवलोकितेश्वर का बिहार था। तीर्थ यात्री के १६० ली का ६० ली अथवा १० मील पढ़ने से मैं इस स्थान को बिहार के अनुरूप समझता हूँ। (१) हमारे मानचित्रा मे इस नाम को वेहार लिखा गया है परन्तु जन साधारण इसे बिहार लिखते एवम् पुकारते हैं जो इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि यह स्थान किसी समय किसी प्रसिद्ध बौद्ध बिहार का स्थान रहा होगा। इन्हा कारणो में मैं अवलोकितेश्वर के विशाल बिहार को—जो एक पहाडी के शिखर पर स्थित है—वर्तमान बिहार एवम् खण्डहरो मे ढंके यहाँ के विशाल एकान्त पर्वत के अनुरूप समझता हूँ। यह पहाडी बिहार नगर

(१) एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने अपना सन्देह व्यक्त किया है कि १५० से १६० ली को ५० अथवा ६० ली पढ़ा जाना चाहिये।

के उत्तर पश्चिम में है जिसका उत्तरी छोर अत्यन्त ढलुआँ एवम् दक्षिणी भाग कम ढलुआँ है। शिखर पर अब मुसलमानी इमारतें बनी हुई हैं परन्तु मुझे बौद्ध मूर्तियाँ एवम् सद्धर्मिक स्तूपों के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए थे।

कपोतिक मठ से तीर्थ यात्री दक्षिण पूर्व की ओर ४० ली अथवा ७ मील दूरी एक अन्य मठ तक गया जो एक एकान्त पहाड़ी पर अवस्थित था। दिशा एवम् दूरी तिलरावा में विशाल ध्वस्त टीले की ओर संकेत करते हैं जो बिहार से दक्षिण पूर्व में ठीक ७ मील की दूरी पर है। तिलरवा के स्थान पर १२०० फुट लम्बा एक स्वच्छ विशाल सरोवर है जिसके उत्तर की ओर खण्डित ईंटों का एक विशाल टीला है जो अपने वर्गाकार स्तम्भ के कारण किसी मठ का खण्डहर प्रतीत होता है।

इस स्थान से ह्वेनसांग ने उत्तर पूर्व दिशा में अपनी यात्रा को जारी रखा तथा ७० ली अथवा १२ मील के पश्चात् गङ्गा नदी के दक्षिणी तट पर एक विशाल गाँव में पहुँचा। परन्तु चूँकि नदी का निकटतम बिन्दु २५ मील दूर है अतः हम ० के स्थान १७० ली अथवा २६ मील पढ़ना चाहिये। यह आँकड़ा गिरियक से कपोतिक मठ की मध्यवर्ती दूरी में १०० मील की कमी का यहाँ जोड़ दी से प्राप्त किये गये हैं।

मैंने इन दोनों शुद्धियों को आवश्यक समझा है क्योंकि ह्वेनसांग ने कपोतिक मठ के समीप पहाड़ी का अथवा ऊँचाई का विशेष उल्लेख किया है और चूँकि बिहार अथवा तिलवार के उत्तर अथवा उत्तर पूर्व में मैं किसी भी पहाड़ी के अस्तित्व से भिज्ञ नहीं हूँ अतः ह्वेनसांग द्वारा अपने मार्ग के विवरण को देश की वास्तविक स्थिति के अनुकूल बनाने के लिये प्रथम मार्ग दूरी को कम करने एवम् अन्तिम मार्ग को बढ़ाने का इच्छुक हूँ। गिरियक से २५ मील पूर्व उत्तर पूर्व में शेखपुर के स्थान पर ६.५ फुट ऊँची एक पहाड़ी है जो सम्भवतः कपोतिक मठ की वास्तविक स्थिति हो सकती है परन्तु कपोतिक मठ की स्थिति में परिवर्तन होने से तीर्थ यात्री के पश्चातवर्ती मार्ग एवम् दूरी में भी परिवर्तन करना पड़ेगा क्योंकि शेखपुर गङ्गा नदी से केवल २० मील की दूरी पर है।

तत्पश्चात् तीर्थ यात्री पूर्व दिशा में १०० ली अथवा लगभग १७ मील दूर लो-इन-नी-लो के मठ एवम् गाँव में गया था जिसे श्री एम० विवान डी सेंट मार्टिन ने गङ्गा नदी पर अवस्थित रोहिनिल अथवा रोहिनि के अनुरूप स्वीकार किया है। इसकी वास्तविक दिशा दक्षिण पूर्व है परन्तु चूँकि तीर्थ यात्री ने नदी मार्ग का अनुसरण किया था अतः उसके विवरण में त्रुटि हो सकती है।

हिरण्य पर्वत

रोहिनल से ह्वेनसांग २०० ली अथवा ३३ मील पूर्व की ओर ई-लान-ना-पो-फा-ता अथवा हिरण्य पर्वत अर्थात 'स्वर्ण पर्वत' राज्य की राजधानी में पहुँचा।

नगर के समान ही हिरण्य पर्वत था "जिससे निकलने वाले धुए एवम् भाप के बादल सूर्य एवम् चन्द्रमा को ढंक दिया करते थे।" गङ्गा से इसकी समीपता एवम् रोहिनल तथा चम्पा से दिकाश एवम् दूरी के आधार पर इस पर्वत की स्थिति को मुङ्गेर के स्थान पर निश्चित किया जा सकता है। अब, इस पहाड़ी से धुआ नहीं निकलता परन्तु आस पास की पहाडियों में गरम जल के सरोवरों से पता चलता है कि मुङ्गेर से कुछ ही मीलों के भीतर ज्वालामुखी तत्व उपस्थित है। ह्वेनसाग ने गरम जल के इन सरोवरों का उल्लेख किया है।

गङ्गा नदी के तट पर यह एकान्त पहाडी जो पहाडियों एवम् नदी के मध्यवर्ती स्थल भाग एवम् नदी के जल भाग पर नियन्त्रण रखती है—अपनी अनुकूल स्थिति के कारण अधिक प्रारम्भिक काल में बस गई होगी। तदनुसार महाभारत में इसे वग तथा ताम्रलिप्ति अथवा बङ्गाल तथा तमलूक के समीप अवस्थित मोदागिरी कहा गया है जो पूर्वी भारत के एक राज्य की राजधानी थी। ह्वेनसाग की यात्रा के समय एक पड़ोसी राज्य के राजा ने यहाँ के राजा को पदच्युत कर दिया था। यह राज्य उत्तर में गङ्गा तथा दक्षिण में घने जङ्गलों वाले पर्वतों से घिरा हुआ था और चूंकि इसकी परिधि को ३००० ली अथवा ५०० मील आका गया है अतः दक्षिण में इसका विस्तार पारसनाथ के प्रसिद्ध पर्वतों तक रहा होगा जो ४४७८ फुट ऊंचा है। अतः मैं इसकी सीमाओं को उत्तर में लखी सराय से गङ्गा नदी पर सुल्तान गंज तक तथा दक्षिण में पारसनाथ पहाड़ी के पश्चिमी छोर से बराकर तथा दामूद नदियों के सगम स्थान तक निर्धारित करूँगा। इस भू भाग की परिधि मानचित्र पर सीधे माप से ३५० मील तथा नदियों के घुमावदार मार्ग के अनुसार ४२० मील से अधिक होगी।

चम्पा

मुंगेर से, ह्वेनसाग, पूर्व दिशा में ३०० ली अथवा ५० मील की यात्रापरान्त चेन पा अथवा चम्पा पहुँचा जो भागलपुर जिले का एक प्राचीन नाम है। राजधानी एक चट्टानी पहाड़ी जो चारों ओर से नदी द्वारा घिरी हुई था। पश्चिम में १४० से १५० ली अथवा २३ से २५ मील की दूरी पर गङ्गा नदी पर अवस्थित थी। इसके शिखर पर ब्राह्मणों का एक मन्दिर था। इस विवरण से पत्थर घाट के विपरीत द्वयमय चट्टानी द्वीप को पहचानना सरल है जिसकी चोटी पर एक मंदिर बना हुआ है। चूंकि पत्थर घाट भागलपुर के पूर्व में ठीक २४ मील की दूरी पर है अतः मेरा निश्चय है कि चम्पा की राजधानी या तो इसी स्थान पर रही होगी अथवा इसके समीप रही होगी। समीप ही, पश्चिम की ओर चम्पा नगर नाम का एक विशाल गाँव एवं चम्पापुर नामक एक छोटा गाँव है जो सम्भवतः चम्पा की प्राचीन राजधानी की वास्तविक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।

तीर्थ यात्री ने चम्पा की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील आंका है और चूंकि यह राज्य उत्तर मे गङ्गा नदी द्वारा तथा पश्चिम में मुंगेर पर्वत द्वारा घिरा हुआ था अतः इसकी सीमायें पूर्व म गङ्गा नदी की भागीरथी शाखा तक तथा दक्षिण म दामूद नदी तक विस्तृत रही होगी । दोना उत्तरी बिन्दुओं को गङ्गा नदी पर जानगीर तथा तेलिया गली, तथा दक्षिणी बिन्दुओ को दामूद नदी पर प्राचीन तथा भागीरथी पर कलना स्वीकार करने से सीमान्त रेखा की लम्बाई सीधे माप के अनुसार ४२० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार लगभग ५०० मील होगी । यह ह्वेनसांग द्वारा अनुमानित आकार से इतना कम है कि मेरा विचार है कि या तो मूल पुस्तक म किसी प्रकार की त्रुटि रही होगी अथवा तीर्थ यात्री म समय चम्पा जिले की भूगोलिक सीमाओ के बीच किसी प्रकार का भ्रम रहा होगा । तीर्थ यात्री के विवरण से हमें पता चलता है कि चम्पा के पश्चिम मे मुंगेर के राजा को एक पड़ोसी राजा ने पद-च्युत कर दिया था । चम्पा के पूर्व कजोल जिला एक पड़ोसी राज्य का आश्रित था । चूंकि चम्पा इन दोनो जिलों के मध्य म अवास्थित है अत मेरा अनुमान है कि चम्पा का राजा ही सम्भवत वह राजा था जिसने दोनो जिला पर विजय प्राप्त की थी और इस प्रकार ह्वेनसाग के विस्तृत आंकडो मे मूल चम्पा के पूर्व एव पश्चिम के यह दोना जिले सम्मिलित रहे होंगे । इस विचार धारा के अन्तर्गत राजनीतिक सीमाओ को गङ्गा नदी पर मसीतेराय से राजमहल तक तथा पारसनाथ की पहाडी से दामूद नदी के साथ साथ भागीरथी नदी पर कलना तक विस्तृत बताया जा सकता है । इन सीमाओ के भीतर चम्पा की परिधि सीधे माप के अनुसार ५५० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार ६५० मील होगी ।

कान्कजोल

चम्पा से तीर्थ यात्री ४०० ली अथवा ६७ मील पूर्व की यात्रोपरान्त की चू-खी ली अथवा की चिङ्ग-की लो नामक जिले म पहुँचा । दूरी एवम दिकांश हमे राज-महल जिले मे ले आते हैं जो मूल रूप से काकजोल नामक एक नगर के नाम पर कान्कजोल कहलाता था । यह नगर राजमहल के १८ मील दक्षिण मे अब भी बसा हुआ है । कहलगाव (कोकगोग) तथा राजमहल से होते हुए नदी मार्ग का अनुसरण करने से भागलपुर से इसकी दूरी कुल ९० मील है परन्तु मालगांव तथा बरहट होते हुए पहाड़ियो के सीधे मार्ग से इसकी दूरी ७० मील से कम है । चूंकि यह स्थिति ह्वेन-साग द्वारा इङ्गित स्थान की स्थिति से मिलती है अत मुझे सन्देह है कि चीनी नाम म दो अक्षरो की अदला बदली हुई है और हम इस की-की चू-लो पढना चाहिये जो कान्कजोल का अक्षरश अनुवाद है । ग्लेडविन द्वारा आईन ए अकबरी के अनुवाद मे इस नाम को गङ्गजूक कहा गया है परतु चूंकि मूल प्रतिलिपि मे सभी नामों को क्रम-वार लिया गया है अत यह निश्चित है कि प्रथम अक्षर क है । अतः मेरा निष्कर्ष है

कि वास्तविक नाम कान्कजोल है क्योंकि अन्तिम स को सरलता पूवक पढने की त्रुटि की जा सकती है। हेमिल्टन ने अपने गजेटीयर मे इस स्थान को कौन्कजोली कहा है जो सम्भवत कन्कजोली के स्थान पर गलती स लिखा गया है। उसने लिखा है कि पूववर्ती समय में राजमहल जिले को 'अपनी राजधानी के नाम पर अकबर नगर कहा जाता था जबकि लगान सम्बन्धी पुस्तको मे इस मुख्य रूप से एक सैनिक खण्ड के रूप मे ककजोली कहा गया है।'

ह्वेनसाग ने जिले की परिधि को २००० ली अथवा ३३३ मील आका है परन्तु, चूकि यह एक पडोसी राज्य का आश्रित राज्य था अत इसकी परिधि को उसी राज्य की परिधि में सम्मिलित किया गया है जिसका उल्लेख मैं कर चुका हूँ। स्वतन्त्र राज्य क रूप म कन्कजोल के छोटे राज्य के अन्तगत सम्भवत राजमहल के दक्षिण एवम् पश्चिम का सम्पूर्ण पहाडी क्षेत्र तथा पहाडियों एवम भागीरथी नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र रहा होगा जो दक्षिण मे मुर्शिदाबाद तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र की परिधि प्रायः ०० मील होगी।

पौण्ड्र वधन

काकजोल से तीर्थ यात्री ने गङ्गा नदी को पार किया तथा पूव की ओर ६००ली अथवा १०० मील की यात्रोपरान्त पुन म का तान न राज्य मे पहुँचा। एम० जुलीन ने इस नाम को पौण्ड्र वधन कहा है जबकि एम० विवीन डी सेंट मार्टिन ने इसे बदवान क अनुरूप स्वीकार किया है। परन्तु बदवान अन्तिम स्थान के दक्षिण मे तथा गङ्गा नदी क एक ही तट पर अवस्थित है। इसके अतिरिक्त इसका सस्कृत नाम वद्धमान है जैसा कि हम पिछले उदाहरणो में देखा चुके हैं विकाश मे भिन्नता एक त्रुटि के कारण हो सकती है परन्तु मेरे विचार मे अन्य भिन्नताओ क कारण बदवान का इस स्थान के अनुरूप समझना साघातिक होगा। मैं पबना का प्रस्ताव करूँगा जो काकजोल से प्रायः १०० मील दूर है एवम् गङ्गा नदी के विपरीत तट पर अवस्थित है परन्तु इसकी दिशा पूव के स्थान पर दक्षिण पूव है। चीनी अक्षर पुण्य वधन अथवा पौण्ड्र वधन का प्रतिनिधित्व करता है परन्तु अन्तिम नाम ही वास्तविक नाम होगा क्योंकि काश्मीर के स्थानीय इतिहास में इस गौड़ के राजा जयन्त की राजधानी कहा गया है जिसने ७८२ ईसवी से ८१३ ईसवी तक राज्य किया था। (१) बोलचाल की भाषा मे इस नाम को सक्षिप्त कर पोन बधन अथवा पोवधन कर दिया गया होगा जिससे इसे पूबना अथवा पोबना बना देना सरल रहा होगा जैसा कि इसे कुछ लोग पुकारते हैं। ह्वेन-

[1] (१) राजतरङ्गिणी मात्स्य पुराण क ब्रह्माण्ड खण्ड से एच० एच० विल्सन द्वारा उद्धृत प ण्ड्र देश के वणन में प्रान्त के अधिकांश भाग का गङ्गा क उत्तर म दिखाया गया है।

सांग के अनुसार राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी जो पश्चिम में महानदी, पूर्व में तिस्ता तथा ब्रह्मपुत्र तथा दक्षिण में गङ्गा नदी द्वारा घिरे भू भाग के वास्तविक आकार से ठीक-ठीक मिलता है।

जभोती

ह्वेनसांग ने ची ची तो राज्य को उज्जैन के उत्तर पूर्व में १००० ली अथवा १६७ मील की दूरी पर बताया है। चूंकि इस नाम के प्रथम एवं द्वितीय अक्षर चीनी भाषा में भिन्न भिन्न हैं अतः यह निश्चित है कि यह भारतीय भाषा के दो विभिन्न अक्षरों के समान होंगे। ची ची तो को अबुरिहान द्वारा उल्लिखित जभोटी अथवा जभौती के अनुरूप स्वीकार कर लेने से इस आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। अबुरिहान ने इसकी राजधानी को कजुराहा कहा है तथा इसे कन्नौज से ३० परसाग अथवा ९० मील दक्षिण पूर्व में दिखाया है। परन्तु वास्तविक दिशा दक्षिण है और दूरी लगभग ३० परसाग से दुगनी अर्थात १८० मील है। इब्न बतूता ने १३३५ ई० में इस राजधानी की यात्रा की थी। जिसने इसे खजूरा कहा है तथा यहाँ एक मील लम्बी झील के होने का उल्लेख किया है जिस के चारों ओर मूर्तिपूजकों के मन्दिर थे। इन मन्दिरों को खजुराहो के स्थान पर आज भी देखा जा सकता है और उत्तरी भारत में प्राप्त मन्दिरों में यह मन्दिर सम्भवतः सर्व श्रेष्ठ हैं।

अबु रिहान तथा इब्न बतूता के विवरणों से पता चलता है कि जभोटी प्रान्त बुन्देलखण्ड के वर्तमान जिले के अनुरूप है। चीनी तीर्थ यात्री ने ची ची तो की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील बताया है जिससे चारों ओर १६७ मील रेखाओं वाला एक चतुर्भुज बनता है कहा जाता है। कि बुन्देलखण्ड के अधिकतम विस्तार के समय इसमें गङ्गा एवम् यमुना का सम्पूर्ण दक्षिणी क्षेत्र तथा पश्चिम में बेतवा नदी से पूर्व में चन्देरी सागर के जिले सहित विंध्य वासिनी देवी के मन्दिर तक एवम् दक्षिण में नर्बदा नदी के मुहाने के समीप बिल्हारी तक का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलित था। परन्तु प्राचीन जभौतिया ब्राह्मणों के प्राचीन राज्य की यही सीमायें थीं जो, बुचनान की सूचनानुसार उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्बदा तक तथा पश्चिम में बेतवा नदी पर अवस्थित उरछ से लेकर पूर्व में बुन्देल नाला तक विस्तृत था। अन्तिम नाला एक छोटी नदी है जो बनारस के समीप तथा मिर्जापुर से दो (पैदल) यात्राओं की दूरी पर गङ्गा नदी में मिलती है। अन्तिम पच्चीस वर्षों में मैंने इस प्रदेश में चारों दिशाओं में भ्रमण किया है तथा मैंने जभौतिया ब्राह्मणों को सम्पूर्ण प्रान्त में फैले हुए पाया है परन्तु जमुना के उत्तर में अथवा बेतवा के पश्चिम में जभौतिया ब्राह्मणों का एक भी परिवार नहीं है। मैंने उन्हें बेतवा नदी पर उरछ के समीप बरवा सागर में, जमुना नदी पर हमीरपुर के समीप मोहदा में केन नदी के समीप खजुराहों तथा राजनगर में तथा चन्देरी एवम् भिलसा के मध्य उदयपुर, पथारी तथा एरान में देखा है। चन्देरी

। जभोतिया बनिया भी प ये ज न हैं जिनमे इस बात का पता चलता है कि यह नाम ग्रामाय परिवारिक पद न होकर सामान्य स्वीकृति का एक निर्देशक पद है । ब्राह्मणा । जभातिया नाम को यजुर होता से लिया है जो ऋगवेद को एक प्रथा थी परन्तु चूँकि यह नाम ब्राह्मणों एवम् बनियों अर्थात अन्य व्यापारिया के लिये समान रूप से प्रयोग मे लाया जाता है अत मेरे विचार म यह प्राय निश्चित है कि यह नाम केवल एक भौगोलिक नाम था जो उनके देश, जभोती से लिया गया था । ब्राह्मणा को अन्य अनेक जातियों से इस विचार की पुष्टि होती है जैसे कन्नौज से कन्नौजिया, गोड स गौड सरयूपार से सरवरिया अथवा सरयूपरिया, दक्षिण के द्राविड, मिथिला स मैथिल आदि । इन उदाहरणा से पता चलता है कि ब्राह्मणो को जातियों में भौगोलिक नाम प्रचलित थे और चूकि किसी एक प्रान्त में एक ही जाति के लोग अधिक सख्या में मिलत हैं अतः मैं किसी सीमा तक निश्चय पूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वह भू-भाग जहाँ जभोतिया ब्राह्मण अधिक सख्या म रहते थे वस्तुतः जभोती प्रान्त का क्षेत्र था ।

खजुराहो १६२ मकानो वाला एक छोटा गाँव है जहाँ १००० स कम निवासी हैं । इनमें जभोतिया ब्राह्मणों की सात विभिन्न शाखाओं के भवन एवम् चन्देल राजपूतों के सात भवन है । इन राजपूतो का मुखिया प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज के प्रतिद्वन्दी राजा परमाल देव का वशज होने का दावा करता है । यह गाँव चारो ओर से मन्दिरो एवम् खण्डहरो से घिरा हुआ है परन्तु यह सभी पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण पूर्व के तीन विभिन्न स्थानों में सामूहिक रूप से पाये जाते हैं । पश्चिमी समूह जिसमे ब्राह्मणों के मन्दिर हैं, शिव सागर क तट पर अवस्थित है । यह सागर वस्तुत एक संकीर्ण झील है जो वर्षा ऋतु में उत्तर से दक्षिण लम्बाई में तीन चौथाई मील लम्बी हो जाती है परन्तु ग्रीष्म ऋतु में इसकी लम्बाई ६०० फुट से अधिक नहीं रहती । गाँव से यह तीन चौथाई मील पर खण्डहरो के उत्तरी समूह से समान दूरी पर तथा जैन मन्दिरों के दक्षिण पूर्वी समूह मे ठीक एक मील दूर है । कुल मिलाकर यह खण्डहर एक वग मील में फैले हुये हैं परन्तु चूँकि पश्चिमी समूह एवम् खजूर सागर के मध्य किसी प्रकार के खण्डहर नहीं हैं अत प्राचीन नगर की सीमा झील के पश्चिमी तट स आग विस्तृत नहीं रही होगी । झील के अन्य तीनो ओर यह खण्डहर उत्तर से दक्षिण की ओर ४५०० फुट लम्बे एवम् पूव स पश्चिम की ओर २५०० फुट चौडे अथवा १४,००० फुट अथवा २$\frac{3}{4}$ मील की परिधि वाले आयताकार क्षेत्र मे निरतर फैले हुए हैं । यह परिधि ६४१ इसवी म ह्वेनसांग द्वारा कथित राजधानी क आकार स ठीक-ठीक मिलता है परन्तु कुछ समय पश्चात् खजुराहो नगर का पूव तथा दक्षिण में कुरार नाला तक विस्तृत किया गया था और विस्तृत दशा म इसकी परिधि ३$\frac{1}{2}$ मील स कम नहीं थी ।

चूंकि महोवा एवम् खजुराहो दोनो ही समान आकार के नगर थे अत यह कहना कठिन है कि ह्वेनसाग के समय राजधानी कौन सी थी। परन्तु चूंकि महोवा अथवा महोत्सव नगर चन्देल परिवार के उत्थान से सम्बंधित है अत मैं इसे सर्वाधिक सम्भावित समझता हूँ कि जभोतिया ब्राह्मणो के प्रारम्भिक परिवारों की राजधानी खजुराहो थी और इस प्रकार ह्वेनसाग की यात्रा के समय खजुराहो ही जभोती राज्य की राजधानी थी। परन्तु चूंकि यह उज्जैन से ३०० मील से अधिक अथवा यात्री द्वारा कथित दूरी से दुगनी दूरी पर है अत वास्तविक दूरी के समान करने के लिये तीर्थ यात्री के १००० ली को बढाकर २००० ली अथवा ३३३ मील करना होगा। यह एक विचित्र तथ्य है कि अबुरिहान ने कन्नोज से दूरी के अनुमान मे भी समान अनुपात मे त्रुटि की है और दोनो लेखको के समान विचारो से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनो की त्रुटि का सम्भावित कारण भी समान होगा अर्थात् उन्होने बुन्देलखण्ड के बड़े कोस का अनुसरण किया होगा जो ४ मील अथवा उत्तरी भारत के सामान्य कोस के दुगने के समान है।

ह्वेनसाग ने जभोती राज्य की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील कहा है। इन विस्तृत आकडो को प्राप्त करने के लिये इस राज्य मे सिन्ध तथा टोंस नदियो का सम्पूर्ण मध्यवर्ती प्रदेश तथा उत्तर में गङ्गा नदी से दक्षिण मे सागर तथा बिलहारी तक के भू भाग को सम्मिलित करना पड़ेगा। इस भू भाग मे कालिन्जर का प्रसिद्ध दुर्ग तथा चन्देरी का सुदृढ़ दुर्ग भी सम्मिलित थे जो क्रमश महोवा पर मुसलमानो की विजयोपरान्त चन्देल राजपूतो की स्थायी राजधानी बन गया था तथा जो बूढ़ी चान्देरी के त्याग दिये जाने पर पूर्वी मालवा की मुस्लिम राजधानी बन गया था।

महोवा

महोवा का प्राचीन नगर हमीरपुर से ५४ मील पर तथा खजुराहो के उत्तर मे ३४ मील दूर बेतवा एवं यमुना के सगम स्थान पर कड़े पत्थर की एक निचली पहाड़ी के अधोभाग पर अवस्थित है। यह नाम महोत्सव नगर का संक्षिप्त रूप है। यह नगर चन्देल परिवार के संस्थापक चन्द्र वर्मा ने बसाया था। कहा जाता है कि यह नगर ६ योजन लम्बा तथा २ योजन चौड़ा था परन्तु मैं इसे एक बड़े नगर के लिए [illegible] अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन समझता हूँ। मेरे सर्वेक्षणानुसार पश्चिम में राम [illegible] से लेकर पूर्व में कल्याण सागर तक यह नगर अपने अधिकतम विस्तृत स्वरूप में भी १½ मील से अधिक लम्बा नहीं रहा होगा। यह प्राय एक मील चौड़ा है जिससे इसकी परिधि ५ मील बनती है परन्तु इसका वास्तविक क्षेत्र एक वर्ग मील से अधिक नहीं है क्योंकि इसका दक्षिणी पश्चिमी भाग मदन सागर झील से ढका हुआ है। अपनी सर्वाधिक समृद्धि के समय इसकी जनसंख्या, प्रति १००

वग फुट के पीछे एक व्यक्ति की उच्चतम औसत को स्वीकार करने पर, १००,००० व्यक्तियों से कम रहो होगा। १८४३ ई० मे मैं छ सप्ताह तक महोबा मे रहा था। उस समय यहाँ ७५६ गृह बसे हुए थे एव यहा की जनसख्या ४००० थी। तदापरान्त इस नगर का विस्तार हुआ है और कहा जाता है कि अब यहाँ पर ६०० घर एवम् ५००० निवासी हैं।

महोबा तीन विशिष्ट भागो मे विभाजित है—प्रथम—महोबा अथवा नगर विशेष जो पहाडी के उत्तर मे है, द्वितीय—भीतरी किला जो पहाडी की चोटी पर है तथा तृतीय दरीबा अथवा पहाडी का दक्षिणी नगर। नगर के पश्चिम मे कीरत सागर है जिसका घेरा १½ मील है। यह सागर कीर्ति वर्मा द्वारा बनवाया गया था जिसने १०६५ से १०८५ ई० तक शासन किया था। दक्षिण की ओर मदन सागर है जिसकी परिधि प्राय ३ मील है। इसका निर्माण मदन वर्मा ने कराया था जिसने ११३० से ११८५ ईसवी तक शासन किया था। पूव की ओर कल्यान सागर नाम की एक छोटी झील है। उसके आगे विजय सागर नाम की एक गहरी झील है जिसका निर्माण विजय पाल ने करवाया था जिसने १०४५ ईसवी से १०६५ ईसवी तक राज्य किया था। अंतिम झील महोबा की झीलो मे सबसे बडी है जिसकी परिधि ४ मील से कम नहीं है परन्तु बुन्देल खण्ड जिले की सर्वाधिक सुन्दर एवम् दृश्य मय झील मदन सागर है। यह सागर पश्चिम में गोकर का कठोर चट्टानी पहाडी से, उत्तर में प्राचीन दुग के अधोभाग पर बने घाट एवम् मन्दिरो की श्रेणियों से तथा दक्षिण पूव में तीन चट्टानी अन्तरीपों से घिरा हुआ है। यह भू नासिकायें झील के भीतर की ओर मध्य तक चली गई हैं। उत्तरी भाग में एक चट्टानी द्वीप है जो ध्वस्त भवनों से ढका हुआ है तथा उत्तरी-पश्चिमी कोण की ओर कठोर पत्थर से बने दो मन्दिर है जिन्हें चन्देल राजाओं ने बनवाया था। इनमें एक पूर्णतय जर्जर अवस्था मे है परन्तु दूसरा मन्दिर ७०० वर्षों के पश्चात भी जल के भीतर उन्नत एवम् सीधा खड़ा है।

महोबा की स्थापना की परम्परागत कथा का मूल उल्लेख चन्द बरद (बरदाई) ने किया है। (१) अन्य स्थानीय इतिहास लेखको ने इस कथा का अनुसरण किया है। इस कथा के अनुसार चन्देल राजपूत बनारस के राजा गहिरवार इन्द्रजीत के ब्राह्मण पुरोहित हेमराज की पुत्री हेमावती से उत्पन्न हुए थे। हेमावती अत्यन्त सुन्दरी थी और एक दिन जब वह रति तालाब मे स्नान करने गई तो चन्द्रमा देवता ने उसे आलिङ्गन मे ले लिया। जब चन्द्रमा आसमान की ओर जाने लगा तो हेमावती ने उसे

(१) चन्देल राजा परमाल (परमार्दी देव) के युद्धों एवम् चन्देलों की उत्पत्ति का वणन करने वाले—चन्द बरदाई की कविता के भाग को महोबा खण्ड का नाम दिया गया है।

पुरा भला कहा । "मुझे क्यों कोसती हो ।' चन्द्रमा ने कहा, "तुम्हारा पुत्र पृथ्वी का राजा होगा और उसके वंशजों की भी सामर्थ्य होगी ।' हेमावती ने पूछा— 'जब मैं अविवाहिता हूँ तो मेरा पाप कैसे छिपेगा ।' चन्द्रमा ने उत्तर दिया "डरो मत । तुम्हारा पुत्र कर्णवती नदी के तट पर जन्म लेगा । तब उसे तुम खजुराहो में जाना और वहाँ उसे दक्षिणा में दे देना एवम् त्याग करना । महोबा में वह राज्य करेगा और एक महान शासक होगा । उसे दैवी पत्थर प्राप्त होगा और वह लोहे को स्वर्ण बना सकेगा । कालिञ्जर की पहाड़ी पर वह एक दुर्ग का निर्माण करायेगा । जब तुम्हारा पुत्र १६ वर्षों का होगा तो तुम अपने अपयश को दूर करने के लिये भण्ड यज्ञ करना और तदोपरान्त बनारस को त्याग कर कालिञ्जर में निवास करना ।'

इस भविष्य वाणी के अनुसार हेमावती का पुत्र, द्वितीय चन्द्रमा की भाँति वैशाख के कृष्ण पक्ष के ग्यारहवें दिन सोमवार को कर्णावती, आधुनिक केन नदी के तट पर उत्पन्न हुआ । (१) तदोपरान्त समस्त देवताओं की उपस्थिति में चन्द्रमा ने महोत्सव मनाया । बृहस्पति ने उस बालक की जन्म कुण्डली बनाई तथा बालक को चन्द्रवर्मा नाम दिया गया । १६ वर्ष की आयु में उसने एक शेर का वध किया । चन्द्रमा प्रगट हुए एवम् उन्होंने उसे दैवी पत्थर भेंट किया एवम् उसे राजनीति का ज्ञान कराया । तत्पश्चात् उसने कालिञ्जर दुर्ग का निर्माण कराया तथा अपनी जननी को पापमुक्त कराने के उद्देश्य से यज्ञ कराया तथा ४५ मन्दिरों का निर्माण कराया । तदोपरान्त चन्द्रवती रानी एवम् अन्य सभी रानियाँ हेमावती के चरणों में बैठ गईं और उसके पाप धुल गये । अन्त में वह महोत्सव अथवा महोबा गया और उसे अपनी राजधानी बनाया ।"

विभिन्न लेखकों ने इस तिथि को भिन्न भिन्न रूप से लिखा है परन्तु शिलालेखों से प्राप्त वंशावलियों के अनुसार चन्देल परिवार के उत्थान एवम् महोबा की स्थापना की सम्भावित तिथि ८०० ई० है ।

महेश्वरपुर

जझोती से चीनी तीर्थ यात्री उत्तर दिशा में ९०० ली अथवा १५० मील की यात्रोपरान्त मो-ही-शी-फा-लो-पु-लो अथवा महेश्वरपुर गया जहाँ का शासक एक ब्राह्मण था । चूँकि उत्तर दिशा का अनुसरण करने से हम कन्नौज के समीप पहुँच जायेंगे अतः मेरा निष्कर्ष है कि दिशा में सम्भवतः त्रुटि हुई है । अतः मैं ९०० ली अथवा १५० मील दक्षिण पढ़ने का प्रस्ताव करूँगा जिस स्थिति में मण्डल नाम का

(१) कुछ एक प्रतिलिपियों में नदी के नाम को कियान अथवा किरनवती कहा गया है । इसमें सन्देह नहीं कि प्रथम नाम से ही एरियन ने कैनास नाम प्राप्त किया था जिसे सम्भवतः कियानास नाम से परिवर्तित किया गया है ।

प्राचीन नगर खड़ा है जिसे महेशमतिपुर भी कहा जाता था। यह ऊपरी नर्बदा के तटीय प्रदेश की मूल राजधानी थी। बाद मे जबलपुर से ६ मील दूर त्रिपुरी अथवा तेवर ने इसका स्थान ग्रहण कर लिया था। महेशमतिपुर नाम प्राचीन है क्योंकि महावंशों मे उल्लेख किया गया है कि २४० ईसवी पूर्व मे सम्राट अशोक के समय थेरो महादेव को महेश मण्डल भेजा गया था। देश की उपज को उज्जैन की उपज के समान बताया गया है जो इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि महेश्वर जभोटी के उत्तर की ओर नहीं हो सकता था क्योंकि ग्वालियर तथा गङ्गा दोआब की हल्के रङ्ग की मिट्टी उज्जैन के आस पास की काली मिट्टी से भिन्न है। इन कारणों से मैं क्वारी नर्बदा पर अवस्थित महेशमतिपुर को ह्वेनसाग के महेश्वरपुर के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। इस राज्य की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी। इन आकडो के अनुसार इसकी सीमाओ को अनुमानत पश्चिम मे दमोह तथा सिओनी से पूर्व मे नर्बदा के मुहाने तक विस्तृत बताया जा सकता है।

उज्जैन

ह्वेनसाग ने यू शी येन-न अथवा उज्जैयनी की राजधानी की परिधि में ३० ली अथवा ५० मील कहा है जो वर्तमान समय मे इसके आकार से कुछ कम है। राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। पश्चिम की ओर से यह राज्य मालवा राज्य से घिरा हुआ था जिसकी राजधानी धार नगर अथवा धार उज्जैन से ५० मील के भीतर था। अत उज्जैन की सीमायें पश्चिम मे चम्बल नदी से आगे नही हो सकती थी परन्तु उत्तर मे यह मालवा तथा जभोती के राज्यो से, पूर्व मे महेश्वरपुर से तथा दक्षिण मे नर्बदा तथा ताप्ती नदियो के मध्य सतपुडा पर्वतो से घिरा होगा। इन सीमाओ के भीतर अर्थात् पश्चिम मे रणथम्भोर तथा बुरहानपुर से पूर्व मे दमोह तथा सिउनी तक उज्जैन राज्य से सम्बन्धित भू भाग की परिधि प्राय ६०० मील रही होगी।

जभोती तथा महेश्वरपुर के पड़ोसी राज्यो की भाति उज्जैन राज्य भी एक ब्राह्मण राजा के अधीन था परन्तु जभोती का राजा बौद्ध धर्मावलम्बी था जबकि अन्य दोनो राजा ब्राह्मणवादी थे। पश्चिम मे मालवा का शासक कट्टर बौद्ध था। परन्तु ह्वेनसाग के समय का मो ला-पो अथवा मालवा प्राचीन प्रान्त के पश्चिमी अर्द्ध भाग तक सीमित है जबकि पूर्वी अर्द्ध भाग मे उज्जैन का ब्राह्मण राज्य है। चूंकि प्रान्त की राजनीतिक सीमायें इस प्रकार इसकी धार्मिक सीमाओ से मिलती है अत इस बात का उचित अनुमान लगाया जा सकता है कि यह सम्बन्ध विच्छेद धार्मिक मतभेद के परिणाम स्वरूप हुआ होगा। और चूंकि प्रान्त के पश्चिमी अथवा बौद्ध भाग को अब भी मालवा कहा जाता है अत मेरा निष्कर्ष है कि ब्राह्मणों ने ही सम्बन्ध विच्छेद

किया होगा तथा उज्जैन का राज्य मालवा के प्राचीन बौद्ध राज्य की प्रशाखा मात्र थी। इसी प्रकार मेरा विश्वास है कि महेश्वरपुर का राज्य अथवा बरार—जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायेगा—के विशाल बौद्ध राज्य का प्रशाखा रहा होगा। उज्जैन में कई दर्जन मठ थे परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय यहाँ केवल तीन अथवा चार मठ अच्छी हालत में थे जो लगभग ३०० भिक्षुओं का भरण पोषण करते थे। देवताओं के मन्दिरों की संख्या अधिक थी तथा यहाँ राजा ब्राह्मणों के पाखण्डवादी प्रथा का माता था।

मालवा

ह्वेनसांग ने मो-ला-पो अथवा मालवा की राजधानी को मो हो अथवा माही नदी के दक्षिण पूर्व में तथा भड़ौच के उत्तर पश्चिम में २००० ली अथवा ३३३ मील की दूरी पर अवस्थित बताया है। यहाँ निर्देश एवम् दूरी दोनों ही त्रुटिपूर्ण हैं क्योंकि मालवा भड़ौच के उत्तर पूर्व में है जहाँ से माही नदी का उद्गम स्थान केवल १५० मील की दूरी पर है। अतः मैं इसे १००० ली अथवा १६७ मील उत्तर पूर्व पढ़ूँगा जो मालवा की एक प्राचीनतम राजधानी धार नगर अथवा धार की स्थिति से प्रायः ठीक ठीक मिलता है। वर्तमान धार नगर की लम्बाई तीन चौथाई मील तथा चौड़ाई आधा मील है अथवा इसकी परिधि २½ मील है परन्तु चूँकि दुर्ग नगर की सीमाओं से बाहर है अतः इस स्थान की कुल परिधि ३½ मील से कम नहीं हो सकती है। प्रान्त की सीमाओं को ६००० ली अथवा १००० मील बताया गया है। पश्चिम की ओर मालवा के दो आश्रित राज्य थे अर्थात् खेड़ा, जिसकी परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी तथा आनन्दपुर जिसकी परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी। इनके अतिरिक्त बदारी नाम का एक स्वतन्त्र राज्य था जिसकी परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। इन सभी राज्यों को पश्चिम तथा पूर्व में कच्छ तथा उज्जैन उत्तर में वैराट तथा दक्षिण में बलभी एवम् महाराष्ट्र के मध्यवर्ती क्षेत्र में रखना होगा जिसकी कुल परिधि १३५० मील से अधिक नहीं है। अतः यह सम्भावित प्रतीत होता है कि तीर्थ यात्री ने आश्रित राज्यों को शासक राज्य की सीमाओं में ले लिया होगा। अतः मैं उपर्युक्त क्षेत्र के दक्षिणी अर्द्ध भाग को मालवा एवम् उसके आश्रित राज्यों का क्षेत्र समझता हूँ जबकि उत्तरी भाग को बदारी के स्वतन्त्र राज्य का क्षेत्र समझता हूँ। इस प्रकार मालवा की सीमायें उत्तर में बदारी पश्चिम में बलभी पूर्व में उज्जैन तथा दक्षिण में महाराष्ट्र द्वारा निर्धारित होती है। कच्छ में बनास नदी के मुहाने से लेकर मन्दसोर के समीप चम्बल तक तथा दमान तथा मालीगाँव के मध्यवर्ती सह्याद्री पर्वतों से लेकर बुरहानपुर से नीचे ताप्ती नदी तक इस क्षेत्र की परिधि मानचित्र पर सीधे माप के अनुसार ८५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार प्रायः १००० मील

है। अबुरिहान के अनुसार नवदा से धार की दूरी ७ परसाग थी और वहाँ से महरट दास की सीमा १८ परसाग थी। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि धार की सीमायें दक्षिण में ताप्ती नदी तक विस्तृत रही होंगी।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि भारत में दो ऐसे राज्य थे जिन्हें बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने का विशेष स्थान समझा जाता था अर्थात् उत्तर पूर्व में मगध तथा दक्षिण पश्चिम में मालवा। इसी तथ्य के अनुसार उसने लिखा है कि मालवा में अनेक सहस्र मठ थे जिनमें कम से कम २०,००० भिक्षु थे। उसने इस बात का भी उल्लेख किया है कि उसकी यात्रा से ६० वर्ष पूर्व शिलादित्य नामक एक शक्तिशाली राजा ने ५० वर्षों तक मालवा में राज्य किया था और वह एक कट्टर बौद्ध अनुयायी था।

खेडा

ह्वेनसाग ने की चा अथवा खेडा जिले को मालवा से ३०० ली अथवा ५० मील उत्तर पश्चिम में बताया है। चूंकि एम० जुलीन तथा एम० विवीन ने की चा को लाना पत्ता है जिस वह कच्छ के पठार के अनुरूप स्वीकार करते हैं अतः मैं उन कारणों पर प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ जिनके कारण मैं भिन्न नाम का प्रस्ताव करना चाहता हूँ। अन्य जिन नामों में चा के विशेष चिह्न का प्रयोग किया है उन्हें देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पाटलीपुत्र तथा कुक्कुता के सर्व प्रसिद्ध नामों में इसी चिह्न का प्रयोग किया है जहाँ यह त अथवा ट अक्षर का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार ओ चा ली में भी इसी अक्षर का प्रयोग किया गया है उसे एम० जुलीन ने अटाली तथा एम डी सेंट मार्टिन ने थल अथवा थार के मरु क्षेत्र के अनुरूप स्वीकार किया है। तदनुसार की चा नाम को खू टा पढ़ा जाना चाहिये। अब खेडा गुजरात के एक विशाल गाँव का वास्तविक संस्कृत स्वरूप है। यह नगर अहमदाबाद तथा खम्बात के मध्य अवस्थित है। अतः मैं तीर्थ यात्री के की चा को खेडा के अनुरूप स्वीकार करूँगा। यह सत्य है कि ह्वेनसाग द्वारा कथित दूरी केवल ३०० ली है परन्तु तीर्थ यात्री की यात्राओं के इस भाग में दिकाश एवम् दूरियों की इतनी त्रुटियाँ है कि मुझे इस दूरी को १३०० ली अथवा २१७ मील पढ़ने का प्रस्ताव करने में संकोच नहीं होता है। यह अनुमान खेडा तथा धार की मध्यवर्ती दूरी से अधिक समीपता रखता है। जब हम इस बात का स्मरण करते हैं कि मालवा राज्य पूर्व की ओर २५ मीलों के भीतर ही उज्जैन की स्वतन्त्र सीमाओं से घिरा हुआ था तो ऐसी दशा में इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि धार से ५० मील के भीतर कोई अन्य राज्य रहा होगा अन्यथा मालवा की सीमायें उज्जैन तथा खेडा के मध्य लगभग ५० मील की चौड़ाई तक सीमित रहतीं। परन्तु मेरी प्रस्तावित शुद्धि को स्वीकार करने से ऐसी कठिनाई दूर हो सकती है तथा खेडा मालवा राज्य का [illegible]

जिनके पूर्वज अनेक शताब्दियों से इडर के राजा थे। [illegible] के प्रारम्भ में हुआ था अतः उनके पूर्वज इडर के राजा [illegible] के समय से मिलता है। इन कारणों से मेरा विचार है कि इडर [illegible] साथ ही साथ चीनी तीर्थ यात्री के ओटाली अथवा वडाली [illegible] पर्याप्त कारण हैं।

प्रान्त की परिधि का अनुमान ६००० ली अथवा १००० मील [illegible] है। इस विस्तृत आकार से पता चलता है कि उत्तर में ईडर, पश्चिम में [illegible], पूर्व में उज्जैन तथा दक्षिण में मालवा का सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र [illegible] अन्तर्गत रहा होगा। अतः इसकी सीमायें उत्तर में अजमेर तथा रणथम्भौर, पूर्व तथा पश्चिम में लूनी तथा चम्बल नदियाँ तथा दक्षिण में कच्छ की खाड़ी में [illegible] से मन्दसौर के समीप चम्बल तक मालवा की सीमायें रही होंगी। इन सीमाओं की परिधि मानचित्र पर लगभग ६०० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार १००० मील है।

निचले सिन्ध के पूर्वी देशों के प्लिनी द्वारा दिये गए वर्णन में [illegible] मिलता है जो इडर तथा आस-पास के क्षेत्र से सम्बन्धित [illegible] है। [illegible] नरयाइ जाति थी जो भारत के उच्चतम पर्वत कपिटालिया से घिरी हुई थी [illegible] स्वर्ण एवम् रजत निकाला जाता था। उनके बाद ओरेटुरी [illegible] (अथवा [illegible]) थे जिनके राजा के पास केवल दस हाथी थे परन्तु [illegible] (तथा) वरटा ऐइ (अथवा सुरटाटोई) थे जिनके राजा के [illegible] थी परन्तु अश्व रोहिया एवम् पद सैनिकों की एक सुदृढ़ सेना था। [illegible] आदि थे। इससे पूर्व हम अन्तिम जाति का [illegible] कपिटालिया के उन्नत पर्वत का पवित्र अरबुदा अथवा आबू [illegible] है जो समुद्र के स्तर से ५००० फुट ऊँचा था। [illegible] 'नरकट के प्रदेश' की जनता का नाम रहा [illegible] नरकट के पर्यायवाची शब्द है। सरई प्रदेश वर्तमान समय [illegible] के लिये प्रसिद्ध है।

ओराटुराई का मैं बडपुर अथवा [illegible] आकार करूँगा जो बरनगर के निवासियों के समान है। [illegible] परिवर्तन से इस यूनानी नाम ओराटुरा को ओरापुरा पढ़ा जा सकता है [illegible] अथवा बडपुर के समान है। प्लिनी की सूची में अन्तिम नाम [illegible] है जिसमें [illegible] कुछ प्रतिलिपियों में सोरटराटोई को विभिन्न [illegible] लिखा गया है और [illegible] रूपों में उपयुक्त शुद्धि की पुष्टि होती है। [illegible] सम्भव है कि [illegible] टोई नाम सौराष्ट्र निवासियों के लिये लिखा [illegible]। प्रसिद्ध वराह मि

पश्चिमी भारत की जातियों में सोरा, एवम् बदर निवासियों का एक साथ उल्लेख किया है। यह बदर निवासी निश्चित ही बडारी अथवा बादरी के निवासी थे।

मैं समझता हूँ कि बडारी उस जिले का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें बडोदा अथवा ईडर था। अधिक सम्भवतः यह दक्षिणी राजपूताना में समान रूप से पाये जाते हैं। इसी कारण से मैं प्राचीन सौवीरा को इसके पड़ोस में ढूँढता था जिसमें मैं ओफीर अथवा सोफीर के प्रसिद्ध नाम का वास्तविक स्रोत समझता हूँ क्योंकि सौवीर बडारी अथवा बेर वृक्ष एवम् इसके इस काँटेदार फल का दूसरा नाम है। अब, सौवीर वर्तमान समय में भारत का नाम है परन्तु यह नाम पूर्व में भारतीय तट के उस भाग से सम्बन्धित रहा होगा जहाँ पश्चिमी देशों के व्यापारी आया करते थे। मेरा विचार है कि इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि यह स्थान खम्भे की खाड़ी के था जो अति प्राचीन काल से भारत एवम् पश्चिमी देशों के मध्य व्यापार का मुख्य केन्द्र था। यूनानी इतिहास के सम्पूर्ण काल में यह व्यापार नर्मदा नदी के मुहाने पर बरीगाजा अथवा भड़ोच के प्रसिद्ध नगर के एकाधिकार में था। चौथी शताब्दी में इसका कुछ भाग गुजरात पठार की नवीन राजधानी वलभी ने प्राप्त कर लिया था। मध्य युग में यह व्यापार खाड़ी के सिरे पर खम्भे के स्थान पर होता था और आधुनिक समय में ताप्ती के मुहाने पर सूरत नगर इस व्यापार का केन्द्र है।

यदि मेरा यह अनुमान सही है कि बेर वृक्षों की अधिकता से सौवीर नाम प्राप्त किया गया था तो यह सम्भव है कि खम्भे की खाड़ी के सिरे पर बडारी अथवा ईडर का एक अन्य विशिष्ट नाम था। रुद्रदाम के प्राचीन लेख के अनुसार हमें इस इसी स्थान पर देखना चाहिये क्योंकि यहाँ सिन्धु सौवीरा को सुराष्ट्र तथा मारु कच्छ के बाद तथा कुकुर, अपरान्ता तथा निषाद से पहले लिखाया गया है। इस व्यवस्था के अनुसार सौवीरा सौराष्ट्र तथा भड़ोच के उत्तर में तथा निषाद के ठीक दक्षिण में पर्वत के पड़ोस में अर्थात उसी स्थान पर होना चाहिये जिसकी ओर मैंने संकेत किया है। विष्णु पुराण में भी सौवीरा को इसी स्थान पर दिखाया गया है। "सुदूर पश्चिम में पारी पात्र पर्वतों के साथ साथ निवास करने वाले सौराष्ट्र वासी, सूर, अभीर, अरबुद, करुष तथा मालव थे तथा साकल, मद्रास आदि स्थानों के निवासी सौवीर सैंधव हूण एवम् मालव थे। इस व्याख्या में हमें बडारी अथवा ईडर के पूर्व, पश्चिम उत्तर एवम् दक्षिण सम्पूर्ण क्षेत्र के लगभग सभी प्रधान स्थानों का उल्लेख मिलता है। परन्तु बडारी का अथवा खेडा खम्भे अथवा अनलवाड़ आदि किसी नाम का उल्लेख नहीं किया गया है जिससे मेरा अनुमान है कि यह सभी स्थान सौवर के अधीन रहे होंगे। अतः बडारी अथवा सौवीरा दक्षिणी राजपूताना के समान था।

बाईबिल के यूनानी भाषा के अनुवाद में यहूदी ओफीर को सदैव सोफीर लिखा गया है। सम्भवतः इसे सोफीर के मिस्री नाम के प्रति आदर भाव से ग्रहण किया

गया था। इस नाम का सब प्रथम उल्लेख जोब की पुस्तक म किया गया था जहा "आफीर के स्वण' को सब श्रेष्ठ श्रेणी का स्वण कहा गया है। कुछ समय पश्चात टायर म राजा हुरम के जहाज "सोलोमन के सेवकों सहित ओफीर गये और वहाँ से ४५० प्रामाणिक स्वण लेकर सालोमन राजा के पास गये। तत्पश्चात इजिहा ने आफीर के स्वण का उल्लेख किया है जिसका कथन है कि "मैं मानव को स्वण स और यहाँ तक कि ओफीर के स्वणिम धातु स भी मूल्यवान बनाऊगा।' यहाँ धातु का अर्थ चीम अथवा ईंट लगाया गया है और मेरा अनुमान है कि अवान द्वारा दिखाइ गई ५० शेकल वजन की स्वणिम धातु सम्भवत आफीर की एक ईंट थी।

अब इस बात को सिद्ध करना शेष है कि बडारी अथवा इडर का जिला जिसे मैं ओफीर का सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि प्रस्तावित कर चुका हूँ प्राचीन समय स वतमान समय तक सम्भार के स्वण उत्पादक देशों में सम्मिलित रहा है। यद्यपि इस विषय पर प्रमाण कम है परन्तु यह स्पष्ट है। प्राचीन साक्षियों में मैं केवल प्लिनी की साक्षी का उल्लेख कर सकता हूँ जिसने आबू पवत के पार रहने वालों को "स्वर्ण एव रजत की विस्तृत खानों" का स्वामी कहा है। वतमान समय म अरावली की श्रेणी ही भारत का एक मात्र स्थान है जहाँ कुछ मात्रा में रजत प्राप्त किया जाता है जबकि इसकी नदियों म आज भी स्वण प्राप्त किया जा सकता है जिसके श्रेष्ठतम नमूने भारतीय अजायब घर में देखे जा सकते हैं।

परन्तु यदि खाम्बे की खाड़ी भारत एवम् पश्चिमी देशों के मध्य व्यापार का महान केन्द्र था तो यह आवश्यक नहीं है कि स्वण जिसके कारण यह केन्द्र प्रसिद्ध था, इसी जिले की उपज हो। वतमान समय में इसी पश्चिमी तट पर बम्बई से दो भीतरी जिलों की उपज अर्थात मालवा की अफीम तथा बरार की कपास विदेशों में भेजी जाती है। जहाँ कहीं भी व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं स्वभाविक है कि पश्चिमी व्यापारियों के समान के बदले भारतीय स्वण वहाँ एकत्रित हो गया हो।

पूर्वी भारत

सातवी शताब्दी मे भारत के पूर्वी खण्ड में आसाम, गङ्गा के डेल्टा सहित बङ्गाल, सम्भलपुर, उडीसा तथा गजाम सम्मिलित थे। ह्वेनसाग ने इसे प्रान्त अथवा खण्ड को ६ राज्यो म विभाजित किया है जिन्हे उसने काम रूप, समतत, ताम्रलिप्ति किरएा सुवरा ओड़ तथा गजाम कहा है और मैं इन्ही नामो के अन्तगत इन राज्यो का उल्लेख करूगा।

काम रूप

मध्य भारत म पौण्ड वधन अथवा पबना से चीनी तीर्थ यात्री ६०० ली अथवा १५० मील पूर्व की ओर गया तथा एक महान नदी को पार कर किया मो-ल्यू पो अथवा कामरूप मे प्रवेश किया जो आसाम का सस्कृत नाम है। इसकी सीमाओ की परिधि को १०००० ली अथवा १६६७ मील आका गया है। इस विस्तृत आकार स पता चलता है कि ब्रह्मपुत्र नदी की सम्पूर्ण घाटी अथवा कूचविहार अथवा भूटान सहित आधुनिक आसाम इसम सम्मिलित रहा होगा। प्राचीन काल म ब्रह्मपुत्र की घाटी तीन क्षेत्रो म विभाजित थी जिन्हे सदिया आसाम एव काम रूप कहा जा सकता है। चूंक अन्तिम राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली एवम् शेष भारत के समीप था अतः सम्पूर्ण घाटी को सामान्यत इसी नाम से पुकारा जाता था। कूचविहार कामरूप का सुदूर पश्चिमी खण्ड था और चूंक यह देश का सर्वाधिक समृद्ध शाली क्षेत्र था अत यह राजाओ का निवास स्थान बन गया जिनकी राजधानी कामतोपुर के नाम स सम्पूर्ण प्रान्त का पुकारा जाने लगा। परन्तु कहा जाता है कि काम रूप की प्राचीन राजधानी गौहाटी थी जो ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर अवस्थित थी। अब, कूचविहार की राजधानी कामतोपुर पबना स ठीक १५० मील अथवा ६०० ली की दूरी पर थी यद्यपि इसकी दिशा पूर्व की ओर थी जबकि गौहाटी पबना से उत्तर पूर्वी दिशा मे इसस ठीक दुगनी दूरी अर्थात् १६०० ली अथवा ३१७ मील की दूरी पर थी। चूंकि प्रथम स्थान की स्थिति तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी स ठीक ठीक मिलती है अत यह प्राय निश्चित है कि सातवी शताब्दी म यह कामरूप की राजधानी थी। इस तथ्य से इस बात की पुष्टि प्रतीत होती है कि यहाँ के निवासियो की भाषा एवम् मध्य भारत के निवासियो की भाषा म बहुत कम भिन्नता थी। अत यह असामान्य नहीं थी और परिणाम स्वरूप मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग जिस राजधानी म गया था वह ब्रह्मपुत्र की घाटी म गौहाटी न होकर भारत के कूचविहार जिले म

कामतोपुर थी। इसी प्रकार तीर्थ यात्री ने जिस बड़ी नदी को पार किया था वह ब्रह्मपुत्र न होकर तिस्ता नदी थी।

पूव म कामरूप की सीमायें चीन के सू प्रात के दक्षिण पश्चिमी बबरों की सीमाओ स मिलती थी। दक्षिण पूव के वनो में जङ्गली हाथी प्रचुर सख्या मे थे और वतमान समय मे भी यहाँ यही दशा है। यहाँ का राजा भास्कर वर्मा नामक एक ब्राह्मण था जो भगवान नारायण अथवा विष्णु का वशज होने का दावा करता था एवम् जिसके परिवार ने पिछली १००० पीढ़ियो से यहाँ राज्य किया था। वह एक कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बी तथा ६४३ ईसवी मे पाटलीपुत्र से कन्नौज की धार्मिक यात्रा में उसने हर्षवधन का साथ दिया था।

समतत

समतत अथवा सान मो ता चा की राजधानी का कामरूप के दक्षिण म १२०० से १३०० ली अथवा २०० से २१७ मील तथा ताम्रलिप्ति अथवा तमलूक के पूव मे ९०० ली अथवा १५० मील की दूरी पर बताया है। प्रथम स्थिति जसर अथवा जेस्सोर से प्राय ठीक ठीक मिलती है और सम्भवत इस स्थान की ओर ही सकेत किया गया है जबकि तमलूक स दिकाश एवम् दूरी हमे सुन्दरी वन अथवा सुदर वन के निजन प्रदेश की ओर ले जायेगी जो हुरनघाट नदी एवम् बाकर गञ्ज के मध्य है। परन्तु एसे प्रदेश में जहाँ निचले बङ्गाल की भाँति माग में बारम्बार नदियाँ पार करनी पड़ती है, एक स्थान से दूसरे स्थान को म ग दूरी मानचित्र पर सीधे माप की दूरी से ⅙ भाग अधिक होगी। इस प्रकार जैसोर जो थल माग द्वारा ढाका से १०३ मील तथा कलकत्ता स ८७ मील दूर है सीधे माप के अनुसार इन स्थानो से क्रमश ८२ एवम् ६२ मील दूर है। अत ह्वेनसाग द्वारा १५० मील की स्थल माग की दूरी सीधे माप के अनुसार १२० मील से अधिक नहीं होगी जो तमलूक तथा जैसोर के मध्य वास्तविक दूरी से केवल २० मील अधिक है। परन्तु चूंकि पूव की ओर स स्थल माग द्वारा तमलूक तक नही पहुँचा जा सकता अत तीर्थ यात्री ने कम से कम आधा माग जल माग से पूरा किया होगा और स्थल एवम् जल मार्गों क सयुक्त माग की अनुमानित दूरी अर्थात १५० मील को उचित रूप स स्वीकार किया जा सकता है क्योकि इसका वास्तविक माप करना कठिन था। जसर अथवा "पुल" नाम—जिसन प्राचीन मुरली का स्थान ले लिया है स प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान होता है। जहाँ स्थान-स्थान पर गहरे नदी मार्गों को पार करना पड़ता है और वतमान सड़का एवम् पुलो के निर्माण से पूव आवागमन का मुख्य साधन नाव था। मुरली अथवा जसर सम्भवतः टालमी का गङ्गा रेगिया है।

इलाहाबाद के स्थान पर समुद्र गुप्त के लख म समतत देश का उल्लेख किया

गया है जहाँ इस नामरूप तथा नेपाल के साथ गिनाया गया है। वराह मिहिर जो छठी शताब्दी के प्रारम्भ म हुआ था की भौगोलिक सूची म भी इसका उल्लेख किया गया है। प्रोफेसर लासेन के अनुसार इस नाम से ह्वेनसांग द्वारा लिया गया वर्णन अर्थात समुद्र तट पर निचली एवम् म भूमि म मिलता है। यहाँ क निवासी कद म छोटे एवम् सावले रङ्ग क होते थे जैसे कि वर्तमान निचले बङ्गाल के निवासी हुआ करते हैं। इन सभी समान तथ्यों से यह निश्चित है कि समतट गङ्गा का डेल्टा रहा होगा और चूँकि देश की परिधि का ३००० ली अथवा ५०० मील बताया गया है अतः इसमें वर्तमान समय का सम्पूर्ण डेल्टा अथवा भागीरथी तथा गङ्गा की मुख्य नदियों का मध्यवर्ती त्रिभुजाकार क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा।

ह्वेनसांग ने समतट के अनेक पूर्वी देशों का उल्लेख किया है परन्तु चूँकि उसने केवल एक सामान्य दिशा का उल्लेख किया है विभिन्न स्थानों की मध्यवर्ती दूरी का नहीं अतः इन नामों की पहचान करना सरल कार्य नहीं है। प्रथम स्थान शी ली चा-ता लो है जो समतट के उत्तर पूर्व मे महान सागर के समीप एक घाटी म अवस्थित था। यह नाम सम्भवत श्री क्षत्र अथवा श्री क्षेत्र के लिये प्रयोग मे लाया गया है जिसे एम० विवीन डी सन्ट मर्टिन ने गङ्गा के डल्टा के उत्तर पूव मे साई हट अथवा सिल्हट के अनुरूप स्वीकार किया है। यह नगर मेगा नदी की घाटी म अवस्थित है और यद्यपि यह समुद्र से अधिक दूरी पर है फिर भी इस बात की सम्भावना अधिक है कि तीर्थ यात्री ने इसी स्थान की ओर सकेत किया था। द्वितीय प्रदेश किया मो लांग किया था जो प्रथम स्थान से पूर्व की ओर एक बडी खाडी के समीप था। मेरे विचार म इस स्थान को मेगा नदी क पूव तथा बङ्गाल की खाडी के सिरे पर टिपरा के कोमिल्ला जिले के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। तृतीय देश तो लो पा ती था जो अंतिम प्रदेश क पूर्व की ओर था। एम जुलीन ने इस नाम का द्वारवती क । है परन्तु उन्होने इस पहचाने का प्रयत्न नही किया। फिर भी मैं प्रस्ताव करूगा कि यह तैलगवती अर्थात तैलग अथवा पेगु नामक जाति का प्रदेश हो सकता है। बर्मी जिलो म नाम के अन्त मे वती आता है जैसे हसवती, दवयवत, दोनयवती, आदि। इससे पूर्व ई० शाग ना पु लो था और इस स्थान से भी आगे पूर्व की ओर मो हो चेन पो था। तदुपरान्त दक्षिण पश्चिम की ओर येन मो न चू राज्य था। इनमे प्रथम नाम को मैं शान जाति का देश अर्थात लाओस समझता हू। द्वितीय नाम सम्भवत कोचीन चीन अथवा अनाम है और तृतीय नाम जिसे एम० जुलीन ने यमन द्वीप कहा है—निश्चित ही यव द्वीप अथवा जावा है।

ताम्रलिप्ति

शान मो-ली-ती अथवा ताम्रलिप्ति जिले की परिधि को १४०० अथवा १५००

ली अथवा २५० मील बताया गया है। यह समुद्र तट पर अवस्थित था तथा देश की भूमि निचली एवम् नम थी। इसकी राजधानी एक खाडी में थी तथा स्थल एवम् जल मार्ग द्वारा यहाँ पहुँचा जा सकता था। ताम्रलिप्ति तमलुक का संस्कृत नाम है जो हुगली एवम् रूपनारायण नदियों के संगम स्थान से १२ मील ऊपर रूपनारायण की खाडी में अवस्थित था। इस जिले में सम्भवतः हुगली नदी का पश्चिमी उपजाऊ परन्तु छोटा क्षेत्र सम्मिलित था जो उत्तर में बर्द्धमान तथा कलना से लेकर दक्षिण में कोसई नदी के तट तक फैला हुआ था। यूनानी तमालिटीज ताम्रलिप्ति के पाली स्वरूप तामलिट्टी से लिया गया था।

किरण सुवर्ण

ह्वेनसांग ने कि लो-ना सू फा-ला-ना अथवा किरण सुवर्ण को ताम्रलिप्ति के उत्तर पश्चिम में ७०० ली अथवा ११७ मील तथा ओड्र अथवा उडीसा के उत्तर पूर्व में समान दूरी पर बताया है। चूंकि सातवीं शताब्दी में उडीसा की राजधानी वैतरणी नदी पर जाजीपुर थी अतः किरण सुवर्ण के मुख्य नगर को सुवर्ण रेखा नदी के जल मार्ग के साथ-साथ सिंह भूम तथा बड़ भूम के जिलों में किसी स्थान पर खोजना चाहिये परन्तु भारत के इस जंगली क्षेत्र के सम्बन्ध में हमारी जानकारी इतनी कम है कि मैं देश की प्राचीन राजधानी के सम्भावित प्रतिनिधि के रूप में किसी भी विशेष स्थान का प्रस्ताव करने में असमर्थ हूँ। बडा बाजार बड़ भूम का मुख्य नगर है और चूंकि इसकी स्थिति ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थिति से मिलती है अतः इसे सातवीं शताब्दी में राजधानी का सम्भावित स्थान स्वीकार किया जा सकता है। इसकी सीमाओं की परिधि ४४०० से ४५०० ली अथवा ७३३ से ७५० मील बताई जा सकती है। अतः इसमें पूर्व से पश्चिम मेदनीपुर तथा सिरगुजा तथा उत्तर से दक्षिण दमदा तथा वैतरणी नदियों के मुहाने के मध्यवर्ती पर्वतीय राज्य सम्मिलित रहे होंगे।

अब, देश के इस जंगली भाग में अनेक जंगली जातियाँ बसी हुई हैं जिन्हें कोल्हान अथवा कोल के सामूहिक नाम से पुकारा जाता है। परन्तु चूंकि इस जाति के लोगों में दो विभिन्न भाषाओं की विभिन्न बोलियाँ बोली जाती हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह लोग दो विभिन्न जातियों के लोग थे जिनमें मुण्डा एवं उरांव जातियों का विशिष्ट प्रतिनिधि समझा जा सकता है। कर्नल डाल्टन के अनुसार देश में सर्व प्रथम मुण्डा जाति निवास करती थी और उनके आगमन से काफी समयोपरान्त उरांव जाति का प्रादुर्भाव हुआ' तथा "यद्यपि अब इन दोनों जातियों को देश के गाँवों में एक ही खेतों में काम करते, समान व्यौहारों को मनाते एवम् हुए भी पूर्णतया भिन्न भिन्न जाति कहा जा सकता है और इनमें अपनी जाति से विच्छेद किये बिना अन्तर्जातीय विवाह नहीं हो सकते।' भाषा की भिन्नता से जाति भिन्नता के तथ्य की पुष्टि होती है।

जिनसे पता चलता है कि तरीन दक्षिण की तामिल जाति से सम्बंधित थे जबकि उत्तर की पर्वतीय जातियों से सम्बंधित थी जो हिमालय पर्वत से विन्ध्याचल पर्वत तक एवम् सिंध नदी से बङ्गाल की खाड़ी तक फैली हुई थी।

कर्नल डाल्टन ने मुण्डा से सम्बंधित विभिन्न जातियों का उल्लेख किया है जैसे एलिचपुर की कुआर, सिरगुजा की कोरेवा, छोटा नागपुर की खेरिया, सिंह भूमि की होर, मानभूमि तथा ढाल भूमि की भूमिज मानभूमि सिंहभूमि, कटक, हजारी बाग तथा भागलपुर की पहाड़ियों की सन्याल जाति। इनके साथ उसने कटक के सहायक जिलों में केउंजर आदि की जौंग अथवा पुट्टन जाति को जोड़ दिया है जो "मुण्डा परिवार की अन्य सभी जातियों से कटी हुई है और उन्हें स्वयं भी अपने सम्बन्धों का ज्ञान नहीं है परन्तु उनकी भाषा से पता चलता है कि वह एक ही जाति के लोग हैं तथा उनकी निकटतम शाखा खैरिया शाखा है। इस जाति की पश्चिमी शाखायें मालवा तथा खान्देश की भील जाति तथा गुजरात की कोली जाति हैं। इन जातियों के दक्षिण में इसी जाति की एक अन्य शाखा है सूर अथवा सुआर कहा जा सकता है। वह पूर्वी घाटों के दूरस्थ उत्तरी द्वार पर अवस्थित है।

कर्नल डाल्टन के अनुसार सिंहभूमि की हो अथवा होर जाति "मुण्डा जाति की मूल शाखा है। उन्होंने इसे सम्पूर्ण जाति में सर्वाधिक ठोस, शुद्ध, शक्तिशाली एवम् रुचिपूर्ण शाखा एवम् इनकी आकृति को निश्चित रूप से श्रेष्ठ कहा है। अपनी आकृति से हो जाति के लोग उन लोगों की भाँति दिखाई देते हैं जिन्होंने अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखा है और इस कारण उन्हें गर्व भी है। उनमें अनेक व्यक्तियों की अपनी आकृति के कारण आर्यों से तुलना की जा सकती है जिनकी ऊंची नासिका, विशाल, सुगठित मुख, सुन्दर दांत एवम् मुखड़े को हिंदू जातियों के समान बताया जा सकता है। जब मुण्ड जाति के लोगों की आकृति आर्यों से भिन्न दिखाई देती है तो यह नीग्रो जाति के स्थान पर मङ्गोल जाति से मिलती जुलती प्रतीत होती है। इस जाति के लोग सामान्य कद के एवम् रङ्ग में भूरे एवम् भूरे पीले होते हैं।'

मुण्डा भाषा की विभिन्न प्रचलित भाषाओं में हो, होर, होरो, अथवा होको शब्द "नर" के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं। सिंहभूमि के निवासियों द्वारा इस नाम के प्रयोग से कर्नल डाल्टन के विश्वास की पुष्टि होती है कि यह जाति मुण्डा जाति की सर्वाधिक शक्तिशाली शाखा थी। परन्तु वह अपने आपको लड़ाका अथवा "योद्धा" भी कहा करते हैं जिनसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह मुण्डा जाति की मुख्य शाखा थे।

कर्नल डाल्टन ने मुण्डा नाम के किसी अर्थ का उल्लेख नहीं किया है परन्तु मैंने देखा है कि सिंह भूमि एवं मुण्डा जाति की अन्य शाखाओं में गाँव के मुखिया को

मुण्डा अथवा मोटा कहा जाता है अत मेरा निष्कर्ष है कि मुण्डा अथवा मोटो शाखा किसी समय इस जाति की शासक जाति रही होगी। विष्णु पुराण मे मुण्डा को उन ग्यारह राजकुमारो के परिवार का विशिष्ट नाम बताया गया है जिन्होंने तुशार अथवा तोखरी जाति के पश्चात राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु वायु पुराण में इस नाम का उल्लेख नहीं मिलता है और हमें मरुण्ड का नाम मिलता है जो सम्भवतः द्वितीय एवम् तृतीय शताब्दियों के दो शिला लेखो में प्राप्त अन्य नाम मुरुण्ड का परिवर्तित स्वरूप है। टालमी ने गङ्गा के उत्तर के निवासियों को मरुण्डाई नाम दिया है परन्तु दक्षिण के निवासियों को उसने मण्डली कहा है जो छोटा नागपुर के मुण्डा हो सकते हैं क्योंकि उनकी भाषा एवम् देश को मुण्डला कहा गया है। यह केवल एक प्रस्ताव है, परन्तु मण्डालो की स्थिति से पता चलता है कि वह प्लिनी के मोनेडीज लोग थे जिन्होंने सुआरी जाति के साथ-साथ पालीबोथरा के दक्षिणी प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। चूंकि यह मुण्डा एवम् सुआर जाति के देश की वास्तविक स्थिति यही है अत मेरे विचार में यह प्राय निश्चित है कि वह प्लिनी को मोनेडीज एवम सुआरी जातियाँ थी।

एक अन्य स्थान पर प्लिनी ने मण्डेई तथा मल्लो जाति को कालिंगाय तथा गङ्गा के मध्यवर्ती क्षेत्र का निवासी कहा कहा है। मल्ली जाति के प्रदेश मे मल्लुस नामक एक पर्वत था जो मोनेडीज तथा सुआरी का प्रसिद्ध मालेयस पर्वत प्रतीत होता है। मेरे विचार में इस बात की अधिक सम्भावना है कि दोनो नाम भागलपुर के दक्षिण म प्रसिद्ध मन्दर पर्वत के लिये प्रयुक्त किये गये थे जो सागर मन्थन के समय देवताओं एवम् राक्षसा द्वारा प्रयोग म लाये जाने के कारण प्रसिद्ध है। मण्डेई को मैं मन्दाकिनी नदी के निवासियों के अनुरूप स्वीकार करूँगा जिसे प्लिनी ने मनदा कहा है। अत मल्ला अथवा मलेइ टालमी की मण्डलाय जाति होगी जो पालीबोथरा के दक्षिण में गङ्गा के दाहिने तट पर बसी हुई थी अथवा वह राज महल पहाडियो के निवासी हो सकते हैं जिन्हें मलेर कहा गया है जिसे कन्नड माल तथा तामिल भाषा के मलई अर्थात 'पर्वत से प्राप्त किया गया है। अत यह हिन्दू पहाडी अथवा पर्वतिया अर्थात ''पर्वतीय मनुष्य के समान होगा।

प्लिनी की सुआरी जाति टालमी की साबराय जाति है और मोदो को ही लकड हारो की जङ्गली जाति सवरा अथवा सुआर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो जङ्गलो में घूमा करते थे। कहा जाता है कि सवरा की सीमायें खोण्ड जाति के सीमान्त से प्रारम्भ होती थी और दक्षिण म पेन्नार नदी तक विस्तृत थीं। परन्तु पूर्वी घाट की सवार अथवा सुआर जाति दूर दूर तक बसी हुई जाति की केवल एक

शाखा थी जबकि मुख्य जाति ग्वालियर तथा नरवाड के दक्षिण पश्चिम म तथा दक्षिणी राजपूताना मे अधिक सख्या म मिलती है। ग्वालियर सीमा की सवारी अथवा सहारी जाति नरवाड तथा गुणा के पश्चिम की ओर कोटा सीमा त बना म बसी हुई है। इस जाति के लोग चम्बल नदी एवम् इसकी शाखाओ क जल माग क साथ साथ बसे हुए हैं जहाँ यह टाड द्वारा वर्णित राजपूताना की सुरिया जाति मे मिलन हैं। यह नाम टालमी के सोराय जाति के नाम मे सुरक्षित है जिह्वे कोण्डाली तथा फिलीटोप अथवा गोण्ड तथा भीला के दक्षिण मे बताया गया है। अत यह मध्य भारत के सुआर अथवा सवरा रहे होंगे जो वैन गङ्गा के उदगम स्थान के आस पास जङ्गली एवम् पवतीय प्रदेश म बस हुए थे तथा जिन्हें तिस्ता नदी की घाटी म साथ साथ ना देखा जा सकता है। चूकि किरन का अर्थ है "मिली जुली जाति का मनुष्य" अथवा बबर मनुष्य, अत यह सम्भव प्रतीत होता है कि किरण सुवण सुवार अथवा सुआर जाति का मूल नाम रहा हो।

सातवी शताब्दी के प्रारम्भ मे इस देश का राजा शी-शांग किया अथवा ससागक था जो बौद्ध धर्म के परम विरोधी के रूप म प्रसिद्ध है। अङ्गरेजी अजायब घर क "पेयनी नाईट कलेक्शन" म मैंने एक स्वण मुद्रा देखी थी जिस पर इस राजा का पूरा नाम छपा हुआ था। अन्य स्थानो पर भी इस मुद्रा के नमूने मिलते हैं।

ओड्रा अथवा, उडीसा

ओ चा अथवा ओडा राज्य आधुनिक ओड्रा अथवा उडीसा प्रान्त स ठीक ठीक मिलता है। ह्वेनसाग की जीवनी स ऐसा प्रतीत होता है कि ओडा तमलूक ताम्रलिप्ति क दक्षिण पश्चिम मे ७०० ली की दूरी पर था और चूकि यह दिकाश एवम दूरी जाजापुर की स्थिति स मिलती है अतः मेरा विचार है कि ओड्रा जाने मे पूव तीर्थ यात्री किरण सुवण स तमलुक वापस आया होगा। तीर्थ यात्रा की यात्राओ के विवरण म दिकाश एवम् दूरा का किरण सुवण स लिया गया है जा सम्भवतः एक त्रुटि है क्योंकि इन्हे सामान्य रूप स राजधानी स सम्बन्धित किया गया था जो चाहे इस ज जीपुर स्वीकार किया जावे अथवा कटक, किरण सुवण के ठीक दक्षिण म थी।

प्रान्त की परिधि ७००० ला अथवा ११६७ मील था और यह दक्षिण पूव म समुद्र स घिरा हुआ था जहाँ ची ली ता लो चिंग अथवा चरित्तापुर नामक एक प्रसिद्ध बन्दरगाह थी। यह सम्भवत पुरी का वतमान नगर था जिसके समीप जगन्नाथ का प्रसिद्ध मन्दिर बना हुआ है। नगर क बाहर एक दूसरे के समीप ही पाँच स्तूप थे जिनके बुज अधिक ऊँचे थे मेरा अनुमान है कि इनम एक को जगन्नाथ को समर्पित किया गया है। इस देवता उसके भाई बलदेव तथा बहन सुभद्रा की तीन आकार रहित मूर्तियाँ बौद्ध धम की बुद्ध, धम एवम् सघ की लाक्षणिक प्रतिमा की साधारण

नक्त है जिनमें द्वितीय मूर्ति को सदैव स्त्री रूप का प्रतिनिधि स्वीकार किया गया है। मथुरा एवम् बनारस के धार्मिक पञ्चाङ्ग में इन्हें बुद्ध का ब्राह्मण अवतार स्वीकार किया जाता है जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि जगन्नाथ की मूर्ति बौद्ध मूर्तियो पर आधरित है।

उडीसा की राजनीतिक सीमाओं को इधर सब शक्तिशाली शासक के समय मे उत्तर म हुगली तथा दमूद नादियो तक तथा दक्षिण म गोदावरी तक विस्तृत कहा जा सकता है। परन्तु आड्रदेश अथवा ओड देश का प्राचीन राज्य महानदी का घाटी तथा सुवर्ण रेखा नदी के निचले भाग तक सीमित था। इसमे कटक तथा सम्भलपुर के सम्पूर्ण जिले तथा मेन्निीपुर का कुछ भाग सम्मिलित था। यह राज्य पश्चिम मे गोण्डवाना तथा उत्तर मे जसपुर एवम सिंह भूमि क पर्वतीय राज्यो स, पूर्व म समुद्र म तथा दक्षिण मे गजाम स घिरा हुआ था। ह्वेनसांग के समय म भी इन राज्य सीमायें यही रहा होंगी क्योंकि इस भू भाग की परिधि तीर्थ यात्री क अनुमानित आकड़ों स मिलनी है।

प्लिनी ने ओरेटीज को भारत क निवासी कहा है जिनक प्रदेश म मालेयस पर्वत था परन्तु एक अन्य स्थान पर उसने इस पर्वत को मोनेडीज तथा सुआरी जाति की सीमाओ मे बताया है जबकि तीसरे स्थान पर उसने मल्लम पर्वत का मल्ली जाति की सीमाओ मे बताया है। चूकि अंतिम जाति कलिंगाई के उत्तर मे थी तथा मोनेडीज एवम सुआरी जाति पालीबोथरा के दक्षिण में थी अत ओरेटीज को हम महानदी एवम इसकी सहायक नदियो के साथ साथ किसी स्थान पर देखना चाहिये। अतः जैसा कि हम बता चुके हैं मोनेडीज एवम सुआरी मुण्डा एवम सुआर जातियां रही होंगी तथा ओरेटीज उडीसा के निवासी रहे होंगे। माली, द्रविड भाषा मे पर्वत का एक नाम है और चूकि उरीन अथवा पश्चिमी उडीसा के लोग आज भी द्रविड भाषा का प्रयोग करते हैं अतः यह सम्भव है मलस, पर्वत का वास्तविक नाम नहीं था। हो सकता है कि यह तेलिंगाना का प्रसिद्ध श्री पर्वत हो जिसमे यहाँ क निवासियो को श्री-पर्वतीय कहा जाता था।

देश की प्राचीन राजधानी महानदी नदी पर कटक थी, परन्तु छठी शताब्दी के प्रारम्भ म राजा जजाति केशरी ने वैतरनी नदी पर जजातीपुर क स्थान पर नवीन राजधानी की स्थापना कराई थी जो जाजीपुर के संक्षिप्त नाम क अंतर्गत आज भी जीवित है। इसी राजा ने भुवनेश्वर के कुछ विशाल मन्दिरो का निर्माण आरम्भ करवाया था परन्तु इस नाम नगर की स्थापना ललितेन्द्र केशरी ने करवाई थी। कहा जाता है कि यहाँ के निवासियों की भाषा एवम बोली मध्य भारत के निवासियो की भाषा एवम् बोली स भिन्न थी और वर्तमान समय म भी इस भाषा एवम् बोली म अंतर है।

नगर के दक्षिण पश्चिम में दो पहाड़ियाँ थी जिनमें एक पहाड़ी जिसे पुष्पगिरी कहा जाता था उस पर इसी नाम का एक मठ एवम् पत्थरों का बना एक स्तूप था जबकि दूसरी पहाड़ी पर केवल एक स्तूप था। यह पहाड़ी उत्तर पश्चिम की ओर थी। इन पहाड़ियों को मैं उदयगिरी एवम् खण्डगिरी की प्रसिद्ध पहाड़ियाँ समझता हूँ जिनमें अनेक बौद्ध कन्दरायें एवम् लेख पाये गये हैं। यह पहाड़ियाँ कटक के २० मील दक्षिण में तथा भुवनेश्वर के मन्दिरों के विशाल समूह से ५ मील पश्चिम में हैं। कहा जाता है कि स्तूपों का निर्माण राक्षसों ने करवाया था जिनसे मेरा अनुमान है कि ह्वेनसाग के समय में इन पहाड़ियों की विशाल कन्दराओं एवम् बौद्ध कालीन कार्यों की तिथि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नहीं थी।

गञ्जाम

ओड्रा की राजधानी से तीर्थयात्री दक्षिण पश्चिम दिशा में १२०० ली अथवा २०० मील दूर कोंग यू तो गया। इस नाम की पहचान नहीं हो सकी है परन्तु मेरा विचार है कि एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने चिल्का झील के पड़ोस में इसकी वास्तविक स्थिति की ओर संकेत किया है। यह राजधानी एक खाड़ी अर्थात दो समुद्रों के सङ्गम स्थान के समीप अवस्थित थी जिसे केवल विशाल चिल्का झील तथा समुद्र समझा जा सकता है क्योंकि लहरों से बने इस तट के साथ अन्य सागर अथवा झील नहीं है। अतः केवल गञ्जाम ही प्राचीन राजधानी हो सकती थी। परन्तु चूंकि गञ्जाम जाजीपुर से मानचित्र पर सीधे माप के अनुसार केवल १३० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार प्राय १५० मील दूर है अतः मेरा निष्कर्ष है कि गञ्जाम की ओर जाते हुए तीर्थयात्री ने उदयगिरि तथा खण्डगिरि की पहाड़ियों एवम् चरित्र पुर अथवा पुरी नगर की यात्रा की थी। इस मार्ग से यह दूरी बढ़कर सीधे माप से १६५ मील तथा सड़क मार्ग से प्राय १६० मील हो जायेगी जो चीनी तीर्थयात्री के अनुमान से सहमत है।

एम० जुलीन ने चीनी अक्षर कोंग यू तो को कोन्योधा कहा है परन्तु मैं इस नाम के किसी भी स्थान से अनभिज्ञ हूँ। मैं देखता हूँ कि एम पाथियर ने इस नाम को कयूअन यू भो लिखा (१) है जो गञ्जाम का अनुवाद प्रतीत होता है परन्तु यह नाम कहाँ से लिया गया है इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है। हेमिल्टन ने गञ्जाम को 'भंडार' कहा है परन्तु यह नाम अकेला नहीं रहता वरन् इस सन्त संस्थापक के नाम अथवा उस स्थान पर क्रय विक्रय की मुख्य वस्तु के नाम के साथ जोड़ दिया जाता है जैसे रामगंज, ठठियार गंज आदि। इस जिले की परिधि केवल १००० ली अथवा

(१) पूर्वी भारत के ऊंचा अथवा ओड्रा को क्यूने यू को भी कहा गया है जिस समय अर्थात ६५० से ६८४ ई० में यह आन्ध्र अथवा उड़ीसा का आश्रित राज्य रहा होगा।

१६७ मील थी जिसमे पता चलता है कि इसकी सीमायें रशिकुल्या नदी की छोटी घाटी तक सीमित थीं परन्तु यद्यपि यह एक छोटा राज्य था परन्तु प्रतीत होता है कि उस समय यह एक महत्वपूर्ण राज्य था क्योंकि ह्वेनसाग यहाँ के सैनिकों को वीर एवम् साहसी कहा है तथा उनके राजा को इतना शक्तिशाली बताया है कि पडोसी राज्य उसके अधीन थे एवम् उनमे राजा का सामना करने की शक्ति नहीं थी। इस विवरण से मेरा अनुमान है कि ह्वेनसाग की यात्रा के समय गन्जाम का राजा उडीसा के इतिहास का ललितेन्द्र केसरी रहा होगा। जिसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उसने ६१७ ई० से ६७६ ई० तक लगभग ६० वर्षों तक राज्य किया था। तीर्थ यात्री ६३६ ई० म गन्जाम गया था जिस समय यह राजा अपनी चरमोत्कर्षा म था। परन्तु केवल ४ वर्षोपरान्त जब तीर्थयात्री पुन मगध में पहुँचा तो उसने देखा कि कन्नौज का महान सम्राट हर्ष वधन उसी समय ही गन्जाम क विरुद्ध सफल अभियान से वापस आया था। युद्ध के कारणों की व्याख्या नहीं की गई है परन्तु चूंकि हर्षवधन एक कट्टर बौद्ध अनुयायी था जबकि ललितेन्द्र एक ब्राह्मण वादी था अत धर्म विभेद के कारण युद्ध का कोई न कोई कारण निकल आया होगा यह सम्भव प्रतीत होता है कि उस समय गन्जाम को कन्नौज राज्य म मिला कर उडीसा प्रात का भाग घोषित कर दिया होगा।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि गन्जाम की लिपि मध्य भारत का लिपि से मिलती है परन्तु दोनों स्थानों की भाषा एवम् उच्चारण भिन्न-भिन्न था। इस कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि सातवीं शताब्दी के मध्य तक भारत के अधिकाश भागों में समान लिपि प्रचलित थी। इनमे इस बात का पता भी चलता है कि सम्पूर्ण भारत में बौद्ध मठों क मध्य स्थापित पत्र व्यवहार की भाषा पूर्ण रूप स लुप्त नहीं हो सकी थी यद्यपि ब्राह्मणवाद के गठित उत्थान स उसमें बाधा पड़ी होगी।

———

दक्षिणी भारत

ह्वेनसांग के अनुसार दक्षिणी भारत में, पश्चिम में नासिक से लेकर पूर्व में गञ्जाम तक ताप्ती एवम् महानदी नदियों का सम्पूर्ण दक्षिणी पठार सम्मिलित था। श्री लङ्का को छोड़ यह नौ राज्यों में विभाजित था। श्री लङ्का को भारत का अङ्ग नहीं समझा जाता था। तीर्थ यात्री ने ६३९ तथा ६४० ईसवी में इन सभी राज्यों की यात्रा की थी। उसने उत्तर पूर्व दिशा से कलिंग में प्रवेश किया था और उत्तर पश्चिम की ओर मुड़ने हुए वह कोशल एवम् आन्ध्र के भीतरी राज्य में गया था। तत्पश्चात् दक्षिणी दिशा में अपनी यात्रा को जारी रखते हुए वह धनकाकटा, जोरया, द्रविड़ से होते हुए मालकुट तक गया था। द्रविड़ राज्य की राजधानी कांची में उसे श्री लङ्का के राजा की हत्या की सूचना मिली जिसके पश्चात उसने उस द्वीप की स्थिति के कारण वहाँ जाने का विचार त्याग दिया। तत्पश्चात उत्तर की ओर मुड़ते हुए वह कोंकण एवम् दक्षिण भारत के ७ राज्यों में अन्तिम राज्य महाराष्ट्र गया।

कलिंग

सातवीं शताब्दी में कलिंग किया अथवा कलिंग की राजधानी गञ्जाम के दक्षिण पश्चिम में १४०० से १५०० ली अथवा २३३ से २५० मील की दूरी पर अवस्थित थी। दिकांश एवम् दूरी दोनों ही गोदावरी नदी पर राजमहेन्द्री अथवा समुद्र तट पर कोरिंग की ओर सकेत करती हैं। इनमें प्रथम स्थान गञ्जाम से २५१ मील दक्षिण पश्चिम में तथा द्वितीय स्थान इसी दिशा में २४६ मील की दूरी पर है। परन्तु चूंकि प्रथम स्थान को अधिक समय से राज्य की राजधानी बताया जाता है अतः मेरा अनुमान है कि तीर्थयात्री इसी स्थान पर गया होगा। कहा जाता है कि कलिंग की मूल राजधानी कलिंग पट्टन से २० मील दक्षिण पश्चिम में श्रीकाकोल अथवा चीकाकोल में थी। इस राज्य की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। इसकी सीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु चूंकि इसकी सीमायें पश्चिम में आन्ध्र तथा दक्षिण में धनकटक मिलती थी अतः इसकी सीमायें दक्षिण पश्चिम में गोदावरी नदी तथा उत्तर पश्चिम में इन्द्रावती नदी की गोलिया शाखा से परे नहीं होगी। इन सीमाओं के भीतर कलिंग की परिधि प्रायः ८०० मील होगी। देश के इस भाग का मुख्य स्थान पर्वतों की महेन्द्र श्रेणी है जिसने महाभारत लिखे जाने के समय से वर्तमान समय तक अपना नाम सुरक्षित एवम् अपरिवर्तित रखा है। विष्णु पुराण में इस पर्वत श्रेणी का ऋषि कुल्य नदी के उद्गम स्थान के रूप में उल्लेख किया गया है और चूंकि यह गञ्जाम

नदी सर्व प्रसिद्ध नाम है अत महेन्द्र पर्वत का महेन्द्र मालो श्रेणी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो गञ्जाम को महानदी की घाटी स अलग करती है।

राजमहेन्द्री वेनगी के चालुक्य राजाओ की पर्वी अथवा छोटी शाखा की राजधानी थी जिनका अधिकार क्षेत्र उडीसा की सीमाओ तक विस्तृत था। वेनगी राज्य की स्थापना ५४० ई० म बेनगीपुर की प्राचीन राजधानी पर अधिकार किये जान के पश्चात हुई थी। प्राचीन राजधानी क अवशेष एल्लूर से ५ मील उत्तर तथा राजमहेन्द्री स ५० मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में वेगी के स्थान पर देखे जा सकते हैं। ७५० ई० क लगभग वेगी क राजा ने कलिंग पर अधिकार कर लिया था और कुछ ही समय पश्चात उसने राजमहेन्द्री को राजधानी बना लिया।

प्लिनी न कालिंगोय जाति को मण्डेई तथा मल्ली जातियो एवम मालयम के प्रसिद्ध पवत से नीचे, भारत के पूर्वी तट का निवासी बताया है। इस पवत को सम्भवत गञ्जाम म ऋषिकुल्य नदी के सिरे पर एक उन्नत पर्वत श्रेणी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसे आज भी महेन्द्र माले अथवा महेन्द्र पवत कहा जाता है। दक्षिण म कालिंगोय की सीमायें कलिंगोन की भू-नासिका तथा दण्डगुला नगर तक विस्तृत थी जो गङ्गा के मुहाने स ६२५ रोमन मील अथवा ५७४ ब्रिटिश मील था। दूरी एवम नाम दोनों ही कोरिंगोन की भू-नासिका के रूप मे कोरिंगा बन्दरगाह की ओर सकेत करते हैं जो गोदावरी नदी के मुहाने पर सुनासिका पर अवस्थित है। दण्डगुडा अथवा दण्डगला नगर को मैं बौद्ध ग्रथो का दान्तपुर समझता हूँ जिसे कलिंग की राजधानी के रूप मे सम्भवत राजमहेन्द्री के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो कोरिंगा स केवल ३० मील उत्तर पूव म है। यूनानी भाषा के अत्यधिक समानता के कारण मेरे विचार मे यह असम्भावित बात नही है कि इस स्थान का यूनानी नाम दण्डपुला था जो प्राय दान्तपुर के समान है। परन्तु इस दिशा में प्लिनी के समय मे ही कलिंग में वुद्ध के दात का मठ बनवाया गया होगा। बौद्ध ग्रथो के इस कथन से उपयुक्त बात की पुष्टि होती है कि बुद्ध की मृत्यु के तुरन्त बाद बुद्ध का मुवा दन्त कलिंग म ले जाया गया था तथा वहाँ क शासक ब्रह्मदत्त ने इसकी प्रतिष्ठा हेतु एक मठ का निर्माण कराया। यह भी कहा जाता है कि दान्तपुर एक महान नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित था और यह नदी केवल गोदावरी ही सकती है क्योंकि कृष्णा नदी कलिंग म नही थी। केवल यही तथ्य दान्तपुर की स्थिति को राज महेन्द्री की प्राचीन राजधानी के स्थान पर निर्धारित करने के लिये पर्याप्त है। महेन्द्री नाम सम्भवत टालमी के पिनुण्ड्रा मेगेपोलिस म सुरक्षित है जिसे उ ने मैसोलाम अथवा गोदावरी अर्थात मछलीपटम की नदी के समीप दिखाया है।

कलिङ्ग की राजधानी का अधिक प्राचीन नाम सिंहापुर था जिसे श्री लङ्का के

प्रथम लिखित शासक विजय के पिता, सिंहा बहू अथवा सिंह बाहु के नाम पर पुकारा जाता था। इसके स्थिति का सकेत नहीं किया गया है परन्तु गञ्जाम के ११५ मील पश्चिम म लालगला नदी पर इसी नाम का एक विशाल नगर बसा हुआ है जो सम्भवत समान स्थान है।

चेदी क कलचूरा अथवा हैहय राजपरिवार के लेखो म कहा गया है कि यह राजा 'कालज्जरपुर' तथा त्रिकलिंग के स्वामी की उपाधि धारण किया करन थ। कलिज्जर बुन्देल खण्ड का एक सर्व प्रसिद्ध दुग है और त्रि कलिंग कृष्णा नदी पर घनक अथवा अमरावती, आध्र अथवा वारङ्गल तथा कलिंग अथवा राजा महेंद्रो क तीन राज्यो का नाम रहा होगा। त्रिकलिंग का नाम सम्भवत पुराना है क्योकि प्लिनी ने मक्को कलिगोय तथा गङ्गाराडोज कलिंगोय को कलिंगगाय से भिन्न जाति कहा है जब कि महाभारत म विभिन्न स्थान पर कलिग का उल्लेख तीन बार किया गया है और तीनो बार इस विभिन्न निवासियों से सम्बन्धित किया गया है। इस प्रकार चूक त्रि कलिग तेलिगाना के विशाल प्रात से मिलता है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि तेलिगाना त्रि कलिगान का केवल सक्षिप्त नाम रहा हो। मैं जानता हूँ कि इस नाम का सामान्य रूप स महादव के त्रि लिंग से लिया गया है परन्तु प्लिनी द्वारा मक्को कलिगोय तथा गगारीडीज के उल्लेख से एसा प्रतीत होता है कि त्रि कलिगान मैगस्थनीज के समय म भी ज्ञात थे क्योकि प्लिनी न भारतीय भूगोल मुख्य रूप से मैगस्थनाज क विवरण से लिया है। अत यह नाम दक्षिण भारत म महादेव के लिंग की पूजा के समय से पुराना रहा होगा। एसा राजा के खण्डागिरी लख मे कलिंग का तीन बार उल्लेख किया गया है और यह राजा ईसवी पूव की द्वितीय शताब्दी मे हुआ था। इससे भी प्राचीन समय म अथवा सावय मुनी के जीवन काल मे यह स्थान श्रेष्ठ मल मल के उत्पादन के लिये प्रसिद्ध था और उसकी मृत्यु पर राजा ने बुद्ध का दात प्राप्त किया था जिस पर उसने एक देदीप्यमान स्तूप का निर्माण करवाया था।

कोशल

कलिंग स चीनी तीर्थ यात्री उत्तर पश्चिम की ओर लगभग १८०० से १६०० ली अथवा ३०० स ३१७ मील की यात्रोपरान्त कयाओ सा-लो अथवा कोशल राज्य म गया। निर्देश एवम दूरी हम विदम अथवा बरार के प्राचीन प्रात की ओर ले जाता है जिसका वतमान राजधानी नागपुर है। यह विवरण रत्नावली एवम वायु पुराण म वर्णित कोशल की स्थिति स ठीक ठीक मिलता है। प्रथम पुस्तक म कोशल राज्य विन्ध्याचल पवतो द्वारा घिरा हुआ है जबकि द्वितीय ग्रन्थ म कहा गया है कि राम के पुत्र कुश ने विन्ध्याचल पवत की खड़ी दीवारों पर बना कुशस्थला अथवा कुशावती नामक राजधानी स कोशल पर राज्य किया था। इन सभी समान तथ्यो से

इस प्राचीन कोशल का बरार अथवा गोण्डवाना के आधुनिक जिले के अनुरूप स्वीकार करने म सफलता मिलती है। राजधानी की स्थिति को निर्धारित करना अधिक कठिन है क्योंकि ह्वेनसांग ने इसके नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु चूँकि इस नगर की परिधि ४० ली अथवा ७ मील थी अत सम्भव है कि वतमान समय का कोई विशाल नगर इसका प्रतिनिधित्व करे। यह नगर इस प्रकार है—चान्दा, नागपुर, अमरावती तथा एलिचपुर।

चान्दा दीवारों स घिरा एक नगर है जिसकी परिधि ६ मील है। यहाँ एक दुग भी है। यह वेन गङ्गा तथा वरदा नदियों के सङ्गम स्थान म नीचे अर्थात गोदावरी नदी पर राजमहेन्द्री से २६० मील उत्तर पश्चिम में तथा कृष्णा नदी पर धरनी कोट से २८० मील की दूरी पर अवस्थित है। अत इसकी स्थिति ह्वेनसांग द्वारा कथित दिकांश एवम् दूरी से ठीक ठीक मिलती है।

अमरावती राजमहेन्द्री से समान दूरी पर है तथा एलिचपुर यहाँ से भी ३० मील उत्तर म है। अतः चान्दा ही एक मात्र ऐसा स्थान है जो सातवीं शताब्दी में कोशल की राजधानी क अनुरूप होने का ठोस दावा कर सकता है। धनाकटा तक १६०० ली अथवा ६०० जमा १००० ली की पश्चातवर्ती दूरी से राज महेन्द्री से १८०० अथवा १६०० ली की कथित दूरी की पुष्टि होती है। यह स्थान निश्चित ही कृष्णा नदी पर अवस्थित धरनी कोट अथवा अमरावती के समान था। अब धरनीकोट स चान्दा की माग दूरी सीधे माग स २८० मील अथवा १६८० ली है परन्तु ह्वेनसांग सर्व प्रथम ९०० ली तक दक्षिण पश्चिम की ओर गया था और तत्पश्चात वह १००० ली तक दक्षिण की ओर गया था अत दोनों स्थानों के मध्य सीधा माग १७०० ली स अधिक नहीं रहा होगा।

राज्य के ३०० ली अथवा ५० मील दक्षिण पश्चिम मे पो लो मो लो की ली नामक एक उन्नत पवत था जिसका अर्थ "काला शिखर" बताया जाता है। एम० जुलीं ने इसे वतमान समय का वरमूल गिरी कहा है परन्तु मैं प्राप्त पुस्तकों अथवा मानचित्रों म इस नाम क किसी भी स्थान का पता करने म असमर्थ रहा हूँ। इस पवत को स्पर अथवा घाटी रहित एक अत्यधिक उन्नत पवत कहा गया है जिससे यह पता चलता है कि यह पत्थरों का समूह था। राजा सो तो पो हो न्पथा मानवाहन म पवन को काट-काट कर पाँच मंजला भवन बनवाया था जहाँ अनेक दजन अर्थात अनेक मील लम्बी एक खोखली सड़क द्वारा पहुँचा जा सकता था। ह्वेनसांग ने इस स्थान की यात्रा नहीं की थी। परन्तु चूँकि यह कहा गया है कि चट्टान को काट काट कर नागार्जुन नामक पवित्र बौद्ध मुनी का निवासस्थान बनवाया गया था और यदि राजधानी से इसकी दूरी केवल ५० मील थी तो तीर्थ यात्री निश्चित ही इस स्थान पर जाता। इसी प्रकार यदि हम दक्षिण 'पश्चिमो दिशा' को सही स्वीकार करें तो

आंध्र की ओर अपने पश्चातवर्ती यात्रा के समय तीर्थ यात्री इस स्थान के समीप से गुजरा होगा क्योंकि आंध्र की ओर यात्रा उसी दिशा अर्थात दक्षिण दिशा में की गई थी। अतः मेरा निष्कर्ष है कि जिसके माध्यम से तीर्थ यात्री ने इस चट्टान की स्थिति की ओर संकेत किया है सम्भवतः राज्य की सीमाओं से सम्बंधित था और परिणाम स्वरूप इस स्थान को राज्य की पश्चिमी सीमाओं से ३०० ली अथवा ५० मील की दूरी पर देखा जाना चाहिये। यह स्थिति एलोरा के समीप देवगिरी के महान चट्टानी दुर्ग की स्थिति से भली भांति मिलती है और पोलोमोलोकीशी अथवा भ्रमूल गिरी नाम को वस्तुतः अथवा एलोरा का मूल स्वरूप समझा जा सकता है। इस विवरण के अनेक अंश उदाहरणार्थ चट्टान को काट कर बनाये गये लम्बे गलियारे एवम् चट्टान के शिखर से गिरते हुए पानी का झरना—देवगिरी के स्थान पर एलोरा की विशाल बौद्ध संस्थाओं के विवरण से मिलते हैं। परन्तु चूंकि ह्वेनसांग इस स्थान पर नहीं गया था अतः उसने अपने विवरण विभिन्न यात्रियों के विभिन्न विवरणों से लिया होगा जिनमें एलोरा तथा देवगिरी के साथ मिले हुए स्थानों को एक ही स्थान समझ लिया गया होगा।

फाहियान ने भी पांचवीं शताब्दी में चट्टान को काट काट कर बनाये गये उन्हीं निवास स्थानों का उल्लेख किया है। उसने इस स्थान को पो-लो यू अथवा "कपोत" कहा है और इसे तचसिन अर्थात दक्षिण अथवा दक्षिणी भारत अथवा आधुनिक दक्कन कहा है। उसने यह सूचना बनारस के स्थान पर प्राप्त की थी और चूंकि दूरी में वृद्धि से आश्चर्य जनक बातें अपना महत्व स्थाई रखती हैं अतः उसका विवरण भी ह्वेनसांग के विवरण की भांति विचित्र है। ठोस चट्टान को काट काट कर बनाये गये मठ को पांच मंजला कहा गया है जिसकी प्रत्येक मंजल विभिन्न पशुओं के आकार की बनाई गई है और पांचवी अथवा अन्तिम मंजल कपोत के आकार की बनाई गई है जिसके कारण मठ को कपोत मठ कहा गया है। अतः चीनी अक्षर पो लो यू संस्कृत के पारावत अर्थात कपोत के लिये लिये गये होंगे। ऊपरी मंजल से निकला झरना मठ के सभी कमरों अथवा मंजिलों से होते हुए मुख्य द्वार से बाहर गिरता है। इस विवरण में भी हम पांच मंजिले शिखर से गिरता झरना, स्थान के नाम की समानता आदि सभी बातें मिलती हैं जो ह्वेनसांग के विवरण से समीपता रखती हैं। दोनों में विभिन्नता का मुख्य बिंदु नाम का दिये गये अर्थ में निहित है। ह्वेनसांग के अनुसार पो लो मो लो की का अर्थ 'काला शिखर' है जबकि फाहियान के अनुसार पा-लू यू का अर्थ 'कपोत' है। परन्तु इन दोनों तीर्थ यात्रियों के मध्यवर्ती समय में इसका तीसरा उल्लेख भी मिलता है जिसमें इस नाम के भिन्न अर्थ बताये गये हैं। ५०३ ई० में दक्षिण भारत के राजा ने अपना दूत चीन भेजा था जिसमें इस बात का पता लगाया गया था कि उसके देश में "ऊँचाई पर अवस्थित" पा लाई नामक

एक सुदृढ़ नगर है। यहाँ से ३०० ली अथवा ५० मील पूर्व की ओर एक अन्य सुदृढ़ नगर था जिसे चीनी अनुवाद में फ्यू च्यू विंग कहा गया है। यह नगर एक प्रसिद्ध संत का जन्म स्थान था जिसका नाम चू मान हुँ अथवा "अन्न के दाना की माला" बताया गया है। अब धलामाला 'अन्न के दाना की माला' का नाम है और चूंकि यह नाम ह्वेनसांग के पो लो मो ला के प्रत्येक अक्षर का प्रतिबिम्बित करता है अतः मेरा अनुमान है कि यह दोनों एक ही स्थान अथवा व्यक्ति के नाम होंगे। मैं ह्वेनसांग द्वारा नाम को दिये गये अर्थ की उत्तर भारत की भाषाओं में ढूंढ़ने में असमर्थ हूँ और मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि तीय भाषा में सम्भवतः किसी दक्षिणी अथवा द्रविड़ भाषा का अनुवाद किया होगा। कनड़ भाषा में मलि' पर्वत का नाम है और चूंकि पारा एवम् पारस दाना का रज्जु कहा है अतः यह सम्भव है कि यह चीनी नाम से सम्बन्धित हो। अतः पारा का अर्थ काला और पारा माल का अर्थ काली पहाड़ी लगाया गया होगा। दक्षिण भारत के सर्वाधिक विषैले सर्पों में एक सर्प जिसका रज्ज गहरा नीला अथवा काला होता है—पार गुडु कहलाता है। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग का अनुवाद दक्षिण की किसी भाषा से लिया गया होगा। चीनी अनुवाद में निहित भ्रम चीनी अक्षरों की दुर्बलता के कारण है जिसके कारण सम्कृत शब्दों को चीनी भाषा में अनुवाद करना कठिन है। इस प्रकार पा-ला-धा-ली को फाहियान के अनुसार पारावत अर्थात 'कपोत' पढ़ा जा सकता है अथवा सि यू-की के अनुसार परावत अर्थात 'कपोत' पढ़ा जा सकता है जबकि यह सम्भव है कि इसका वास्तविक स्वरूप पर्वत रहा हो क्योंकि इस बात का विशेष उल्लेख किया गया है कि मठ का निर्माण चट्टानों को काट काट कर किया गया था।

राजधानी को पा-लाई कहा गया है। अब धान्दर के दुर्ग को दान किला अथवा उन्नत दुर्ग भी कहा जाता है जो यद्यपि मुसलमानों द्वारा दिया गया फारसी नाम है तथापि इसे सम्भवतः इसके मूल नाम धा काद के आधार पर रखा गया था।

समस्त चीनी पुस्तकों में चट्टान को काट-काट कर बनाये गये मठ को एक पवित्र संयासी से सम्बन्धित किया गया है परन्तु प्रत्येक विवरण में इस सन्यासी का नाम भिन्न भिन्न दिया गया है। फाहियान के अनुसार यह काश्यप नामक पूर्ववर्ती बुद्ध का मठ था। सी यू की में इसे धरमाला मुना का जन्म स्थान कहा गया है जबकि ह्वेनसांग का कथन है कि राजा सातवाहन ने नागार्जुन मुनी के लिए इस मठ को बनवाया था। फाहियान तथा ह्वेनसांग के विचित्र विवरणों से मैं यह सोचने लगा हूँ कि उनका विवरण सम्भवतः देव गिरी तथा एलोरा की महान कन्दराओं से सम्बन्धित रहा होगा परन्तु यदि ह्वेनसांग तथा सी-यू-की द्वारा बताई गई दूरी सही है तो चट्टान को काट-काट कर बनाये गये मठ को धान्दा से प्रायः ५० मील पश्चिम अथवा दक्षिण पश्चिम में देखा जाना चाहिये। अब, मानचित्र में इसी स्थिति पर अथवा धान्दा से

४५ मील पश्चिम में पाण्डु कुरी अथवा 'पाण्डु गुह' नामक एक स्थान दिखाया गया है जिससे इस स्थान की असन्दिग्ध प्राचीनता का पता चलता है। सम्भव है कि यह चट्टानों में बनाई गई किन्हीं कन्दराओं से सम्बन्धित हो क्योंकि धमनार तथा कोलवी के स्थान पर बनी चट्टानी कन्दरायें पाण्डवों के नाम पर भीम कन्दरा, अर्जुन कन्दरा आदि नामों से जानी जाती हैं। पूर्ण सूचना के अभाव में मैं केवल इस स्थान के विचित्र एवम् अर्थयुक्त नाम की ओर ध्यान आकर्षित कराना चाहता हूँ। एलिचपुर तथा अमरावती से ५० मील दक्षिण पश्चिम एवम् अजन्ता से ८० मील पूर्व में पतूर नामक स्थान पर अनेक बौद्ध कन्दरायें हैं। चूँकि इन कन्दराओं का कभी उल्लेख नहीं किया गया है अतः यह सम्भव है कि भविष्य में इसे फाहियान तथा ह्वेनसांग द्वारा कथित चट्टानों को काट-काट कर बनाये गये मठ के अनुरूप स्वीकार कर लिया जाये।

नागार्जुन के सम्बन्ध में राजा सात वाहन अथवा सातवाहन का उल्लेख विशेष रूप से रुचिपूर्ण है क्योंकि इससे पता चलता है कि पतामाल की बौद्ध कन्दरायें ईसवी काल की प्रथम शताब्दी में बनवाई गई होंगी। सातवाहन एक पारिवारिक नाम था और नासिक की एक कन्दरा के शिलालेख में इसी रूप में इसका उल्लेख किया गया है। परन्तु सातवाहन भी प्रसिद्ध शाली वाहन का सर्व ज्ञात नाम है जिसने ७८ ई० में शक सम्वत की स्थापना की थी। (१) इस प्रकार हम इस बात के दो प्रमाण प्राप्त हैं कि पतामाल की बौद्ध कन्दरायें प्रथम शताब्दी में बनवाई गई थी। आगे चलकर हम सातवाहन एवम् सातकरनी की अनुरूपता पर विचार करेंगे। पश्चिमी कन्दराओं के शिलालेखों से पता चलता है कि कोशल निश्चित ही गोतमीपुत्र सातकरनी के विशाल दक्षिणी राज्य का भाग था और यदि यह राजा प्रथम शताब्दी में हुआ था—जैसा कि यह प्रतीत होता है (२)—तो सातवाहन अथवा शाली वाहन से उसकी अनुरूपता असंदिग्ध होगी। यहाँ दक्षिण भारत के इतिहास के इस रुचिपूर्ण बिन्दु की सम्भावना पर विचार करना पर्याप्त होगा।

---

(१) साता अथवा साती, यक्ष का नाम था और जब उसने शेर का रूप धारण किया तो बालक रामकुमार ने उस शेर की सवारी की थी और इस प्रकार वह सातावाहन अथवा शाली वाहन कहलाया था।

(२) कन्हारी नासिक तथा कार्ली के अधिकांश शिला लेख एक ही समय से सम्बन्धित हैं और चूंकि इनमें अधिकांश शिला लेखों में गोतमीपुत्र सतकरनी पुष्यामित्र तथा यदया श्री के उपहारों का उल्लेख मिलता है अतः सभी को आन्ध्र की सार्वभौमिकता के समय से सम्बन्धित किया जा सकता है। परन्तु एक शिला लेख की तिथि शकादित्य अथवा शक समय का ३० वा वर्ष अर्थात १०८ ई० थी। अतः आन्ध्र वासी उस समय राज्य कर रहे होंगे।

ह्वेनसांग ने कोशल के राज्य की परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील बताया है। इसकी सीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु तीर्थ यात्री की यात्राओं के विवरण से हम जानते हैं कि यह राज्य उत्तर में उज्जैन, पश्चिमो में महाराष्ट्र, पूर्व में उड़ीसा तथा दक्षिण में आन्ध्र एवम् कलिंग से घिरा हुआ था। राज्य की सीमाओं का अनुमानतः ताप्ती नदी पर बुरहानपुर तथा गोदावरी नदी पर नान्देड से लेकर चत्तिसगढ में रत्नपुर तक तथा महानदी के उद्गम स्थान के समीप नवगढ़ तक विस्तृत बताया जा सकता है। इन सीमाओं के भीतर कोशल राज्य की सीमाओं की परिधि १००० मील से अधिक है।

आन्ध्र

कोशल से ह्वेनसांग ६०० ली अथवा १५० मील दक्षिण में अन तो लो अथवा आन्ध्र अथवा आधुनिक तेलिंगाना तक गया। इसकी राजधानी को पिंग-की-लो कहा जाता था जिसे एम० जुलीन ने विंगलीला कहा है परन्तु आज तक इसकी पहचान नहीं की जा सकी है। हम जानते हैं कि वारंगल अथवा वरनकोल कई शताब्दियों बाद तक तेलिंगाना की राजधानी थी परन्तु इसकी स्थिति तीर्थ यात्री द्वारा वर्णित स्थिति से नहीं मिलती क्योंकि यह गङ्गा नदी पर चान्दा से अधिक दूर है जबकि कृष्णा नदी पर धरनी कोट के अधिक समीप है। और चीनी अक्षर वारङ्गल नाम का प्रतिनिधित्व नहीं करते यद्यपि उन्हें वनकोल का प्रतिनिधि समझा जा सकता है। इन्हें भीमगल पढ़ा जा सकता है जो तेलिंगाना के एक प्राचीन नगर का नाम है। इसका उल्लेख अबुल फजल ने किया था। परन्तु भीम गल चान्दपुर से १५० मील दक्षिण अथवा दक्षिण पश्चिम में होने के स्थान पर केवल १२० मील दक्षिण पश्चिम में है और धरनी कोट से १६७ मील की अपेक्षा यह स्थान २०० मील उत्तर में है। और यदि दोनों की स्थिति में अधिक समानता होती तो मैं चीनी अक्षरों को वारङ्गल के अशुद्ध अनुवाद के रूप में स्वीकार कर सकता था परन्तु वारङ्गल तथा चान्दा की मध्यवर्ती वास्तविक दूरी १६० मील तथा वारङ्गल से धरनी कोट की दूरी केवल १२० मील है। अतः ह्वेनसांग के विवरणानुसार यह अंतिम स्थान के अधिक समीप तथा प्रथम स्थान से अत्यधिक दूर है। यदि हम बरार में अमरावती को कोशल की राजधानी स्वीकार कर सकें तो भीमगल असंदिग्ध रूप से आन्ध्र की राजधानी का प्रतिनिधित्व करेगा क्योंकि यह स्थान चान्दा अथवा धरनी कोट के मध्य में अवस्थित है। परन्तु दोनों दूरियाँ ह्वेनसांग के ६०० ली तथा १००० ली अथवा १५० मील तथा १६७ मील के आंकड़ों की तुलना में इतनी अधिक हैं कि दोनों में सामञ्जस्य नहीं हो सकता है। भीम गल तथा वारङ्गल के मध्य एल गन्देल की स्थिति तीर्थ यात्री के विवरण भली प्रकार से मिलती है क्योंकि यह चान्दा से प्रायः १३० मील तथा धरनी कोट से १७०

मील की दूरी पर है। अतः मैं एलगंदेल का ईसा काल की सातवीं शताब्दी में आन्ध्र की राजधानी के सम्भावित प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

आन्ध्र की राजधानी की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील बताई गई है। किसी भी दिशा में इसकी सीमा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि गोदावरी नदी जो पूर्व तथा उत्तर में आन्ध्र की वर्तमान सीमा है प्राचीन समय में भी इसकी उत्तरी एवम् पूर्वी सीमा रही होगी। इसी प्रकार उत्तर की ओर यह तेलगु भाषा की सीमा भी है। पश्चिम में जहाँ यह महाराष्ट्र के विशाल राज्य से मिलता है इसकी सीमायें गोदावरी नदी की मंजीरा शाखा से आगे नहीं गई होंगी। अतः इन सीमाओं को दक्षिण पूर्व में मंजीरा तथा गोदावरी से भद्राचलम तक २५० मील तथा दक्षिण में हैदराबाद तक १०० मील बताया जा सकता है जबकि हैदराबाद तथा भद्रा चलम की मध्यवर्ती दूरी १७५ मील है। इन सीमाओं में राज्य की परिधि ५२५ मील अथवा ह्वेनसाग द्वारा कथित परिधि के समान बताया जा सकता है।

प्लिनी ने अण्डारोय नाम का एक शक्ति शाली जाति के रूप में आन्ध्र निवासियों का उल्लेख किया है जिनके अधीन ४० सुदृढ़ नगर तथा एक सौ हजार पद सैनिकों, दो हजार अश्वारोहियों एवम् एक हजार हाथियों की एक विशाल सेना थी। पेटिन जेरियन सूचियों में अण्ड्राई इण्डी नाम के अन्तर्गत इनका उल्लेख किया गया है। विल्सन के अनुसार इन पेटिनजरियन सूचियों में आन्ध्र का "गङ्गा नदी के तट पर" दिखाया गया है परन्तु इन सूचियों के विस्तृत मानचित्रों में अनेक जातियों एवम् राष्ट्रों को उनके वास्तविक स्थान से अधिक दूर दिखाया गया है। आस पास के नामों की तुलना करने से एक सरल एवम् सुरक्षित निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार अण्ड्राय इण्डी को दमरास के समीप दिखाया गया है जिसे मैं साधारण परिवर्तन के बाद प्लिनी के निमीरिक के अनुरूप स्वीकार कर सकता हूँ क्योंकि इन सूचियों को बनाने वाले यूनानी अधिकारी रहे होंगे। परन्तु लिमारिक के निवासी दक्षिणी पठार के दक्षिण पश्चिमी तट पर बसे हुए थे अतः उनके पड़ोसी अण्ड्राय इण्डी गङ्गा नदी के पौराणिक आन्ध्रवासियों की अपेक्षा तलिंगाना के आन्ध्रवासी रहे होंगे। प्लिनी ने आन्ध्रों के सम्बन्ध में अपनी सूचना को या तो अपने समय के सिकन्द्री व्यापारियों से प्राप्त किया होगा अथवा पालीबोथ्रा के दरबार में सिल्यूकस निकेटार तथा टालमी फिलाडेल्फस के राजदूत मैगस्थनीज तथा डायोनीसियस से प्राप्त किया होगा। परन्तु चाहे अण्ड्राय प्लिनी के समकालीन थे अथवा नहीं इतना निश्चित है कि प्लिनी द्वारा कथित काल में आन्ध्रवासी अथवा अण्ड्राय मगध राज्य पर राज्य नहीं करते थे क्योंकि आगे चल कर उसने स्वयं लिखा है कि पालीबोथरा के प्रासी जाति भारत की सर्वाधिक शक्तिशाली जाति थी जिनके पास ६००,००० पद सैनिकों ३०,००

अश्वारोहियो तथा ९००० हाथियो को अथवा अड्डाय इन्डी की शक्ति से ६ गुण अधिक सना था।

चीनी तीर्थ यात्री ने उल्लेख किया है कि यद्यपि आध्रवासियो की भाषा मध्य भारत के निवासियो की भाषा से भिन्न थी तथापि अधिकाश भाग मे दोनो की लिपि प्राय समान थी। इस कथन की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये क्योकि इससे पता चलता है कि उत्तर भारत से आई प्राचीन देवनागरी लिपि उस समय भी प्रचलित थी और दसवी शताब्दी के लेखो मे प्राप्त होने वाले तेलगु भाषा के टेढे मेढे अक्षर उस समय तक दक्षिण मे प्रचलित नही हुये थे।

दोनककोट्टा

आध्र छोडने के पश्चात् ह्वेनसाग १००० ली अथवा १६७ मील तक वनो एव मरुस्थल को पार करता हुआ तो ना की-त्सी किया तक गया जिसे एम० जुलीन ने धनकचेक पढा है। परन्तु पञ्जाब म ताकी अथवा त्सा किया के अपने विवरण में मैं बता चुका हूँ कि चीनी अक्षर त्सी भारतीय दन्त स्वर त अथवा ट का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे उपर्युक्त नाम धनकटक बन जायेगा। मैं कन्हारी तथा कार्लों की कन्दराओ के शिला लखो म धनककट के नाम का उल्लेख कर चुका हूँ जिसे मैंने चीनी नाम के अतिम दो अक्षरों को अदला बदली से धनककट पढने का प्रस्ताव किया है। (१) धनककट का नाम कम से कम चार कन्दराओ के शिला लेखो में पाया गया है और प्रत्येक लेख म डा० स्टीवेन्सन ने इसे एक व्यक्ति के नाम के रूप मे पढा है जिसे उन्होने क्षेनोक्रेटीज नामक यूनानी कहा है। परन्तु मेरा विश्वास है कि इन शिला लेखो म दिया गया नाम एक नगर अथवा देश का नाम है जो शिला लेख लिखने वालो का नगर अथवा देश था। चूकि यह शिल्प लेख सक्षिप्त है अतः मैं डा० स्टीवेन्सन के प्रति न्याय भाव म उन्हे यहाँ उधृत करूगा।

डा० स्टीवेन्सन ने जिस लेख के आधार पर लेखको की यूनानी राष्ट्रीयता का अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है—

धनुकाकधा यवनासा सिहाध्यानम यथा दानम। अर्थात "यूनानी क्षेनोक्रेटीज द्वारा सिंह सहित स्तम्भ का दान।"

मेरा अनुवाद किसी सीमा तक भिन्न है—

---

(१) सन् १८६४ ई० में भारत सरकार को दी गई पुरातत्वसम्बन्धी अपनी रिपोर्ट म मैंने अपनी प्रस्तावित शुद्धी को प्रकाशित किया था जो वस्तुत कई वर्ष पूर्व प्रस्तावित की गई थी। डा० भाऊदाजी ने भी चीनी नाम को लेखो के धनककट के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु उन्होने चीनी अक्षर त्सी के शुद्ध पाठ का उल्लेख नही किया है।

"धनुकक्ट के यवन द्वारा सिंहो याने स्तम्भ का दान" कहा है परन्तु निम्नलिखित लेख से स्पष्ट रूप से इस बात का पता चलता है कि धनुकक्ट स्थान का नाम था और परिणाम स्वरूप यवन किसी मनुष्य का नाम रहा होगा।

धेनुककट ऊषभदता पुतसा

मित देवा नकसा यमा दानम

डा० स्टीवेन्सन ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

"धेनुकक्ट (उपनाम) ऋषभदत्त के पुत्र राजा मित्र देव द्वारा स्तम्भ दान"

इस अनुवाद को मममाने हुए उन्होंने धनुकक्ट को यूनानी स्वीकार करने का प्रस्ताव किया है जिसके यूनानी नाम के साथ साथ एक हिंदू नाम भी था जिसे उसने बौद्ध धर्म अथवा हिन्दू धर्म की किसी शाखा को ग्रहण करते समय अपने लिया था क्योंकि धर्म परिवर्तन के समय नाम भी परिवर्तित कर लिये जाते थे।" परन्तु धनुकक्ट को एक स्थान का नाम स्वीकार करने से इस लेख को किसी अनुमान की ह० धर्मी किये बिना सरलता पूर्वक पढ़ा जा सकता है। मेरा अनुवाद इस प्रकार है —

"धनुकक्ट के ऋषभ दत्त के पुत्र राजा मित्र देव द्वारा स्तम्भ दान।"

जहाँ तक दानकर्ता के नाम का सम्बन्ध है कार्ले का तीसरे शिला लेख में दुर्भाग्यवश त्रुटि है और अंतिम भाग दुर्बोध है। परन्तु प्रारम्भिक लेख को डा० स्टीवेन्सन ने इस प्रकार पढ़ा है —

धनुक्कटा (सु) भविकामा इत्यादि।

जिसके अनुवाद उसने इस प्रकार किया है, "धनुकक्ट द्वारा एक सौम्य निवास स्थान का दान,' इत्यादि। यहाँ जिस शब्द का अनुवाद "सौम्य निवास स्थान' दिया गया है मेरा विचार है कि उसे भविवेक पढ़ा जा सकता है क्योंकि ह्वेनसांग ने पो पी पो किया नामक धनुकक्ट के एक प्रसिद्ध सन्यासी का उल्लेख किया है। यह नाम वस्तुत पाली का भो विवेक तथा संस्कृत का भावविवेक है।

कन्हारी में प्राप्त घोष लेख की केवल ६ पंक्तियाँ हैं और इसे पश्चिमी कन्दराओं में प्राप्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेख समझा जाता है क्योंकि इसकी तिथि सब प्रसिद्ध शालिवाहन काल की तिथि है। डा० स्टीवेन्सन ने इसके प्रारम्भिक भाग को इस प्रकार पढ़ा है —

उपासका धेनुककाटीनासा कल्प (नक) मनास्का, इत्यादि। और उन्होंने 'धेनुक्कट को शिल्पी कहा है। परन्तु श्री वेस्ट द्वारा प्रकाशित प्रथम पंक्ति का वास्तविक पाठ इस प्रकार है —

उपासकासा धनुककटेयासा कुलापियासा

जिसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है, धनुकक्ट के एक उपासिक, कुलापिया का (दान)

अंतिम पंक्ति में दी गई, शिला लेख की लिपि का डा० स्टीवेंसन ने त्रुटिपूर्ण अनुवाद किया है जो इस प्रकार है —

दतवा सलासाका दयालन ।

और पूर्ववर्ती विवारिक शब्द को लेकर उन्होंने इसका अनुवाद इस प्रकार है—

"यहाँ बौद्ध भिक्षुओं के लिये एक बड़ा कमरा बनवाया गया है। यहाँ बुद्ध के दाँत की कन्दरा (है)।"

मैं देखता हूँ कि अपने अनुवाद में डा० स्टीवेंसन ने दत्य एवम् लेन के मध्य 'क' अक्षर छोड़ दिया है। लें ब्रेट्र तथा श्री वेस्ट द्वारा बनाई गई दोनों प्रतिलिपियों में डा० स्टीवेंसन ने क शब्द को छोड़ दिया है। इस सम्बन्ध में मैं लेख के अंतिम शब्दों को इस प्रकार पढ़ूँगा।

दत वासे ३० शकादित्य काल

जिसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है :—

'शकादित्य के काल के ३० वें वर्ष में दिया गया।'

अर्थात ७८+३०=१०८ ई० में। सकादित्य सालिवाहन की एक सामान्य उपाधि है और शक सम्वत—जिसकी स्थापना उसने करवाई थी—को प्राचीन लेखों में सक भूप काल अथवा सक नृप काल कहा जाता है। यह दोनों नाम सकादित्य काल के पर्यायवाची शब्द हैं। अतः धनुककट में ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भिक काल में बौद्ध सस्थान रहे होंगे और यदि कार्ले लेख में मेरे प्रस्तावित भावविवेक के नाम को स्वीकार कर लिया जाये तो बौद्ध धर्म इसवी काल की प्रथम शताब्दी में भी उतना ही प्रचलित था क्योंकि भावविवेक नागार्जुन का एक शिष्य था।

धनकटक की स्थिति को कृष्णा नदी पर धरनीकोट अथवा अमरावती के स्थान पर निश्चित करते समय मैंने न केवल आन्ध्र तथा कोशल से इनके निकास एवम् दूरी का ध्यान रखा है परन्तु अन्य अनेक समान कारणों पर विचार भी किया जिन्हें मैं अब विस्तार पूर्वक लिखूंगा।

श्री लङ्का एवम् श्याम की बौद्ध प्रथाओं में हम गङ्गा नदी के मुहाने तथा श्री लङ्का के द्वीप के मध्यवर्ती प्रदेश का विवरण मिलता है जहाँ नागा लोग बसे हुए थे। इन नागाओं के पास बुद्ध के अवशेषों में एक अथवा दो दाँत थे जिन्हें "रत्न रंजित बालू" के समीप एक सुन्दर तथा बहुमूल्यवान स्तूप में प्रतिष्ठित किया गया था। मूलतः ये अवशेष का यह भाग कपिलवस्तु के समीप रामग्राम में सम्बन्धित था परन्तु बुद्ध के अवशेषों के मूल आठ भागों में एक भाग पवित्र गङ्गा नदी के मार्ग से समुद्र तक चला गया जहाँ नागाओं ने इसे प्राप्त कर लिया और वह इसे मजेरिका नामक अपने देश में ले गये। अब, यह देश कलिंग के दक्षिण में था क्योंकि

बुद्ध के दाँत सहित दन्तपुर से श्री लङ्का जाते समय राजकुमार तथा राजकुमारी हेम माला का विमान "रत्न रजित बालू" के समीप तट पर गिर गया था। रत्न रजित बालू की स्थिति को किस्तना नदी पर घरनीकोट में अथवा इसके समीप निर्धारित करने में इस नाम से सहायता मिलती है क्योंकि देश के उस भाग की हीरा की खाने घरनीकोट के उत्तर में पतियाल के छोटे जिले तक सीमित है। दन्तपुर से बमर यात्रा ३१० ई० में हुई थी और स्याम देश के विवरणानुसार अवशेषों के दोना द्रोण नागा देश में उस समय तक सुरक्षित थे परन्तु तीन वर्षोंपरान्त श्री लङ्का के राजा ने इन अवशेषों को प्राप्त करने के उद्देश्य से एक पुजारी को मजेरिका भेजा और नागाओं के प्रतिरोध के होते हुए भी इन अवशेषों को आश्चर्य जनक ढङ्ग से प्राप्त कर लिया गया। तत्पश्चात नागा राजा ने श्री लङ्का से अवशेषों का कुछ भाग वापस करने की प्रार्थना की ' जिसे स्वीकार कर लिया गया।"

श्री लङ्का के विवरण में अनेक बातें भिन्न प्रकार से दी गई हैं परन्तु मुख्य भिन्नता तिथि के सम्बन्ध में है। महावंशों के अनुसार रामाग्राम में केवल एक द्रोण अवशेष थे जिन्हें नागाओं ने मजेरिका के स्थान पर प्रतिष्ठित किया था। तत्पश्चात्‌ १५७ ई० पूर्व में दत्तगामिनी के राज्य काल के पाँचवें वर्ष में श्री लङ्का ले जाया गया। इस राजा ने इन्हें रुआनवेली के स्थान पर महा स्तूप में रखा था।

महावंशों के लेखक ने श्री लङ्का के इस महान स्तूप की महिमा का प्रज्वलित विवरण दिया है परन्तु उसने स्वीकार किया है कि मजेरिका का चैत्य 'इतना सुन्दर बनाया गया था तथा उसे अनेक प्रकार से इतना सुसज्जित किया गया था कि श्री लङ्का की समस्त समृद्धि अन्तिम स्तूप के मूल्य से कम होगी। दक्षिण भारत के प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित प्राप्त सूचना के अनुसार यह विवरण केवल घरनीकोट के समीपस्थ स्तूप से सम्बन्धित हो सकता है जो कम उभड़ी हुई कला पूर्ण खुदाई से अलंकृत बना हुआ था।

तीर्थ यात्रियों के विवरण एवम् महावंशों के सामान्य सहमति से हमें पता चलता है कि रामाग्राम के बौद्ध अवशेष ई० पूर्व की तीसरी शताब्दी के मध्य में भी अपने मूल स्थान में प्रतिष्ठित थे। उस समय अशोक बुद्ध की मृत्योपरान्त विभाजित सभी अवशेषों पर स्तूप बनवा रहा था। अवशेषों को यदि १५७ ई० पूर्व में श्री लङ्का ले जाया गया था जैसा कि महावंशों में लिखा गया है—तो हमें रामाग्राम के स्थान पर मूल स्तूप के विनाश, एवम् मजेरिका के स्थान पर भारत के सर्वाधिक देदीप्यमान स्तूप में अवशेषों के प्रतिष्ठापन तथा श्री लङ्का ले जाये जाने के पश्चातवर्ती कार्य को ८० वर्षों से कुछ अधिक काल तक सीमित करना होगा। परन्तु श्री फर्ग्युसन के अत्यधिक उचित विचारानुसार "बनावट को देखते हुए घरनीकोट के निर्माण में पूरे ५० वर्ष व्यतीत हुए होंगे।" अतः अशोक के समय के पश्चात अवशेषों के रामाग्राम में स्थित रहने एवम् मजेरिका के नागाओं के पास सुरक्षित रहने का समय केवल ३० वर्ष रहा होगा। इन्हीं कारणों से मैं स्याम देश के ग्रन्थों का अनुकरण करना चाहता हूँ और तदनुसार मैं घरनीकोट से श्री लङ्का में अवशेषों के द्रोण भाग को ले जाये जाने की तिथि को ११३ ई० निर्धारित करूंगा।

फिर भी इस बात का ध्यान रहे कि उत्तरी भारत की जनता इस बात से अनभिज्ञ थी कि रामाग्राम में प्रतिष्ठित अवशेष नागाओं द्वारा मजेरिका ले आये गये थे क्योंकि फाहियान तथा ह्वेनसांग—जिन्होंने क्रमशः पाँचवी एवम् सातवीं शताब्दी में इस स्थान की वस्तुतः यात्रा की था—ने स्तूपों के स्थिर रहने का उल्लेख किया है। फिर भी तीर्थ यात्रियों के इस विवरण से आश्चर्य होता है कि उनके समय में भी यह विश्वास किया जाता था कि स्तूप में समीप सरोवर के नागा अवशेषों की रक्षा करते थे। मूल बौद्ध कथा के अनुसार इन्हीं नागाओं ने सम्राट अशोक द्वारा रामाग्राम से अवशेषों को हटाये जाने के प्रयत्न को निष्फल बताया था। समय के साथ जब रामाग्राम निर्जन हो गया—जैसा कि तीर्थ यात्रियों ने इसे देखा था—इस कथा ने भी आंशिक परिवर्तन स्वरूप धारण कर लिया कि सम्राट अशोक से सुरक्षित रखने के उद्देश्य से नागा स्वयं इन अवशेषों को उठा कर ले गये थे। दक्षिण भारत के नागाओं ने कथा के उपयुक्त स्वरूप को स्वीकार कर लिया होगा और इस प्रकार अवशेषों को उनके देश मजेरिका में ले जाये जाने की कथा को सरल जनता ने स्वीकार कर लिया होगा।

रामाग्राम से हटाये जाने वाले अवशेषों को श्री लङ्का के ग्रन्थों में एक द्रोण कहा गया है जबकि स्याम देश की पुस्तकों में इन्हें दो द्रोण कहा गया है। अतः मेरा अनुमान है कि उन्हें सामान्य रूप से द्रोण धातु अथवा अवशेषों का द्रोण भाग कहा जाता था। पाली में इन दोनों कहा जायेगा जो सम्भवतः ह्वेनसांग के दो नागों का

होगा जिसमें कोट शब्द जोड़ दिये जाने से दानककोट बन जायेगा जो चीनी तो ना की-किया से और साथ ही साथ शिला लेखों के धनककट के अनुरूप है। अब, मैं कन्हारी के शिला लेख से यह सिद्ध कर चुका हूँ कि धनकुकट का नाम १०८ ई० पुराना है परन्तु चूँकि सभी शिला लेखों में इस द के स्थान पर घ अक्षर से लिखा गया है अतः मेरा अनुमान है कि अवशेषों के द्रोण भाग की कथा उस तिथि की अपेक्षा नवीन है। हम जानते हैं कि बौद्ध धर्मावलम्बियों में स्थानीय नामों को परिवर्तन करने की सामान्य प्रथा थी जिससे उनके अर्थ बुद्ध से सम्बन्धित कथाओं के अनुरूप हो सकें। इस प्रकार तक्षशिला को तक्ष सिर बना लिया तथा अहि छत्र को बुद्ध के सिर का अहि छत्र बना लिया गया। अतः रामाग्राम के स्थान पर अवशेषों के द्रोण भाग पर नागाओं की सतर्कता को देखते हुए मैं इसे अत्यधिक सम्भावित समझता हूँ कि बौद्ध धर्मावलम्बियों ने रामाग्राम में अवशेषों के द्रोण भाग की कथा से सम्बन्धित करने के उद्देश्य से धनक को परिवर्तन कर दानक बना दिया होगा।

इस स्थान का वर्तमान नाम धरनीकोट है जिसे मैं ह्वेनसांग द्वारा सुरक्षित भावविवेक से सम्बन्धित पश्चात्वर्ती कथा से लिया गया समझता हूँ। इस पवित्र सन्यासी ने भावी बुद्ध अर्थात् मैत्रेय की इच्छा करते हुए तीन वर्षों तक उपवास किया और धारनी नामक धार्मिक कविता का निरंतर पाठ करता रहा। तपस्या के अन्त में अवलोकितेश्वर ने उसे दर्शन दिया तथा धनककट के निज देश में वापस जाने एवम् नगर के दक्षिण में एक कन्दरा के सम्मुख वज्रपाणी की पूजा में विश्वस्त भाव से धारनी का उच्चारण करने का आदेश दिया। तत्पश्चात् उसकी इच्छा पूर्ण होगी। तीन वर्षोपरान्त वज्रपाणी प्रगट हुए और उन्होंने उसे असुरों के राजमहल की ओर जाने वाली कन्दरा को खोलने की शक्ति प्रदान की जहाँ भावी बुद्ध निवास करते थे। तीन वर्षों तक इन गुप्त धारनियों का उच्चारण करने पर कन्दरा का मार्ग खुल गया एवम् जन समूह जो उनका अनुसरण करने में डरता था—से विदाई लेते हुए भावविवेक ने कन्दरा में प्रवेश किया। तुरन्त ही कन्दरा का मार्ग बन्द हो गया और तदोपरान्त उन्हें कोई नहीं देख सका। चूँकि सातवीं शताब्दी में धारनियों की यह विचित्र कथा धनककट का प्रचलित विश्वास था अतः स्वाभाविक है कि जन साधारण में यह स्थान धारनीकोट के नाम से प्रचलित रहा होगा।

ईसवी काल की प्रथम एवम् द्वितीय शताब्दियों के शिला लेखों में धनककट के उल्लेख से हम यह आशा करनी चाहिए कि टालमी के भूगोल में इस नाम के किसी चिह्न को ढूँढ पा सकते हैं। परन्तु इसके स्थान पर हम अम्भरता अथवा अबरनी नामक नगर का उल्लेख मिलता है जो मैसोलस अथवा गोदावरी के निचले प्रदेश में बसे हुए थे। इसके राजा बम्ब्रदानास के निवास स्थान एवम् राजधानी का भवन कहा जाता था। चूँकि नगर मैसोलस तथा टुयना नदियों के मध्य अवस्थित है अतः इसे

एल्लूर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसके समीप वेंगी नामक प्राचीन राजधानी के अवशेष प्राप्त किये जा सकते हैं। इन खण्डहरों को पेड्डा तथा चिन्ना वेंगी अर्थात बड़ा एवम् छोटा वेंगी कहा जाता है। वर्तमान समय में मछलीपटम के पूर्व-उत्तर-पूर्व में ५४ मील दूर एक छोटे तटीय नगर अथवा बन्दरगाह अर्थात बन्दर मलंग के नाम से इस बात की पुष्टि होती है कि मलंग इसी क्षेत्र में अवस्थित था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि धनककट केवल एक विशाल धार्मिक संस्थान का स्थान था जबकि वेंगी देश की राजनीतिक राजधानी थी।

जहाँ तक राजा के नाम का सम्बन्ध है मेरा विचार है कि यूनानी बस्सारो नागा को महावंशा के पाली मजेरि-का नागा के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। म एवम् ब के मध्य निरन्तर अदला-बदली को एवम् स के स्वेच्छिक परिशिष्ट को देखते हुए यूनानी बस्सरो को पाली मजेरी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है और इस प्रकार टालमी का मलंगा मजेरिका के नागाओं की राजधानी बन जायेगा।

धरनीकोट को ह्वेनसांग के धनककट तथा नागाओं के मजेरिका स्तूप के अनुरूप स्वीकार किये जाने के पक्ष में समस्त साक्षियों के गुण दोष के सामान्य निरूपण से पता चलता है कि सभी में अवशेषों में स्तूप की अत्यधिक सुन्दरता का विशेष उल्लेख किया गया है। मैं मजेरिका के नाग स्तूप के ज्वलन्त प्रताप से सम्बन्धित महावंशा के विवरण को उद्धृत कर चुका हूँ। इसकी अंतिम सीढ़ी समृद्धि में श्री लंका की समस्त समृद्धि से श्रेष्ठ थी। इसी प्रकार चीनी तीर्थ यात्री धनककट के धार्मिक भवनों के असमान्य सौन्दर्य को देख कर चकित रह गया था। ह्वेनसांग के अनुसार इन भवनों में बैक्ट्रिया के राजमहलों का समस्त सौंदर्य निहित था। इसके अतिरिक्त इसकी कला कृतियों की अत्यधिक सुन्दरता एवम् अपरिमित आभूषणों के सम्बन्ध में हमें अपनी आँखों पर भी विश्वास होना चाहिये क्योंकि इनमें अनेक कला कृतियाँ लन्दन के भारतीय आजयबघर में देखी जा सकती हैं। अन्त में, हमें जन साधारण की प्रथाओं का समर्थन प्राप्त है जिनके अनुसार किसी समय धरनाकोट भारत के इस भाग की राजधानी थी।

स्तूप की आयु को केवल अनुमानतः निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि लन्दन में प्राप्त कला कृतियों पर खुदे २० शिला लेखों में तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है न ही इनमें किसी ऐसे राजा अथवा व्यक्ति का उल्लेख है जिसका समय ज्ञात हो। परन्तु इन अक्षरों के वर्णमाला सम्बन्धी क्रम को देखने से पता चलता है कि यह शिला लेख उसी काल में खोदे गये थे जिस समय में कन्हारी, नासिक तथा कार्ले की प्रसिद्ध कन्दराओं के लेख खोदे गये थे जिनमें आन्ध्र परिवार के गोतमी पुत्र सतकर्णी, पुदुमयी,

तथा यमुना की भेंट का उल्लेख किया गया है। यह लेख भिल्सा स्तूप (१) के द्वार पर खोदे गये सातकर्णी लेख एवम् गिरनार की चट्टान पर रुद्र दाम के लेखों से भिन्न है। मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि सातकर्णी लेख शकादित्य काल के ३० वें वर्ष में अर्थात १०८ ई० में लिखा गया था और अब मैं यह जोड़ना चाहता हूँ कि रुद्र दाम का लेख ७२ वें वर्ष में लिखा गया था जो विक्रम संवत् के अनुसार १५ ई० तथा शक संवत के अनुसार १५० ई० में समाप्त है। यह दोनों तिथियाँ ईसवी काल की प्रथम दो शताब्दियों में सम्भावित हैं जबकि मैंने अमरावती के शिला लेखों को इसी काल में लिखा गया स्वीकार किया है। कर्नल मेकेन्जी ने धरनीकोट के खण्डहरों की खुदाई कराते समय गौतमी पुत्र एवम् आन्ध्र के सातकर्णी परिवार के अन्य राजाओं की मुद्रायें प्राप्त की थीं और यह एक मात्र खोज ही उनके शासन काल में इस स्थान पर महत्वपूर्ण भवनों की उपस्थिति का प्रमाण प्रस्तुत करती है। मैं इस बात का प्रस्ताव कर चुका हूँ कि गौतमी पुत्र सातकर्णी एवम् शक सम्वत का संस्थापक महान सालिवाहन अथवा सातवाहन सम्भवतः एक ही व्यक्ति के भिन्न भिन्न नाम थे और मेरा विश्वास है कि इसी राजा ने ९० ई० में अमरावती का शिला लेख खुदवाया था तथा इस स्तूप के निर्माण कार्य को उसके उत्तराधिकारी यज्ञश्री सातकर्णी ने पूरा कराया था जो १४२ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ था। लिपि स्तूप के निर्माण काल के सम्बन्ध में प्राप्त एक मात्र तथ्य से मिलती है कि इसका निर्माण ईसवी काल से पूर्व अथवा ३१३ ई० के पश्चात नहीं हुआ था। ३१३ ई० में इन अवशेषों को यहाँ से थो सक्का स्थानान्तरित कर दिया गया था।

काफी समय पश्चात अर्थात ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अबु रिहान ने दनक का उल्लेख किया है, जिसने इसे "कोंकण के मैदान" कहा है। अब कोंकण कृष्णा नदी की घाटी है और दनक देश के उपर्युक्त वर्णन से ह्वेनसांग के धनकटक को कृष्णा नदी पर अवस्थित धरनीकोट के ध्वस्त नगर के अनुरूप स्वीकार करने के मेरे प्रस्ताव के पक्ष में एक अन्य प्रमाण मिलता है। अबु रिहान के अनुसार धनक कवन्न अथवा मेण्डा का देश था। अब, व्यापारी सुलेमान ने दक्षिण भारत के रहमी नामक एक देश के सम्बन्ध में यह विवरण दिया है। यह देश महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध था जिसे एक अगूठी से निकाला जा सकता था। मसूदी तथा इदरिसी ने इसी देश को क्रमशः रहमा तथा रूमा कहा है। मसूदी ने इस बात का उल्लेख भी किया है कि यह समुद्र तट के साथ साथ विस्तृत था। अब, मार्को पोलो ने मतफिलो नगर की मलमली

---

(१) भिल्सा स्तूप पृ० २६४ श्री फर्ग्युसन ने इस स्तूप को अशोक की लाट पर लिखे गये लेखों के समान स्वीकार किया है परन्तु यह उनकी भूल है क्योंकि भिल्सा टोप के द्वार पर लिखे लेख पूर्णतया भिन्न हैं जैसा कि मेरी खोज से पता चलता है।

पटम के प्रान्त में तथा मालाबार के उत्तर में रत्नों एवम् मकड़े के जाल के समान महीन एवम् कोमल मलमल के लिये प्रसिद्ध स्थान बताया है। मुनफिली को सामान्यत मछलीपटम के अनुरूप स्वीकार किया गया है परन्तु धरनीकोट से ६५ मील दक्षिण में तथा मछलीपटम से ७० मील दक्षिण पश्चिम में मुतफिली नाम का एक बड़ा कस्बा वर्तमान समय में भी बसा हुआ है। किसी भी अवस्था में मार्कोपोलो के उल्लेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि गोदावरी के मुहाने का तटीय प्रदेश रत्नों एवम् महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध था। अतः इसमें धरनीकोट के उत्तर में पर्याप्त का रत्न युक्त जिला एवम् महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध मछलीपटम जिला सम्मिलित रहा होगा। और तदनुसार इसे अरब भूगोल शास्त्रियों के रहमी अथवा दूमी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। अरबी भाषा के अक्षरों में थोड़े परिवर्तन से रहमी को धनक पढ़ा जा सकता है जो अबु रिहान के दनक से मिलता है।

उड़ीसा के ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुसार अमरावती के वर्तमान नगर की स्थापना बारहवीं शताब्दी में उड़ीसा के राजा सूर्य देव ने द्वितीय राजधानी के रूप में करवाई थी। यह नाम अमरनाथ अथवा अमरेश्वर के रूप में शिव की पूजा से सम्बन्धित है और इस देवता के १२ प्रसिद्ध लिङ्गों में एक लिंग जिसे उज्जैन से सम्बन्धित बताया जाता है—वस्तुत कृष्णा नदी पर अवस्थित पवित्र नगर से सम्बन्धित था क्योंकि हम जानते हैं कि उज्जैन में महाकाल का प्रसिद्ध मन्दिर था जब कि शिव के अन्य सभी लिंग विभिन्न स्थानों से सम्बन्धित थे।

मैं एम० विवीन सेंट मार्टिन के सन्देह की चर्चा किये बिना इस विवरण को समाप्त नहीं कर सकता। उन्होंने सन्देह व्यक्त किया है कि दण्डक नाम धनककट से सम्बन्धित है। दण्डकारण्य अथवा 'दण्डक के वन' भारत के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वाराह मिहिर ने दक्षिण भारत के अन्य स्थानों के साथ दण्डक इस प्रकार उल्लख किया है—केरल, करनाटा, काँचीपुर, कोकण चित्रा पट्टन (मद्रास) इत्यादि। इस सूची में दण्डक कोकण अथवा अप्पर किस्तना में भिन्न है अतः इसे कृष्णा नदी की निचली घाटी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसकी राजधानी धनककट थी। परन्तु चूंकि अन्तिम नाम पश्चिमी कन्दराओं के प्रारम्भिक लेखों में मिलता है अतः यह सम्भव है कि उच्चारण में दोनों नामों की समानता प्रायः आकस्मिक हो।

ह्वेनसाग ने धनककट प्रान्त की परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील बताया है। चीनी सम्पादक द्वारा लिखे गये ता आन तो लो अर्थात् महाआन्ध्र के अन्य नाम से इन बड़े आँकड़ों की पुष्टि होती है क्योंकि तेलगाना के अन्य जिले अर्थात् कलिंग तथा आन्ध्र धनककट की अपेक्षा छोटे थे। किसी भी दिशा में सीमा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु इस बात की अधिक सम्भावना है कि प्रान्त की सीमायें जहां तक

सम्भव है तेलगु भाषा की सीमाओं से मिलती थी जो पश्चिम में कुलबर्ग तथा येल्ला कोण्डा, दक्षिण में तिपती तथा पुलीकट झील तक विस्तृत थी। उत्तर में यह आन्ध्र तथा कलिंग से तथा पूर्व में समुद्र से घिरा हुआ था। इन सीमाओं की परिधि जहाँ तक सम्भव है १००० मील है अतः मैं इस बात पर विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि इस प्रकार उल्लिखित विशाल क्षेत्र ह्वेनसांग का प्रसिद्ध धनककट है।

चोलिया अथवा जोरिया

धनककट से ह्वेनसांग दक्षिण पश्चिम की ओर १००० ली अथवा १६७ मील की यात्रोपरान्त चू लि यी अथवा को-ली यी गया जिसे उसने २४०० ली अथवा ४०० मील की परिधि का एक छोटा जिला कहा है। इस अज्ञात स्थान की स्थिति को निर्धारित करने के लिये द्रविड़ की सर्व प्रसिद्ध राजधानी कांचीपुर अथवा कांजीवरम तक १५०० अथवा १६०० ली अथवा लगभग २६० मील तक दक्षिण दिशा में तीर्थ यात्री के पश्चातवर्ती मार्ग का उल्लेख करना आवश्यक है। अब, कृष्णा नदी से कांचीपुर की दूरी २४० से २६० मील है अतः चोलिया को धारनी कोट के १६७ मील दक्षिण पश्चिम में नदी के दक्षिणी तट पर देखा जाना चाहिये। यह स्थिति करनूल की स्थिति से ठीक ठीक मिलती है जो सीधी रेखा पर कांचीपुर से उत्तर उत्तर पश्चिम में २३० मील तथा धरनीकोट से पश्चिम-दक्षिण पश्चिम में १६० मील दूर है। एम० जुलीन ने चोलिया को चोल के अनुरूप बताया है जिसमें चलमण्डल अथवा कोरोमण्डल का नाम पड़ा है। परन्तु चोल द्रविड़ के दक्षिण में था जबकि ह्वेनसांग का चोलिया उत्तर की ओर था। यदि हम तीर्थ यात्री द्वारा बताई गई दूरी एवम् दिगांश को प्रायः शुद्ध स्वीकार कर लें तो चोलिया को निश्चित ही करनूल के पड़ोस में देखा जाना चाहिये।

प्रोफेसर लासन ने प्रस्ताव रखा है कि चोलिया तथा द्रविड़ नामों को तीर्थ यात्री की मात्राओं ने चीनी सम्पादक ने परिवर्तन कर दिया होगा। कुछ वर्ष पूर्व यात्राओं के वर्णन को पढ़ते समय मुझे इसी बात का प्रस्ताव रखने की इच्छा हुई थी और यदि यह बात निश्चित होती कि चीनी शब्द चू ली-यी चोल का प्रतिनिधित्व करता है तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का अधिक प्रलोभन हो सकता था। परन्तु मैं एम० विवीन डी सेंट मार्टिन के इस विचार से सहमत हूँ कि उपर्युक्त परिवर्तन की सम्भावना को स्वीकार करना कठिन है यद्यपि ह्वेनसांग की पुस्तक का अनुसरण करने से स्पष्ट हो जाता है कि उसने प्रसिद्ध चोल राज्य का उल्लेख न करने की भूल की है। एम० डी सेंट मार्टिन ने कोरोमण्डल नाम के वर्तमान प्रयोग का उल्लेख किया है। यह नाम उत्तर में गोदावरी नदी के मुहाने तक मद्रास के सम्पूर्ण तटीय प्रदेश को दिया गया है। उनके विचार है कि इस नाम से कृष्णा नदी के दक्षिण में चोल राज्य के सम्भावित

विस्तार का पता चलता है। परन्तु मेरा विश्वास है कि कोरोमण्डल नाम का यह विस्तार वस्तुतः योरोपीय व्यापारियों की देन है जिन्होंने इसे अपनी सुविधा हेतु अपना लिया था। इसके अतिरिक्त यह नाम केवल तटीय प्रदेश से सम्बन्धित है जबकि चोलिया को ह्वेनसांग ने धारनीकोट के दक्षिण पश्चिम में अवस्थित एक छोटा जिला कहा है। अत, यदि हम ह्वेनसांग के विवरण को इसी प्रकार स्वीकार कर लें तो इस बात की कम सम्भावना है कि चोलिया पूर्व दिशा में समुद्र तट तक विस्तृत था।

यह स्वीकार किया गया है कि चोलिया की पहचान करना कठिन है परन्तु मेरा विचार है कि हम या तो तीर्थ यात्री के विचार को स्वीकार कर लेना चाहिये अथवा प्रोफेसर लासेन द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन को स्वीकार कर लेना चाहिये। प्रथम स्थिति में हमें चोलिया को कर्नूल के आस-पास देखना चाहिये जबकि अंतिम विचारानुसार इसे तुरन्त ही चोल के प्रसिद्ध प्रांत एवम् तंजोर की सब प्रांत राजधानी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है।

भारत के चीन जापानी मानचित्र में—जिसे तीर्थ यात्री की यात्राओं को समझाने के उद्देश्य से बनाया गया है चोलिया जिले को चू इयू-नो कहा गया है और इसे द्रविड के उत्तर में तथा धनक के दक्षिण पश्चिम में दिखाया गया है—जैसा कि ह्वेनसांग ने लिखा है। यह चीनी अक्षर सम्भवतः कंदानूर का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं जो बुकनान के अनुसार कर्नूल के नाम का शुद्ध स्वरूप है।

कर्नूल की दीवारों के ठीक नीचे जोरा अथवा ओरा अर्थात मानचित्रों के जोरामपुर का प्राचीन नगर अवस्थित है जो तीर्थ यात्री के चोलिया अथवा ओरिया से ठीक-ठीक मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक चीनी अक्षर बहुत कम प्रयोग में लाया जाता है परन्तु कजुगिरा, जुटिंगा तथा ज्योतिष्क में समान अक्षर का प्रयोग किया गया है और मैं एम० जुलीन द्वारा इस अक्षर को जू अथवा जो पढ़ने के प्रस्ताव से सहमत हूँ। मैं जोरा का टालमी के सोरा रेगिया अरकाटी के अनुरूप समझने का भी इच्छुक हूँ। परन्तु चाहे घोड़ा गाड़ी को घोड़े के सम्मुख रखा जाये अथवा पीछे घोड़ा गाड़ी, घोड़ा गाड़ी ही रहेगी अत मैं सोरा का राजा अरकटोस की राजधानी समझता हूँ चाहे इस राजा के नाम से पूर्व लिखा जाय अथवा बाद में। अरकटी को सामान्यत मद्रास के समीप अरकाट के अनुरूप स्वीकार किया जाता है परन्तु इस नगर का नाम प्रायः आधुनिक समझा जाता है और सोरा अरकाट के उत्तर में रहा होगा। अत टालमी की सोराय नोमडेस सोरों की एक शाखा रह होगी जो वर्तमान समय में भी कृष्णा नदी के तट पर बसे हुए हैं। कर्नूल से एक सौ मील पश्चिम उत्तर पश्चिम में सारापुर नाम का एक विशाल नगर है जिसका राजा अपने को तीस शताब्दियाँ पुरानी वंश-परम्परा का बाहर बताता है, और अब भी अपने पिता

के समान 'राजदेव' समझा जाता है। उनके स्वामिभक्त 'वेनर' अब भी उसके राज दरबारी हैं।

चूंकि चोलिया की परिधि को केवल २४०० ली अथवा ४०० मील बताया गया है अतः इसके छोटे आकार से इसकी पहचान करने में सहायता नहीं मिलती। यदि इसे कर्नूल जिले में मिलाया जाय तो यह धनकटक के उत्तर पश्चिमी कोण को काट देगा और यद्यपि इसका क्षेत्र कम हो जायेगा फिर भी इसकी परिधि में अन्तर नहीं आयगा और यदि चोलिया को चोल के अनुरूप स्वीकार करना है तो मैं इसमें उत्तर-पश्चिम में सलम के समीप मकेरी दुर्ग से लेकर उत्तर पूर्व में कावेरी अथवा कालरून नदी के मुहाने तक तथा दक्षिण पश्चिम में डिंडीगल से लेकर दक्षिण पूर्व तक कालीमेर बिन्दु तक विस्तृत तन्जोर के आधुनिक जिले को सम्मिलित करूंगा। यह क्षेत्र लगभग १२० मील लम्बा तथा ८० मील चौड़ा है अथवा इसकी परिधि प्रायः ४०० मील है।

द्राविड़

सातवीं शताब्दी में ह्वेन त्सांग के द्वारा द्राविड़ प्रान्त की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी और कन्-ची पू लो अथवा कांचीपुर नामक इसकी राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। कांचीपुर पलार नदी पर अवस्थित एक विशाल किनारे एवम् प्राचीन नगर कंजीवरम का शुद्ध संस्कृत नाम है। चूंकि द्राविड़ उत्तर में कोंकण तथा धनकटक से एवम् दक्षिण में मालकूट से घिरा हुआ था जबकि पश्चिम की ओर किसी भी जिले का उल्लेख नहीं किया गया है अतः यह निश्चित प्रतीत होता है कि यह समुद्र से समुद्र तक सम्पूर्ण पठार में विस्तृत रहा होगा। अतः इसकी उत्तरी सीमा को अनुमानतः पश्चिमी घाट से कुण्डापुर से लेकर कडूर तथा त्रिपती होते हुए पुलीकट झील तक, तथा दक्षिणी सीमा को कालीकट से कावेरी के मुहाने तक विस्तृत बताया जा सकता है। चूँकि इन सीमाओं की परिधि १००० मील के अधिक समीप है अतः प्रस्तावित सीमाओं को प्रायः शुद्ध स्वीकार किया जा सकता है।

कांचीपुर में तीर्थ यात्रा के निवास के समय श्री लङ्का से प्रायः ३०० बौद्ध भिक्षु राजा की मृत्यु के पश्चात देश में राजनैतिक हलचल के कारण भाग कर वहाँ आ गये थे। मेरी गणना के अनुसार तीर्थ यात्री २० जुलाई ६३९ ई० में कांचीपुर पहुँचा था और टर्नर द्वारा बनाई गई श्री लङ्का के राजाओं की सूची में ६३९ ई० में राजा बुना मुगलान की हत्या कर दी गई थी। इन भिक्षुओं द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर तीर्थ यात्री ने सग किया लो अथवा श्री लङ्का के सम्बन्ध में अपना विवरण तैयार किया था क्योंकि देश की राजनीतिक दुरवस्था के कारण वह वहाँ नहीं जा सका था।

मालकूट अथवा मदुरा

कांचीपुर से ह्वेनसांग ३००० ली अथवा ५०० मील दक्षिण की ओर मो लो कयू चा तक गया जिसे एम० जुलीन ने मालकूट कहा है। देश के दक्षिणी भाग मे समुद्र तट की ओर मो लो यी अथवा मलय नाम का एक पर्वत था जहां चन्दन की लकडी मिलती थी। इस प्रकार वर्णित देश पठार का दक्षिणी छोर है जिसके एक भाग को आज भी मलयालम अथवा मलयवाड अथवा मालाबार कहा जाता है। तदनुसार मैं चीनी अक्षरों को मलयकूट का मिश्रित स्वरूप समझता। राज्य की परिधि ६००० ली अथवा ८३३ मील थी जबकि यह दक्षिण मे समुद्र से तथा उत्तर मे द्राविड राज्य की सीमाओं से घिरा हुआ था। चूंकि यह अनुमान कावेरी के दक्षिण मे पठार के छोर के वास्तविक आकडो से ठीक ठीक मिलते हैं अतः मलयकूट प्रांत मे पूर्व मे तञ्जोर तथा मदुरा के आधुनिक जिले तथा पश्चिम मे कोयम्बतूर, कोचीन तथा ट्रावनकोर के जिले सम्मिलित रहे होंगे।

राजधानी की स्थिति को निश्चित करना कठिन है क्योंकि कांजीवरम से ५०० मील दक्षिण की दूरी हमे कन्या कुमारी से दूर समुद्र में ले जायेगी। यदि हम ३००० ली के स्थान पर इसे १३०० ली अथवा २१७ मील पढे तो दिकांश एवम् दूरी दोनों ही मदुरा के प्राचीन नगर की स्थिति से मिल जायेंगी जो टालमी के समय मे पठार के दक्षिणी छोर की राजधानी थी। सम्भव है कि ह्वेनसांग की यात्रा के समय राजधानी कौलम (क्विलन) रही हो परन्तु न तो दूरी ही और न दिकांश ही ह्वेनसांग के कथन से मिलता है क्योंकि यह स्थान कांजीवरम के दक्षिण पश्चिम मे ४०० मील से अधिक दूर नहीं है। राजधानी के उत्तर पूर्व में चरित्रपुर नामक एक नगर था जो श्री लङ्का जाने के लिये एक बन्दरगाह थी। यदि राजधानी मदुरा थी तो बन्दरगाह नागापटम थी परन्तु राजधानी यदि कौलम थी तो बन्दरगाह रामनद (रामनाथपुर) रही होगी। इस बन्दरगाह से श्री लङ्का ३००० ली अथवा ५०० मील दक्षिण पूर्व में थी।

"ह्वेनसांग की जीवनी" के लेखक के अनुसार तीर्थ यात्री ने मलयकूट की यात्रा नहीं की थी वरन् सुनी हुई बातो के आधार पर अपना विवरण तैयार किया था और ३००० ली की दूरी वस्तुत द्राविड की सीमाओं से ली गई थी। परन्तु इससे हमारी कठिनाई और बढ जायगी क्योंकि इस दूरी को स्वीकार करने से मलयकूट की राजधानी अधिक दक्षिण की ओर चली जायेगी। इस पर टिप्पणी करते हुए एम० जुलीन ने मि यू की ३००० ली के स्थान पर ३०० ली निश्चित करते हुये उधृत किया है। यदि यह संख्या प्रकाशन की त्रुटि नहीं है तो विभिन्न पाठों से पता चलता है कि जहां तक दूरी एवं प्रस्थान बिंदु का प्रश्न है सभी पाठों में किसी प्रकार की अनिश्चितता है। अतः मैं इस बात को स्वीकार करने का इच्छुक हूं कि तीर्थ यात्री की

जीवनी एव इतिहास म मूल दूरी ३०० ली अथवा ५० मील थी जिस इतिहास के अनुसार द्राविड की सीमाओ से किया गया था तथा जीवनी म द्राविड की राजधानी से १३०० ली अथवा २१७ मील की दूरी बताई गई थी। किसी भी हालत में मलयकूट की राजधानी मदुरा म निश्चित होगी जो सदैव दक्षिणी भारत का एक प्रमुख नगर रहा है।

अबुरिहान एव उसके प्रतिलिपक रशीद उद्दीन के अनुसार मलय तथा कूटल (अथवा कुनर) दो विभिन्न प्रात थे। अन्तिम प्रात प्रथम प्रात के दक्षिण में था अथात भारत का दूरस्थ दक्षिणी जिला था। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि मलयकूट एक सयुक्त नाम था जो पड़ोसी जिलो के नामो को मिला कर रखा गया था। इस प्रकार मलय पाण्ड्या जिले का प्रतिनिधित्व करेगा जिसकी राजधानी मदुरा थी तथा कूट अथवा कूटल ट्रावन्कोर का प्रतिनिधित्व करेगा जिसकी राजधानी कोचीन अथवा टालमी की कोटियार थी।

चोल राज्य के सम्बन्ध म ह्वेन सांग की भूल को इस तथ्य से समझाया जा सकता है कि उसकी यात्रा के समय चोल देश चेरा के विशाल राज्य का भाग था। आरथुरा रेगिया सारे नदी सोरिगाय अर्थात् सारे चोर अथवा चोल जाति के राजा सोरनाग की राजधानी उरियूर थी। उरियूर त्रिचनापल्ली से दक्षिण दक्षिण पूव में कुछ ही मीलो की दूरी पर है। सारिगाय सम्भवत प्लिनी की सेवरेनी जाति है जिनके पास ३०० नगर थे क्योंकि व पाण्डाय तथा देरगाय अथवा द्राविड के मध्य पूर्वी तट पर बसे हुए थे।

एम जुकीन के अनुसार मलयकूट का चीमो लो अथवा ची मूरा भी कहा जाता था क्योंकि प्रथम चीनी अक्षर चो चो लो अथवा जम्कोटी के द्वितीय अक्षर से मिलता है। चिमूरा सम्भवत ऐड्रिया टालमी तथा एरियान के लिमूरि तथा पेटिन जोरियन सूचियो के डमोरिके का परिवतत स्वरूप है। यह प्लिनी की चारमाय जाति का नाम भी प्रतीत होता है जो पाण्डाय स आगे पश्चिमी तट पर बसे हुए थे।

भारत के चीन-जापानी मानचित्र म मालकूट का अ य नाम है य आन-मेन है जिसे टालमी के एद्योई म इसके सम्बन्धों का पता चलता है।

कोकण

मलयकूट स तीथ यात्री द्राविड (कजीवरम) वापस आया और तत्पश्चात वह उत्तर-पश्चिम की ओर २००० ली अथवा ३३३ मील दूर कोम-कीन नो ८ लो अथवा कांकणपुर गया। दिशा एव दूरी दोनो ही तुगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर अन्ना गुंडी की ओर सकेत करती हैं जो मुस्लिम आक्रमण म पूव देश की प्राचीन राजधानी थी। एम० विवीन डा० सट मीटन ने बनवासी क प्राचीन नाम का प्रस्ताव किया है

जो टालमी का बनौसई है । परन्तु इसकी दूरी बहुत अधिक है तथा महाराष्ट्र की राजधानी तक इसका पश्चातवर्ती दिकाश उत्तर हो जायेगा जबकि ह्वेनसाग ने उत्तर पश्चिमी कहा है । अना गुडी एक महत्वपूर्ण प्राचीन स्थान है और नदी के दक्षिणी तट पर विजय नगर के आधुनिक नगर की स्थापना से पूर्व यादव परिवार के राजाओ की राजधानी थी ।

हेमिल्टन के अनुसार कोकण प्रदेश म "पश्चिमी घाट का अधिकांश पूर्वी भाग" सम्मिलित था । यह विस्तार अबुरिहान द्वारा "कोकण के मैदान" के रूप म दनक के विवरण स मिलता है क्योकि यह विवरण घाट के ऊपर उन्नत भूमि के लिये हो सकता है । ह्वेनसाग के समय म भी यही दशा रही होगी क्योकि उसने राज्य की परिधि को ५००० ली अथवा ८३३ मील कहा है जिसे यदि घाटो एव समुद्र के मध्यवर्ती सकीण क्षेत्र तक सीमित किया जाये तो बम्बई से मगलूर तक सम्पूर्ण तटीय क्षेत्र इसमे सम्मिलित होगा । परन्तु सातवी शताब्दी मे इस क्षेत्र का उत्तरी अद्ध भाग महाराष्ट्र के शक्तिशाली चालुक्य राज्य का भाग था तथा तदनुसार यदि इसके आकार के सम्बन्ध में तीर्थ यात्री का अनुमान शुद्ध है तो कोकण राज्य पश्चिमी घाटो से भीतर की ओर दूर दूर तक विस्तृत रहा होगा । इसकी वास्तविक सीमाओ का उल्लेख नही किया गया है परन्तु चूकि यह राज्य दक्षिण के द्राविड स, पूर्व मे धनकक्ट से, उत्तर मे महाराष्ट्र स तथा पश्चिम मे समुद्र से घिरा हुआ था अतः इसे तट के साथ-साथ विगौला से वेदनूर के समीप कुण्डापुर तक तथा भीतर की ओर कृष्णा के समीप से लेकर मर्नगिरि के प्राचीन दुग तक विस्तृत बताया जा सकता है जिससे इसकी परिधि ८०० मील होगी । यह कदम्बा का प्राचीन राज्य था जो कुछ समय तक महाराष्ट्र स्थानीय जनता देश का कोंकण कहा करती है जिसस प्लिनी की कोकोण्डाय नामक जाति स इसकी अनुरूपता का पता चलता है जो दक्षिण भारत स सिधु नदी के मुहाने की ओर जाने वाले भाग के मध्य बसे हुए थे ।

महाराष्ट्र

कोंकण स तीर्थ यात्री उत्तर पश्चिम की ओर २४०० स २५०० ली अथवा ४०० मील स कुछ अधिक दूर को हो ला या अथवा महाराष्ट गया । इसकी राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी और पश्चिम की ओर यह एक विशाल नदी को छूती थी । केवल इसी विवरण से मैं गोदावरी नदी पर पैथान अथवा प्रतिष्ठान का सातवी शताब्दी म महाराष्ट्र की राजधानी के रूप म स्वीकार करने का इच्छुक हूँ । टालमी ने इसे बैथाना तथा पेरिप्लस के लेखक ने इसे प्लियान कहा है जिसे निश्चित ही पैथान पढा जाना चाहिये । परतु पश्चिम अथवा उत्तर पश्चिम

म भडोच तक १००० ली अथवा १६७ मील की पश्चातवर्ती दूरी बहुत कम है (१) क्योंकि भडोच तथा पैथान क मध्य वास्तविक दूरी २५० मील से कम नही है। एम० विवीन डी सेंट मार्टिन का विचार है कि देवगिरि इंगित स्थान की स्थिति से अधिक मिलती है परन्तु देवगिरि किसी भी नदी पर अवस्थित नही है तथा भडोच से इसकी दूरी प्राय २०० मील है। मेरे विचार म इस बात की अधिक सम्भावना है कि इंगित स्थान कल्यानी है क्योंकि हम जानते हैं कि यह चालुक्य परिवार की प्राचीन राजधानी थी। इसकी स्थिति भी ह्वेनसाग की दोनो दूरियो से भली प्रकार मिलती है क्योंकि यह अनागुडी से लगभग ४०० मील उत्तर पश्चिम में तथा भडोच से १८० अथवा १६० मील दक्षिण म है। नगर के पश्चिम म कैलाश नदी प्रवाहित है जो इस स्थान पर एक बडी नदी का रूप धारण कर लेती है। छठी शताब्दी मे कोसमस इंडिकोप्लूअस्टीज ने कलियाना नाम के अन्तगत एक क्रिश्चियन बिस्कोरम की राजधानी के रूप म कल्यान अथवा कल्यानी का उल्लेख किया था तथा पेरीप्लस के लेखक ने द्वितीय शताब्दी म इसे कलियनो कहा है जो सरगनोस के समय एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। कलियान का नाम क हारी की कन्दराओ के शिला लेखो में भी मिलता है जो ईसा काल की प्रथम एव द्वितीय शताब्दी म लिखे गये थे।

कहा जाता है कि प्रान्त की परिधि ६०० ली अथवा १००० मील थी जो उत्तर म मालवा, पूर्व म कोशल तथा आन्ध्र दक्षिण म कारण तथा पश्चिम म समुद्र क मध्यवर्ती असम्बन्धित क्षेत्र की परिधि से मिलती है। इस क्षेत्र क सामान्य बिन्दु, समुद्र तट पर दामन तथा विगला तथा भीतर की ओर इन्दौर तथा हैदराबाद हैं जिनसे इसकी परिधि १००० मील स अधिक बनता है।

राज्य की पूर्वी सीमाओं पर एक विशाल पर्वत था जिसकी श्रेणियाँ एक दूसर स ऊपर लगी हुई थी। एव इसकी चोटियाँ प्राय नुकीली थी। प्राचीनकाल म अरहन्त अचार ने एक मठ का निर्माण कराया था जिसके बगल चट्टानो को काट-

पत्थर के बने हाथी थे। जनसाधारण का विश्वास था कि यह हाथी समय-समय पर इतने जोर से चिघाडते थे कि पृथ्वी कांप जाती थी। पहाड़ी का वर्णन इतना स्पष्ट है कि इससे इसकी पहचान में सहायता नहीं मिलती परन्तु यदि पूर्वी दिशा सही है तो अजयन्ती की पहाड़ी ही सम्भवतः इंगित स्थान है क्योंकि इसकी गुफा श्रेणियां एलोरा या ठनका श्रेणियों की अपेक्षा ह्वेनसांग के विवरण से अधिक मिलती प्रतीत होती हैं। परन्तु पत्थर के हाथियों को छोड़ यह विवरण इतना स्पष्ट है कि इन दोनों स्थानों को निश्चित रूप से समान नहीं कहा जा सकता। एलोरा के स्थान पर कैलाश कन्दराओं के बाहर पत्थर के दो हाथी हैं परन्तु यह ब्राह्मणों का मंदिर है न कि बौद्ध विहार। इसी प्रकार इन्द्र सभा के समीप एक हाथी है परन्तु यह पशु आंगन के भीतर बना हुआ है जब कि तीर्थ यात्री के विवरण में हाथियों को द्वार के बाहर दिखाया गया है। बौद्ध कला कृतियों में बुद्ध के जीवन से सम्बंधित दृश्य सामान्य रूप से दिखाये गये हैं अतः इनसे मठ की पहचान करने में किसी प्रकार की विशेष सहायता नहीं मिलेगी। परन्तु यद्यपि तीर्थ यात्री का विवरण अस्पष्ट है फिर भी गुफियों की स्थिति एवं कला कृतियों के सम्बन्ध में इसे इतना विस्तार पूर्वक लिखा गया है कि मैं इस बात को स्वीकार करने को इच्छुक हूँ कि तीर्थ यात्री ने स्वयं स्थान को देखा होगा। इस दशा में मैं राज्य की "पश्चिमी" सीमायें बढ़ाऊंगा और इस मठ को सलसट्टी द्वीप की कन्हारी कन्दराओं के अनुरूप स्वीकार करूंगा। यदि मैं कल्याणी को सातवीं शताब्दी में महाराष्ट्र की राजधानी स्वीकार करने में सही हूँ तो यह प्रायः निश्चित है कि तीर्थ यात्री कन्हारी के स्थान पर बने बौद्ध संस्थानों को देखने गया होगा जो कल्याणी से २५ मील से अधिक दूर नहीं थे। कन्हारी के स्थान पर प्राप्त अनेक शिला लेखों से पता चलता है कि यहां कि कुछ एक कन्दरायें ईसा काल की प्रथम एवं द्वितीय शताब्दियों में बनाई गई थीं। इनमें एक शिला लेख पर "गौतमीपुत्र" काल का ३० वां वर्ष पुष्ट हुआ है जो १०८ ई० के समतुल्य है। कन्हारी में पत्थर के हाथियों के अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं परन्तु चूंकि विहार के बाहर निर्मित भाग गिर चुके हैं अतः पहाड़ के अग्रभाग के खण्डहरों से भविष्य में हाथी के खण्डहर प्राप्त हो सकते हैं। श्री इ० वेस्ट ने इन खण्डहरों से पत्थर का एक स्तूप प्राप्त किया है और इस बात में सन्देह नहीं कि भविष्य में खोज से अनेक रुचि पूर्ण खण्डहर प्राप्त होंगे।

लङ्का

श्री लंका का प्रसिद्ध द्वीप भारतीय राज्यों में नहीं गिना जाता है और राजनैतिक अव्यवस्था के कारण तीर्थ यात्री ने लंका की यात्रा नहीं की थी। परन्तु चूंकि उसने कांचीपुर में मिले भिक्षुओं से प्राप्त विवरण के आधार पर इसका वर्णन किया है और चूंकि धार्मिक एवं राजनैतिक रूप से यह द्वीप भारत के अधिक समीप है अतः इस रोचक द्वीप का वर्णन किये बिना मेरा कार्य पूरा नहीं होगा।

हमारे समय की सातवीं शताब्दी में श्री लंका का नाम सिंहल अथवा सिंहला कहा जाता था। कहा जाता है कि यह नाम कर के यात्री सिंहलो से लिया गया था जिसका पुत्र विजय ५४३ ई० पू० में बुद्ध की मृत्यु के दिन श्री लंका पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रसिद्ध था। इसका मूल नाम पाली में अथवा संस्कृत रत्न द्वीप था। योरप वासियों को इसका सर्व प्रथम ज्ञान सिकन्दर महान के अभियान में उनके ग्राने नाम के अन्तर्गत प्राप्त हुआ था। इसका प्रचलित पाली नाम ताम्बा था। यह नाम विजय के रोगी सहयोगियों को लाल हथेलियों के कारण रखा गया था। जिन्होंने नौकाओं से उतर कर द्वीप को लाल मिट्टी को स्पर्श किया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत ताम्र पर्णी पर आधारित इसका वास्तविक नाम ताम्बा पन्नी था। लासेन ने इसे ताम्र अर्थात "लाल कमल के पूना से ढका विशाल सरोवर का सम्भावित प्रतिनिधि कहा है। परवर्ती समय में यह द्वीप पश्चिमी संसार के सिमुन्दु अथवा पलय सिमुन्दु के नाम से प्रख्यात था। लासेन का विचार है कि यह नाम पाली सिमन्न अथवा 'पवित्र कानून का मुखिया' से लिया गया था। चूंकि प्लिनी ने राजकीय निवास के नगर को अन्तिम नाम से सम्बोधित किया है अतः इस टालमी के अनुरग्राम्मन अथवा अनरज पुर का द्वितीय नाम समझा गया है। अप्रासिमुन्दु नाम का विश्लेषण नहीं किया है। यह नाम टालमी ने अनरजपुर के विपरीत श्री लंका के पश्चिमी तट की भू-नासिका को दिया गया है। इसकी स्थिति से प्रतीत होता है कि यह पलाय सिमुन्दु का दूसरा नाम हो सकता है।

टालमी ने द्विप को सालिक कहा है जो, लासेन के प्रस्तावानुसार सिंहाक सिंहलक अथवा सिंहल सिलक का भ्रष्ट स्वरूप प्रतीत होता। अम्मियानस ने इसे सेरेंडिव कहा है जो कोसमस का सीलेडिवा के समान है। यह दोनों नाम सिंहल द्वीप से लिये गये हैं जो सिंहला द्वीप का पाली स्वरूप है। अबुरिहान ने इसे सिंगल दीव अथवा सिंदीव कहा है जो मारकोपोलो नाविका का सरेन्दीब है। इसी प्रकार अरबी जिलान तथा सीलोन नाम प्राप्त हुए। हिंदुओं में सर्वाधिक प्रचलित नाम लंका द्वीप है जिसे महावंसो में लंका दीप के पाली स्वरूप में दिया गया है।

ह्वेनसांग के अनुसार द्वीप की परिधि ७००० ली अथवा ११६७ मील थी जो वास्तविक परिधि से दुगनी है। सर एमरसन टनेन्ट के अनुसार इसका वास्तविक आकार उत्तर से दक्षिण लम्बाई में २७१½ मील तथा पूर्व से पश्चिम चौडाई में १३७ मील है अथवा इसकी परिधि प्राय ६५० मील है। यूनानी लेखकों ने इसके आकडों को इतना बढा चढा कर लिखा है कि मुझे स्थानीय माप की वास्तविक दर के सम्बन्ध में सन्देह होने लगा है। कासमस ने इस द्वीप की वास्तविक यात्रा करने वाले सोपटर के आधार पर इसे ३०० गौडिया लम्बा एवं इतना ही चौडा बताया है। सर एमरसन टेनेन्ट ने इस नाम को स्थानीय माप गौ के अनुरूप स्वीकार किया है जिसे उन्होंने १

मील के समतुल्य एव चौडाई माना है। इस प्रकार द्वीप की लम्बाई ६०० मील बताई है। परन्तु गौडिया भारत के गौ कोस के समतुल्य हो सकता है। गा कोम वह दूरी थी जहां तक गौ के रम्भाने की ध्वनि का सुना जा सकता था। यह दूरी १००० धनु है जो ६००० फुट अथवा १ १३६ मील के समान है। इस प्रकार ३००० गौडिया ३४० मील के समान होगा जो द्वीप की वास्तविक दूरी से केवल ७० मील अधिक है। प्लिनी ने इसकी लम्बाई को १०००० स्टेडिया अथवा ११४६ माल बताया है। टालमी ने १५० अन्याश अथवा १००० मील लम्बा कहा है जिस मरसियानस ने घटा कर ६५०० स्टेडिया अथवा १०६१ई मील कहा है। अब, प्रारम्भिक चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने जिसने ४१२ ई० अथवा सोपटर मे एक शताब्दी पूर्व श्री लका की यात्रा की थी, कहा है कि द्वीप की लम्बाई ५० योजन तथा चौडाई ३० योजन अथवा ३५०+२१० मील थी। यदि हम यह अनुमान लगाये कि दोनों यात्रियों ने अपने आकडे देश की जनता से प्राप्त किये थे तो सोपेटर के ३०० गौडिया का ५० योजन के अनुरूप स्वीकार किया जायेगा और इस प्रकार ६ गौडिया बराबर एक योजन की दर से स्थानीय माप (गौ) अग्रेजी मील से कुछ अधिक अथवा भारत के गौ कोस के समान होगा। (१)

श्री लका पर अपनी रोचक एव महत्वपूर्ण पुस्तक मे सर एमसन टेनैन्ट ने प्रस्ताव किया है कि 'गाले की बन्दरगाह बाईबल का तारशिप नगर होगी जो अरब की खाडी तथा ओफीर के मध्य अवस्थित था। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि ओफीर मलक्का अथवा औरिया थेर सोनिसस था क्योंकि मलय भाषा मे ओफीर सोने की खान का साधारण नाम है।" परन्तु मेरे विचार मे इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि सोलोमन के नाविकों द्वारा लाये गये सभी पदार्थो के नाम शुद्ध सस्कृत नाम हैं। सर एमसन का कथन है कि यह नाम थ। लका म प्रचलित तामिल नामो के अनुरूप हैं। यह नाम हैं सेन हबीम अथवा हाथी के दांत, होफीम अथवा लगूर तथा तुकिम अथवा तोता। परन्तु यह शब्द हैं सस्कृत के शुद्ध इभा, कपि एव सुक शब्द हैं जिनमें हब्रू भाषा के अक्षर अन्त में जोड दिये गये हैं। यह सत्य है कि सस्कृत के इन नामों को दक्षिण भारत की भाषाओं मे स्वाभाविक रूप से अपना लिया गया है परन्तु इन्होंने तामिल के मूल नामो का स्थान ग्रहण किया है। यह नाम वर्तमान समय म भी प्रयोग में लाये जाते हैं। उदाहरणार्थ हाथी के लिये यानै बन्दर के लिये कुरंगा,'मोर'के लिये मयिल तथा तोते के लिये किलिरगिले। अब, यदि सोलोमन के नाविकों ने इन सस्कृत नामों को लका म प्राप्त किया था तो हमें यह स्वीकार करना

(१) सर एमसन ने यूनानी माप का गौ के समरूप स्वीकार किया है। गौ वह दूरी है जिस कोई व्यक्ति एक घण्टे म पूरा कर सकता है। परन्तु 'घण्टा शब्द म योरपीय' सभ्यता की झलक मिलती है। क्या ऐसा नही हो सकता कि गौ वह दूरी थी जिसे कोई व्यक्ति भारत मे समय विभाजन की सर्व प्रसिद्ध इकाई घडी अथवा २४ मिनट में तय कर सकता था। यदि ऐसा है तो प्रति घण्टा तीन मील की दर से गौ १२ मील के समान होगा जो ऊपर लिखे गौ कोस के समान है। विल्सन ने गौ को चार कोस के समान माना है।

परिशिष्ट 'क'

दूरी के माप

योजन, ली, कोस

चीनी तीर्थ यात्रियों ने दूरियों के माप में भारतीय योजन तथा चीनी ली का उल्लेख किया है। वरिष्ठ यात्री फाहियान ने सामान्यतः प्रथम माप का प्रयोग किया है जबकि पश्चातवर्ती यात्री सुङ्गयुन तथा ह्वेनसांग ने द्वितीय माप का प्रयोग किया है। कोस जो वर्तमान समय में सामान्य भारतीय माप है किसी भी यात्री द्वारा प्रयोग में नहीं लाया गया। ह्वेनसांग ने लिखा है कि प्रथानुसार प्रचलित माप केवल ३० चीनी ली के समान था। विभिन्न यात्रियों द्वारा सर्व ज्ञात स्थानों के मध्य की उल्लिखित दूरियों की तुलना करने में ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग ने योजन को प्रथानुसार माप के आधार पर ४० ली के समान स्वीकार किया है। मैं उदाहरण स्वरूप चार दूरियों का उल्लेख करता हूँ —

	फाहियान		ह्वेनसांग
१ श्रावस्ती से कपिला तक	१३ योजन	अथवा	५०० ली
२ कपिला से कुशी नगर	१२ "	"	४८५
३ नालन्दा से गिरियेक	१ "	"	५८ "
४ वैशाली से गंगा	४ "	"	१३५ "
	कुल – ३० योजन	=	११७८ ली
	अथवा १ "	=	३९$\frac{1}{4}$ "

ह्वेनसांग ने एक योजन को ५०० धनु के आठ कोस के समान बताया है। इस प्रकार एक योजन २४००० फुट अथवा ४$\frac{1}{2}$ मील से कुछ अधिक होगा परन्तु हिन्दुओं के सभी ग्रन्थों में योजन को ४ कोस के समान बताया गया है जबकि प्रति कोस १००० अथवा २००० धनु के समान था। प्रथम दर ह्वेनसांग द्वारा वर्णित की लम्बाई से मिलती है जबकि द्वितीय दर के अनुसार एक योजन दुगना अथवा ९ मील के समान हो जायेगा। इस दर से हमें वर्तमान समय में भारत के अनेक भागों में प्रचलित कोस बराबर २$\frac{1}{4}$ मील की मामाय—दर प्राप्ति होती है।

६००० फुट का छोटा कोस निश्चित ही प्राचीन भारतीय माप है जैसा कि *मेगस्थनीज के आधार पर स्ट्रेबो ने लिखा है कि पालीबोथरा जाने वाले राजकीय मार्ग* पर दूरी दर्शाने के उद्देश्य से प्रत्येक १० स्टेडिया अथवा ६०६७$\frac{1}{2}$ फुट की दूरी पर स्तम्भ लगवाये गये थे। कोस की इस दूर को स्वीकार करने से एक योजन में २४००० फुट से कुछ अधिक अथवा ४$\frac{1}{2}$ मील के समान होगा जबकि वास्तविक चीनी ली १०

बराबर एक योजन की दर से केवल ८०६ फुट तथा प्रयागत ली ४० बराबर एक योजन की दर से ६०० फुट से अधिक नहीं होगा। परिणाम स्वरूप ब्रिटिश मील में ६¾ अथवा ८½ ली होंगे परन्तु सुनिश्चित स्थानों के मध्य वास्तविक मार्ग दूरियों एवं चीनी तीर्थ यात्रियों द्वारा वर्णित दूरियों की तुलना करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय योजन को ४० ली के समान बताने में ह्वेनसांग ने अवश्य ही कोई गलती की है।

फाहियान द्वारा वर्णित निम्न दूरियों से पता चलता है कि मार्ग दूरियों में एक योजन प्रायः ६¾ मील के समान था और चूंकि एक गांव से दूसरे गांव के बैल गाड़ियों के प्राचीन मार्ग टेढ़े मेढ़े हुआ करते थे अतः योजन की वास्तविक दूरी ७½ अथवा ८ मील के समान स्वीकार की जा सकती है।

		फाहियान			ब्रिटिश मार्ग	
१	भेडा से मथुरा	८०	योजन	अथवा	५१६	मील
२	मथुरा से संकिसा	१८	″	″	११५½	″
३	संकिसा से कन्नौज	७	″	″	५०	″
४	बनारस से पटना	२२	″	″	१५२	″
५	पटना से चम्पा	१८	″	″	११६½	″
६	चम्पा से तामलुक	५०	″	″	३१६	″
७	नालन्दा से गिरियेक	१	″	″	६	″
		१९६	योजन	अथवा	१३१५½	मील

उपरोक्त दूरियों से फाहियान का एक योजन ब्रिटिश मार्ग दूरियों के ६.७१ मील के समान होता है।

इसी प्रकार ह्वेनसांग के माप की तुलना से उसका ली का मूल्य मार्ग दूरियों के अनुसार एक मील के छठवें भाग के बराबर है। परन्तु यह सम्भव है कि वास्तविक दूरी में इसका मूल्य एक मील के पांचवें भाग के समान था क्योंकि बैल गाड़ियों के टेढ़े मेढे रास्ते ब्रिटिश मार्गों से काफी लम्बे थे।

		ह्वेनसांग			ब्रिटिश मार्ग	
१	मदावर से गोविसन	४००	ली	अथवा	६६	मील
२	कोशाम्बी से कुसपुरा	७००	″	″	११४	″
	श्रावस्ती से कपिला	५००	″	″	८५	″
४	कुशि नगर से बनारस	७००	″	″	१२०	″
५	बनारस से गाजीपुर	३००	″	″	४८	″
६	गाजीपुर से वैशाली	५८०	″	″	१०३	″
		३१८०	ली	अथवा	५७६	मील

– इन दूरियो के औसत के अनुसार तक मान प ५.६२५ अथवा ६ ली होते हैं। मैंने इस पुस्तक मे ह्वेनसांग की सख्याओं को घटाकर ब्रिटिश मील के समान करने के उद्देश्य स इसी मूल्य का अनुसरण किया है। –

' ' योजन तथा ली को उपरोक्त दरें एक दूसरे से मिलती हैं जैस कि ह्वेनसाग ने लिखा है कि एक योजन को पृथा के अनुसार ४० के बराबर माना जाता था। जब कि उसकी वर्णित दूरियों में योजन की दर ४० ली को ५.६२५ से भाग देने पर ६.७५ मील होता है जो वस्तुत ६.७१ मील के समान है जिस सर्व ज्ञात स्थानो के बीच फाहियान द्वारा वर्णित दूरियो क आधार पर हम प्राप्त कर चुके हैं।

एम० विवीन डी सेंट मार्टिन ने ला-पी-रे गाबिन का उद्धित करते हुये बताया है कि ह्वेनसांग के समय से कुछ समय उपरान्त चीनी ली ३२६ मीटर अथवा १०७६.१२ ब्रिटिश फुट के बराबर था। चूंकि यह दर ह्वेनसाग द्वारा वर्णित दूरियो के आधार पर प्राप्त दर अर्थात् ली बराबर १०५६ फुट अथवा एक मील के पांचवें भाग के दर से प्राय मिलती है अत मेरा विचार है कि भारत में अपनी यात्राओं की दूरी का वास्तविक अनुमान वस्तुतः इसी ली के आधार पर किया था। सातवीं शताब्दी म चीनी ली के वास्तविक मूल्य को इस प्रकार स्वीकार करने से एक योजन की लम्बाई ४३१६४.८ फुट अथवा ८$\frac{1}{६}$ मील थी जो ८ से ९ मील के प्रचलित दर से प्राय मिलती-जुलती है।

इस प्रकार सातवीं शताब्दी मे चीनी ली का वास्तविक मूल्य १०७६.१२ फुट अथवा ब्रिटिश मील के पांचवें भाग से कुछ अधिक था परन्तु ऊपर बताये गये कारणो एव प्राप्त प्रमाणों के आधार पर ब्रिटिश भाग दूरी में एक ली का मूल्य ब्रिटिश मील छठवें भाग से अधिक नहीं था।

भारतीय कोस की लम्बाई में भिन्नता ने चीनी तीर्थ यात्रियो को, दुविधा, में डाल दिया होगा। सम्भवत यही कारण था कि फाहियान ने योजन के लम्बे माप का प्रयोग किया था जब कि ह्वेनसांग ने सभी दूरियाँ चीनी ली में बतायी हैं। वतमान समय में कोस की लम्बाई प्राय प्रत्येक जिले मे भिन्न भिन्न है परन्तु व्यवहारिक रूप मे कोस के तीन विशिष्ट मूल्य है जो उत्तरी भारत में इस समय प्रचलित है।

(१) छोटा कोस जिसे सामान्यत बादशाही अथवा पजाबी कोस कहा जाता है। यह उत्तरी पश्चिमी भारत तथा पंजाब में प्रचलित है और प्राय १$\frac{१}{६}$ मील लम्बा है।

(२) गगा नदी के प्रान्तो का कोस जो नदी के दोनों तटों के जिलों में प्रचलित है २$\frac{१}{६}$ मील लम्बा था परन्तु सुविधा के कारण अब इसे सामान्यत २ ब्रिटिश मील के समान स्वीकार किया जाता है।

(३) बुन्देल कोस जो बुन्देल खण्ड तथा यमुना नदी के दक्षिण म अन्य जिलों

प्रातों म प्रचलित है प्राय: ४ मील लम्बा है। यही कोस दक्षिण भारत मे मैसूर राज्य में भी प्रचलित है।

मैं प्रथम कोस को मूल रूप मे द्वितीय कोस का आधा समझता हूँ क्यो कि यह दोनों कोस एक ही प्रणाली के अग थे। इस प्रकार विल्सन ने एक कोस अथवा कोस को ४००० अथवा ८००० हाथ के समान बताया है। छोटा कोस मेगस्थनीस के समय मे मगध मे प्रचलित रहा होगा क्योकि उसने लिखा है कि राज्यकीय मार्ग पर दूरी बताने के उद्देश्य से प्रत्येक दस स्टेडिया की दूरी पर स्तम्भ लगवाये गये थे। अब, दस स्टडिया ६६६६ ७२ फुट अथवा प्राय: ४००० हस्त के समान है जो "ललित विस्तार' के अनुसार मगध के कोस का वास्तविक मूल्य था। ८००० हस्त के लम्बे क्रोस का उल्लेख भास्कर की "लीलावती" मे तथा अन्य स्थानीय विद्वानों द्वारा किया गया है।

इन माप दण्डों के वास्तविक मूल्य को निर्धारित करने के लिये यह आवश्यक है कि हमे उन सभी इकाईयो का ज्ञान हो जिन्हे मिलाकर इन्हे बनाया गया है। यह इकाई अगुल है जो भारत मे एक इञ्च के तीन चौथाई भाग म छोटी है। सिकदर लोदी की बयालीस ताम्र मुद्राओ को मापने पर एक अगुल एक इञ्च के ७२६७६ के बराबर है। हम जानते हैं कि इन मुद्राओ को अगुल की चौड़ाई के आधार पर बनवाया गया था। श्री थामस ने उपरोक्त माप को कुछ कम अथवा ७२२२६ बताया है। हमारे माप का औसत ७२६३२ इच है जिसे भारतीय अगुल के वास्तविक मूल्य क रूप मे स्वीकार किया जा सकता है क्योकि मैंने अनेक स्थानीय व्यक्तियों की उगलियाँ वस्तुत एक इच के तीन चौथाई भाग से कम थी। इस दर के अनुसार २४ अगुल का एक हाथ १७ ४३१६८ इच के बराबर होगा और ९६ अगुल का एक धनु ५ ८१ फुट के बराबर होगा। चूँकि १०० धनु से एक नलवा और १०० नलवा से एक क्रोस अथवा कोस बनता है। अत यह सम्भव प्रतीत होता है कि दशमलव क्रम को सुरक्षित रखने के लिए एक धनु १०० अगुल का रहा होगा। इस विचारानुसार एक हस्त म २४ के स्थान पर २५ अगुल रहा होगा और इसका वास्तविक मूल्य १८ १५८ इच होगा परन्तु यह दर भी भारतीय बाजार में प्रचलित हस्त के दर स काफी कम है। हस्त क इस मूल्य को बड़े माप इस प्रकार रहे होंगे।

चार हाथ अथवा १०० अगुल = ६ ०५२ फुट=एक धनु ८०० हस्त अथवा १०० अगुल=६०५ २ फुट=एक नलवा ८०० हस्त अथवा १०० नलवा = ६०५२ फुट = एक क्रोस।

चूँकि क्रोस अथवा का उपयुक्त मूल्य मेगस्थनीज द्वारा विवरण स प्राप्त मूल्य म केवल १५ फुट कम है अब मेरा विचार है कि इसे मगध के प्राचीन क्रोस क वास्तविक मूल्य का सामीप्य मूल्य स्वीकार किया जा सकता है।

पश्चातवर्ती समय में मुसलमान शासकों ने कोस की अन्य दरें निश्चित की थीं जिन्हें विभिन्न प्रकार के गजों के आधार पर निश्चित किया गया था और इन शासकों ने अपने नाम पर कोस का नामांकन किया था। इस विषय पर हमारी सूचना मुख्य रूप में अकबर के मंत्री अबुल फज़ल से ली गई थी। उसके अनुसार शेर खाँ ने ६० जरीबों के कोस अथवा कोस को निर्धारित किया था जबकि प्रत्येक जरीब में ६० सिकन्दरा गज अथवा ४१½ सिकन्दरी थे। यह कोस अबुलफज़ल के समय देहली में प्रचलित थे। यह कोस १०४२ ६६ फुट अथवा प्राय १ ⅘ मील के बराबर था। अकबर ने ५००० इलाही गज वाले एक अन्य कोस को प्रचलित किया था जबकि इस गज का मूल्य ४१ सिकन्दरा के समान बताया जाता है। निश्चय ही यह एक त्रुटि है क्योंकि वर्तमान इलाही गज का माप ३२ से ३३ इंच है और इस प्रकार यह ४४ अथवा ४५ सिकन्दरियों के बराबर है। सर हेनरी इलियट ने "आगरा से लाहौर तक अकबर महान द्वारा निर्मित राजकीय मार्ग तक ही बने हुए वर्तमान कोस मिनारों के बीच की दूरी के माप से उपर्युक्त कोस का मूल्य निर्धारित करने का प्रयत्न किया है परन्तु लोगों का सामान्य विश्वास है कि वह मीनार शाहजहाँ द्वारा बनाये गये थे जिसने एक अन्य गज का प्रचलन करवाया था अतः अकबरी कोस के उपरोक्त मूल्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सर हेनरी इलियट ने इस कोस को अनुचित महत्व प्रदान किया है। लगता है कि इस कोस ने अन्य सभी कोसों का स्थान ले लिया था। परन्तु निश्चित ही यह स्थिति नहीं थी क्योंकि अकबर के निजी मंत्री अबुलफज़ल ने अपने स्वामी के साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों का उल्लेख करते हुए छोटे कोस का प्रयोग किया है। अकबर के पुत्र जहाँगीर ने भी अपनी आत्मकथा में अकबरी कोस का त्याग किया है। उसके अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उसने लाहौर तथा आगरा के मध्य प्रत्येक ८ कोस पर एक सराय का निर्माण करने की आज्ञा दी थी। (१)

परिशिष्ट 'ख'

टालमी के पूर्वी देशान्तर में सुधार

टालमी द्वारा उद्धृत दूरियाँ वास्तविक दूरियों से सामान्यतः इतनी अधिक है कि विभिन्न भूगोल शास्त्रियों ने उनके सुधार हेतु अनेक उपायों का प्रस्ताव किया है। एम० गास्लिन ने टालमी की दूरियों को उनके ⅚ भाग के रूप में स्वीकार करने का

---

(१) जहाँगीर की आत्मकथा पृष्ठ ६० इन सरायों के बीच की दूरी ६ से १२ मील है।